एक
महान् नैतिक चुनौती

सुप्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार लुइ फ़िशर की
THE GREAT CHALLENGE का हिंदी अनुवाद

प्रधान विक्रेता
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली।

सूची

भाग—१ : व्यक्ति, राजनीति और युद्ध

भाग—२ : युद्ध द्वारा शांति की ओर

भाग—३ : दोहरी अस्वीकृति

भाग—१
व्यक्ति, राजनीति और युद्ध

एक महान् नैतिक चुनौती

: १ :

डन्कर्क के बाद

युद्ध लहू से रँगी हुई राजनीति है। इसके आरम्भ होने से पहले धारीदार पाजामा पहने हुए कूटनीतिज्ञ एक-दूसरे से शब्दों की लड़ाई लड़ते हैं और जब उन्हें सफलता नहीं मिलती तो वरदी पहने हुए सिपाही बम सम्हाल लेते हैं। दूसरा महासमर युद्ध से पहले की ही राजनीति का फल था।

युद्ध ने एक बात जो निश्चित कर दी, वह यह कि जर्मनी, इटली और जापान का इस भूमंडल पर राज नहीं होगा। फिर भी कई दूसरी समस्याएँ ज्यों-की-त्यों रह गई और वे अब या तो राजनीति द्वारा हल की जायँगी या उन पर सैनिक दृष्टिकोण से विचार किया जायगा।

शस्त्रीकरण की बढ़ती हुई भयंकरता शांति की कोई गारंटी नहीं है। दूसरा महासमर पहले से ज्यादा लम्बा था और उसमें धन और जन की भी अधिक आहुति चढ़ी। तीसरा महासमर इससे भी बढ़कर होगा। हरेक युद्ध अपने से पहलेवाले युद्ध से ज्यादा मँहगा रहा है, लेकिन इस बात के अच्छी तरह मालूम होने पर भी युद्ध कभी रुका नहीं। उसकी बढ़ती हुई भीषणता के कारण कुछ देशों को लड़ने से बस हिचक भर होती है, जो कि आक्रमणकारी देश के लिए बड़े लाभ की बात है।

साधारण लोगों को युद्ध से इतना अधिक भय लगता है कि जनतंत्री सरकारें शांति की आशा दिलानेवाले हर तिनके का सहारा लेने को खुशी के साथ तैयार हो जाती है। तुष्टीकरण का यह एक महत्वपूर्ण साधन है।

सन् १९३१ और १९४० के बीच सभी बड़े तानाशाहों ने किसी-न-किसी देश पर चढ़ बैठने का अपराध किया। ध्यान रहे कि यह अपराध ताना-

शाहों ने ही किया, किसी जनतंत्री सरकार ने नही। आजकल की जनतंत्री सरकारों को अपनी जनता की भावनाओ के साथ चलना पड़ता है; तानाशाहों पर ऐसा कोई बन्धन नही।

युद्ध का रुकना तानाशाहों और जनतंत्री सरकारों के भावी सम्बन्ध पर निर्भर है। तानाशाह अपना काम बड़ी फुर्ती के साथ करते है क्योंकि उनके निर्णय मे किसी नैतिकता या जनमत का अड़ंगा नही रहता। जनतंत्री सरकारे अपना निर्णय देर से करती हैं और जब कई जनतंत्री सरकारें अपनी-अपनी कूटनीति को एक-साथ मिला देती है तो या तो वे कोई निर्णय ही नहीं कर पाती या "कुछ न करने" का निर्णय करती है। सन् १९३९ से पहले यह बात अक्सर हुई।

सवाल शक्ति का नही है। जिन जनतंत्री सरकारों की शान्ति को सर्वसत्तावादी देशो के हमले से संकट पैदा हुआ था और अन्त मे जिनकी शान्ति नष्ट हो गई थी उनमे चीन पर जापान के, हब्श, अल्बेनिया और स्पेन पर इटली के और आस्ट्रिया और चेकोस्लोवेकिया पर नाज़ियों के आक्रमण को रोकने की काफ़ी से ज्यादा ताक़त थी। अकेले फ़ास में इतना बल था कि वह मार्च १९३६ मे हिटलर को राइनलैंड का पुनः शस्त्रीकरण करने से रोक देता।

महान् चुनौती

मूर्खतावश तानाशाह यह समझ न सके कि आक्रमण करने और पैर फैलाने से उनकी अपनी ही जड़ कट जायगी। उधर जनतंत्री सरकारों ने अपनी समस्याओं का सामना कर सकने में बड़ी अक्षमता दिखाई। उनके कुछ कूटनीतिज्ञों को खतरा नही दिखाई दिया, किन्तु कुछ को—मसलन, प्रेज़िडेन्ट रूज़वेल्ट को—दिखाई दिया। सन् १९३६ के आरम्भ में ही उन्होने आनेवाले युद्ध की ओर सार्वजनिक रूप से सकेत किया।

पार्लमेंट या मतदाताओं की सशस्त्र संघर्ष की ओर बढ़ने की अनिच्छा के कारण बहुधा कूटनीतिज्ञ चुप बैठ जाते थे। सच पूछिये तो अधिकांश मामलों में सैनिक कार्रवाई की आवश्यकता ही नही थी। राजनीतिक या आर्थिक कार्रवाई से ही काम चल सकता था, और इस दिशा में सरकारी दफ़्तरों को आज़ादी भी खूब थी। उन्होंने भूलें इसलिए कीं कि तब—और अब भी—कूटनीतिज्ञता में बडा मोलभाव करना पड़ता है; बहुत कुछ लेना और बहुत कुछ देना पडता है, जिसका नतीजा यह होता है कि छोटे-छोटे और अल्पकालीन राष्ट्रीय स्वार्थों पर इतना अधिक ध्यान केन्द्रित हो जाता है कि

दूर तक असर रखनेवाला अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य, अर्थात् शान्ति, दृष्टि से ओझल हो जाता है। इसके अलावा, जब कभी किसी संकट के बादल फट जाते हैं तो कूटनीतिज्ञ और बहुत-से साधारण लोग भी हर्ष मनाने लगते हैं। समस्या हल हुई या नही, इसकी उन्हें इतनी चिन्ता नही होती जितनी इस बात की, कि चलो इस समय तो तनातनी कम हुई। एक दिन एकाएक ये ही उलझी हुई समस्याएं आकर खडी हो जाती हैं।

पहले और दूसरे महासमर के बीच जो समय बीता उसमें धुरी राष्ट्र-समूह से बाहर के किसी भी देश ने लगकर या विशेष रूप से युद्ध रोकने की चेष्टा नहीं की। उलटे राजनीतिज्ञों ने कहा—"हिटलर युद्ध के लिए उतारू है, इस समय हमे उसकी बातें मान लेनी चाहिएँ; बाद में जब वह जड़ जमाकर बैठ जायगा तो रूस-विरोधी शक्ति के रूप मे उसकी मित्रता हमारे लिए बहुमूल्य सिद्ध होगी।" उन्होंने यह भी कहा—"इटली का हब्श पर हमला करना एक जुर्म है, फिर भी यदि हम मुसोलिनी को अधिक न भीचे तो सम्भव है कि वह हिटलर के विरुद्ध हमारा साथ दे।" इसके अलावा भी उन्होंने कहा—"यदि स्पेन वामपक्षी रहा तो उससे सब जगह वामपक्ष को ही प्रोत्साहन मिलेगा। फ़्रैन्को मुसोलिनी या हिटलर का पिट्ठू है तो होने दो, हम उसे रुपये उधार देकर, उसके साथ दया दिखाकर और उसके मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति बरतकर उसे खरीद सकते हैं।" इस तरह की बातों से तात्कालिक लाभ तो अवश्य हुआ किन्तु ये सिद्धान्त की बातें नहीं थीं।

इस प्रकार लल्लो-चप्पो करने से हिटलर, हिरोहितो और मुसोलिनी का बिना रक्त बहाये ही विजयी बनने में सहायता मिली, जिसके फलस्वरूप युद्ध अधिक दिनों तक चला और उसमें खून की नदियाँ भी खूब बहीं। राज-नीति केवल युद्ध की सृष्टि ही नहीं कर सकती बल्कि उसे दीर्घकालीन भी बना सकती है। साथ ही साथ वह विजय को निरर्थक भी कर सकती है।

युद्ध से पहले जो राजनीतिक हिचकिचाहट थी वह उसके आरम्भ होजाने पर भी चलती रही। तुष्टीकरण की नीति संक्रामक सिद्ध हुई। जहाँ एक सर-कार ने उसे छोड़ा वही दूसरी ने अपना लिया। फ़्रांस और ब्रिटेन को छोड़-कर धुरी-राष्ट्र-समूह के बाहर ऐसा कोई दूसरा देश नहीं था जिसने अपने पर आक्रमण होने से पहले युद्ध की घोषणा की हो। फ़्रांस ने ३ सितम्बर, १९३९ को ५ बजे सन्ध्या समय युद्ध घोषित किया; वह भी इसलिए कि उसी दिन सवेरे ११ बजे इंग्लैण्ड ऐसा कर चुका था। सदा की तरह फ़्रांस का अकेले रहने से डर लगता था। ग्रेट ब्रिटेन ही एक ऐसा देश था जहाँ जनता में इस

बात की राष्ट्रीय भावना देर से किन्तु पर्याप्त मात्रा में पैदा हो चुकी थी कि ब्रिटिश भूमि और जनता पर नाज़ी हथौड़े के गिरने से पहले ही नेविल चैम्बर-लेन की सरकार को, जो फ़ाशिज़्म की कट्टर विरोधी नही मालूम पड़ती थी, युद्ध में शामिल होने के लिए विवश किया जाय। इतने पर भी, युद्ध घोषित करने के बाद इंग्लैण्ड और फ़्रांस दोनों हा प्रतीक्षा करते रहे । महीनों तक ब्रिटेन की हवाई-सेना ने बमों के होते हुए भी केवल काग़ज के पर्चे ही गिराये। २ फ़रवरी, १९४० को 'न्यूयार्क टाइम्स' में युद्ध का जो समाचार छपा उसे दूसरे पृष्ठ के दूसरे कॉलम में सबसे नीचे केवल छः इञ्च का स्थान मिला और उसका शीर्षक यह था—"पच्छमी मोर्चे पर सर-गरमी बढी।" तीन दिन बाद फिर उसी पत्र में उसी दूसरे पृष्ठ पर यह सूचना छपी—"एक हल्की-सी भिडन्त में फ़्रांसीसियों को विजय मिली।" १० फ़रवरी को एक दूसरे समाचार का शीर्षक यह था—"इंग्लैण्ड के सब से भयंकर हवाई-युद्ध मे अंग्रेजों ने जर्मनी के तीन हवाई जहाज़ गिरा दिये और बीस को तहस-नहस कर डाला।" अत. इसमें कोई आश्चर्य नही कि ३१ जनवरी, १९४० को नेविल चैम्बरलेन ने पार्लमेंट मे इस बात की शिकायत की, कि यदि कोई व्यक्ति केवल ब्रिटिश लोक-सभा (हाउस आफ कामन्स) की बहसें और समाचारपत्रों मे छपी हुई कुछ अधिक सनसनीपूर्ण ख़बरें ही पढ़े तो वह समझेगा कि ब्रिटेन की सरकार लड़ाई जातने के लिए बहुत ही कम प्रयत्न कर रही है।

यह एक झूठमूठ की लड़ाई थी। नाजियों और बोल्शेविकों ने पोलैंड को रौंद डाला था। उसके बाद जर्मनी की लडाई कुछ समय के लिए स्थगित रही और फिर हिटलर स्कैंडिनेविया और पश्चिमी यूरोप की ओर बढा।

सच पूछिये तो उस समय असली युद्ध केवल यूरोप के उत्तरी बर्फ़ीले भाग में रूस और फ़िनलैण्ड के बीच हो रहा था । ३० नवम्बर, १९३९ को फ़िनलैण्ड पर रूस का आक्रमण और उसी दिन रात्रि के समय रूसी विमानों द्वारा हेलसिंकी पर बम-वर्षा— ये दो ऐसी घटनाएँ थीं, जिनसे सारे संसार में सोवियत् रूस के विरुद्ध एक लहर-सी दौड गई। प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने रूस के साथ व्यापार पर नैतिक प्रतिबन्ध लगा दिया। राष्ट्र-संघ (लीग ऑव नेशन्स) ने रूस को सदस्यता से हटा दिया। उसी संस्था ने जिसन चीन, स्पेन, आस्ट्रिया और चेकोस्लोवेकिया पर फ़ाशिस्टों द्वारा आक्रमण होनेके समय अपनी आँखें बन्द कर रखी थीं रूस के विरुद्ध दृढप्रतिज्ञ रहकर काम किया। न्यूयार्क में बिशप मैनिंग ने फिनलैण्ड को सहायता देने की अपील की । लथेरियन गिरजा ने फ़रवरी, १९४० में ५ लाख डालर एकत्र करने का कार्य आरम्भ किया।

हरबर्ट हूवर ने, जो स्पेन पर फ़ाशिस्ट आक्रमण के समय चुप थे, फ़िनो को पूर्ण सहायता देन का प्रस्ताव किया।

फ़िनो ने युद्ध करते हुए अपने शक्तिशाली पड़ोसी को कई बार पीछे हटाया और रूस के अनगिनत नौजवानों का काम तमाम कर दिया। १ फरवरी, १९४० को फिनलैण्ड के प्रेजिडेन्ट क्योस्टी कैल्लियो ने रूसियों के बर्बरतापूर्ण और अर्थहीन आक्रमण का अन्त करने के लिए "सम्माननीय सधि" की याचना की। किन्तु इसका उत्तर देते हुए मास्को के पत्र 'प्रवदा' ने लिखा—"फ़िनलैण्ड के लुटेरों का नाश कर दिया जायगा; हम अपने महान् नेता स्टालिन की अधीनता मे काम करते हुए उन पर विजय प्राप्त करेंगे।" स्टालिन के सम्बन्ध में 'प्रवदा' ने लिखा—"इनका हृदय विद्वान्-जैसा है और चेहरा मज़दूर-जैसा; देखने मे यह सिपाही मालूम पड़ते है।" किन्तु 'न्यूयार्क टाइम्स' ने स्टालिन को "पूर्व देश का एक निर्दय तानाशाह" कहकर पुकारा। "स्टालिन बदला लेनेवाला एक क्रूर व्यक्ति है।" वाल्टर लिपमैन ने लिखा और फ़िनों को सहायता देने की अपील की। १ दिसम्बर, १९३९ को जोसेफ़ बार्न्स ने 'न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून' मे, जिसके कि वह मास्को मे प्रतिनिधि रह चुके थे, लिखा—"फिनलैण्ड एक पुरानी राष्ट्रीय परम्परावाला जनतंत्री देश है, वह उस अर्थ मे भी फ़ाशिस्ट नही जिस अर्थ मे रूसवाले फ़ाशिस्ट शब्द का खीच-तानकर प्रयोग करते है।"

फ़रवरी, १९४० मे जब ब्रिटेन मे जनता का मत लिया गया तो ७४ प्रतिशत व्यक्तियो ने फिनलैण्ड को शस्त्र देने और ३३ फ़ीसदी लोगों ने वहाँ सेना भेजने के पक्ष मे राय दी।

बहुत-से विद्वानों ने कम्युनिस्ट दल से इस्तीफा दे दिया, क्योकि रूस आक्रमणकारी बन गया था। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन डेलीगेशन के नेता सर वाल्टर सिटरीन ने दस दिन तक फ़िनलैण्ड के शहरो और युद्ध के मोर्चे की देखभाल करने के बाद हेलिसकी पहुँचकर कहा कि फ़िनलैण्ड को सामान और शायद योद्धाओ—दोनों की विस्तृत सहायता देने की आवश्यकता है।

सन् १९३६ में सिटरीन ने एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने रूसी शासन और घरेलू कार्य-पद्धति की बड़ी कड़ी आलोचना की थी। अब उन्होने फ़िनलैण्ड के कारण रूस का विरोध किया। बाद मे जब हिटलर के आक्रमण के पश्चात् रूस भी युद्ध-क्षेत्र मे उतर आया तो वह रूस के पक्षपाती बन गए। राजनीति में समय की आवश्यकता और देशभक्ति सिद्धान्त से अधिक शक्तिशाली होती है। हिटलर के आक्रमणों, अधार्मिक कार्यों और अत्याचारों के

बावजूद भी ब्रिटेन के बहुत-से प्रसिद्ध और साधारण तुष्टिकर्त्ताओं ने ३ सितम्बर, १९३९ तक हिटलर को "काफ़ी ग्राह्य" ही समझा। उसके बाद युद्धकालीन परिस्थिति के कारण उनकी प्रवृत्ति बदल गई और उन्होने अपने विश्वास नही बल्कि सरकार के आदेश के अनुसार कार्य किया।

२७ फ़रवरी, १९४५ को सर विलियम बेवरिज ने, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक सुरक्षा के पक्षपाती थे, ब्रिटिश लोक-सभा मे कहा—"विदेशी मामलो मे हमे सिद्धान्त का पालन करना चाहिए और यदि मित्रता और सिद्धान्त दोनों का साथ-साथ ध्यान रखना सम्भव न हो तो हमें (मित्रो को छोड़कर) सिद्धान्त की ही चिन्ता करनी चाहिए; क्योंकि सिद्धान्त कभी बदलते नही और मित्र कुछ समय के लिए युक्ति-संगत न होने पर भी बाद मे बदलकर युक्तिसंगत बन सकते है। अवसरवादिता, तुष्टीकरण, स्वार्थपूर्ण नीतियाँ, शक्ति—[illegible] सबसे हमारी आशाओं का हनन होता है।"

फिर भी अधिकतर लोग सिद्धान्त को भूल जाते है और यही कारण है कि वे उलझन और प्रचार के शिकार बनते है।

विदेश-नीति के मामले मे एक साधारण व्यक्ति की तुलना एक ऐसी दुकान से की जा सकती है जहाँ सभी तरह की चीज़े पड़ी रहती है। सन् १९३७ में एक दिन संध्या समय मुझे न्यूयार्क में निर्धनों की बस्ती मे रहनेवालो से बातचीत करने का अवसर मिला। वे समझदार लोग थे और अखबार पढ़ा करते थे। उन्होंने रूसी कमिश्नर मैक्सिम लिटविनाफ़ की सामूहिक सुरक्षा के लिए अपीलें पढ़ी और वे सामूहिक सुरक्षा के पक्ष में हो गए। उन्होंने प्रधान-मन्त्री चैम्बरलेन के वे भाषण पढ़े जिनमें हिटलर आदि के तुष्टीकरण के लिए क्षमा माँगी गई थी और वे इस बात को अच्छी तरह समझ गए कि जो ब्रिटेन लड़ाई के लिए तय्यार नहीं था और केवल शान्ति का आकांक्षी था उसने युद्ध से बचने की चेष्टा क्यों की। उन्होंने हिटलर के भाषण भी पढ़े और अनुभव किया कि उसका यह कहना सत्य है कि जर्मनी में रहने की जगह की तंगी है, जर्मनी को व्यापार के लिए बाज़ार चाहिए और वारसाई में सन्धि करते समय उसके साथ अन्याय हुआ था।

राजनीति की एक बड़ी भारी समस्या यह है कि आजकल के लोग बड़ी आसानी से विदेशी और घरेलू प्रचार के शिकार बन जाते हैं। जनतंत्री देशों में लोग जो बातें दिन-रात सुनते और पढते है उनसे उनका अचम्भा बढ़ता ही चला जाता है। तानाशाही देशों मे, जहाँ सरकार सभी समाचारों, भाषणों आदि का सेन्सर करती है, जनता धीरे-धीरे पूर्ण रूप से ऐसी बन जाती है कि

उससे जो कुछ कहा जाता है उसे ही वह मान और ग्रहण कर लेती है।

शासनसस्थाएँ चाहे वे तानाशाही हों चाहे जनतत्री—युद्ध को जीतने और लोगों को लडने मे समर्थ बनाने के लिए सब तरह के शस्त्र तैयार करती हैं। कुछ तोपखानो मे लोहे और इस्पात के शस्त्रो का निर्माण होता है, तो कुछ मे इतिहास को तोड़-मरोड़कर तलवार का रूप दिया जाता है। ऐसा करते समय इतिहास की घटनाएँ विकृत बनाई जाती है, यहाँ तक कि अन्त मे लोगों के मस्तिष्क तक विकृत हो जाते है।

जनता के मस्तिष्क पर सरकार का नियत्रण संसार के लिए एक बढता हुआ सकट है। तानाशाही राष्ट्रों मे इस नियत्रण की प्राप्ति के लिए बड़ी [illegible] युक्तियाँ काम मे लाई जाती है। वैसे सभी दूसरे देशो में भी सत्य का तोड़ने और उसका गला घोंटने के लिए बड़े उत्साह के साथ चेष्टाएँ की जा रही है।

"युद्ध इग्लैण्ड चाहता था," मार्शल गायरिग ने २ जनवरी, १९४० को कहा। साथ-ही-साथ उसने यह भी कहा, "जर्मनी के निवासी 'वृहत्तर जर्मनी' की स्वतन्त्रता के लिए एक विकट युद्ध मे तल्लीन है।" इसके अतिरिक्त, नाज़ी दल के सन् १९४० के कैलेण्डर में यह बात दृढ़तापूर्वक कही गई कि आक्रमण का आरम्भ पोलैण्ड ने किया और यहाँ तक झूठ बोला गया कि "जर्मनी की सीमा पर पोलैण्ड ने अपने अनेक आक्रमणो मे जिस बल का प्रयोग किया है उसका बल द्वारा उत्तर देने के लिए जर्मनी विवश हो गया है।"

१ जनवरी, १९४० को हिटलर के निजी दैनिक पत्र "वोयलकिशर बीओबाश्टेर" में नाज़ीवाद के लाभ इस प्रकार गिनाये गये—मज़दूरों को अधिकार, मूल्य-नियंत्रण, माताओं को सहायता, स्वास्थ्य की देखभाल, बच्चों का बीमा, कारखानों में खेलकूद, मनोरजक यात्राओं द्वारा बलवृद्धि, जर्मन मजदूरों के लिए शास्त्रीय सगीत।" उसी पत्र में यह भी लिखा गया—"इन बातों से युद्ध का कारण साफ़-साफ़ समझ में आ जाता है। इंग्लैण्ड और फ़्रांस के पूँजीपतियों को इस बात का भय हो गया कि निकट भविष्य में उनके मज़दूर भी उनसे ऐसी ही माँगें करेंगे। यह बात उनके लिए असह्य थी, इसलिए इसके अंकुर को नष्ट कर देना आवश्यक था।"

हिटलर के पत्र ने सुर छेड़ा और दूसरे नाज़ी पत्र तथा रेडियो-आलोचक उसके ताल पर नाच उठे। २ जनवरी, १९४० के "बीओबाश्टेर" मे मोटे-मोटे अक्षरों मे यह शीर्षक छपा—"ब्रिटिश सकट से यूरोप की मुक्ति।" ४ जनवरी को उसी पत्र ने 'हमारा साम्यवाद' नाम से एक लेख छापा। तीन दिन

बाद उसने लिखा —"पिछले एक हज़ार वर्ष से फ्रास का उद्देश्य जर्मन-एकता को भग करना रहा है।" ८ जनवरी को छपा—"जर्मनी मे बेकारी नही है" और ६ जनवरी को प्रथम पृष्ठ पर सब से मोटे अक्षरों मे यह शीर्षक दिखाई दिया—"पोलैण्ड के पाशविक हत्यारों ने जर्मनी के सख्त घायल हवाबाजों को सताया।" उसी दिन यह भी छपा—"इग्लैण्ड सिद्धान्त-विहीन पूंजीवाद का गढ़ है।"

हिटलर जर्मन जनता का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। जनता केवल उसकी झूठी बाते ही सुन सकी। मजदूरो मे उसने समाजवाद का विष बोया और सारे देश मे इंग्लैण्ड और फ़ास के विरुद्ध घृणा की आग फैलाई। फ़ांस में उसने ब्रिटेन के विरुद्ध प्रचार किया, ब्रिटेन मे फ़ास के विरुद्ध और अमेरिका मे यूरोपियनों के विरुद्ध। अमेरिकावासियों मे उसने युद्ध से अलग रहने का भी प्रचार किया।

बदमाश जितना ही बड़ा होता है उतने ही उत्तरदायित्व से हीन उसके तर्क होते है। सदा कोई-न-कोई उसका विश्वास कर ही लेता है।

बहुत-से दक्षिणपक्षी फ़्रांसीसियों ने हिटलर की चेतावनी सुनी। फ़ासासी कम्युनिस्टों के कान में मास्को की आवाज़ आई; रूसियों ने उन्हे बताया कि यह युद्ध साम्राज्यवादियों का युद्ध है।

फ़्रांस को प्रभावान्वित करने और सारे यूरोप मे आतंक फैलाने की चाल चलने के बाद नाज़ियो ने अपनी सेना आगे बढ़ाई और नारवे, डेनमार्क, हालैण्ड तथा बेलजियम को मार गिराया। २१ मई १९४० को नाज़ी सैन्य-दल बड़ी तेज़ी के साथ इंग्लिश चैनेल की ओर बढ़ा; ब्रिटिश आकाश-सेना ने ऐकेन पर भीषण बम-वर्षा की, प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट ने कांग्रेस को अमेरिका के रक्षा-प्रबंध को शीघ्र-से-शीघ्र पूर्ण करने का आदेश देते हुए एकता के लिए अपील की और महारानी विल्हेलमिना हालैण्ड से भागकर लंदन पहुँची।

१२ मई, १९४० को 'कम्युनिस्ट सन्डे वर्कर' नामक पत्र ने एक लम्बी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा—"यह युद्ध हमारा नही है; यह दो ठगों का युद्ध है—एक ओर ब्रिटेन और फ़ास का दल है और दूसरी ओर हिटलर का। हमें इस युद्ध से अलग रहना चाहिए।" २२ मई को न्यूयार्क में टाइम्स स्क्वायर में युद्ध-विरोधी प्रदर्शन किया गया और कम्युनिस्ट दलवाले जो तख्तियाँ लिये फिर रहे थे उन पर लिखा था—"रूज़वेल्ट, डेवी और हूवर ने युद्ध के लिए एक गुट बना लिया है", "भगवान् हमारे राजा की रक्षा करें", "अमेरिकन नहा लड़ेंगे" आदि।

दूसरी ओर, सिनेटर जेम्स बर्न्स ने कर्नल चार्ल्स लिंडबर्ग की युद्ध से अलग रहने की पराजयसूचक नीति के विरोध मे भाषण दिया। वेन्डेल विल्की ने कहा—"हिटलर केवल बल जानता है। जब हम अपने उद्योगों की मशीने चला देंगे और एक करोड़ आदमियों को काम पर जुटा देगे तो उसकी आखें खुल जायँगी।" फ्लोरिडा के सिनेटर पेप्पर ने इस बात पर ज़ोर दिया कि अमेरिका के हवाई जहाज़ यूरोप के जनतंत्री देशों को बेचे जायँ।

अमेरिका के लोग बहस करते रहे। उधर नाज़ी सैन्य-दलों के चलने से, जर्मन गोताखोर हवाई जहाजों के शोर से और टैंकों की खड़खड़ाहट से यूरोप काँप उठा।

और फिर डन्कर्क का युद्ध हुआ। २८ मई को बेलजियम के राजा लियोपोल्ड ने अपने सिपाहियों को हथियार डाल देने का आदेश दिया। इससे ब्रिटेन और फ्रांस की सेनाएँ भयानक संकट मे फँस गईं। "हमें कठोर समाचारों को सुनने के लिए तैयार हो जाना चाहिए," विन्सटन चर्चिल ने पार्लमेण्ट मे कहा। गहनतम निराशा के समय वह प्रधान मंत्री बनाये गये थे। ब्रिटिश और फ्रांसीसी सिपाहियों की एक छोटी-सी टुकड़ी समुद्र की ओर पीठ किये डन्कर्क में साहस के साथ लड़ती रही जिससे कि शेष ३॥ लाख ब्रिटिश सैनिक इंग्लैण्ड लौट जाने की चेष्टा कर सके। जब कि वे डन्कर्क के तट पर जहाजों की प्रतीक्षा कर रहे थे, जर्मन विमानों ने उनपर धुँआधार गोले बरसाये। ब्रिटेन से जहाज़ आये—विध्वंसक यान, छोटी नावें, स्टीमर, केलिपोत, मछली फँमानेवाली बोटे, छोटे-छोटे बच्चो द्वारा रस्सी से खीचकर चलाई जानेवाली नावे—जो भी आ सके, आये। जर्मन-विमानों ने उन पर टूट-टूटकर बम बरसाये। छोटे जहाजों पर चढ़ने के लिए सिपाहियों ने गर्दन-गर्दन तक पानी पार किया। घायलों को लोग हाथों और कन्धो पर उठा-उठाकर ले गये। जहाज़ बोझ से झुक गये। फिर वे ब्रिटिश तट की ओर लपके। जर्मन हवाई-सेना ने उनपर फिर आक्रमण किया। केवल एक दिन मे, अर्थात् पहली जून को, ६जहाज़ बमो से आहत होकर डूब गये। इनमे से कइयों पर सिपाही खचाखच भरे हुए थे। लोगों ने अपने पास की प्रायः सभी चीज़े फेंक दी, किंतु उन्होंने अपने सिरो पर से इस्पात के टोप नही हटने दिये। समुद्र मे विस्फोटक सुरंगों और टारपीडो का जाल बिछा हुआ था। अस्पताली जहाज़ो तक पर आकाश से बम गिराये जा रहे थे। जो सैनिक घावों पर फटी और गंदी पट्टियाँ बाँधे बुरी दशा मे तट पर पहुँचते थे, उन्हे लोग हर्ष और दुःख के मिश्रित आँसू बहाते हुए हाथों-हाथ ले जाते थे। इंग्लैण्ड मे खुशी मनाई गई। अमेरिका में भी ऐसा ही हुआ। जहाज़ कई बार

आये और कई बार गये और हर उस जहाज को देखकर जो सिपाहियो को लोग लिये कुशलतापूर्वक इग्लैण्ड पहुँचता था, हर्ष से पागल हो उठते थे। ब्रिटेन ने इस प्रकार बचाये गये अपने सिपाहियो की सख्या गिनी। वही उसकी एकमात्र सेना थी, एक निःशस्त्र सेना—हिटलर के आक्रमण से देश को बचाने की एक मात्र व्यवस्था।

४ जून को चर्चिल ने उत्साह और कृतज्ञता से भरो लोक-सभा मे घोषणा की—"एक हजार जहाज ३ लाख २५ हज़ार सैनिकों को मौत के पंजे से छुड़ा-कर अपने वतन वापस ले आये है।" १ लाख १० हज़ार फ्रासीसी सैनिक भी बचाकर लाये गये थे। फिर भी चर्चिल ने लोगो को सावधान किया—"यह एक सफलता है, विजय नही।" वह जानते थे कि आगे क्या होने वाला है, उन्हें पता था कि ब्रिटेन को जीवित रखने के लिए अभी लडाई लडनी बाकी है।

इंग्लैण्ड अकेला था, किंतु ४ जून को चर्चिल ने सारे ससार को विश्वास दिलाते हुए लोक-सभा में कहा—"हम न विचलित होगे, न पैर पीछे हटायेंगे; बल्कि अन्त तक दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते रहेंगे। हम फ़ास मे लड़ेंगे, सागरों और महासागरों मे लड़ेंगे और बढ़ते हुए विश्वास तथा बल के साथ आकाश मे भी मोर्चा लेंगे। चाहे कुछ भी हो, हम अपने द्वीप की रक्षा अवश्य करेंगे और कभी घुटने नही टेकेंगे। यदि कभी इस द्वीप को या इसके किसी बड़े भाग को दासता और भूख का सामना करना भी पड़ा, जिसकी कि मुझे लेशमात्र भी आशका नही है,तो सात समुद्र-पार हमारा साम्राज्य हमारी जल-सेना की सहायता से उस समय तक संग्राम करता रहेगा जब तक कि नया संसार अपने पूर्ण बल और पौरुषके साथ पुराने संसार की रक्षा और मुक्तिके लिए निकल नहीं पड़ेगा।"

चर्चिल अपने स्वभाव और मानसिक प्रवृत्ति से ही आशावादी थे। उन्हें इस बात का विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन अमेरिका युद्ध-क्षेत्र मे प्रवेश अवश्य करेगा।

डन्कर्क के पलायन के समय ब्रिटेन की शक्ति अपने न्यूनतम स्तर पर थी, किंतु उस घटना ने राष्ट्रीय पौरुष और आत्मबल के गुप्त स्रोतों को खोलकर विजय का सूत्रपात किया। उसके पश्चात् कई सप्ताह तक ब्रिटिश नर-नारियों ने अपनी-अपनी मशीनों के पास बैठकर इतनी कड़ी मेहनत की कि अंत मे वे थककर चूर हो गये। मशीनों पर काम करते-ही-करते उन्होंने भोजन किया, दिन भर काम पर जुटे रहने के पश्चात् रात को वे अपनी बेंचों के पास ही फ़र्श पर सो रहे और फिर तड़के उठते ही बम और बन्दूक बनाने में लग गये।

प्राण-रक्षा के लिए मनुष्य बहुधा अतिरिक्त श्रम करने को तैयार हो जाता है। यहाँ तो राष्ट्र-का-राष्ट्र जीवित रहने के सकल्प से प्रेरित हो इतना श्रम करने में जुटा हुआ था, जितना साधारणत. मानवी क्षमता से परे है।

इंग्लैण्ड की रक्षा का श्रेय इंग्लिश चैनेल, चर्चिल और ब्रिटिश हवाई-सेना को है। चर्चिल के भाषणो ने जनता मे कार्य करने की प्रेरणा भरी। चूँकि आजकल की शासन-सस्थाएँ पहले की शासन-सस्थाओं से अधिक शक्तिशाली होती है, इसलिए उनमे उन महान् पुरुषो की तूती बोलती है जिनके हाथो मे अत्यधिक अधिकार होता है और जिनका जनता पर अद्भुत प्रभाव भी होता है। तानाशाही देशों में उन महान् पुरुषो का प्रभाव उनके अधिकार के कारण पडता है, किंतु जनतन्त्री राष्ट्रो मे उन्हे अपने प्रभाव के कारण अधिकार प्राप्त होता है और वे उस अधिकार का प्रयोग अपने प्रभाव की वृद्धि मे करते हैं। चर्चिल ने ब्रिटिश जनता को अपने उच्चतम स्तर तक पहुँचने मे सहायता दी।

छोटे-छोटे लोगो ने निराशा प्रकट की। कर्नल चार्ल्स लिंडबर्ग ने तो समझ लिया कि इंग्लैण्ड हाथ से निकल गया और उन्होने इस पर शोक भी प्रकट नही किया। वीर मार्शल पेताँ को, जिनकी आत्मा भयातुर हो गई थी, फ़ास या इंग्लैण्ड पर बिलकुल भरोसा नही था। फिर भी चर्चिल, रूज़वेल्ट और चार्ल्स डी गाल को इन पर विश्वास था और उनके साथ बलशाली हृदयवाले छोटे-छोटे लाखों व्यक्ति थे।

डन्कर्क के चार साल बाद, ६ जून, १९४४ को ब्रिटिश सेना अमेरिकन सेना के साथ फ्रास मे फिर उतरी और इस घटना के एक वर्ष पश्चात् ही यूरोप में विजय-दिवस मनाया गया। ये पाँच वर्ष करोड़ो नर-नारियों और बच्चों के लिए रक्त-पात, भूख, ठढ और चिन्ता से भरे हुए वर्ष थे। मनुष्य भी कैसा अद्भुत आविष्कार है! निस्संदेह वह उत्तमतर सौभाग्य का अधिकारी है।

मनुष्य कम-से-कम युद्ध-विहीन संसार का अधिकारी अवश्य है। मैं युद्ध की भयकरता को देख चुका था, इसीलिए प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाली युद्ध-विज्ञप्तियों को पढते ही मेरी आँखों के सामने गोलियों से क्षत-विक्षत शरीरों या जले हुए टैकों और विमानों मे झुलसे हुए मनुष्यों के चित्र खिंच जाते थे। जब विज्ञप्ति में लिखा होता "दो हवाई जहाज़ वापस नही आ सके" तो मेरे नेत्रो के सामने नाच उठता १२ नवयुवकों की मृत्यु का दृश्य और उनके साथ-साथ १२ माता-पिताओं, १२ परिवारो और अनेक मित्रों का चित्र जो उस विज्ञप्ति को सदा याद रखेगे और जब कभी उन्हे उसकी याद आयगी तभी उनका हृदय शीतल और शिथिल हो बैठने-सा लगेगा। यदि युद्ध वस्तुतः इस योग्य है कि हम

उसके लिए इतनी यातनाओं, इतने कष्टों और इतनी मृत्युओं का भोग भोगे तो निस्सदेह उसका अंत महान् और कल्याणकारी होना चाहिए।

यदि दूसरा महासमर वस्तुतः किसी उद्देश्य से लड़ा गया था तो उसे एक संसारव्यापी गृह-युद्ध का रूप लेना चाहिए था, वह दासता के विरुद्ध और एक ऐसे अखंड भूमण्डल की स्थापना के लिए लड़ा जाना चाहिए था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान स्वतन्त्रता और न्याय प्राप्त होता। किसी एक देश की भूमि, तेल या व्यापार को छीनकर दूसरे देश को देने के लिए युद्ध करना एक महान् और मूर्खतापूर्ण अपराध है।

: २ :

अमेरिका भी युद्ध के चंगुल में

विन्सटन चर्चिल का कोई भी वक्तव्य इतिहासकारों को उतना महत्त्व-पूर्ण नही मालूम होगा, जितना कि उनका फ़ांस और इंग्लैण्ड की शासन-सत्ताओं को एक मे मिला देने का १६ जून, १९४० का प्रस्ताव। उस समय फ़ास का पतन होने ही वाला था। चर्चिल फ्रास और अपने देश, दोनों की रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने प्रस्ताव किया कि ब्रिटेन और फ़ांस इस बात की घोषणा कर दे कि "हमारी सरकारे अलग-अलग न रह कर एक सघ का रूप ले लेगी और फ्रांस के प्रत्येक निवासी को ब्रिटेन की तथा ब्रिटेन के प्रत्येक निवासी को फ्रांस का नागरिकता तत्काल प्राप्त हो जायगी।"

चर्चिल कट्टर राष्ट्रवादी और साम्राज्यवादी थे; फिर भी जीवित रहने की आकांक्षा ने उन्हें सकट के समय विभिन्न राष्ट्रीय सत्ताओं के एकीकरण और अन्तर्राष्ट्रीयता का पक्षपाती बना दिया। उन्होंने यह समझ लिया कि अपने अस्तित्व की रक्षा सबसे अच्छी उस समय हो सकती है जब सार्वभौम सत्ताएँ पृथक्-पृथक् न हों।

वर्षों बाद, यूरोप की विजय से कुछ दिन पहले, जब चर्चिल से पूछा गया कि क्या आप अब भी फ़ांस को ब्रिटेन मे मिलाने को तैयार हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं!" पराजय को रोकने के लिए अंतिम प्रयत्न करते समय वह जिस कार्य के लिए तैयार होगए थे उसीसे वह विजय का आश्वासन मिलते ही मुकर गये। सन् १९४० में सर्वनाश से बचने की व्यावहारिक आवश्यकता का अनुभव करने के कारण वह आदिर्शवादी बन गये थे, किंतु सन्१९४४ तक यह आदर्शवाद कपूर की तरह उड़ गया। जब तक स्थिति गम्भीर रही तब तक चर्चिल अच्छे बने रहे।

युद्ध की असुन्दरता पहले हममें सुन्दर शांति की एक आदर्शवादी आशा ज़ाग्रत कर देती है और फिर बाद में ऐसा विष उत्पन्न करती है जो उस आदर्श-

वाद को ले बैठता है । दु.ख के द्वारा उन्नति की आशा करना एक मृग-मरीचिका है । यदि दु.खभोग से मनुष्य बुद्धिमान बन सके तो इस ससार मे इतनी बुद्धिमत्ता व्याप जायगी कि दुःख हो ही नही पायगा ।

फ़्रांस को बचाना चर्चिल के बस की बात नही थी । यदि जून, १६४० मे ब्रिटेन या अमेरिका के १० लाख ताजे सिपाही अस्त्र-शस्त्र से पूरी तरह लैस हो नारमैंडी मे उतर पड़ते या रूस पूर्व की ओर आक्रमण कर देता, जैसा कि जार ने अगस्त १६१४ मे किया था, तो फ़ास बच जाता और बाद मे खून की जो नदियाँ बही वे भी न बहती । किंतु ऐसा नही हो सका । नाज़ी सैन्य-दल निर्दयता के साथ आगे बढता रहा; पेरिस ने बिना लडे ही घुटने टेक दिये और १० जून को इटली भी अखाडे मे उतर आया ।

इटली के युवक विदेश-मंत्री काउन्ट चियानो ने, जो मुसोलिनी का दामाद था, अपने देश को युद्ध से अलग रखने की चेष्टा की । बाद मे इस अपराध के लिए नाज़ियों ने उसे गोली से उडा दिया । मई, १६४० मे प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने मुसोलिनी के पास तीन बार निजी सदेश भेजे और उसपर लड़ाई-झगडे से दूर रहने का ज़ोर डाला । २४ अप्रैल, १६४० को पोप पायस १२ वे ने मुसोलिनी को एक पत्र लिखकर युद्ध में भाग न लेने की सलाह दी । युद्ध के विरोध में सार्वजनिक प्रदर्शन भी किये गये । किन्तु ये सारी युक्तियाँ बेकार रहीं, क्योंकि मुसोलिनी मार-धाड में हिस्सा बँटाने के लिए इच्छुक थे । उन्हें इस बात का विश्वास था कि जल्दी ही फ़्रांस, और कुछ ही सप्ताह में ब्रिटेन भी आत्म-समर्पण कर देगा और तब इटली सरलता से प्राप्त की गई उस विजय के मीठे फल चख सकेगा । किन्तु, कैसी भयंकर भूल की उसने ? उसके भाग्य मे सन् १६४० मे विजयी बनना नहीं, बल्कि सन् १६४५ मे हारना और मरना लिखा था ।

जनता के अधिकांश दु.ख शासन-संस्थाओं की भूलों के ही कारण उत्पन्न होते है ।

फ़रवरी १६४० में मुसोलिनी और हिटलर ने ब्रेनर-पास में मिलकर इटली को युद्ध के अखाड़े में उतारने का निश्चय किया था । कर्नल-जनरल गस्टाव जॉड ने, जिसकी मेधा-शक्ति ने दस वर्ष तक जर्मन-सेना का पथप्रदर्शन किया था, जून १६४५ में गिरफ़्तार किये जाने पर इस बात का प्रमाण दिया कि जर्मनी के सैनिक अधिकारी इटली के युद्ध में सम्मिलित होने के पक्ष में नहीं थे । फ़ील्ड-मार्शल कीटेल ने भी अपनी गवाही में यही बताया । सच पूछिये तो यदि इटली तटस्थ बना रहता और मित्र-देश के नाते जर्मनी को जहाज़ों द्वारा

माल भेजता रहता तो वह हिटलर के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होता और भार न बनता, जैसा कि बाद मे वह शीघ्र ही बन गया । किन्तु हिटलर ने, जो राजनीतिज्ञ अधिक था और सैनिक कम, निश्चय ही यह सोचा होगा कि उचित अवसर पर इटली के युद्ध मे प्रवेश करने पर फ़ांस के पतन का मार्ग प्रशस्त हो जायगा और ब्रिटेन भी हतोत्साह हो शीघ्र मस्तक झुका देगा । हिटलर को भरोसा था कि [illegible] भग हो जायगी और इटली का युद्ध मे आना अंतिम क्रूर प्रहार सिद्ध होगा ।

फ़ास के सन् १९४० के पतन का आरम्भ सन् १९१४ में ही हो चुका था । प्रथम महासमर मे उसके अनगिनत नवयुवक काम आये । फ़्लैन्डर्स के पोस्तों के खेत स्वस्थ लाल लहू से सिंच गये जिससे तुष्टिकर्त्ताओं की एक फसल-सी खड़ी हो गई । विजय बिलकुल स्पष्ट थी । अमेरिका ने फ़ास की सुरक्षा की कोई गारटी नही ली और कुछ फ्रासीसियो ने अनुभव किया कि ब्रिटेन जर्मनी का पक्षपाती हो गया है । उन्होंने कहा कि और नही तो कम-से कम युद्ध-क्षतिपूर्ति और रूहर पर अधिकार करने के प्रश्न पर ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ फ़ांस के विरुद्ध जर्मनी का पक्ष ले रहे है । इग्लैण्ड के प्रति इस अविश्वास से मार्शल पेताँ की सरकार को २१ जून, १९४० को हिटलर से संधि करने के लिए तैयार हो जाने में बड़ा प्रोत्साहन मिला । कुछ फ़ासीसियों का यह अनुमान था और कुछ ने अपने पागलपन में यह आशा तक कर ली थी कि ब्रिटेन भी शीघ्र ही घुटने टेक देगा । इसीलिए उन्होने सोचा कि क्यों न जल्दी ही हथियार डाल दिये जायँ और तत्परता के लिए नाम कमाया जाय ।

फ़ास को इग्लैण्ड की प्रतिरोधक-शक्ति के सम्बन्ध में शंका थी । जर्मनी और रूस की २३ अगस्त, १९३९ की सन्धि मानो मौत की घंटी थी क्योंकि रूस और अमेरिका के तटस्थ रहते हुए और ब्रिटेन में युद्ध की तैयारी न होने के कारण फ़ांस का विजया बनना असंभव था । ऐसी दशा में फ़ांसीसियों ने सोचा कि एक ऐसे देश के विरुद्ध लड़ने से लाभ ही क्या जो फ़ांस से बड़ा ही नही है, बल्कि आर्थिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली और सैनिक अस्त्र-शस्त्रो में भी अधिक सम्पन्न है । अकेली इस बात से ही फ़ांस के पतन का रहस्य स्पष्ट हो जाता है ।

जनरल चार्ल्स डी गाल जानते थे कि फ़्रंसीसियों का संसार के अन्य सभी देशों पर से विश्वास उठ गया है । इसलिए १८ जून, १९४० को लन्दन से अपना पहला प्रसिद्ध भाषण ब्राडकास्ट करते हुए उन्होंने इस प्रश्न का विशेष रूप से उल्लेख किया और कहा—"फ़ांस अकेला नही है, उसके पास एक महान् साम्राज्य है। फ़ांस चाहे तो उस ब्रिटिश साम्राज्य के कन्धे से-कन्धा मिला सकता

है, जिसका समुद्रों पर प्रभुत्व है और जो साहस के साथ लड़ता चला जा रहा है। इंग्लैण्ड की तरह वह भी अमेरिका के विशाल औद्योगिक साधनों से लाभ उठा सकता है।... ... यह युद्ध एक संसारव्यापी युद्ध है इस.....संसार मे इतने साधन हैं कि उनकी सहायता से एक दिन हम अपने शत्रु को कुचल देंगे। आज दूसरों के यांत्रिक बल ने हमारी चूल अवश्य हिला दी है लेकिन भविष्य में हम इससे भी श्रेष्ठ यांत्रिक बल का प्रयोग कर विजय प्राप्त करेंगे। संसार का भाग्य इसी पर निर्भर है।"

जब रूस और अमेरिका भी युद्ध-क्षेत्र में उतर आये और ब्रिटेन ने अपनी विशाल वैमानिक शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया तो फ़्रांस की आशाएँ फिर जाग्रत हो उठी और भीतर-ही-भीतर हिटलर के प्रति विरोध की भावना बढने लगी।

फ़्रांस को जितनी कम सहायता बाहर से मिली उतनी ही अल्प उसकी आंतरिक शक्ति भी थी। समाजवादी दल का एक शक्तिशाली भाग संधि का पक्षपाती था और सन् १९३८ मे म्यूनिख मे किये गये चेकोस्लोवेकिया के विभाजन की प्रशसा कर चुका था। इसके विपरीत बहुत-से मजदूरों का मत था कि फ्रांस के ऐश्वर्यशाली नेताओं का आचार भ्रष्ट हो गया है, फ़ाशिस्टो से उनकी सहानुभूति है और चेकोम्लोवेकिया और स्पेन को बेचकर उन्होने फ़्रांस के साथ विश्वासघात किया है। अनगिनत फ़्रांसीसियों ने अपने कूटनीतिज्ञों और जनरलों के प्रति अविश्वास की भावना प्रकट की। राष्ट्र अपनी सेना की डींगे मार रहा था, किन्तु विशेषज्ञों को पता था कि फ़्रांसीसी सेना की यांत्रिक सामग्री कितने पुराने ढंग की है। फ़्रांस के पास अच्छे हवाई जहाज़ों की इतनी ज़्यादा कमी थी कि वह जर्मन हवाई-सेना को रोकने में बिलकुल असमर्थ था। फिर भी फ़्रांस के राष्ट्रीय कोष में सोना पड़ा सड रहा था। वह अमेरिका से हवाई जहाज़ खरीदने के काम में लाया जा सकता था। किंतु अर्थ-मंत्री ने रुपया देना मना कर दिया और लोगों को इस बात की शंका हुई कि शायद फ़्रांस के उद्योगवाले ही स्वयं आर्डर पूरा करना चाहते है। जब युद्ध आरम्भ हुआ तो बेचारे देशभक्त विमान-चालक ठठरी-जैसे हवाई जहाज़ों को लेकर यह सोचते हुए ऊपर उड़े कि हम आत्म-हत्या करने जा रहे हैं। चार्ल्स डीगाले ने, जो उस समय तक एक कर्नल ही थे, टैंकों के निर्माण पर ज़ोर दिया था, किंतु मार्च १९४२ में रिओम के मुकदमे में गवाही देते हुए फ़्रांस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री दलादिये ने बताया कि स्पेन के गृह-युद्ध में इटली की बख्तरबन्द टुकड़ियों का जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था उससे फ़्रांसीसी विशेषज्ञों को

इस बात का प्रमाण मिल गया था कि बख्तरबन्द मोटरगाड़ियों द्वारा युद्ध करने का विचार गलत है। फ्रांसीसी जनरलों को टैंका नही, बल्कि मैजीनी लाइन में विश्वास था।

रियोम के ही मुकदमे मे गुबला चैम्बर ने जो महासभा के आरम्भ होने के समय फ्रास के हवाई-मंत्री थे, कम्युनिस्टों पर इस बात का दोषारोपण किया कि रूस और जर्मनी मे सन्धि होने के बाद उन्होने फ्रास की हवाई जहाज बनाने वाली फैक्टरियों के काम मे बाधा डाली। उन्होंने हवाई जहाज़ के निर्माताओं पर भी विमान-निर्माण-योजना में विलम्ब करने का दोषारोपण किया। दलादिये ने गवाही देते हुए कहा कि निर्माताओं के काम न करने का उद्देश्य प्रमाणित करना था कि हवाई जहाज़ बनाने वाली फैक्टरियो का राष्ट्रीयकरण एक मूर्खता है। जैसा कि पॉलरेनॉ ने अपने सस्मरण मे लिखा है, "इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि फ्रास के पास न टैंको की कोई टुकड़ी रही न हवाई जहाज़ों की"। (पॉलरेनाँ सन् १९४० में मार्च से जून तक फ्रांस के प्रधान मत्री थे)।

इन, और सहस्रों दूसरी बातो से यह सिद्ध हो जाता है कि द्वितीय महासमर के आरम्भ होने से वर्षो पहले से ही फ्रांस मे एक भयंकर गृह-युद्ध चल रहा था, जिसके कारण उसके अनेक खण्ड तो हो ही गये थे, साथ-ही-साथ उसकी शक्ति भी नष्ट हो गई थी और उसका प्रवृत्ति पराजय-सूचक बन गई थी।

फ्रासीसी अपनो जल-सेना की सहायता से अफ्रीका और एशिया मे युद्ध जारी रख सकते थे, किन्तु पेताँ न तो प्रजातत्रवादी थे न फाशिस्ट-विरोधी; इसलिए उन्हे फ़ाशिज़्म के विरुद्ध युद्ध करने की कोई आन्तरिक आवश्यकता नही थी।

सन् १९४२ में नव वर्ष के अवसर पर ब्राडकास्ट करते हुए पेतॉ ने कहा—"मुझे अपने देश के लिए न मार्क्सवाद की ज़रूरत है न उदार पूँजीवाद की। रहा केवल फाशिज़्म; सो, इस प्रकार के नाज़ी विचारों वाला नेता नाज़ियों का विरोध नही कर सकता था।

फ्रांस का पतन उसके आन्तरिक दूषण और विदेशी सहायता की कमी के कारण हुआ। उसके घुटने टेक देने से जनतत्री शासन-प्रणाली के मौलिक दोष स्पष्ट होगये और उसका आत्म-समर्पण किसी विशेष जनतत्री सरकार का अन्त नहीं बल्कि स्वयं जनतंत्र के उपहास का आरम्भ माना गया।

इस प्रश्न पर मैंने २२ जून १९४० की शार्लट्सविले में वर्जीनिया विश्वविद्यालय की सार्वजनिक मामलों की संस्था के वार्षिक अधिवेशन में

विचार किया था। तभी हमे फ्रांस के जर्मनी से संधि कर लेने की सूचना मिली थी। उस पर अपने विचार प्रकट करते हुए मैने कहा—"जनतंत्री सरकारों और जनतत्र को दफ़नाकर सारे संसार मे नाज़ी पताका के फहराये जाने में अभी बहुत देर है।...फाशिज्म उस समय तक विजया नही हो सकता जब तक कि सारी जनतत्री सरकारे हरा न दी जायं; ऐसा होने से पहले इग्लैंड और अमेरिका को पराजित किया जाना अनिवार्य है।"

फ्रांस के पतन की सूचना मिलने पर भी मै आशावादी ही बना रहा। "अगर जर्मनी इग्लैंड को फौरन नही कुचल सकता" मैने कहा... "तो गतिरोध उत्पन्न हो सकता है और मित्र-राष्ट्रों की विजय निश्चित हो सकती है, क्योंकि यदि जर्मनी इस समय नही जीत सकता तो वह बाद मे भी नही जीत सकेगा और इसके विपरीत, यदि मित्रराष्ट्र इस समय विजय नही प्राप्त कर सकते तो बाद में अमेरिका की सहायता से कर सकेंगे।"

सन्धि के लक्ष्य के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए मैंने लिखा—"जनतंत्र अभी निर्दोष नही है, फिर भी जितनी तानाशाहियों से मै परिचित हूँ उन सबसे वह अच्छा है। किसी भी तानाशाही राज्य मे जनता को स्वतत्रता नहीं मिली। इस संसार का विभाजन सफेद और काले के आधार पर नही हुआ है। सफेद कोई भी नही, किंतु दुर्भाग्यवश काले बहुत है। यदि आप सफ़ेद की ही चिन्ता करेंगे और किसी दूसरे वर्ण का समर्थन नही करेंगे तो आपको उसकी प्रतीक्षा में अपने हाथी दाँत के मीनार मे कयामत तक बैठना पड़ेगा। हमें तो भूरे रग के जनतत्र और काले रगके एकाधिकारवाद मे से किसी एक को चुनना है। शांति का सबसे बडा लक्ष्य काले का अन्त करना और साथ-ही-साथ भूरे को अधिक सफेद बनाना है।"..."मेरी योजना अब भी यही है" उस समय मैंने यह सुझाव रखा था कि "मित्रराष्ट्रों के विजया होने के बाद यूरोप को एक संघ के रूप मे सगठित करना चाहिए। संघ में आर्थिक, राष्ट्रीयता या संकीर्ण राजनैतिक राष्ट्रीयता का कोई स्थान नही होता। इतिहास इस बात का सिद्ध कर चुका है कि राष्ट्रों का उद्धार अन्तर्राष्ट्रीयता मे है। पुरुष या देश के लिए व्यक्तिगत सुरक्षा का कोई साधन नही।"

मेरे लेख के अन्त मे एक छोटा-सा रूपक था, किन्तु समय समाप्त हो जाने के कारण मुझे उसे बिना सुनाये ही छोड़ देना पड़ा। मैंने लिखा था—"'अ' नाम के एक युवक व्यक्ति ने अपने रहने के लिए एक सुन्दर और मज़बूत मकान बनाया और उसे जनतंत्र कहा। कुछ समय पश्चात् 'ब' नाम के एक दूसरे व्यक्ति ने उस मकान के पास वाले दूसरे मकान में आने की अनुमति

माँगी । उसके मालिक ने 'अ' से सलाह ली और उसे बताया कि 'ब' अग्नि द्वारा शकुन बताने वाला एक प्रसिद्ध व्यक्ति है और आग लगाने के अपराध मे दंण्ड भी पा चुका है, किन्तु 'अ' ने 'ब' का पक्ष लेते हुए कहा कि मै जानता हूँ कि यह एक बहुत ही नेक आदमी है ।—इस प्रकार 'ब' मुसोलिनी वहाँ आ गया ।

"कुछ ही दिनों बाद 'स' नामक एक तीसरा व्यक्ति जनतंत्र के सामने वाले मकान मे आकर रहा । यह व्यक्ति बम और दूसरे विस्फोटक पदार्थ बनाने का प्रयोग किया करता था । पडोसियों ने 'अ' को सावधान करते हुए कहा कि जनतंत्र सकट मे है । 'अ' इस पर हँसा और बोला कि असल मे मै ही तो उस प्रयोगशाला के लिए रुपए दे रहा हूँ जो 'स' ने मेरे 'जनतत्र' के सामने बनाई है । एक दिन 'ब' और 'स' 'अ' के पास जनतत्र मे आये । उन्होंने पूछा कि क्या आप हमारे एक साझीदार को कुछ समय के लिए अपनी प्रयोगशाला में ठहरने की अनुमति दे सकते है ।" 'अ' सहर्ष तैयार हो गया और नये व्यक्ति (फ्रेको) ने उसकी छत पर तम्बू तान दिया । उसने पानी की बड़ी टंकी को खाली कर बुरादे से भर दिया और अन्त मे जनतंत्र मे आग लग गई और 'अ' अपनी स्त्री और बाल-बच्चों के साथ उसी मे जलकर राख हो गया ।—तो क्या आप कहेंगे कि 'जनतंत्र' एक बुरे ढंग से बनाया गया मकान था ? नही; आप कहेगे कि 'अ' मूर्ख था ।"

फ्रांस के पतन से अधिकांश अमेरिकनों के हृदय में परिवर्तन हो गया । इनमें अनेक व्यक्ति वे थे जो युद्ध से अलग रहने की पुकार उठाया करते थे। यह लोग साधारणतया विस्तृत महासागरों को अपनी रक्षा का साधन मानते थे और इसीलिए समुद्र पार के झगड़ों मे फँसना नही चाहते थे। सच पूछिये तो महासागरों से इतना नही बनता-बिगड़ता था जितना उनके दूसरे तट पर होने वाली घटनाओं से । जब तक कि फ्रांसासी सेना और ब्रिटिश समुद्री बेड़े में आक्रमणकारी देश को युरोप के अटलाटिक तट पर पैर जमाने से रोकने की शक्ति थी तब तक निस्सदेह महासागर रुकावट का काम कर सकता था । किंतु जर्मनों के डियेप कैले और ब्रेस्ट तक पहुँच जाने के कारण इस बात का भय था कि कहीं ऐसा न हो कि अन्त मे यही सागर जर्मनों के आने का साधन न बन जाय । फ्रांस के पतन के बाद जर्मनी और अमेरिका की सशस्त्र सेनाओं के बीच का बल ब्रिटेन का समुद्री-बेड़ा ही रह गया था । अतः ब्रिटेन के युद्ध-प्रयत्न में योग देने के लिए अमेरिका के पास यह एक ज़बरदस्त तर्क था ।

इसीलिए प्रेजिडेण्ट रूज़वेल्ट ने आज्ञा दी कि अमेरिकन तोपखानों और

कारखानों का सुव्यवस्थित कर ब्रिटिश सेना के लिए हथियार बनाये जाय। विन्सटन चर्चिल के १४ मई १९४५ के एक वक्तव्य से पता चला कि जून १९४० के बसन्त के आरम्भ होने तक अमेरिका ने दस लाख राइफले और एक हजार तोपे मय बारूद के अटलांटिक के पार भेजीं। इनके अलावा हवाई जहाज भी भेजे गये और इस सामान से ब्रिटेन को जर्मन-आक्रमण से अपनी रक्षा करने मे बड़ी सहायता मिली। डन्कर्क के पलायन के बाद ब्रिटेन के पास सेना का एक भी डिवीजन ऐसा नही रह गया था जो शस्त्र-अस्त्र से लैस हो।

इस संकट के समय प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट का ध्यान प्रधानत· किस बात पर केन्द्रित था, इसका पता हमे उनके उस पत्र से लगता है जो उन्होने २० दिसम्बर १९४० को एडमिरल लीही के पास भेजा था और जो बाद मे ७ अक्टूबर १९४३ को अमेरिका के स्टेट विभाग द्वारा प्रकाशित हुआ। एडमिरल लीही उस समय विची (फ़्रांस) की पेतां सरकार में अमेरिका के राजदूत थे। प्रेजीडेण्ट रूजवेल्ट ने उन्हें लिखा था—"अमेरिकावासियों की प्रधान दिलचस्पी ब्रिटेन को विजयी देखने की है।" स्पष्टतः अमेरिका अपनी तटस्थता छोड़ चुका था।

पर्लहार्बर पर जापान द्वारा आक्रमण होने से पहले ही अमेरिका यदि सरकारी रूप में नही तो व्यावहारिक रूप मे अवश्य ही युद्ध में प्रवेश कर चुका था। ३ सितम्बर १९४० को, जिस दिन युद्ध की पहली वर्ष-गाठ थी, रूज्-वेल्ट ने घोषणा की कि चर्चिल के साथ एक समझौता हो गया है, जिसके अनु-सार अमेरिका ने अपने पचास पुराने विध्वंसक जहाज ब्रिटेन को दे दिये है और ब्रिटेन ने बदले मे अमेरिका को अन्धमहासागर में सैनिक और समुद्री अड्डे दिये हैं। पूछा जा सकता है कि यदि विध्वंसक जहाज बहुत पुराने हो गये थे तो ब्रिटेन ने उन्हें क्यों मांगा। असलियत यह है कि ये जहाज बड़े अच्छे जंगी जहाज थे और युद्ध में उन्होंने सभी जगह बड़ी अच्छी तरह काम दिया। ११ मार्च १९४१ को प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट ने उधार पट्टे कानून पर हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार दसियों करोड़ों डालर के शस्त्र धुरी-राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने वाले देशों को दिये गये। जैसे ही हिटलर या मुसोलिनी ने किसी नये देश पर आक्रमण किया वैसे ही उसे भी उधार पट्टे की सुविधा प्रदान की गई। ५ अप्रैल १९४१ को अमेरिका ने डेनिस ग्रीनलैंड की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। ७ जुलाई १९४१ को अमेरिका ने आइसलैंड पर अधिकार करने में इंग्लैंड का साथ दिया और वहीं की ब्रिटिश टुकड़ियों की शक्ति बढ़ाने और उनके बदले अमेरिकनों को लाने का भी उत्तरदायित्व ग्रहण किया। सन्

१९४१ मे अमेरिकन जल-सेना अन्धमहासागर मे व्यापारिक जहाजों को सुरक्षा पूर्वक लाने व ले जाने का काम करने लगी और नाज़ी पनडुब्बियो को ढूढ-ढूढ-कर नष्ट करने मे अंग्रेजो के हाथ बटाने लगी । अमेरिका की कूटनीति भी जर्मनी, इटली और जापान के विरुद्ध प्रवाहित होने लगी । उदाहरणार्थ अमेरिका के स्टेट विभाग ने विची की पेता सरकार को इस बात की बार-बार चेतावनी दी कि वह हिटलर को फ़ासीसी समुद्री बेड़े का प्रयोग न करने दे । लेकिन अमेरिका मे धुरी राष्ट्रो की सैनिक और व्यावसायिक युक्तियो को विफल करने का प्रबन्ध किया गया । प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट, विदेश-मंत्री कार्डल हल और दूसरे छोटे अफसरों ने अपनी घोषणाओ से बार-बार धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध भावना प्रकट कर अपने तटस्थ न रहने का प्रमाण दिया ।

पर्ल हार्बर की घटना से कई महीने पहले अमेरिका के सैनिक अधिकारियों ने धुरीराष्ट्रों को हराने मे योग देने के सम्बन्ध मे एक विस्तृत, व्यावहारिक, व्यापक और काल्पनिक योजना बनाई थी । साथ-ही-साथ रूज़वेल्ट ने युद्ध से अलग रहने की माँग करने वाले सिनेटरो और प्रतिनिधियों से मतभेद होने पर भी अमेरिका की सशस्त्र सेना और दूसरी रक्षात्मक व्यवस्थाओ को दृढ़तर बनाया ।

इन युक्तियों को और इंग्लैंड की पूर्ण सहायता देने की योजना को भी अमेरिका की अधिकांश जनता का समर्थन प्राप्त था, फिर भी अमेरिकनो की युद्ध-क्षेत्र मे जाने से रोकने की भावना बलवती ही बनी रही और १९४० के अन्त मे प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट और वेन्डल विल्की दोनों ही ने राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ते हुए अपने-अपने भाषणों में देश को इस बात का आश्वासन दिया कि जब तक अमेरिका पर आक्रमण नही होगा, तब तक अमेरिका का एक बच्चा भी समुद्रपार नहीं भेजा जायगा ।

७ दिसम्बर १९४१ को जापान ने अमेरिका पर आक्रमण कर इस अड़चन को भी दूर कर दिया । सम्भव है कि इतिहास में यह घटना जापान की प्रथम आत्मघातक भूल कही जाय । इसने अमेरिकन धन-जन को नष्ट तो अवश्य किया; किन्तु साथ-ही-साथ स्वय जापान के लिए मृत्यु को भो निमंत्रण दिया।

३ सितम्बर १९३९ से, या ठीक-ठीक यों कहिए कि फ्रास के पतन से, लेकर पर्ल हार्बर के आक्रमण तक अमेरिका मे एक कोने से दूसरे कोने तक उन दो दलों में संघर्ष चलता रहा जिनमें से एक युद्ध से अलग रहना चाहता था और दूसरा प्रवेश करने के पक्ष में था ।

मैं लिंकन, नेबरासका, एन्डर्सन, इंडियाना, केन्टन, ओहियो और अनेक

दूसरे शहरों की शान्त गलियों में से होकर दोपहर से पहले के शांत वातावरण मे कई बार गुज़रा हूँ। उद्यान से घिरा हुआ लकड़ी का सफ़ेद मकान, बरामदे में पड़ी हुई झूलेदार कुरसियां, छाया देने वाले वृक्ष और खिड़कियों मे रखे हुए फूलो के गमले—ये सब चीजे एक सन्तुष्ट, सुखी और आरामदेह जीवन का चित्र खीच देती थीं। किन्तु खिड़की मे एक झन्डा दिखाई दिया करता था जिस पर एक या दो तारों के सैनिक चिह्न होते थे। कभी-कभी तारो का नीला रंग सुनहला रग दिखाई देता था जो मृत्यु का सूचक था। मै बड़ी ही सरलता के साथ कल्पना कर सकता हूँ कि उस मकान मे कोई माता या पत्नी बैठी-बैठी डाक से आने वाली किसी दूसरे पत्र की प्रतीक्षा कर रही है या किसी पुराने पत्र को पाँचवी बार पढ़कर यह सोच रही है—"मेरे पुत्र या पति को इस सुन्दर भूमि को छोड़कर ऐसी जगह क्यों जाना पड़ा जिसके सम्बन्ध मे मैंने पहले कभी नही सुना था! वहाँ जाकर उसे क्यों गोलों और गोलियो की चोट खाने के लिए मिट्टी मे खुला पड़ा रहना पड़ा ? कौन जाने वह मर ही गया हो।" उसकी समझ मे ऐन्जियो, वस्टोन आदि नामों का अर्थ ही क्या था, सिवा इसके कि इनसे उसके हृदय मे पीड़ा, आकांक्षा और एकाकीपन जाग्रत हो उठे।

एक बार मै श्रीमती रूज़वेल्ट से मिलने उनके घर न्यूयार्क गया। बात-चीत करने के बाद वह मुझे दरवाज़े की ओर ले गई। बाहर बरामदे के फ़र्श पर दोपहर बाद का अखबार पड़ा हुआ था। उसे उठाकर मैंने श्रीमती रूज़वेल्ट को दिया और उसमे हमने गुआडल नहर मे जल-सेना के प्रथम बार उतरने का समाचार मोटे-मोटे अक्षरों मे मुख्य शीर्षक के रूप में छपा देखा।

"उसमे मेरा भी एक लड़का है," श्रीमती रूज़वेल्ट ने कहा। उनका अभिप्राय अपने लड़के जेम्स से था। युद्ध के समय राजा से लेकर रंक तक सेना में जाने से नही बच पाते।

गुआडल नहर, सिसली, ओकीनाव, कैसीनो, नारमंडी ये सब स्थान अमेरिकावासियों को बहुत दूर और महत्त्वहीन मालूम पड़ते है। फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि वहा हजारों अमेरिकन क़ब्रो में गड़े पड़े हैं और बहुतों की आँखें या हाथ-पैर जाते रहे है। यह आश्चर्य की ही बात नही, बल्कि पागल-पन है। फिर भी इस पागल संसार के युद्ध मे अमेरिका को हाथ बँटाना ही था और वह अपने उत्तरदायित्व से किनारा नही कर सकता था।

हम एक छोटे-से द्वीप में रहते हैं, जिसका नाम पृथ्वी है। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक देश की समस्या से किसी दूसरे देश का सम्बन्ध हो ही, फिर

भी यदि वह समस्या हल नही होती तो उसमे सबका संबंध हो ही जाता है।

कर्नल लिंडबर्ग और अमेरिका के प्रमुख व्यक्तियों का यह विश्वास था कि यदि अमेरिका की रक्षा का प्रबन्ध उत्तम रीति से किया जाय तो उस पर कोई आक्रमण नही कर सकता। इसलिए अमेरिका के सैनिक-दृष्टि से शक्तिशाली रहते हुए उन्हे इस बात की कोई चिन्ता नही थी कि किस विदेशी राष्ट्र का पतन हुआ और किसका नही। ऐसी दशा मे युद्ध मे किसी एक देश का पक्ष ग्रहण करना उनकी समझ मे अनावश्यक और तटस्थता के विपरीत था। यही कारण था कि युद्ध से अलग रहने के पक्षपातियों ने अमेरिकन कांग्रेस मे उधार-पट्टा और ऐसे ही दूसरे कानूनों के विरोध मे राय दी।

कर्नल लिंडबर्ग ने इस बात पर ज़ोर दिया कि अमेरिकन आकाश-सेना मे दस हज़ार हवाई-जहाज़ होने चाहिए। २३ जनवरी १९४१ के उधार-पट्टा बिल पर विचार होते समय उन्होने प्रतिनिधि सभा की विदेशी मामलो की कमेटी के सामने कहा—"यूरोप के वर्त्तमान युद्ध का परिणाम चाहे कुछ भी हो, मै समझता हू कि इतने हवाई जहाज़ अमेरिका की सुरक्षा के लिए काफी होंगे। आकाश-सेना के इस विस्तार के साथ-ही-साथ न्यूफाउन्डलैंड, कनाडा, पश्चिमी इंडीज, दक्षिणी अमेरिका के कुछ हिस्सों, मध्य अमेरिका, गलापैगोस द्वीप, हवाई द्वीप और अलास्का में हवाई अड्डे भी बनाने चाहिएं।"

लेकिन हवाई अड्डे क्यों? निश्चय ही लिंडबर्ग ने सोचा होगा कि इससे दुश्मन को रोकने या डराने का काम लिया जा सकता है। जब हम अमेरिका पर आक्रमण होने की सम्भावना का स्वीकार कर लेते है—जैसा कि लिंडबर्ग ने अड्डों के लिए ज़ोर देकर किया—तो प्रश्न केवल यह रह जाता है कि सम्भावित शत्रु का सामना किस प्रकार से अच्छी तरह किया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय विचार वाले व्यक्तियों का मत था कि शत्रु का सामना उसके समस्त यूरोप और एशिया पर विजय प्राप्त करने के बाद नही, बल्कि पहले ही करना चाहिए।

यदि ब्रिटेन को अमेरिका का माल न मिलता और उसे अमेरिका से भविष्य में भी सहायता मिलने की आशा न होती तो अवश्य ही वह घुटने टक देता। इसलिए उस समय जब कि जर्मनी पर अंग्रेजो द्वारा बमबारी नही हो रही थी और अमेरिका ने रूस को उधार-पट्टे की सुविधा दी थी, यदि हिटलर रूस पर आक्रमण कर देता तो निश्चय हा रूस पराजित हो जाता। उस स्थिति में चीन का पतन अवश्यम्भावी हो जाता और जर्मनी, इटली और जापान ये तीनों ही यूरोप, अफ्रीका और एशिया पर अधिकार जमाकर निश्चितता के साथ बैठे रहते। फ्रैंको के स्पेन का सहायता से वे व्यापार और प्रचार के मार्गों द्वारा

लैटिन अमेरिकन म भी घुस जाते ।

इन सम्भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए स्वभावतः प्रत्येक अमेरिकन की यह इच्छा हो सकती थी कि उसके देश का कोना-कोना शस्त्र सज्जित हो जाय, अमेरिका एक दुर्ग बन जाय और सदा सावधान रहे––चाहे इसके लिए उस पर कितना ही ज़ोर क्यों न पड़े ।

फ़ाशिस्टों की सैनिक सफलता से प्रभावित होकर अमेरिका के लोग एकाधिकारवाद के पक्षपाती बन सकते थे । लोग कहते कि देखो हिटलर को कामयाबी हो ही गई । कुछ लोगों ने तो ऐसा कहा भी ।

अमेरिका को या तो हिटलर,मुसोलिनी और जापान के साथ उनकी शर्तों पर व्यापार करना पड़ता,या निर्वासित होकर रहना पड़ता । इस प्रकार युद्ध से अलग रहने के पक्षपाती अमेरिका को एक संकटजनक अवस्था की ओर ले जाते।

सौभाग्यवश अधिकांश अमेरिकनों ने धुरीराष्ट्रों के शत्रुओं को सहायता देने के पक्ष में निर्णय किया । यह कहना ज्यादा सही होगा कि अमेरिका के लिए विजयी शत्रु के सामने आकर खड़े होजाने के समय तक प्रतीक्षा करने की अपेक्षा भावी शत्रुओं के साथ दूसरों की भूमि पर दूसरों की ही सशस्त्र सेना की सहायता से लड़ना ज्यादा अच्छा था । उधार-पट्टा क़ानून अमेरिकन लोहा देकर अमेरिकन प्राण बचाने की एक बडी चतुराईपूर्ण और ऐतिहासिक युक्ति थी । अंग्रेज़ों और रूसियों द्वारा अधिक जर्मनों के मारे जाने का मतलब जर्मनों द्वारा कम अमेरिकनों का मारा जाना भी था ।

अमेरिकावासियों ने यह बात समझी और फ़्रांस के पतन के बाद से उनकी इंग्लैंड को सहायता देने की प्रवृत्ति लगातार बढ़ती गई । सन् १९४० के बसन्त में "ऐम्पोरिया गज़ट" के सम्पादक विलियम ऐलेन ह्वाइट ने "मित्र-राष्ट्रों को सहायता देकर अमेरिका की रक्षा करने" की एक समिति बनाई। सैकड़ों अमेरिकन इस समिति में शामिल हुए। २६ मई १९४० को मैंने भी उसमें अपने को शामिल करने के लिए मिस्टर ह्वाइट को तार दिया । उन्होंने मेरे पास कई तार और पत्र भेजे । १३ जून १९४० के पत्र मे उन्होंने लिखा—

"मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होरही है कि हमारे हवाई ज़हाज,बन्दूक और गोला-बारूद यहाँ से काफ़ी बड़ी मात्रा में भेजे जा रहे है । हम मित्रराष्ट्रों को युद्ध में डटे रहने में सहायता दे सकते है ।" 'सकते है' शब्द के नीचे उन्होंने लाल स्याही से निशान बना दिया था ।

जनवरी १९४० मे श्रीमती वेल्स लैथम ने ब्रिटेन के लिए सामान इकट्ठा करने का आन्दोलन आरम्भ किया और कुछ ही दिनों में इस एजेन्सी द्वारा

न केवल कपड़ा, चिकित्सा के अस्त्र और दूसरी आवश्यक वस्तुओं का एकत्र किया जाना आरम्भ हो गया,बल्कि उसनेअमेरिकन शहरो और गॉवो के हजारों व्यक्तियो मे बमों के नीचे अकेले पडे हुए एक वीर राष्ट्र को सहायता देने और उत्साहित करने का जोश भी भर दिया ।

अमेरिकन जनता केवल अनुकरण नही कर रही थी। "जनमत इन्स्टीट्यूट" के संचालक विलियम 'ए लिडगेड ने १६४१ मे लिखा कि आम जनता अपने राजनीतिक नेताओं से अधिक चुस्त और आगे है। इसका उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि अमेरिकन जनमत ने यह सिद्ध कर दिया है कि—(१) अमेरिकी जनता स्पेन पर से प्रतिबन्ध उठा लेना चाहती थी (२) उसने म्यूनिख के समझौते की निंदा उस समय की थी जब कि फ्रास और ब्रिटेन के नेता उस समझौते मे की गई मूर्खता को समझ भी नही पाये थे, (३) उसने काग्रेस की स्वीकृति से ५ महीने पहले ही तटस्थता-कानून मे से शस्त्र-अस्त्र सम्बन्धी प्रतिबन्ध को निकाल देने की राय दी थी, (४) पिछले सात वर्ष अर्थात् नवम्बर १९३५ से ही वह जल, थल और नभ-सेनाओं, विशेषत: हवाई-बेड़े मे वृद्धि करने के पक्ष में रही है।"

श्री लिडगेड ने यह भी लिखा कि सम्भव है कि अभी तक जनता के विचारों की ओर किसी ने पर्याप्त ध्यान ही न दिया हो। बात भी यही थी। कांग्रेस ने शोर मचाने वाले अल्पसंख्यकों की अपेक्षा बहुसख्यकों की चिन्ता कम की। जैसा कि जनतन्त्र-विरोधी देशों मे हुआ करता है।

फिर भी अमेरिका एक ऐसे युद्ध मे विजयी बनने के लिए,जिसका उससे सम्बन्ध तो था, किन्तु जिसमें अभी वह निरत नहीं हुआ था, सघीय शासन-विधान को चलाता रहा।

सन् १६४४ में एक दिन सन्ध्या समय आन्तरिक मामलों के प्रसिद्ध लेखक जॉन गन्थर के मकान पर कुछ विरोधी सम्वाददाताओं ने हार्पर के प्रेजिडेन्ट कैस कैनफील्ड, विदेशी मामले (फारेन अफ़ेयर्स) नामक तिमाही पत्र के सम्पादक हैमिल्टनफिश, आर्मस्ट्रोंग, "न्यूयार्क हेरैल्ड ट्रिब्यून" के इरीटावान डोरेन और वैन्डल विल्की ने आपस में बैठकर राजनीतिक समस्याओ पर विचार किया और अपने-अपने अनुभव बताये। विल्की ने कहा—"सन् १९४१ मे मेरे इग्लैड से लौटने के बाद "रीडर्स डाइजेस्ट" के प्रकाशक डीविट वैलेस ने मुझसे टेलीफोन करके कहा कि मै फ्रैडा ऊटले के उस लेख के उत्तर मे कुछ लिखूं जिसमें ब्रिटेन को सहायता देने के विरोध में प्रचार किया गया था। वैलेस ने मुझे इस काम के लिए पांच हजार डालर देने का प्रलोभन दिया। मैने उनसे

कहा कि आजकल में एक मुकदमे के सिलसिले में फँसा हुआ हूँ और मेरे पास लेख लिखने के लिए समय नही हैं। इस पर वैलेस ने कहा कि—"बस १५०० शब्दों से काम चल जायगा,हम आपको ६ हजार डालर देंगे।" मैंने उनसे फिर कहा कि "मै लेख लिखने मे असमर्थ हूँ" किन्तु वैलेस ने हठ करते हुए कहा— "मिस्टर विल्की, मै आपको इस लेख के लिए ८ हजार डालर दूंगा।

आप जानते है कि ८ हजार डालर एक छोटी रकम नहीं है।" विल्की ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए मुसकराहट के साथ कहा—"मैने लेख लिखन के लिए वचन दे दिया।" अपने सम्बन्ध में इस प्रकार की कहानियाँ कहने में विल्की बड़े निपुण थे।

उस लेख मे विल्का ने लिखा—"अमेरिका के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि जनतत्री संस्थाएँ किस प्रकार जीवित रहे, किस प्रकार एक ऐसी जीवन-प्रणाली की रक्षा हो जो हमारे लिए इस ससार मे अन्य सभी पदार्थो से अधिक महत्त्व रखती है।...हम ब्रिटेन को सहायता इसलिए दे रहे है कि जो लड़ाई वह लड रहा है वह हमारे लिए बहुत लाभदायक है। हिटलर की नीति, जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक–सभी क्षेत्रों में जनता को शासक का दास बनाये रखना चाहती है, स्वभावतः और स्पष्टतः स्वतंत्रता के विरुद्ध है।"

: ३ :

स्टालिन और हिटलर--एक पुनरध्ययन

फ़ास के पतन से अमेरिका इंग्लैंड और युद्ध-दोनों के निकटतर आ गया। उससे रूस का आक्रमण भी जल्दी हुआ। प्रेज़िडेन्ट रूज़वेल्ट ने दो साल पहले ही इसकी भविष्यवाणी कर दी थी। भूतपूर्व राजदूत जोसेफ़ ई० डेविस ने अपनी "मास्को यात्रा" (मिशन टू मास्को) नामक रिपोर्ट मे लिखा है--"१८ जुलाई १९३९. को मैंने प्रेज़िडेन्ट रूज़वेल्ट के साथ ह्वाइट हाउस में भोजन किया। उस समय चारों ओर चर्चा फैली हुई थी कि स्टालिन और हिटलर में गुटबन्दी होने वाली है। प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट ने मुझे बताया कि उन्होने रूसी राजदूत औमास्की से मास्को के लिए रवाना होते समय कह दिया था कि आप स्टालिन को बता दीजियेगा कि यदि रूस ने हिटलर का साथ दिया तो यह निश्चय है कि फ़ांस पर विजय प्राप्त करने के बाद हिटलर रूस की ओर मुड़ेगा और फिर रूस की बारी आयगी। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि हो सके तो मैं ये शब्द स्टालिन और मोलोटोव तक पहुँचा दूँ।"

यहाँ हम एक ऐसी कूटनीतिज्ञता का उदाहरण देखते है जिसमें भविष्य की छाया पहले ही देख ली गई थी। रूज़वेल्ट भूगोल, हिटलर और युद्ध को समझते थे। फ़ांस को जीतने के बाद और इग्लैंड के जर्मन-सेना की पहुँच से बाहर होने के कारण हिटलर के सामने रूस पर आक्रमण करने के सिवा और कोई चारा ही नही था।

सन् १९४१ मे हिटलर ने देखा कि इस समय इग्लैंड यूरोप पर आक्रमण नही कर सकता, लेकिन बाद मे अमेरिका की सहायता से कर सकता है। यह सोचकर हिटलर ने रूस पर आक्रमण करने की तिथि निश्चित कर ली। उसने अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने से पहले ही रूस को कुचल देना चाहा।

दो बाते हिटलर की शक्ति से बाहर थी, एक तो इंग्लैड पर आक्रमण

करना और दूसरे अमेरिका की बढ़ती हुई सहायता का देखकर चुप बैठे रहना। वह दो बातें कर सकता था, एक तो इंग्लैंड पर उसके साम्राज्य में से होकर आक्रमण करना या दूसरे रूस पर धावा बोलना। हिटलर ने अनुमान लगाया कि सम्मिलित ब्रिटेन और अमेरिका की तुलना में रूस का पतन अधिक सरल होगा। उसे आशा थी कि चूंकि जर्मनी ने "बोलशेविज़्म के भयानक सकट के केन्द्र" रूस पर आक्रमण कर दिया है इसलिए पश्चिम के पूँजीवादी राष्ट्र कृतज्ञतावश जर्मनी पर आक्रमण करने का विचार त्याग देंगे।

घटनाओं ने अक्सर यह सिद्ध किया कि हिटलर के अनुमान ग़लत थे। हिटलर को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि फ़ास और इंग्लैण्ड, पोलैण्ड के कारण युद्ध नहीं करेंगे। उसने अपने सेनाधिकारियों के सामने एक गुप्त भाषण देते हुए कहा कि फ़ास और इंग्लैण्ड बड़े डरपोक हैं। जर्मन-रूसी सन्धि का मुख्य अभिप्राय ही फ़ास और इंग्लैण्ड को युद्ध की ओर से हतोत्साह करने का था। इसी बात का समर्थन मास्को के अधिकृत पत्र 'प्रवदा' ने २३ अगस्त १९४० की जर्मन-रूसी सन्धि का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाते हुए अपने सम्पादकीय स्तम्भ में किया। उसने लिखा—"रूस और जर्मनी की सन्धि का समाचार साम्राज्यवादी युद्ध के सयोजकों और प्रेरकों के लिए अन्तिम चेतावनी थी। किन्तु इस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और युद्ध आरम्भ हो गया।"

न्यूरेमबर्ग में युद्ध-अपराधियों के मुकदमे में जर्मनी में पाये हुए जो सरकारी पत्र पेश किये गये, जिन्हें ७ दिसम्बर १९४५ को अमेरिकन समाचार-पत्रों ने उद्धृत किया, उनसे पता चलता है कि हिटलर ने जर्मन-सेना को पोलैण्ड पर आक्रमण करने का आदेश रूस से सन्धि करने के एक दिन बाद, अर्थात् २४ अगस्त १९३९ को दिया, जब कि उसे विश्वास हो गया कि इस संधि से पश्चिमी देश डर गये हैं और वे युद्ध से अलग रहेंगे।

हिटलर ने एक और भूल की। उसने यह आशा की कि पोलैण्ड की सैनिक-पराजय के साथ-ही-साथ युद्ध का भी अन्त हो जायगा। सितम्बर और अक्टूबर सन् १९३९ में हिटलर ने फ़ांस और इंग्लैण्ड से कई बार सन्धि का प्रस्ताव किया। गोयरिंग ने बर्लिन की एक सभा में कहा कि पोलैण्ड के चार हफ़्ते की लड़ाई के बाद हम अब एक सम्मानपूर्ण सन्धि के लिए तैयार हैं।" पोलैण्ड को हड़पने के बाद नाज़ी कुछ देर के लिए साँस लेना चाहते थे। बाद में उन्होंने औरों को भी शिकार बनाया।

पोलैण्ड की विजय के बाद रूस ने भी युद्ध को समाप्त करने की चेष्टा की ३० नवम्बर १९४० के 'प्रवदा' में स्टालिन ने लिखा कि इंग्लैण्ड और फ़ास

और रूस के युद्ध को शीघ्र-से-शीघ्र
र ठुकरा दिया।
विरुद्ध युद्ध करना निरर्थक समझा।
९ अक्टूबर १९३९ को रूस के सरकारी समाचार-पत्र 'मास्को इजवेस्टिया' ने लिखा कि हिटलरवाद को नष्ट करने के अभिप्राय से युद्ध आरम्भ करना एक भयंकर राजनीतिक मूर्खता करना है।" इसीलिए रूस के विदेश-मन्त्री मोलोटोव ने फ़ास और इग्लैण्ड को 'आक्रमणकारी' कहकर पुकारा।

द्वितीय महासमर का उद्गम रूस और जर्मनी का समझौता ही था; लेकिन यह कहना ठीक नही कि रूस को किसी बडे युद्ध की आशंका थी। रूसी अधिकारियों ने सोचा कि रूस और जर्मनी मे समझौता हो जाने से इंग्लैण्ड और फ़ांस पोलैण्ड के सम्बन्ध मे वही करने को तैयार हो जायगे जो उन्होंने म्यूनिख में चेकोस्लोवेकिया के सम्बन्ध में किया था, और वे लड़ाई से दूर रहेगे। बोल्शेविक जानते थे कि यदि ब्रिटेन और फ़ांस पोलैण्ड के आत्म-समर्पण के लिए तैयार नही हुए तो हिटलर पोलैण्ड पर आक्रमण करके उसे कुचल डालेगा और रूस के साथ उसका बटवारा कर लेगा। स्टालिन ने यह भी सोचा कि इसके बाद ब्रिटिश और फ़ांसीसी सरकारों को झख मारकर जर्मनी के साथ सन्धि करनी पड़ेगी। उसे आशा थी कि इस प्रकार जर्मनी और पश्चिमी देशों मे जा शत्रुता उत्पन्न होगी वह रूस की सुरक्षा का साधन बनेगा। यही कारण था कि स्टालिन ने हिटलर के साथ सन्धि कर ली।

घटनाओ ने सिद्ध किया कि स्टालिन ने भी भूल की। उसने यह नही सोचा कि अब लन्दन मे, और इसलिए पेरिस मे भी, शान्ति-याचकों का राज नही है। इग्लैण्ड और फ्रांस सधि नही करेगे, फ़ास का पतन होगा और, जैसी कि प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने भविष्य-वाणी की थी, रूस को भी उससे नुकसान उठाना पड़ेगा।

शासन के अधिकारी और उच्च सरकारी अफ़सर भी अक्सर साधारण व्यक्तियों की ही भाँति ढुलमुल नीति का अनुसरण करते हैं। मै यह बात इसलिए कहता हूं कि मै इस प्रकार के अधिकारियो के साथ बैठ चुका हूँ और भावी घटनाओं पर विचार भी कर चुका हूँ। कभी-कभी इन लोगों के अनुमान ठीक होते है, किन्तु वे भूले भी करते है, जिसका दड जनता को भुगतना पड़ता है।

सितम्बर १९३८ की म्यूनिख वार्त्ता के बाद शत्रु को शान्त रखने की चेष्टा में जो ग्यारह महीने का समय बीता उसमें फ़ास और इग्लैण्ड को युद्ध से बचे रहने में उतनी ही कम सहायता मिली जितनी कि रूस को जर्मनी से सधि

करने के बाद के २२ महीनों में। मान-मनौअल से युद्ध की सम्भावना बढ जाती है घटती नहीं।

यह बात आँकडों द्वारा सिद्ध की जा सकती है कि हिटलर को संतुष्ट रखने की चेष्टा मे ब्रिटेन और फ्रांस ने न तो इतने शस्त्र बनाये न खरीदे ही कि उनसे चेकोस्लोवेकिया की खोई हुई सेना, शस्त्रों और शस्त्र-फैक्टरियों की क्षति-पूर्ति हो सकती। यह बात कही जा सकती हैं कि चेम्बरलेन और दलादिये की संतुष्टीकरण की नीति के बावजूद भी ग्रेट-ब्रिटेन विजयी हुआ और फ्रांस मुक्त कर लिया गया। किन्तु सोचना यह है कि इस बात के लिए ब्रिटेन और फ्रास को कितना अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ा।

रूस ने तुष्टीकरण की अवधि मे शस्त्र बनाये तो जरूर, लेकिन इतने नहीं कि उनसे एक ओर तो फ्रास की क्षति-पूर्ति हो जाती और दूसरी ओर जर्मनी और पराजित देशों ने इस बीच जितना शस्त्र बनाया उसकी बराबरी की जाता। यह तो ठीक है कि अन्त मे रूस को विजय प्राप्त हुई, किन्तु बताया जाता है कि युद्ध में रूस के दो करोड २० लाख नागरिक मारे गये। किसी भी देश ने इस संख्या को डेढ़ करोड से कम नही कूता है। यह संख्या उन दस लाख स्त्रियों और बच्चों से अलग है, जो घायल, रोग-ग्रस्त या अपंग बन गये। रूस की औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी अपार क्षति भी इसमें शामिल नही है। अंतिम विजय का अर्थ यह नही है कि जल्दी-से-जल्दी लोगों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की जाय। हो सकता है कि शान्त प्रकृति वाले विजय को सिर्फ एक अखबारी सुर्खी या किसी आपसी बहस में जीतने के लिए तर्क-मात्र समझे, किन्तु सभ्य व्यक्तियों के सामने जो असली सवाल होते है, वे ये है—विजय के लिए हमें कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी? अगर कुछ ज्यादा चतुराई के साथ काम किया गया होता तो कम मूल्य देना पड़ता।

रूस ने अगर कुछ अधिक बुद्धिमत्ता से काम लिया हाता तो वह युद्ध से अलग रहता और सन् १६३९ में फिलैण्ड में फँसने के बजाय फ्रांस पर सकट आने के समय लड़ता। रूजवेल्ट ने सन् १९४० में समझ लिया कि ब्रिटेन को अधिक-से-अधिक सहायता देने में ही अमेरिका की भलाई है। स्टालिन को भी यह समझ लेना चाहिए था कि रूस की भलाई फ्रांस को अधिक-से-अधिक सहायता देनें में है।

सन् १६४० के बसन्त-काल में यदि रूस ने दूसरा मोर्चा खोल दिया होता तो उससे जर्मनी की सेनाएँ बँट जाती, फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी की आकाश-सेना इतनी तीव्रता से काम नहीं कर सकती और सम्भवतः फ्रांस का पतन भी रुक

गया होता, ठीक उसी तरह जैसे सन् १९१४ की गरमी में रूस ने जर्मनी पर आक्रमण कर देने से मार्न में फ्रांस का सँभलना सम्भव हो गया था। रूस की सहायता के बिना सन् १९१४ मे भी फ्रांस का उतनी ही शीघ्रता से पतन हो गया होता जितनी शीघ्रता से १९४० मे हुआ।

युद्ध को रोके रखने की यह नीति ख़तरे से भरी हुई थी। मसलन, सम्भव था कि रूसियो के हस्तक्षेप करने पर भी फ़्रांस घुटने टेक देता और उस दशा में हिटलर बालकान देशों को हड़पने के बाद रूस पर टूट पड़ता। फिर भी उसने जो किया वह हमारे सामने है। यदि रूस ने पूर्वी मोर्चे पर युद्ध छेड़ दिया होता तो फ़्रांस को बचाने का कम-से-कम अवसर अवश्य मिलता। स्टालिन का सबसे बड़ा दु:साहस फ़्रांस को हरवाना और फिर यूरोप में हिटलर के साथ अकेले लड़ना था।

स्टालिन ने यह अनुमान लगाने में भूल की कि इंग्लैण्ड और फ़्रांस पोलैण्ड पर आक्रमण होने से पहले हिटलर की बातें मान लेंगे। उसने यह अनुमान भी ग़लत लगाया कि पोलैण्ड के पतन के बाद फ़्रांस और इंग्लैण्ड युद्ध से अलग हट जायगे। इसके अलावा उसने फ़्रांस को सहायता न देने की भी भूल की।

स्टालिन ने हिटलर की युद्ध-नीति के केन्द्रीय तत्त्व को भी समझने मे ग़लती की। इस सम्बन्ध मे हमे बड़ा दिलचस्प प्रमाण रूस के भुतपूर्व विदेश-मंत्री मैक्सिम लिटविनाव से मिलता है जो दूसरे कूटनीतिज्ञों की तुलना में विश्व-स्थिति को ज़्यादा अच्छी तरह समझ पाता था। १३ दिसम्बर १९४१ को उसने वाशिंगटन के सम्वाददाताओं को एक वक्तव्य में बताया—"मेरी सरकार को हिटलर के विश्वासघातपूर्ण विचारों की चेतावनी मिल चुकी थी, किन्तु उसने उस पर अधिक गम्भीरता के साथ विचार नही किया। इसका कारण यह नही था कि रूस को हिटलर के हस्ताक्षरों की पवित्रता में विश्वास था या वह यह समझता था कि हिटलर जिन संधियों पर हस्ताक्षर कर चुका है और जो पवित्र प्रतिज्ञायें उसने बार-बार दुहराई है उन्हें वह भंग नही करेगा। रूसियों ने सोचा कि अगर पश्चिम में युद्ध समाप्त करने से पहले हिटलर पूरब मे हमारे-जैसे शक्तिशाली देश से भिडेगा तो यह उसका पागलपन होगा।"

हिटलर ने पागलपन किया ही। लेकिन क्या स्टालिन को यह मालूम नही था कि हिटलर के सामने और कोई चारा ही नहीं था? स्टालिन को आशा थी, और इसीलिए विश्वास भी था, कि फ़्रांस की लड़ाई के बाद जर्मनी इंग्लैण्ड के मृत्यु-पाश में फँस जायगा और वह उस समय तक नहां निकल पायगा जब तक कि

दोनों म से एक का पतन न हो जाय। रूस को यह भी आशा थी कि इन दानों मे से जो देश जीतेगा वह इतना थक जायगा कि उसमे रूसको छेड़ने की शक्ति न रह जायगी। स्टालिन को यह बात तो समझ मे नही आई कि सन् १९४० और ४१ मे ब्रिटेन का शक्ति की परीक्षा लेने के बाद और उसे बलवान पाकर हिटलर उधर से अपना पजा ढीला कर देगा और वहरूस की छाती पर चढ बैठेगा।

स्टालिन न हिटलर और विश्व-स्थिति दोनो ही को गलत समझा और यही कारण था कि उसने हिटलर के साथ गुटबदी का।

इस गुटबदी से और बाद के समझौते से भी दोनों दलों को लाभ की आशा थी, कुछ सच्ची और कुछ भ्रामक। २३ अगस्त १९४० को 'प्रवदा' ने कहा कि इस सन्धि से जर्मनी को पूरब मे अखण्ड सुरक्षा की गारटी मिल गई है।" यह बात सच थी और इसके कारण हिटलर को पश्चिम मे विजय-ही-विजय प्राप्त हुई। नाज, चरी, जूट, पेट्रोल आदि अपरिमित मात्रा मे सीधे रूस से और रूस के ज़रिये जापान से जर्मनी आये। १९४० में जर्मनी को सात लाख टन तेल प्राप्त हुआ।

यूरोप और दूसरे देशों के कम्युनिस्ट-दल एकाएक सुलह, समझौते और युद्ध से अलग रहने के पक्षपाती बन गये। उन्होंने अपना क्रोध जर्मनी के शत्रुओं पर उतारा और स्वय जर्मनी की ओर से चुप्पी साध ली। समझौते के बाद ऐसा होना अनिवार्य था। रूसी समाचार-पत्रों ने डेन्मार्क और नार्वे पर किये गये हिटलर के आक्रमणों का समर्थन किया। ३० नवम्बर, १९४० के 'प्रवदा' मे स्टालिन ने लिखा—"जर्मनी ने फ्रास और इंग्लैण्ड पर आक्रमण नहीं किया, बल्कि फ्रांस और इंग्लैण्ड ने जर्मनी पर आक्रमण किया। वर्त्तमान युद्ध का उत्तरदायित्व उन्ही पर है।" चूँकि स्टालिन ने युद्ध का दोषारोपण फ्रांस और इंग्लैण्ड पर किया, इसलिए यह कैसे हो सकता था कि जनतत्री राज्यों के कम्युनिस्ट फ्रांस या ब्रिटेन का पक्ष लेते। जर्मनी और रूस मे जब तक सन्धि रही तब तक सारे रूस में फ़ाशिस्ट और जर्मन-विरोधी प्रचार रुका रहा। फ्रैडरिक वुल्फ़ के "प्रोफेसर मेमलौक" जैसे नाज़ी-विरोधी और आइन्सटीन के 'अलकज़ेण्डर नेवेस्की' जैसे जर्मन-विरोधी फ़िल्मों का दिखाया जाना बन्द कर दिया गया। आइन्सटीन ने वेगनर के "डाइवाक्वुरे" नाम का नाटक खेला और नाज़ी अफ़सरों ने उससे—एक यहूदी से—हाथ मिलाया और बधाई दी, रूसी खम्भों पर रूस के हथौड़े और हँसिया वाले झंडे के साथ-साथ जर्मनी का स्वस्तिक झंडा फहरा देने के बाद ऐसा होना अनिवार्य था। ९ अक्तूबर, १९४१ को 'इज़वेस्तिया' ने विरक्तभाव से लिखा—"प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है

कि वह किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध मे अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करे और उसे स्वीकार करे या न करे। हिटलरवाद या किसी भी दूसरी राजनीतिक विचार-प्रणाली का सम्मान करना भी सम्भव है और घृणा की दृष्टि से देखना भी। यह सब अपनी-अपनी पसन्द की बात है।" जब स्वयं मास्को मे फाशिज्म का विरोध रोका जा रहा था और नाज़ियों के प्रति सहिष्णुता का प्रचार किया जा रहा था, तो बाहर के कम्युनिस्ट किस प्रकार नाज़ी-विरोधी हो सकते थे! उन दिनों नाज़ीवाद का विरोध करना या युद्ध का समर्थन करना वास्तव में स्टालिन का विरोध करने के समान था। इसीलिए जनतंत्री देशों के कम्युनिस्टों ने रक्षात्मक यत्र तैयार करने वाले कारखानों मे हडताल की आग फैलाई। अमेरिकन कम्युनिस्ट दल ने 'जर्मनी के बनाये हुए' माल पर से बहिष्कार उठा लिया और हिटलर के रूस पर आक्रमण करने के दिन तक वे व्हाइट हाउस पर धरना देते हुए रूज़वेल्ट की नाज़ी-विरोधी नीति के विरुद्ध प्रदर्शन करते रहे। ब्रिटिश कम्युनिस्टों ने तो उन दिनों भी, जब ब्रिटेन पर जर्मनी द्वारा धुआँधार बम बरसाये जा रहे थे, ब्रिटिश प्रयत्नों मे बाधा डाली। फ्रांसीसी कम्युनिस्टों ने अपने देश को शीघ्र पराजित होने मे यथासाध्य सहायता की। यदि स्टालिन ने रूस की शक्ति को बढाने के लिए अवकाश निकालने के अभिप्राय से हिटलर के साथ समझौता किया था, तो समझ मे नहीं आता कि कम्युनिस्टों ने क्यों हिटलर को सहायता दी और जर्मनी के विरुद्ध लड़ने वाले देशों के युद्ध-प्रयत्न मे बाधा डालकर रूस को दुर्बल बनाया!

जो रूस किसी समय फाशिज्म का सबसे बड़ा विरोधी और सामूहिक सुरक्षा का पक्षपाती था, उसी ने उस देश से व्यापक संधि कर ली, जहाँ कम्युनिस्टों, यहूदियो और जनतंत्र के प्रति अनाचार होते थे और जहाँ की फ़ाशिस्ट सरकार जातीयता, लालच और बर्बरता की भावना से भरी हुई थी। स्वभावतः उसके इस कार्य से, चाहे वह किसी भी प्रलोभन या आकर्षण से प्रेरित क्यों न हुआ हो, सिद्धान्त के उस अपमान और राजनीतिक व्यभिचार के फैलने में सहायता मिली जिसके कारण पेताँ को शीघ्र ही हिटलर के सामने सिर झुकाना पड़ा और जो अब भी हम में पाया जाता है। रूस और जर्मन की सन्धि ने कितने ही सिद्धान्तहीन कार्यो और विचारों को जन्म दिया। सार्वजनिक मामलों में किसी के शिष्टता से गिरने से हिटलर को अपनी तानाशाही चक्की पीसते रहने के लिए मसाला मिल जाता था और वह अब भी एकाधिकारवादियों के लिए लाभदायक है।

हिटलर को रूस से सन्धि करने से ये लाभ हुए। अब देखना है कि

रूस को क्या लाभ हुआ। रूस को दूसरों की भूमि पर अधिकार प्राप्त हुआ। सबसे पहले उसने पूर्वी पोलैण्ड के उतने भाग पर अधिकार किया जितने के लिए दोनों देशों मे आपस मे समझौता हुआ था। १४ अक्तूबर १९३९ को रिबनट्राप ने डैनजिग मे एक भाषण देते हुए बताया कि पोलैण्ड में युद्ध आरम्भ होने के कुछ ही दिनों बाद "रूसी सेनाये सारे मोर्चे पर आगे बढी और उन्होंने पोलैण्ड पर उस रेखा तक अधिकार कर लिया जो पहले ही रूस के साथ बातचीत करके तै कर ली गई थी।"

मै रिबनट्राप के शब्दों पर उस समय तक विश्वास करने को तैयार नही होता जब तक कि वे वस्तुतः कार्यरूप में परिणत न हो जाय। सत्य यह है कि पोलिश सेना का पीछा करते हुए जर्मन-सैनिक अवसर निर्धारित सीमा को पार कर जाते थे और जब कभी ऐसा होता था तो रूसी सेना के वहाँ पहुँचते ही जर्मनी के सशस्त्र सैनिक फौरन पीछे हट जाते थे। निश्चय ही जर्मनी के विजयी सैनिक नाज़ी सरकार से पहले से ही हिदायत पाये बिना ऐसा कदापि न करते।

जब हिटलर ने पोलैंड को बहकाने और बिना लडे ही हार मानने के लिए विवश करने के अभिप्राय से प्रचार आरम्भ किया तो रूस के विदेश-मंत्री लिटविनाव ने २७ नवम्बर १९३८ को मास्को के पोलिश-राजदूत के सामने पोलैंड के साथ की हुई अनाक्रमण संधि का फिर से समर्थन किया। इसका अभिप्राय पोलैंड निवासियों को दृढ बने रहने के लिए प्रोत्साहन देना था। २९ जून १९३९ को मोलोटोव ने, जो इस बीच रूस के विदेश-मंत्री बन गये थे, मास्को-स्थित पोलिश-राजदूत को सरकारी रूप से विश्वास दिलाया कि यदि पोलैंड पर आक्रमण हुआ तो रूस उसे न केवल आर्थिक सहायता देगा बल्कि पुर-मान्स्क बन्दरगाह के रास्ते रूसी प्रदेश को पार कर-सामान मँगाने का भी अधिकार देगा। व्यापार के कमिश्नर मीकोयाँ न जो एक उच्च-पदासीन कम्युनिस्ट थे, पोलिश अधिकारियों को एक बार फिर यही आश्वासन दियो। जब तक कि रूसी सरकार को पश्चिमी देशों के साथ समझौते की सम्भावना दिखाई दी, तब तक उसने पोलैंड से होकर रूसी सेना के गुज़रने का—सम्भवतः जर्मनों से लड़ने के लिए—प्रश्न नहीं उठाया। जैसा कि सन् १९३८ में म्यूनिख-संकट के समय लिटविनाव ने मुझसे बार-बार कहा था, प्रत्येक रूसी अफ़सर को यह बात मालूम थी कि पोलैंड की कोई भी सरकार रूसी सैनिकों को अपने देश में नहीं घुसने देगी। सन् १९३९ में जब मास्को में रूस, इंग्लैंड और फ्रांस के बीच समझौते की बातचीत चली तो रूस ने अपनी सेना के पोलैंड मे प्रवेश करने की बात १५ अगस्त से पहले नहीं उठाई। उस समय तक २३ अगस्त के

रूसी-जर्मन समझौते का मसविदा तैयार हो चुका था और यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि रूस पोलैंड की सहायता नही करेगा। यही बात उस समय वार्त्ता को भग करने के लिए कारण बन गई।

स्टालिन जानता था कि सीधे पोलैंड से समझौता करने से या फ्रास और ब्रिटेन से बातचीत करके पोलैंड का एक टुकड़ा भी नहीं मिल सकेगा। हिटलर से सधि करने से उसे पोलैंड में हिस्सा मिला। यही बात बाल्टिक राज्यों के सम्बन्ध में भी हुई। फ़ास और इग्लैंड से बातचीत करते समय रूसी सरकार ने इन राज्यों मे अपने लिए विशेष अधिकार माँगे। ब्रिटेन और फ़ांस उन्हें स्वतत्र राष्ट्र समझते थे और इसीलिए उन्होंने स्टालिन को वहाँ सैनिक अड्डे बनाने का अधिकार नही दिया किन्तु हिटलर ने स्टालिन को यह अधिकार दे दिया।

इस प्रकार कार्य करना स्टालिन की विशेषता थी। जब वह अपनी मनचाही वस्तु को पाने का एक रास्ता बन्द देखता था तो वह कुछ देर के लिए रुक जाता था और फिर चक्कर काटकर उस वस्तु को दूसरे रास्ते से प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। यह ढंग वह केवल अपनी घरेलू नीति मे ही नहीं बल्कि विदेशी नीति में भी अक्सर काम में लाता था। स्टालिन टेढ़े-तिरछे रास्तों से होकर सीधे आगे बढ़ा करता है। उसने जब देखा कि अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों की नैतिकता रास्ते मे रुकावट डाल रही है तो उनके साथ बातचीत बन्द कर दी और हिटलर के साथ सन्धि कर ली, जिसके फलस्वरूप उसे पोलैंड के एक भाग पर अधिकार मिल गया और बाल्टिक के छोटे-छोटे देशों पर अपना सरक्षण स्थापित करने मे भी सफलता मिली। बाद में यह सोवियत् रूस मे अन्तर्हित कर लिया गया।

२२ जून १९४१ को रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते हुए हिटलर ने बताया कि रूसी-जर्मन सन्धि की बातचीत करते समय एक विशेष समझौता उस स्थिति के लिए किया गया था जो ब्रिटेन के भड़काने से पोलैण्ड के जर्मनी के विरुद्ध शस्त्र उठा लेने पर उत्पन्न होती। यदि पोलैण्ड लड़ता नही तो रूस को उसका एक हिस्सा मिलता और यदि लड़ता, तो विशेष समझौते के अनुसार रूस को बाल्टिक में कुछ अतिरिक्त अधिकार दिये जाते। इस सम्बंध में हिटलर ने कहा—"जर्मनी ने मास्को मे यह बात गम्भीरतापूर्वक कह दी थी कि एस्थीनिया, लैटबिया, फिनलैंड और बेसेरीबिया तो जर्मनी के राजनीतिक प्रभाव से बाहर अवश्य है किन्तु लिथुएनिया नही। जर्मनी इस क्षेत्र को रूस से प्रभावित समझता था।"

अमेरिका के स्टेट विभाग को जो जानकारी प्राप्त है उससे हिटलर के इस कथन का समर्थन होता है। घटनाये भी यही सिद्ध करती है। २८ सितबर १९३९ को एस्थोनिया ने रूस के प्रभाव मे पड़कर उसके साथ पारस्परिक सहायता का समझौता कर लिया और उसे बाल्टिक सागर मे जहाज़ी अड्डे भी प्रदान किये। ५ अक्तूबर को लेटेविया और १६ अक्तूबर को लिथुवेनिया ने भी रूस के साथ ऐसा ही समझौता किया। ३० नवम्बर को रूस ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया। लिथुवेनिया पर अधिकार करने के सिवा, जिसको बाद में हिटलर ने मान लिया, रूस ने जो-जो काम किये वे रूस और जर्मनी के अगस्त १९३९ के समझौते के अनुकूल थे और अपने वचन को पूरा करने के लिए हिटलर ने जर्मनों को बाल्टिक देशों से, जहाँ वे कई पीढ़ियों से रहते चलें आये थे, वापस आने का आदेश दिया। लाखों जर्मनों ने इस आदेश का पालन किया।

रूसी विस्तार का दूसरा परिच्छेद २७ जून १९४० को आरम्भ हुआ, जब कि रूसी सेनाओ ने रुमानिया में प्रवेश किया और बेसेरेविया तथा उत्तरी बुकोविना पर अधिकार कर लिया। २१ जुलाई को रूस ने लिथुवेनिया, लैटविया और एस्थोनिया को पूर्ण रूप से अपने साम्राज्य में मिला लिया। हिटलर ने पहले से ही फ्रांस और बाद में ब्रिटेन को हड़पने की योजना बना रखी थी। इसलिए जर्मन-सेना ने पश्चिम की ओर मुँह रखा और स्टालिन ने छुटकर मौज उड़ाई।

२२ जून, १९४१ को जर्मनी के विदेश-मंत्री रिबनट्राप ने बताया कि रूस का बाल्टिक देशों पर अधिकार करना और उन्हें बोलशेविक रग में रँगना रूस द्वारा दिये गये आश्वासनों के विरुद्ध था। मोलोटोव ने भी इसी का समर्थन करते हुए कहा—"रूस की एस्थोनिया, लैटविया और लिथुएनिया के साथ की गई नई संधियों में इस बात का दृढ संकल्प किया गया है कि संधि पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों की सार्वभौम सत्ता नष्ट नहीं होनी चाहिए और दूसरे देशों के मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए"। मोलोटोव ने ज़ोर देते हुए यह भी कहा—"बाल्टिक देशों के सोवियतीकरण की चर्चा केवल हमारे पारस्परिक शत्रुओं और रूस के विरुद्ध आग भड़कानेवालों के लिए ही लाभदायक है। ३१ अक्तूबर, १९३९ को दिये गये इस स्पष्ट वक्तव्य ने रूस को २१ जुलाई १९४० को बाल्टिक देशों पर आधिपत्य जमाने और उन्हें सोवियत् रँग में रगने से रोका नही और न मोलोटोव ने ही यह कहना बन्द किया कि रूस हमेशा अपने वचनों का पालन करता है।"

जर्मनी के पोलैण्ड मे लड़ने से रूस को पोलैण्ड और बाल्टिक देशों में

लाभ हुआ। इसी तरह उसके पश्चिमी यूरोप पर आक्रमण करने से रूस को रूमानिया और बाल्टिक देशो मे हिस्सा मिला। रूस ने युद्ध की तैयारी के लिए समय प्राप्त करने के अभिप्राय से नही बल्कि दूसरे देशो पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा से जर्मनी के साथ संधि की। उसने लिटविनाव को पद-च्युत कर और १९३९ मे जर्मनी से सन्धि कर साम्राज्य-विस्तार का मार्ग प्रशस्त कर लिया और अब भी वह उसी पथ पर बढ़ता चला जा रहा है।

जून १९३६ मे स्टालिन ने कहा था—"हमे दूसरो की एक फुट भी ज़मीन नही चाहिए, लेकिन हम अपनी जमीन का एक इच भी दूसरों को नही लेने देगे।" रूसी विदेश-नीति का सदा यही मुख्य सिद्धान्त रहा है। ध्यान रहे कि स्टालिन ने यह नही कहा कि हमे पूर्वी पोलैण्ड या बाल्टिक-राज्यो या फ़िनलैण्ड के एक भाग को छोड़कर और किसी देश की एक फुट ज़मीन भी नही चाहिए। उसने कहा कि "हमे किसी भी दूसरे देश की ज़मीन नही चाहिए।" स्टालिन के समर्थकों को यह निश्चय करना होगा कि स्टालिन सचमुच अपनी कही हुई बात पर विश्वास करता था या १९३६ मे उसने यह बात केवल इसलिए कही थी कि उस समय उसमे आक्रमण करने की क्षमता नही थी और फिर सन् १९३९ मे इस सिद्धान्त को इसलिए त्याग दिया कि तब तक दूसरे देशों को हड़पने की उसमें शक्ति आगई थी।

यद्यपि क्रान्ति की चपेट में पूर्वी पोलैण्ड, बाल्टिक राज्य, फ़िनलैण्ड और बेसेरेबिया रूस के हाथ से निकल गए फिर भी सन् १९२० के बाद रूस पर कोई आक्रमण नही हुआ। सन् १९४१ मे उस पर तब आक्रमण हुआ जब वह इन देशों को फिर से जीत चुका था। वह आक्रमण जर्मनी का हुआ था जिसकी सहायता से उसने इन देशों को पुनः प्राप्त किया था।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का यह एक स्वाभाविक नियम है—और शायद आजकल का सबसे महत्त्वपूर्ण नियम है कि विस्तार के साथ विस्तार की भूख बढ़ती जाती है। सन् १९४० की गर्मियों तक रूस उन सभी स्थानों पर अधिकार कर चुका था जो पहले ज़ार के साम्राज्य के अन्तर्गत थे। इनके अतिरिक्त उसने पूर्वी गैलीशिया और उत्तरी बुकोविना पर भी, जो पहले कभी रूसी आधिपत्य मे नही थे, क़ब्ज़ा कर लिया था। फिर भी, रूस के रक्षा-कमिश्नर टिमोशैंको ने ७ नवम्बर १९४० को मास्को मे कहा—"सोवियत् रूस ने अपनी सीमाएँ बढ़ा ली है, लेकिन हम इतने से ही सन्तुष्ट नही रह सकते।" स्वभावतः रूस ने बालकान में फैलने की चेष्टा की।

सितम्बर १९४० में फ़्रांस हिटलर के काले जूते की एड़ी तले दबा पड़ा

था और ब्रिटेन पर जर्मन हवाई जहाज़ धुआंधार बम बरसा रहे थे। 'यू' बोटो की सरगरमी ने अन्धमहासागर मे एक भयानक संकट उपस्थित कर दिया था। स्टालिन ने इस अवसर को एक दूसरा महान् प्रयत्न करने के लिए बड़ा उपयुक्त समझा किन्तु जर्मनी पश्चिम मे फँसे रहने पर भी पूरब की ओर से संतर्क था। पत्रकार लेलैण्ड स्टो ने, जो नाज़ियों के कट्टर विरोधी थे, २० सितम्बर, १९४० को बुखारिस्ट से न्यूयार्क को निम्नलिखित तार दिया—"जर्मनी ने रूस के रूमानिया मे और अधिक विस्तार करने के आयोजन को सफलता पूर्वक रोक दिया है।... इसमें संदेह नही कि रूस की बलगेरिया और काले समुद्र-तटवर्ती प्रदेश पर सितम्बर मे अधिकार कर लेने की आशा पर तुषारपात होगया है। इसका यह मतलब नहीं है कि रूस ने बालकान मे विस्तार की आकाक्षाएँ छोड दी है।" १४ अक्तूबर, १९४० को बुडापेस्ट से भेजे गये एक दूसरे पत्र मे स्टो ने अपने उक्त कथन का समर्थन किया। उसने तार देते हुए लिखा—"स्टालिन की लाल सेना अब बालकान से बाहर निकाल दी गई है।"

इस रक्तहीन राजनीतिक युद्ध को जीतने के बाद हिटलर ने रूस के विदेश-मंत्री मोलोटोव को बर्लिन आने का निमत्रण दिया। मोलोटोव वहाँ १२ नवम्बर को पहुँचे। उस समय उनका जो चल-चित्र तैयार किया गया उसमे वह अपना टोप उठा-उठाकर रास्ते मे हर जर्मन अफसर का अभिवादन करते हुए दिखाये गये। लेकिन उनका चपटा चेहरा गम्भीर मालूम होता था; वह हिटलर के साथ महत्त्वपूर्ण बातचीत करने वाले थे।

उस समय यह चर्चा फैली थी कि हिटलर से बात करते समय मोलोटोव जिस कोच पर बैठे थे उसमे जर्मनी की खुफ़िया पुलिस ने माइक्रोफ़ोन (ध्वनिविस्तारक यंत्र) लगा दिये थे। कहा जाता है कि बाद में जर्मनों ने यह सिद्ध करने के लिए कि हिटलर ने किस प्रकार रूस के विरुद्ध तुर्की के हितों की रक्षा की—माइक्रोफोन के रिकार्डों को तुर्क और दूसरे अफ़सरों को सुनाया। यह बात ठीक थी या ग़लत यह तो नही कहा जा सकता; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नाज़ियों के लिए ऐसा करना असम्भव नहीं था।

हिटलर और मोलोटोव ने अपनी ऐतिहासिक मुलाक़ातों में किन-किन विषयों पर बातचीत की, इसके सम्बन्ध में हमें केवल उतना ही मालूम है जितना कि हिटलर और रिबनट्रॉप ने २२ जून १९४१ को बताया। हिटलर ने कहा—"रूस के विदेश-मंत्री ने हमसे सधि के सम्बन्ध में चार बातों का स्पष्टीकरण चाहा। मोलोटोव का पहला प्रश्न यह था—जर्मनी ने रूमानिया को जो गारंटी दी है वह क्या रूस द्वारा रूमानिया पर आक्रमण किये जाने पर रूस के विरुद्ध

भी लागू होगी ? मैंने उत्तर दिया—जर्मनी ने एक आम गारंटी दी है और वह हमारे लिए बिना किसी शर्त के बाध्य है। रूस ने हमे यह कभी नही बताया कि बेसेरेबिया के अलावा भी उसकी रूमानिया मे कोई दिलचस्पी है।"······दूसरे शब्दो में यों कहिये कि हिटलर ने मोलोटोव को बताया कि जर्मनी रूस से रूमानिया की रक्षा करेगा।

हिटलर ने आगे कहा—"मोलोटोव का दूसरा प्रश्न यह था—फिनलैण्ड एक बार फिर रूस के लिए संकट बन गया है। क्या जर्मनी फिनलैण्ड को किसी तरह की भी सहायता न देने के लिए तैयार है ?"

मैंने उत्तर दिया—"जर्मनी को अब भी फिनलैण्ड मे किसी प्रकार की राजनीतिक दिलचस्पी नही है। फिर भी अल्पसंख्यक फ़िनिश जनता पर रूस का कोई नया आक्रमण जर्मन सरकार को अब सह्य नही होगा, विशेषत: इसलिए कि हम इस बात पर कभी विश्वास नही कर सकते कि रूस को फिनलैण्ड से खतरा हो सकता है।"

मोलोटोव का तीसरा सवाल यह था—"क्या जर्मनी यह मानने को तैयार है कि रूस बल्गेरिया को सुरक्षा का आश्वासन दे और वहाँ इस कार्य के लिए रूसी सेना भेजे ? इस सम्बन्ध मे मोलोटोव यह कहने को तैयार थे कि रूस बल्गेरिया के राजा को गद्दी से उतारना नही चाहता।"

मैंने उत्तर दिया—"बल्गेरिया की सत्ता सार्वभौमिक है और मुझे पता नही कि उसने रूस से कभी ऐसे आश्वासन के लिए प्रार्थना की है जैसी रूमानिया ने जर्मनी से की थी।"

मोलोटोव का चौथा सवाल यह था—"हर हालत में रूस दर्रे दानियाल से होकर आने-जाने का स्वतन्त्र रास्ता चाहता है और अपनी रक्षा के लिए दानियाल और बॉसफ़ोरस के कई महत्त्वपूर्ण अड्डों पर अधिकार भी चाहता है। क्या जर्मनी इससे सहमत है ?"

मैंने उत्तर दिया—"जर्मनी मॉनट्रियो संधि में कालेसागर के तटवर्ती राज्यों के अनुकूल परिवर्तन करने को हर समय तैयार है, किन्तु जलडमरूमध्यों के अड्डों पर रूस का अधिकार होने देने के लिए तैयार नही।"

हिटलर का यह बनावटी भोलापन और अपने को फ़िनलैण्ड और बालकान देशों का रक्षक सिद्ध करने का प्रयत्न किसी से छिप नही सका। बालकान के सम्बन्ध में उसकी अपनी योजनाए थीं और उसे रूस का हस्तक्षेप बुरा मालूम होता था। फिर भी, दोनों ने बालकान की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया और इसमें सन्देह नहीं कि हिटलर ने मोलोटोव की माँगों की जो रूपरेखा बताई

वह उस नीति से बिलकुल मिलती-जुलती है जो रूस ने अपनी सेना की शानदार जीतो के बाद सन् १९४४ मे ग्रहण की ।

१६ नवम्बर को मोलोटोव मास्को लौट गया । हिटलर ने फ़ौरन स्लोवेकिया, हगरी और रूमानिया के प्रतिनिधियों को बुलाकर धुरी-राष्ट्रों का साथ देने का आदेश दिया और उन्होने उसकी आज्ञा का पालन किया । जब हंगरी ने ऐसा किया तो रूस की सरकारी तार एजेंसी 'टास' ने २२ नवम्बर को घोषणा की कि हंगरी ने मास्को की स्वीकृति लिये बिना ही यह कार्य किया है । 'टास' ने इन शब्दो द्वारा रूस की अस्वीकृति का सकेत किया, किन्तु हिटलर ने उस पर ध्यान नहीं दिया और वह बालकान की किलेबन्दी करने लगा । इस काम मे उसे मुसोलिनी की वाहवाही भी मिली, किन्तु इटली से कोई सहायता प्राप्त नही हुई ।

बाल्कान की किलेबन्दी का अभिप्राय क्या था ? एक बड़ी घटना घटने वाली थी । इस बार हिटलर ने अपनी तैयारी धीरे-धीरे की । बलगेरिया पर मार्च १९४१ मे उसने अधिकार किया । उसी महीने की तीसरी तारीख़ को रूस ने सरकारी रूप से उसके इस कार्य की निन्दा की । मोलोटोव की बर्लिन-यात्रा के बाद से रूस और जर्मनी का सम्बन्ध स्पष्टतः बिगड़ता जा रहा था और अब वह एक संकट की स्थिति मे पहुँच गया था ।

रूस के प्रवेश-द्वार को चकनाचूर करने से पहले हिटलर बालकान मे अपने पीछे के द्वार में ताला डालना चाहता था, किन्तु अभी यूगोस्लेविया और यूनान का सफाया करना बाकी था । यूगोस्लेविया ही जर्मनी के यूनान में घुसने का मार्ग था, जहाँ (जनवरी और फरवरी सन् १९४१ में) महान् मुसोलिनी की सेनाएँ साधारण अस्त्र-शस्त्र से सज्जित यूनानी योद्धाओं द्वारा अपमानित की जा रही थीं ।

अतः मार्च १९४१ के अन्त में हिटलर ने अपनी 'भींचने और भय दिखाने' की प्रसिद्ध रीति से काम लिया और यूगोस्लेविया की सरकार को धुरीराष्ट्रों का साथ देने के लिए विवश किया । बेलग्रेड के प्रतिगामियों और राजभक्तों ने कोई आपत्ति नहीं की, किन्तु वहाँ की जनता और सैनिक कार्यकर्त्ता चुप नहीं बैठे । उन्होंने एक साथ मिलकर विप्लव किया और हिटलर के साथ हिटलर की इच्छानुसार संधि करने वाले मंत्रिमंडल को उखाड़ फेंका । अमेरिका के सरकारी क्षेत्रों में कहा गया कि यह घटना अंग्रेज़ों की प्रेरणा से हुई है । नाज़ियों ने कहा इसमें रूस का हाथ है । रूस और ब्रिटेन दोनों ही यूगोस्लेविया को जर्मनों की आँखों की किरकिरी बना देना चाहते थे । यूगोस्ले-

विया की रक्षा कर अंग्रेज स्वेज और भारत की तथा रूसी मास्को की रक्षा कर रहे थे।

२७ मार्च को जनरल डूसाँ सिमोविच के नेतृत्व मे यूगोस्लोविया मे धुरी-राष्ट्र-विरोधी एक नई सरकार बनी और उसने जर्मनी के विरुद्ध लड़ना आरम्भ किया। ५ अप्रैल को रूसी सरकार ने यूगोस्लोविया की इस नई सरकार के साथ मित्रता की सधि की। यह हिटलर का खुल्लम-खुल्ला विरोध था।

६ अप्रैल को रूस के सैनिक पत्र 'रेड स्टार' ने लिखा कि जर्मनी को यूगोस्लोविया में कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है। साथ-ही-साथ उसने यूगोस्लावो के परम्परागत सैनिक गुणों का भी उल्लेख किया और बताया कि जनरल सर आर्कीबाल्ड वेवेल के नेतृत्व मे ब्रिटिश कमान ने यूगोस्लोविया को सहायता देने का गम्भीर प्रबंध कर दिया है।

रूस को आशा थी कि यूगोस्लोविया और यूनान जर्मनी से डटकर मोर्चा लेंगे और ब्रिटेन उनकी सहायता करेगा।

बालकान का युद्ध रूस के लिए युद्ध और शान्ति दोनों का कारण बन सकता था। इस बात की सम्भावना थी कि जर्मनी यूगोस्लोविया और यूनान दोनों को कुचलने के बाद उसी दिशा मे क्रीट, मिस्र, सीरिया, ईराक और भारत की ओर बढ़ता रहे। बहुत से जर्मन जनरलों ने इस कार्य-क्रम का समर्थन किया भी था। उस दशा में रूस के लिए कोई तात्कालिक सकट न होता।

अप्रैल सन् १९४१ में ईराक मे रशीदअली ने अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव किया। उससे अगले महीने में विची (फ़्रांस) के अधिकारियों ने जर्मनों को सीरिया में फ्रांसीसी हवाई अड्डों को प्रयोग मे लाने की अनुमति दे दी, अलेप्पो का हवाई अड्डा तो बिलकुल नाजियों के लिए ही छोड़ दिया गया। सीरिया से जर्मनों ने रशीदअली को सैनिक सहायता भेजी, उधर उत्तरी अफ़्रीका में इटली और जर्मनी का एक संयुक्त सेना अंग्रेज़ों से जूझ पडी।

अब प्रश्न यह था—क्या हिटलर भारत की ओर बढ़कर जापानियों का साथ देगा? सीधे ब्रिटिश द्वीप समूह पर आक्रमण करने मे असफल होने के कारण सम्भवथा हिटलर ब्रिटिश-साम्राज्य का अंग-भंग करने का प्रयत्न करता। उस समय हिटलर का ध्यान रूसी प्रदेश से बहुत दूर चला जाता।

रूस की ये आशाएं निष्फल रही। हिटलर ने अपनी सारी शक्ति यूगोस्लेविया और यूनान के विरुद्ध केन्द्रित कर दी और अप्रैल का अन्त होते-होते दोनों देश पद्-दलित कर दिये गए। उसके बाद शीघ्र ही सारे यूरोप में यह अफ़वाह फैल गई कि जर्मन-सेनाएँ बालकान और फ्रांस से हटाकर रूसी सीमा

की ओर भेजी जा रही है। जर्मन टुकड़ियां फ़िनलैण्ड में दिखाई भी दीं।

मास्को मे सनसनी फैल गई। स्टालिन ने बड़ी तत्परता और पौरुष के साथ काम किया। ये ही वे गुण हैं जिनसे उन्हें शक्ति और ख्याति मिला है। ६ मई को उन्होंने मोलोटोव को हटा दिया और वह स्वयं सोवियत् सरकार के प्रधान बन गए। उस समय स्टालिन की आयु ६२ वर्ष की थी।

८ मई १९४१ को मैंने अमेरिका के अंडर-सेक्रेटरी समनर वेल्स को एक पत्र में लिखा; "यदि हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया या उस पर युद्ध के सहायतार्थं अधिक सामान देने का दबाव डाला तो उससे यह सिद्ध हो जायगा कि २३ अगस्त सन् १९३९ के समझौते मे तुष्टीकरण की जिस नीति का आरम्भ किया गया वह खोखली थी। युद्ध आरम्भ हो जाने पर या घटनाओं द्वारा रूसी कूटनीतिज्ञता की असफलता सिद्ध हो जाने पर स्टालिन की इच्छा सारी शक्ति और अधिकार अपने हाथ मे ले लेने की होगी और वह किसी दूसरे के हाथ मे शक्ति नही रहने देना चाहेंगे।"

संकट के समय सर्वोच्च अधिकार का मोलोटोव जैसी गुड़िया के हाथ में छोड़ देना दुर्बलता का निर्देशक होता। इसीलिए स्टालिन ने रूसी शासन का अध्यक्षता अपने हाथों में ले ली। साथ-ही-साथ, उन्होंने युद्ध के लिए अपनी सेना भी तैयार की। फिर भी उन्होंने हिटलर को एक बार फिर तुष्ट करने और उसकी चेष्टा को ब्रिटिश-अधिकृत पूर्वीय देशों की ओर मोड़ने की आशा नही छोड़ी थी। एकाएक रूस की नीति बदल गई और वह विरोध की बजाय आज्ञापालन की ओर झुकी। ९ मई को रूसी सरकार ने नार्वे और बेल-जियम पर से स्वीकृति वापिस ले ली और उनके मास्को-स्थित कूटनीतिक प्रति-निधियों के विशेषाधिकार भी रद्द कर दिये। नार्वे और बेलजियम साल भर से हिटलर के आधिपत्य मे थे फिर भी रूस उनके राज-दूतों को स्वीकार करता आया था। अब उसने उन्हें अस्वीकार कर दिया और यूगोस्लोविया पर से भी स्वीकृति वापिस ले ली। स्मरण रहे कि उसने एक मास पहले यूगोस्लोविया के साथ मित्रता की संधि की थी। हिटलर को तुष्ट करने के विशेष अभिप्राय से उसने ईराक़ के ब्रिटिश-विरोधी राजद्रोही रशीदअली की सत्ता स्वीकार कर ली।

स्थिति अब अंत पर पहुँचती जा रही थी। लोग रोमांचकारी घटनाओं के समाचार सुनते-सुनते कुन्द हो गये थे। एकाएक और भी बड़ी रोमांचकारी घटना हुई। हिटलर का डिप्टी रूडोल्फ़ हेस हवाई जहाज़ में बैठकर स्काटलैण्ड गया और १० मई को एक हवाई छतरी के ज़रिये हेमिल्टन के ड्यूक की बड़ी

रियामत के पास उतरा। वहा के एक आश्चर्य-चकित किसान ने, जो खेत मे दोदाता फावड़ा चला रहा था, उसे पकड़ लिया।

कई महीने बाद मैंने लदन मे हेस-रहस्य के सम्बन्ध में ब्रिटेन के विदेश-मत्री एन्थेनी ईडेन, गृह-मत्री हरबर्ट मॉरिसन, डिप्टी प्रधान-मत्री क्लेमेट एटली, मजदूर-नेता प्रोफेसर हेराल्ड लास्की और कई अन्य व्यक्तियो के साथ बातचीत की। ईडन से जो बातचीत हुई वह इस प्रकार थी।

ईडन—"जमन-आक्रमण के सम्बन्ध मे हमने रूसियों को तीन सप्ताह पहले ही आगाह कर दिया था।"

मै—"यह बात उन्हे पहले से ही मालूम होगी। जब हेस स्काटलैड आया तो अवश्य हो जर्मनी न रूस पर आक्रमण करन का निश्चय कर लिया होगा।"

ईडन—"क्यो ?"

मै—"हेस १० मई को आया। उस समय तक २२ जून के आक्रमण की तैयारी अवश्य आरम्भ हो गई होगी। कोई भी देश ऐसा आक्रमण छः हफ्ते की तैयारी के बिना नही कर सकता।"

ईडन—"तो क्या आप समझते है कि हेस रूस पर आक्रमण करने के विरुद्ध था ?"

मै—"नही; लेकिन वह चाहता था कि ब्रिटेन जर्मनी के साथ लड़ाई बन्द कर दे।"

इसके बाद कुछ देर के लिए निस्तब्धता छाई रही और मैंने अनुभव किया कि मैने विजय पा ली है।

प्रमाणस्वरूप मैंने जो बातें कहीं उनसे स्थिति बिलकल स्पष्ट हो गई। हेस को रूस पर किये जाने वाले आक्रमण की जानकारी थी। हिटलर की पुस्तक "मीन कैम्फ़" (मेरी जीवनी) मे जिसके लिखने मे हेस ने सहायता दी थी, ब्रिटेन का विरोध नहीं किया गया था। उसमे यूक्रेन को प्राप्त करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया था और ब्रिटेन के साथ ऐसी व्यवस्था करने का उल्लेख किया गया था जिससे जर्मनी उस सम्पन्न क्षेत्र पर अधिकार कर मके। अतः जब जर्मनी रूस पर आक्रमण करने वाला था तो यह बिलकुल स्वाभाविक था कि वह ब्रिटन के साथ कोई-न-कोई प्रबन्ध करता।

हेस ने सोचा कि जर्मनी के साथ ब्रिटेन की काफ़ी लड़ाई हो ली। किसा सर्वसत्तावादी को यह नही मालम कि जनतंत्री देशों मे किस प्रकार कार्य होता है। हेस को ब्रिटेन के उन लार्डों की याद थी, जो तुष्टीकरण के पक्षपाती थे। और युद्ध से पहले उसके पास गये थे। उसे विश्वास था कि ब्रिटेन में उनका

अब भी प्रभाव है। उसे यह नही मालूम था कि ब्रिटेन मे जर्मनी को तुष्ट रखने की भावना मर चुकी है। उसने सोचा कि अंग्रेजों को रूस के भावी आक्रमण की बात बताकर मै उनमे तुष्टीकरण की भावना फिर जाग्रत कर सकूँगा, किन्तु उसका यह सोचना गलत निकला। चर्चिल ने उसके बताये हुए महान् समाचार को स्टालिन तक पहुँचा दिया और हेस ब्रिटेन की एक जेल मे पडा रहा।

स्टालिन को जर्मन-आक्रमण की निश्चित सूचना केवल चर्चिल के ही तार से नही मिली, बल्कि २२ अप्रैल और २१ जून के बीच जर्मन हवाई जहाजो ने रूसी सीमा को १८० बार पार किया। कुछ हवाई जहाज तो फोटो लेते हुए रूस मे ४०० मील अन्दर तक घुस गये। यह समाचार मास्को के सवाददाताओ को रूस के विदेशी मामलो के असिस्टेन्ट कमिश्नर सालोमन लोजवस्की ने २८ जून को बताया।

फिर भी नाज़ी-आक्रमण के समय रूस मनोवैज्ञानिक रूप से युद्ध के लिए तैयार नही था। पर्ल हार्बर पर जापानी आक्रमण होने से दो दिन पहले मेक्सिम लिटविनाव वाशिंगटन मे रूसी-राजदूत का अपना नया पद ग्रहण करने के लिए हवाई जहाज द्वारा प्रशान्त महासागर को पार कर जाते हुए होनोलूलू मे ठहरे। वहां अमेरिकन जल और थल सेनाओं के बड़े-से-बड़े अफ़सरो ने उनका स्वागत किया। लिटविनाव ने उन्हें रूस पर अकस्मात् किये गए नाज़ी प्रहार की बात बताई और कहा कि एक शान्त देश को इस बात की कल्पना करने का अभ्यास नही हो सकता कि उस पर शीघ्र आक्रमण हो सकता है और यही कारण है कि वह अचभे में रह जाता है। हो सकता है कि इस समय जापान भी अमेरिका पर आक्रमण करने का आयोजन कर रहा हो और वह होनोलूलू पर प्रहार करे। इसीलिए लिटविनाव ने अमेरिकन अफ़सरो को दिन-रात सचेत रहने की सलाह दी। रूस के पर्ल हार्बर से उन्हें अक्ल आ गई थी।

२२ जून १९४४ को सवेरे चार बजे नाज़ियों ने बिना कोई चेतावनी दिये ही रूस पर आक्रमण कर दिया। पहले दिन रूस के एक हज़ार हवाई-जहाज़ अधिकतः ज़मीन पर खड़े-खड़े ही नष्ट हो गये। इस सम्बध मे हैरी-हॉपकिन्स ने प्रेज़िडेन्ट रूज़वेल्ट के विशेष दूत की हैसियत से रूस की यात्रा करने के बाद दिसम्बर १९४१ के 'अमेरिकन मैगजीन' के अंक में लिखा कि हिटलर ने स्टालिन को किसी प्रकार का सकेत दिये बिना ही रूस पर आक्रमण कर दिया। हिटलर ने रूस के सामने कोई माँग उपस्थित नही की, क्योकि ऐसा करना एक चेतावनी समझा जाता। हिटलर रूस से कुछ लेना नही चाहता था, वह स्वय रूस को चाहता था। हॉपकिन्स ने लिखा है कि जर्मन-आक्रमण के

कारण मास्को मे हिटलर के विरुद्ध घृणा की ऐसी भावना उत्पन्न हो गई जिसे हिटलर की मृत्यु के अलावा कोई दूसरी वस्तु कम नही कर सकती थी। उसके आक्रमण को रूसियों ने एक साझीदार का विश्वासघात कहकर पुकारा जो एकाएक कुत्ते की तरह पागल हो गया है।

हॉपकिन्स ने अपने लेख मे हिटलर के प्रति स्टालिन की निराशा का भी उल्लेख किया। उन्होने बताया—"स्टालिन ने एक बार मुझसे कहा था कि हम (रूसी) कभी इस आदमी (हिटलर) पर विश्वास करते थे और जर्मनी के साथ सीधा-सादा व्यवहार करने के अलावा मेरा और कोई विचार नहीं था। रूसी जर्मनी पर आक्रमण नहीं करते।"

. स्टालिन को अन्त तक यह विश्वास रहा कि हिटलर रूस-जर्मन सधि का पालन करेगा और ब्रिटिश साम्राज्य को कुचलने की चेष्टा करेगा। यही कारण था कि उसने हिटलर को बार-बार तुष्ट करने की चेष्टा की। किन्तु उसकी आशाओं के बिलकुल प्रतिकूल हिटलर ने "मीन कैम्फ" के अनुसार कार्य किया और रूस को कुचलने की चेष्टा की।

: ४ :

मेरी भविष्यवाणी

निकट अतीत की घटनाओं का सिंहावलोकन करने में मुझे अनन्त रोमांच का अनुभव होता है। एक ही प्रकार की घटनाएं भिन्न रूप ग्रहण कर लेती हैं। ८ दिसम्बर १९४१ को पर्ल हार्बर का कुछ और चित्र था, जब कि प्रत्येक अमेरिकन को ऐसा लगता था मानो उसका सिर किसी कठोर पत्थर से टकरा गया है और वह गिर पड़ा है। किन्तु जब हम कुछ वर्ष बाद के पर्ल हार्बर का स्मरण करते है तो हमें अपनी बाद की सफलताओं पर अभिमान होने लगता है और हम अपना सिर ऊचा कर लेते है।

आज से कुछ वर्ष पहले मोलोटोव, हिटलर, लिंडबर्ग, स्टालिन, रूज़वेल्ट और दूसरे लोगों के भाषणों को पढकर कुछ और ही भावना होती थी और अब उन्ही को पढकर कुछ और भावना होती है। अब मे उन भाषणों को जितनी अच्छी तरह से समझने लगा हू उतनी अच्छी तरह से स्वयं उनके देने वाले उन्हें देते समय न समझ पाये होगे। मेरे सामने कई वर्षों की घटनाएं है, जिनकी कसौटी पर उन भाषणों को कस सकता हूं।

इतिहास हमारे सामने घटनाओं का एक चित्र-सा खींच देता है, किन्तु अर्द्ध शताब्दी पूर्व के इतिहास का संबंध ऐसी घटनाओ से होता है जिनका आज भी हमारे जीवन पर असर तो अवश्य होता है, किन्तु जो स्वयं समाप्त हो चुकी है।

उदाहरण के लिए स्पेन के साथ अमेरिका की लड़ाई या प्रेज़िडेण्ट क्लीवलैण्ड के शासन को ले लीजिए । ये अतीत की बातें हैं, हो सकता है कि जो घटनाएं आज से दो या तीन वर्ष पहले घटी थी वे अब भी अपूर्ण हो । मसलन, यूरोप में विजय का दिवस तो मनाया जा चुका है। किंतु अभी यूरोप का युद्ध समाप्त नही हुआ है । हम उसके राजनीतिक परिणाम को नही जानते । हिटलर चला गया है, किंतु जर्मनी किस रास्ते जा रहा है ? भविष्य अतीत के अर्थ को बदल देगा ।

नीति निर्धारित करने वाला कूटनीतिज्ञ अक्सर भविष्य को समझने की अपनी योग्यता पर ही प्रधानतः निर्भर रहता है। वह पहले से ही मान लेता है कि भविष्य मे अमुक घटनाएं होंगी और सोचता है कि जो युक्तियां मैं कर रहा हू वे उन घटनाओं का सामना करने के लिए काफी होंगी । वह कहता है कि भविष्य के सम्बन्ध में कोई निश्चय नही है; सिवा इसके कि भविष्य स्वयं अनिश्चित है । फिर भी अक्सर भविष्य निश्चित होता है । सन् १६४० मे प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट यह तो नही जान सकते थे कि भविष्य में ब्रिटेन के भाग्य मे क्या लिखा है, किन्तु उन्हें इस बात को निश्चय था कि अमेरिका की सहायता से ब्रिटेन और साथ-ही-साथ अमेरिका का भी भाग्य उज्ज्वल हो जायगा । ऐसी स्थिति मे यदि नीति-निर्माता को जनता का समर्थन प्राप्त हो तो नीति का निर्माण सरल हो जाता है ।

अतीत का कुछ-न-कुछ तत्त्व भविष्य मे सदा विद्यमान रहता है । इसी तत्त्व के आधार पर भविष्य निश्चिय किया जाता है और नीति भी बनाई जाती है । जो भविष्यवाणी केवल कल्पना-मात्र होती है—अधिकाश भविष्यवाणियां ऐसी ही होती हैं--वह रचनात्मक नही होती और उसका कोई मूल्य नही होता। जो भविष्यवाणी कुछ महत्त्व रखती है वह अन्धकार मे अज्ञात को टटोलने के लिए ज्ञात का विश्लेषण करती है। अतीत की उपलब्ध घटनाओं को वह शृंखलाबद्ध करती है और ऐसा करने से खोई हुई कडी का रूप स्पष्ट हो जाता है। इतना ही नही बल्कि बाद म उस कड़ी से सम्पर्क रखने वाली दूसरी कड़ियों को ध्यान पूर्वक देखने से और भी बातो का पता चल जाता है । ससार की सभी राजधानियों मे कूटनीतिज्ञ और पत्रकार इसी प्रकार की राजनीतिक भूल-भुलैया के अध्ययन म लगे रहते है ।

"युद्ध कब समाप्त होगा ?" सब लोग यही प्रश्न पूछा करते थे। किंतु इसका उत्तर देने का प्रयत्न कोई ठग या मूर्ख ही कर सकता था। उत्तर देने के लिए बहुत-सी अज्ञात बातों का ध्यान रखना आवश्यक था । अनेक राजनीतिक स्थितिया इतनी अस्पष्ट और धुधली होती है कि उनका विश्लेषण करना

और उनके भविष्य को समझना असम्भव हो जाता है। फिर भी कुछ ऐसी होती है जिनका भविष्य दिखाई दे जाता है।

हम सभी भविष्यवाणी करते है, चाहे वह हम तक सीमित हो चाहे दूसरों को सुनाई दे जाय। जो भविष्यवाणी सत्य निकलती है उस पर हम अभिमान करते है और जो नही निकलती उसे भूल जाना ही ठीक समझते है।

सन् १९४१ के आरम्भ मे जापान और रूस का रहस्य अमेरिकन प्रेक्षकों के लिये बड़ा दुखदायी बना हुआ था, वाशिंगटन को टोकियो और मास्को का भावी-नीतियो के सम्बन्ध मे कुछ संकेत की आवश्यकता थी। अतः अमेरिका ने रूस के साथ अपने सम्बन्ध इस आशा मे घनिष्ठतर बनाने की चेष्टा की कि स्टालिन हिटलर से विमुख हो जायगा। चूंकि रूस ने फिनलैंड के शहरों पर बमबारी की थी, इसलिए २ दिसम्बर १९३९ को प्रेजिडेंट रूजवेल्ट ने रूस के साथ व्यापार पर नैतिक प्रतिबंध लगा दिया था। किन्तु लगभग दो साल बाद २९ जनवरी १९४१ को अमेरिका के अन्डर-सेक्रेटरी समनर वेल्स ने राज-दूत कान्स-टैन्टाइन अमानस्की को सूचित किया कि प्रतिबन्ध उठा लिया गया है। देखने मे यह एक छोटा-सी बात थी जिससे कुछ थोड़े से अमेरिकन व्यापारियों को रूस के लिए सामान भेजने की छूट मिल गई। किन्तु मुझे ऐसा लगा कि यह काम बड़ा गलत सिद्ध हो सकता है। इसके सम्बन्ध मे मैने जो आलोचनाएं पढी, उनमे मुझे ऐसा लगा कि इस कार्य के महत्त्व का ग़लत अनुमान लगाया गया है। उदाहरणार्थ, आर्थर नॉक ने न्यूयार्क टाइम्स के २३ जनवरी १९४१ के अंक में लिखा कि यथार्थवादी लोग इस कार्य का स्वागत करेगे। इससे इस बात का और भी अधिक प्रमाण मिलता है कि ब्रिटेन को पूर्ण सहायता देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हुए अमेरिका की सरकार अपने सुदूर पूर्वीय पिछवाड़े और अंध-महासागर के सामने के मोर्चे का भी ध्यान रख रही है। इसके विपरीत मुझे ऐसा भान हुआ कि अमेरिका दूर पूरब मे अपनी स्थिति को भयानक संकटों मे डाल रहा है। इसलिए मैने समनर वेल्स को अपने विचार लिखकर भेजने का निश्चय किया। उनसे मै कभी मिला नही था, न उन्हे कभी पत्र ही लिखा था इसलिए समझ नही सका कि मेरे लिखने की उन पर क्या प्रतिक्रिया होगी। फिर भी मैने चूकना ठीक नही समझा और उन्हे २४ जनवरी १९४१ को निम्नलिखित पत्र भेजा:—

प्रिय मिस्टर वेल्स,

मै मास्को में १४ वर्ष तक एक अमेरिकन पत्रकार की हैसियत से रह चुका हूं और मैने रूस के विदेशी सम्बन्धों का इतिहास दो भागों मे

लिखा है । इस पत्र में मै अमेरिकन सरकार के अभी हाल के उस निर्णय पर पर विचार करूंगा जिसके अनुसार अमेरिका से रूस भेजे जाने वाले कुछ पदार्थो पर से प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा की गई है ।

मै समझता हूं कि यह निर्णय एक बुरा निर्णय है, विशेषतः इस कारण कि इसका परिणाम अमेरिका के हितों के विपरीत हो सकता है। इससे रूस और जापान के पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठतर होने मे बडी सरलता पूर्वक सहायता मिल सकती है।

इस निष्कर्ष पर मै कैसे पहुँचा इसका विवरण नीचे देता हूँ—

रूस की वर्तमान घबराहट और अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों का कारण यह है कि जहाँ एक ओर उसकी पश्चिमी सीमा पर जर्मनों के दबाव का डर है वहाँ पूर्वी सीमा पर जापान है। रूस मे जर्मनी का सामना करने या उसे शत्रु बनाने की शक्ति नही है, किन्तु यदि वह जापान को दुर्बल बना सके या उसका ध्यान किसी और दिशा में लगा सके तो उसकी स्थिति सुधर जायगी और जर्मनी का भय भी कम हो जायगा।

चीन की सैनिक सहायता कर रूस जापान को दुर्बल बना सकता है। यही उसने किया भी है, किन्तु यह काम मँहगा है ।...इसलिए रूस पर से जापानी दबाव को कम करने की ज़्यादा अच्छी युक्ति यह होगी कि रूस जापान का विस्तार दक्षिण दिशा मे स्याम और डच पूर्वी इन्डीज़ की ओर लक्षित करने का प्रयत्न करे। इससे जर्मनी का भी हित सिद्ध होगा। चीन मे यदि जापान को कोई महान् विजय भी प्राप्त हो जाय तब भी उससे हिटलर को यूरोप मे शीघ्र ही सहायता नही मिल पायगी, किंतु यदि चीनी युद्ध समाप्त हो जाय तो उससे अवश्य सहायता मिलेगी, क्योंकि तब जापान अपना ध्यान दक्षिण की ओर केन्द्रित करेगा जहाँ से हमें और ब्रिटेन को महत्वपूर्ण सामान मिलता है। बोलशेविको को यह आशा होगी कि दक्षिण सागरों मे प्रयत्नशील होने पर जापान अमेरिका या ब्रिटिश साम्राज्य के साथ संघर्ष मे फँस जायगा और दुर्बल बन जायगा।

चूँकि हम चीन को सहायता दे रहे है, इसलिए जापान के लिए रूस के साथ समझौता करना और भी आवश्यक है। चीन को अमेरिका और रूस की सहायता जापान के सर्वनाश का कारण बन सकती है। यदि रूस चीन की सहायता करना बंद कर दे तो अकेले हमारी सहायता सफल नहीं होगी। इसी प्रकार, अमेरिका और रूस के सम्बध मे सुधार होने से रूस और जापान में समझौता होना सरल हो जायगा। यदि जापान को अमेरिका और रूस की मैत्री

का भय होगा तो वह रूस की लल्लो-चप्पो करेगा। यदि हम किसी प्रकार रूस को जर्मनी से अलग कर सकें तो सब बातें ठीक हो जायं। किंतु रूस इतना अरक्षित है और उसे युद्ध के अंतिम परिणाम के सम्बंध में इतनी अधिक शंका है कि वह खुल्लम-खुल्ला या क्रियात्मक रूप से हिटलर को विरोध नहीं कर सकता। अतः हमारे रूस के प्रति मित्रता प्रदर्शित करने से जापान डरकर रूस के साथ समझौता कर लेगा।

औमांस्की के लिए, जिन्हें मैं पिछले दस साल से बहुत अच्छा तरह जानता हूं, रूसी व्यापार पर से प्रतिबंध का हटना एक सम्मान की बात होगी और शायद इसीलिए उन्होंने इस पर इतना जोर दिया। किंतु आपको अवश्य ही याद होगा कि सन् १९३९ की गर्मियों में रूस ने ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा दी गई प्रत्येक रियायत और मैत्रीपूर्ण संकेत से लाभ उठाकर अपने को हिटलर की दृष्टि में अधिक बहुमूल्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया। रूस और हमारे बीच समझौते के लिए हाल ही में जो कदम उठाया गया है उसके प्रति मेरी सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि उससे लाभ उठाकर रूस जापान पर अपने साथ समझौता करने के लिए दबाव डालेगा, जिससे जापान के आक्रमण का मार्ग दक्षिण की ओर मुड़ जायगा, चीन की स्थिति बिगड़ जायगी, रूसियों को चीन पर आधिपत्य जमाने के लिए एक कम्युनिस्ट क्षेत्र मिल जायगा और पौलैण्ड की भाँति चान का विभाजन हो जायगा, यद्यपि उस समय भी स्टालिन हिटलर के चंगुल से मुक्त नही हो पायगा।

यह पत्र अब बहुत बड़ा हो गया है और मै समझता हूँ कि अब मुझे इसे समाप्त कर देना चाहिए। मुझे आशा है कि मैने अपने विचार ठीक से व्यक्त कर दिये हैं।

मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि मैं आपसे मिलकर इस विषय पर और कई दूसरे प्रश्नों के सम्बंध में बातचीत कर सकूँ। मैं यहाँ (वाशिंगटन में) एक व्याख्यान-माला के सम्बंध में कुछ दिन ठहरूँगा। यदि इस बीच आपसे मिलने का अवसर मिल सके तो बड़ा अच्छा हो। हमारी आपकी भेंट प्रकाशित या उद्धृत किये जाने के लिए नहीं होगी। दुर्भाग्यवश, मै केवल ३ फ़रवरी को सवेरे ९॥ से बजे से ११ बजे तक आपसे-मिलने का समय निकाल सकूंगा। क्या आप मुझसे उस समय मिल सकते हैं? या यदि आप कहें तो मैं ११ फरवरी को एक भाषण का कार्य-क्रम रोककर वाशिंगटन आ जाऊं। फिर भी मैं ३ फरवरी ही पसन्द करूँगा। क्या आपको उस दिन मुझसे मिलने म सुविधा होगी?

भवदीय— (हस्ताक्षर) लुई फिशर

मैं कह सकता हूँ कि पत्र में मैंने जो कुछलिखा वह एक सच्चा भविष्य-वाणी थी। उस समय रूस और जापान में समझौता होने की कोई चर्चा नही थी और जापान द्वारा ब्रिटेन और अमेरिका पर आक्रमण हान की सम्भावना भी दूर मालूम होती थी। किंतु १३ अप्रैल १९४१ का रूस और जापान ने एक व्यापक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किये और कम-से-कम ५ वर्ष तक दोनों ने एक-दूसरे से न लड़ने की प्रतिज्ञा की। उसी समय से सिंगापुर, मलाया और हवाई द्वीप पर जापान के आक्रमण आरम्भ हुए।

समनर वेल्स ने ३० जनवरी को उत्तर देते हुए लिखा, "आप अपने पत्र मे सुझाई गई किसी भी तिथि पर आकर मुझसे मिल सकते है।" मैंने ११ फरवरी को जाना ठीक समझा, क्योंकि मैंने सोचा कि उस दिन समनर वेल्स बातचीत के लिए अधिक समय दे सकेंगे। मै उनसे विदेश-विभाग में उनके दफ्तर में मिला।

समनर वेल्स का क़द लम्बा और शरीर छड की तरह सीधा है। उनके कन्धे चौडे हैं, गठन अच्छी है और वह बडे ही निर्मल वस्त्र पहनते हैं। सिर लम्बा और विशेषता लिये हुए है। आवाज गहरी और भारी है। एक कूट-नीतिज्ञ होने के नाते उनकी सहज गम्भीरता और भी बढ गई है। साधारण बातचीत करने की क्षमता उनमे बिलकुल नही है, किंतु उन्हें विद्वत्ता-पूर्ण सम्भाषण पसन्द है और ऐसे सम्भाषणों के समय किसी समस्या की तह तक पहुँचने की उनकी इच्छा उनके महान् आन्तरिक संयम पर विजय पा लेती है। जब उन्हें यह मालूम हो जाता है कि उनकी बात कोई ठीक से समझ सकता है तो वह बडी निष्कपटता के साथ बातचीत करते हैं। उनका मस्तिष्क यंत्र के समान अचूक है और उनकी स्मृति दिव्य। अभिमान उनमें तनिक भी नहीं है, यद्यपि उनसे सहानुभूति न रखने वाले व्यक्ति को इसके प्रतिकूल धारणा हो सकती है। अपने लेखों के सम्बंधमें वह बडे ही नम्र हैं।

जब मैं उनसे पहली बार बातचीत करनेकेलिए उनके दफ्तर में घुसा तो उन्होंने बढकर हाथ मिलाया और मुझसे खिडकी के पास बैठने को कहा। एक लम्बे लहमे के लिए उन्होंने मुझे दृष्टि जमाकर देखा और फिर एक सिगरेट निकालकर उसे एक सोने के डिब्बे पर उछालते हुए कहा—"महाशय फिशर मैंने आपके पत्र को बड़ी दिलचस्पी के साथ पढा।" इसके बाद वह एकदम मेरे पत्र के मुख्य विषय पर आगये। वहाँ से अपने होटल के कमरे में आकर मैंने उनसे की गई बातचीत ज्यों-की-त्यों लिख डाली। महत्त्वपूर्ण राज-नीतिक मुलाक़ातों की एक डायरी बना लेने की मेरी आदत पड़ गई है। प्राय:

मैं उन्हें उसी दिन लिख लेता हूँ और मेरा खयाल है कि मैं उन्हें शब्दशः लिखने में सफल हो जाता हूँ।

वेल्स ने आरम्भ में पूछा—"आपकी राय में दूर पूरब में रूस का लक्ष्य क्या है?"

मुझे अपना उत्तर तैयार करने में थोड़ा समय लगा। मैंने कहा—"जापान को दुर्बल बनाना।"

"और उसका दीर्घकालीन उद्देश्य क्या है?"

"चीन पर आधिपत्य करना।"

"क्या आपको विश्वास है कि रूस समस्त चीन पर प्रभुत्व जमाना चाहता है? या वह उसे केवल विभाजित करना चाहता है?"

मुझे इस प्रकार की खुली जिरह अच्छी लगी। उनके प्रश्नों से मुझे पता चल जाता था कि उनका अपना क्या विचार है। मैंने सोचा कि बाद में मैं भी उनसे कुछ प्रश्न करने की चेष्टा करूँगा।

मैंने उन्हें बताया कि रूस को पहले अपने निकटवर्ती चीनी कम्युनिस्ट प्रान्तों पर अधिकार करने की आशा है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह चीन के दूसरे भागों पर अपना प्रभाव नहीं चाहता।

"मैं समझता हूँ कि यह ठीक है," वेल्स ने कहा। उन्होंने रुककर सिगरेट का कश खींचा और फिर कहा—"तो क्या आप समझते हैं कि मध्य पूर्व में रूस का उद्देश्य जापान को अमेरिका से लड़ाना है?"

"हां, जापान को दुर्बल बनाने के लिए," मैंने उत्तर दिया।

"मैं आपसे सहमत हूँ," वेल्स ने कहा।

"विदेशी मामलों में रूसियों ने अकसर दीर्घकालीन दृष्टिकोण से ही काम किया है," मैंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"लेकिन इस समय मैं उन्हें ऐसा करते नहीं देखता। हिटलर के साथ सन्धि करने के बाद से वे अल्पकालीन पद्धति के अनुसार कार्य कर रहे हैं और अपनी दृष्टि वर्त्तमान स्थिति के अन्त तक भी नहीं दौड़ा पा रहे हैं।"

इस बीच वेल्स ने एक दूसरी सिगरेट सुलगाई। वह एक के बाद दूसरी सिगरेट पीने के अभ्यस्त मालूम होते थे।

"रूसी व्यापार पर से नैतिक प्रतिबन्ध हटाने के सम्बन्ध में मेरी मुख्य आपत्ति यह है कि रूसी हमारे मैत्रीपूर्ण संकेत से लाभ उठाकर जापान के साथ समझौता करने का प्रयत्न कर सकते हैं," मैंने उनके सिगरेट सुलगा लेने पर कहा।

वेल्स—"यह तो होना ही है।"

मैं—"आपको पता है कि स्टालिन जापान से क्या चाहते हैं ?"

वेल्स—"रूस ने दक्खिनी सखालीन और चीन के उन प्रांतों की मांग की है जिनका उल्लेख आपने अभी किया था।"

मैं—"क्या आप समझते है कि जापानी रूस के मंचूरिया से बाहर रहने के वचन पर विश्वास करेंगे ?"

वेल्स—"जहाँ तक 'विश्वास' का सवाल है वह कई बातों पर निर्भर है, जैसे जापान का यह सोचना कि जर्मनी रूस को यूरोप की ओर दबाये रखकर एशिया में उसकी सरगर्मियों को रोक सकता है। यह भी बात सही है कि पिछले दो महीनों में रूस ने जितने शस्त्र च्यांग-काई-शेक को भेजे है उतने उसने पिछले दो साल में किसी समय भी नहीं भेजे ।"

मैं—"तो क्या आप समझते हैं कि इस प्रकार रूस अपने साथ समझौता करने के लिए जापान पर दबाव डाल रहा है ?"

वेल्स—'मैंने इसका अर्थ यही लगाया है । दक्षिण में विस्तार का काम जापान की जल-सेना को करना होगा। लेकिन वह ऐसा करने के लिए बिलकुल इच्छुक नहीं मालूम होती । फिर भी राजनीतिक दृष्टिकोण से उसकी सेना अधिक शक्तिशाली है ।"

मैं—"जल-सेना अनिच्छुक क्यों है ?"

वेल्स—"अगर आप मेरी राय साफ़-साफ़ जानना चाहते है तो मैं कहूँगा कि जापानी जल-सेना का दक्षिण की ओर विस्तार कर लेने के लिए इच्छुक न होने का मुख्य कारण यह है कि उसके अफसरों को राजनीति का बहुत अच्छा ज्ञान है और वे विश्व-स्थिति को अधिक गम्भीरता के साथ समझ सकते हैं ।"

मैं—"मै समझता हूँ कि नीति को निर्धारित करने में आजकल जिस बात का सबसे अधिक महत्त्व है, वह है "कार्य करने के लिए अवसर का मिलना।" स्याम की घटनाओं और हिन्द-चीन में फ्रांसीसियों के पतन ने जापान को कार्य करने के लिए अवसर प्रदान किया और जापान के अंतिम निर्णय पर जितना प्रभाव इन अवसरों का पड़ा उतना टोकियो में किये गए किसी विचार-विमर्श या आयोजन का नहीं ।"

वेल्स (ज़ोर देते हुए)—"मैं समझता हूँ कि आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं ।"

इसके पश्चात् हमनें चीनी और भारतीय जनता के प्रति अमेरिका

और ब्रिटेन के रुख के सम्बन्ध मे बातचीत का। मैने भारत के राष्ट्रीय नेता जवाहरलाल नेहरू का उल्लेख किया।

वेल्स—"हम पंडित नेहरू को जानते है और उनका बड़ा आदर करते है। यदि जापान इंग्लैड और अमेरिका पर आक्रमण कर दे तो नेहरू पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ?"

मैं—"मै समझता हूं कि नेहरू जापान का बड़ा विरोध करेगे। यह उनकी भावुकता-जनित प्रतिक्रिया होगी। जहां तक उनकी नीति का प्रश्न है वह तो अंग्रेजों के कार्य पर निर्भर होगी। अंग्रेज अपने घर में तो जनतंत्री बनते है, लेकिन भारतवर्ष में उन्होंने काफ़ी मूर्खता के साथ काम किया है। भारत में ब्रिटेन की प्रतिक्रिया सबसे बाद मे हुई है और मैं समझता हूँ कि अनुदार दल वाले उस पर अंतिम सांस तक अधिकार जमाये रखना चाहेंगे।"

वेल्स—"यहां के लोगों में भारत के प्रति उदार नीति बरतने की बड़ी प्रबल भावना है। आप नेहरू से अखिरी बार कब मिले थे ?"

मैं—"सितम्बर १९३८ में जिनेवा में और उससे पहले पेरिस और लन्दन में।"

"आपकी समझ में आजकल रूस की स्थिति कैसी है ? उसकी सेना की शक्ति कितनी होगी ?" वेल्स ने मुझसे एकाएक पूछा।

मैं—"रूसी सेना और हवाई बेड़े की शक्ति को कम कूतना भूल होगी। फिर भी अगर जर्मन चाहें तो वे यूक्रेन और काकेशिया के भी कुछ हिस्से को जीत सकते है।"

वेल्स—"वे ऐसा करना क्यों चाहेगे ?"

मैं—"अगर हिटलर ब्रिटेन पर आक्रमण नही कर सकेगा तो वह यह साच-कर कि लड़ाई लम्बी चलेगी शायद पहले रूस का सफाया करने का निश्चय करेगा।"

वेल्स—"तो क्या उसके कारण जर्मनी को दो मोर्चों पर नही लड़ना पड़ेगा ?"

मैं—"नहीं! हिटलर का ख्याल है कि यद्यपि ब्रिटेन पर सफलता पूर्वक आक्रमण नहीं किया जा सकता तथापि ब्रिटेन में कम-से-कम साल भर तक यूरोप पर आक्रमण करने की क्षमता नही है। इसके अलावा रूस पर आक्रमण करने में हिटलर का उद्देश्य उसे पीछे ढकेलना होगा ताकि अधिकृत यूरोप पर ब्रिटेन के भावी आक्रमण के समय रूस दूसरा मोर्चा न खोल सके।"

वेल्स—"लेकिन बात यहीं तो समाप्त नहीं होगी।"

मैं—"नही, किन्तु उससे हिटलर की कठिनाइया टल सकती है।"

वेल्स—"यदि जर्मनी इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने की चेष्टा करे तो क्या उससे रूस को जापान पर अधिक दबाव डालने मे सहायता नही मिलेगी।"

मै—"उसका उलटा असर भी तो पड़ सकता है क्योंकि अगर हिटलर को ब्रिटेन पर आक्रमण करने मे सफलता न मिली तो वह अपनी शक्ति रूस पर केन्द्रित करेगा और उस दशा मे जापान की स्थिति अच्छी हो जायगी।"

वेल्स—"यह सब कोरी कल्पना है। अगले कुछ महीनो की घटनाओ से पता चल जायगा।"

मै—"और भी बाते है जिन पर विचार करना होगा। जर्मनी की बलगेरिया पर विजय होने से भी रूस दुर्बल हो जायगा और जापान को सहायता मिलेगी।"

वेल्स—"यह ठीक है। मै समझता हूं कि रूस जर्मनी को बलगेरिया पर आधिपत्य जमाने से किसी तरह रोकेगा नही।"

मैं—"यही बात मै आजकल अपने भाषणों मे कह रहा हू। किन्तु क्या बलगेरिया से तुर्की का सवाल नहीं उठ खड़ा होता? हो सकता है कि रूस और जर्मनी तुर्की को बांट लेने का निश्चय करें।"

वेल्स—"जर्मनी ने यह प्रस्ताव रूस के सामने पिछले अक्तूबर म ही रखा था।"

मैं—"विभाजन की रेखा कहां होगी, यह मै नही कह सकता। असली महत्त्व का स्थान इस्तम्बूल है, और सवाल यह है कि उसे कौन पायगा।"

वेल्स—"इसका जवाब मैं नहीं दे सकता।"

मैं—"मैंने रूस के विदेशी मामलों का एक इतिहास लिखा है ......।"

वेल्स—"बड़ी अच्छी किताब है।"

मैं—"उसमें से मैंने रूस के लन्दन और पेरिस-स्थित भूतपूर्व राजदूत क्रिश्चियन राकोवस्की द्वारा दी गई कुछ सामग्री निकाल दी थी क्योंकि ऐसा करने से स्टालिन और राकोवस्की के सम्बन्ध के बिगड़ने का भय था। राकोवस्की ने मुझे बताया था कि तुर्की और ईरान में स्टालिन की विशेष दिलचस्पी है। यह बड़े मार्के की बात है कि स्टालिन जैसे बोल्शेविक पर भी विदेश-नीति निर्धारित करते समय अपने जन्म-स्थान जार्जिया के भूगोल का प्रभाव पड़ा था। सन् १९१९ के बाद से सभी बोल्शेविक तुर्की के पक्षपाती रहे हैं, क्योंकि कमालपाशा साम्राज्यवाद और पादरियों का विरोधी था। किंतु जार्जियन बोल्शेविकों के हृदय में सदा शंका की भावना बनी रही,

क्योंकि वे इस बात को भूले नही कि मार्च १९२१ मे तुर्कों ने जार्जिया के बन्दरगाह बातूम पर कब्जा कर लिया था। यही कारण है कि जार्जिया के कम्युनिस्ट तुर्की सीमा को पीछे ढकेलना चाहते है। स्टालिन की उत्तरी ईरान मे भी दिलचस्पी रही है जो कि जार्जिया की सीमा पर है।"

वेल्स ने सिर हिलाकर स्वीकृति की सूचना दी। मुझे पता नही था कि वह मुझसे और कितनी देर बात करेंगे, इसलिए मैंने नैतिक प्रतिबन्ध की चर्चा छेडते हुए कहा—"चूँकि स्टालिन के लिए हिटलर से मिलकर काम करना जरूरी है और रूस के प्रति हमारे मित्रतापूर्ण सकेत से रूस और जापान मे समझौता होने मे सहायता मिलेगी, इसलिए मेरी समझ मे नही आता कि प्रतिबन्ध क्यो उठाया जाय ?"

वेल्स—"क्योकि जुलाई १९४० से पहले छत्तीस महीने तक रूस से बातचीत करना असम्भव था। इसलिए मै सम्पर्क स्थापित करने मे विश्वास करता हूँ और अब भी समझता हूँ कि सम्पर्क वाछनीय है।"

मै—"मै समझता हूँ कि ओमांस्की खुश है, वह एक छोटा आदमी है।"

वेल्स—"हो सकता है कि वह छोटा आदमी हो, लेकिन वह तेज़ है और उसे मालूम है कि प्रतिबन्ध के हटाने से पदार्थिक वस्तुओं पर कोई खास असर नही पड़ेगा।"

मै—"हाँ, वह बड़ा तेज आदमी है। आपने देखा होगा कि मैंने अपने पत्र मे उन चीजो का उल्लेख भी नही किया है, जो रूस को नई व्यवस्था के अनुसार प्राप्त होंगी। मै समझता हूँ कि उसे कुछ अधिक नहीं मिल पायगा; किन्तु मुझे इस बात का भय है कि वह हमारी मैत्री का प्रयोग जापान पर दबाव डालने मे करेगा।"

वेल्स—"आपने पहले कहा था कि अगर जर्मनी इग्लैण्ड पर आक्रमण नही कर सका तो लड़ाई लम्बी चलेगी और इंग्लैण्ड यूरोप पर आक्रमण नही कर सकेगा। मै समझता हूँ कि इग्लैण्ड इटली के रास्ते यूरोप पर चढ़ाई कर सकता है।"

यह सुनकर मै सीधा बैठ गया। "वेल्स कोई रहस्य तो नहीं बता रहे है" मैने सोचा और उनसे कहा—"हिटलर मुसोलिनी के कधेसे-कंधा मिला देगा और आक्रमण को रोकने का प्रयत्न करेगा।

वेल्स—"किन्तु एक पूरे समुद्र-तट की रक्षा करना कठिन काम है।"

वेल्स ने अपना हाथ अपनी कुर्सी के हत्थे पर रखा और मुझसे पूछा—"क्या आप वाशिंगटन बराबर आया करते है!" मै जाने के लिए उठ खड़ा

हुआ। वेल्स ने मुझसे कहा कि "अगली बार वाशिंगटन आने से पहले आप मुझे पत्र लिख दाजिएगा। मुझे आपसे फिर मिलने में खुशी होगी।"

यह समनर वेल्स से मेरी पहली मुलाकात थी। उसके बाद उनसे कई बार दफ्तर में और दफ्तर से बाहर भी बड़ी लाभदायक और दिलचस्प बातचीत हुई।

जिन दिनों ब्रिटेन यूरोप के साथ युद्ध मे उलझा हुआ था, जापान ने दक्षिण की ओर हालैण्ड और ब्रिटेन के साम्राज्य मे बढ़ने का अभूतपूर्व सुअवसर देखा। इसीलिए उसने रूस के साथ समझौता करना चाहा, ताकि उत्तर में वह सुरक्षित रह सके।

जर्मनी जापान को दक्षिण की तरफ़ मोड़ना चाहता था, क्योंकि ऐसा करने से ब्रिटेन को कुछ शक्ति और साथ-ही-साथ अमेरिकन सहायता भी यूरोप की ओर से हटाई जा सकती थी। इसीलिए उसने जापान को रूस के साथ समझौता करने मे सहायता दी। उसे इस बात की चिन्ता नही हुई कि इस कार्य से रूस की स्थिति दृढ़तर बन जायगी। हिटलर ने सोचा कि रूस से तो मै अकेला ही निपट सकता हूँ।

अमेरिका ने रूस से अच्छे सबन्ध बनाने चाहे, क्योंकि उसे आशा थी कि बाद मे रूस धुरीराष्ट्रो के गुट से तोड़ लिया जायगा। इसीलिए उसने रूसी व्यापार पर से नैतिक प्रतिबंध उठाकर रूस को अपनी सद्भावना का परिचय दिया।

स्टालिन ने अमेरिका की इस सद्भावना से लाभ उठाया। साथ-ही-साथ उसने जापान के उत्तर की ओर बढ़ने की प्रेरणा से और जर्मनी की उसे उत्तर की ओर बढ़ाने की इच्छा से भी लाभ उठाया और जापान के साथ तटस्थता की संधि कर ली। स्टालिन को इस संधि की आवश्यकता थी, क्योंकि जापान के दक्षिणी प्रशान्त में फँस जाने से रूस को केवल एक सक्रिय शत्रु—जर्मनी-का भय रह जाता।

अप्रैल १९४१ में रूस और जापान में जो संधि हुई उसमे दोनों देशों की सीमा के संबन्ध में कुछ समझौता हुआ। इस समझौते के अनसार रूस ने जापान को मंचूरिया पर अधिकार करने की छूट दे दी, यद्यपि पहले उसने इसका विरोध किया था और बदले में जापान ने बाहरी मंगोलिया पर रूसी संरक्षण स्वीकार कर लिया था। बाहरी मंगोलिया का प्रदेश बड़े ही कूटनीतिक महत्त्व का है। उसे चीनी अपना समझते है, किन्तु कितने ही वर्षों से उसपर उनका राज्य नहीं रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि रूस और जापान जैसे दो

बारूदी साम्राज्यों ने संधि कर चीन के व्यय पर एक-दूसरे के लिए गुंजाइश निकालने की चेष्टा की

. संधि करने के बाद जब जापान के विदेश-मंत्री मत्सुओका मास्को से लौटे तो स्टालिन उन्हें विदा करने के लिए स्टेशन तक गये । इतिहास में यह पहला उदाहरण था कि स्टालिन ने किसी को स्टेशन पर जाकर विदा किया । स्टालिन के प्रत्येक कार्य की रूपरेखा किसी निश्चित ध्येय को दृष्टि में रखकर पहले से ही तैयार कर ली जाती है । एसोसिएटिड प्रेस के प्रतिनिधि हेनरी कैसीडी ने, जो स्टेशन पर मौजूद थे, बताया है कि स्टालिन ने मत्सुओका का चुम्बन लेकर विदा किया । इसके बाद स्टेशन पर ही स्टालिन की मुलाकात जर्मनी के सैनिक उपाधिधारी कर्नल हैन्स क्रेब्स से हुई । उनसे हाथ मिलाकर स्टालिन ने कहा—"हम मित्र बनकर रहेंगे ।"

२६ मार्च १९४१ को समनर वेल्स से जब मेरी दूसरी मुलाकात हुई तो हमने फिर रूस पर जर्मन आक्रमण की सम्भावना पर विचार किया और प्रशान्त महासागर की गम्भीर स्थिति के संबन्ध मे ध्यानपूर्वक बातचीत की । जब मेरी उनसे १९ मई को बातचीत हुई तो रूस और जापान मे संधि हो चुकी थी, हेस हवाई जहाज़ में बैठकर स्काटलैण्ड पहुँच चुका था और यूरोप की प्रत्येक राजधानी मे रूसी सीमा पर दोनों दिशाओं से सैनिक तैयारी के समाचार फैल रहे थे । रूस और जर्मनी मे युद्ध छिड़ने के ६ दिन बाद विदेश कार्यालय में मेरी समनर वेल्स से फिर बातचीत हुई । हमने उस समय की परिवर्तित युद्ध-स्थिति के कई पहलुओं का सिंहावलोकन किया । जाने से पहले मैंने उनसे प्रार्थना की कि आप मेरे ग्रेट ब्रिटेन जाने की व्यवस्था करा दीजिए ।

: ५ :

लिटविनाव और जॉसेफ़ ई० डेविस

अक्तूबर १९३९ मे जब लदन मे मेरी विन्सटन चर्चिल से बातचात हुई तो हमने आध घटे तक इस प्रश्न पर विचार किया कि किस प्रकार रूस को बिृटेन के पक्ष मे लाया जा सकता है। फिर भी यह काम किसी नाजा-विरोधी को नही दिया गया। स्वय हिटलर ने ऐसा कर दिया।

रूस और जर्मनी मे लडाई छिड जाने के कारण स्टालिन और लिट-विनाव मे शाब्दिक द्वन्द्व आरम्भ हा गया। क्रान्तिवादी अक्सर राजद्रोही और अवज्ञाकारी माना जाता है, किंतु रूसी नागरिक इस ससार के सबसे कट्टर राज्यानुयायी माने जाते है। तानाशाही देशो मे या तो प्रजा को शासक के आदेश का आख बद करके पालन करना पडता है या फिर । वहा कोई शासक सस्था की आलोचना नही करता, या यो कहिए कि आलोचक का प्रथम विरोध मे ही अन्त कर दिया जाता है। मैक्सिम लिटविनाव इन दोनो नियमो का अपवाद है।

लिटविनाव एक प्रतीक है और स्टालिन उनका महत्त्व जानते है। लिटविनाव का नाम सामूहिक सुरक्षा का द्योतक है। वह न तो तुष्टीकरण के पक्षपाती थे, न आक्रमण के। जब रूस को जर्मनी के साथ सधि करने की सभावना दिखाई दी तो उसने लिटविनाव का सामने से हटा दिया। लिट-विनाव रूस का सबसे प्रतिभाशाली हिटलर-विरोधी था। बाद मे जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया तो स्टालिन ने लिटविनाव को फिर सामने कर दिया और उनसे अग्रेजो से अपनी सुन्दर अग्रेजी भाषा मे रेडियो पर बात-चीत करने के लिए कहा। बाद मे स्टालिन ने उन्हे राज-दूत बनाकर वाशि-गटन भेज दिया।

दो वर्ष तक बेकार रहने के बाद एक दिन लिटविनाव मास्को के निकट काठ के एक कमरे मे बैठ हुए अपनी पत्नी ईवी के साथ ताश खेल रहे थे कि एकाएक नाजियो ने रूस पर आक्रमण कर दिया। जर्मना के इस निर्दयता-पूर्ण आक्रमण के फलस्वरूप पुन. नौकरा पर बुला लिये जाने पर भी लिट-विनाव ने अपने को रूस का "अपनी पीठ पर आप कोडा मारने" की नीति

से अलग रखा। उन्होने कभी भी स्टालिन की हिटलर के साथ सधि करने की नीति का समर्थन नही किया। सन् १६४१ मे जब सर स्टैफर्ड क्रिप्स मास्को मे बृटिश राज-दूत के पद पर काम कर रहे थे, लिटविनाव ने उनसे कहा कि जर्मनी के साथ सधि करके हमने अपनी उगली जला ली है। ८ जुलाई १६४१ को मास्को रेडियो पर बोलते हुए लिटविनाव ने बडी गूढता के साथ स्टालिन को डाटा और कहा—"हिटलर और उसके पिट्ठुओ के साथ की गई किसी भी सधि, उनके द्वारा दिये गये किसी भी आश्वासन या तटस्थ रहने की घोषणा, या यो कहिए कि उनके साथ किये गये किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से इस बात की गारन्टी नही मिल सकती कि वे अकस्मात् या अकारण हम पर आक्रमण नही करेगे। विश्व-विजय के अपने स्वप्न को पूरा करने के अभिप्राय से दूसरे देशो पर आक्रमण करने के अपने कुटिल आयोजनो मे हिटलर ने सदा फूट डालकर आक्रमण करने की ही नीति का ध्यान रखा है। वह अपने शिकारो को एक साथ मिलकर विरोध करने से रोकने के लिए घृणित-से-घृणित युक्तिया प्रयोग मे लाता है और इस बात का विशेष रूप से प्रयत्न करता है कि उसे यूरोप के सबसे शक्तिशाली देशो के साथ दो मोर्चों पर न लडना पडे। उसकी चाल हमेशा यह होती है कि अपने शिकारो को पहले से ही ताक लो और परिस्थिति के अनुसार उनमे से एक-एक पर प्रहार करा।"

रूस-सम्बन्धी नीति का यह एक बिलकुल सत्य चित्रण है। इसमे इस बात की आलोचना की गई है कि स्टालिन ने हिटलर को, इस नीति को कार्यान्वित करने मे, सहायता दी।

लिटविनाव ने अपने भाषण मे यह भी कहा कि हिटलर ने पहले पश्चिमा देशो से निबटने का विचार किया ताकि वह रूस पर प्रहार करने के लिए बिलकुल स्वतत्र हो जाय। यह बात उसके प्रतिभाशाली विदेश-मत्री ने उन कूटनीतिज्ञो के गाल पर चपत लगाने के लिए कही, जो आरोप लगाया करते थे कि स्टालिन ने हिटलर के साथ सधि इस उद्देश्य से की है कि सन् १६३९ मे पोलैण्ड को जीतने के बाद जर्मनी रूस पर आक्रमण न करने पाय। लिटविनाव ने कहा कि यह बात गलत है, हिटलर की योजना पहले पश्चिम की ओर बढने की है। यह बात उस समय कुछ लोगो को स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी जिनमें से रूज़वेल्ट भी एक थे।

फिर भा, जैसा कि लिटविनाव ने बताया, कही कोई रुकावट थी। हिटलर को इग्लिश चैनल पार करने की शिक्षा नही मिली थी, वह इग्लैड पर

आक्रमण करने में असमर्थ था। अत उसके मस्तिष्क मे एक नई योजना ने जन्म लिया। यह सोचकर कि पश्चिम में मैंने एक प्रकार से विराम-सधि स्थापित कर दी है उसने पूरब की ओर विद्युत् की भाँति तीव्र गति से युद्ध करने का निश्चय किया, ताकि वहाँ विजय प्राप्त करने के शीघ्र बाद ही वह वर्धित शक्ति के साथ ग्रेट ब्रिटेन पर टूट पडे और उसका अन्त कर दे।

लिटविनाव स्थिति को समझते थे। ८ जुलाई को उन्होने अपने ब्राड-कास्ट में स्टालिन के ३ जुलाई के उस रेडियो-भाषण का विरोध किया, जिसमें स्टालिन ने अपनी जार्जियन उच्चारण वाली रूसी भाषा में रूस और जर्मनी की सधि का समर्थन किया था। रूस के आलोचक और अवज्ञाकारी या तो गोली से उडा दिये जाते हैं या उनका देश से निष्कासन कर दिया जाता है। किंतु लिटविनाव एक ऐसे व्यक्ति थे, जो अपने देश मे प्रभावहीन होते हुए भी विदेशो के लिए अद्वितीय और अनिवार्य थे। जब हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया और स्टालिन को पश्चिमी देशो से अच्छे सम्बध स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो लिटविनाव उस अज्ञातवास से बाहर निकाले गये जिसमे वह जबरदस्ती डाल दिये गये थे। किंतु जब रूस की सैनिक-विजयो के फल-स्वरूप स्टालिन को ब्रिटेन और अमेरिका पर अधिक निर्भर रहने की आवश्यकता नही रह गई तो लिटविनाव को एक बार फिर अवकाश ग्रहण करा दिया गया। वह निष्क्रिय पडे रहे फिर भी ऐसी जगह रखे गये कि जब कभी रूस की अमेरिका या ग्रेट ब्रिटेन को फिर से मैत्री का आश्वासन दिलाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो वह इस काम के लिए आसानी से उपलब्ध हो सकें। प्रेज़ीडेन्ट रूज़वेल्ट तो हमेशा यही कहते थे कि स्टालिन लिटविनाव को पसद नही करते। इसका कारण सम्भवत यह था कि स्टालिन को लिटविनाव की ज़रूरत थी।

रूस पर जर्मनी का आक्रमण होने से अमेरिकन सरकार के सामने दो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं—एक, रूस को शस्त्र भेजने की और दूसरी अपने देश में रूस के पक्ष में जन-मत तैयार करने की। इस दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए अमेरिका के विदेश विभाग ने अपने भूतपूर्व मास्को-स्थित राज-दूत जॉसेफ ई० डेविस को सोवियत् रूस पर एक पुस्तक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने उन्हे कई प्रकार की सहायता प्रदान की और अपने गुप्त कूटनीतिक पत्रो के कुछ उद्धरण भी छापने की अनुमति दी। शासन-सस्थाओ को प्राय अपने पक्ष मे जनमत को मोडने की चेष्टा करनी पडती है। युद्ध-काल में इसका प्रलोभन विशेष रूप से बढ जाता है।

जॉसेफ ई० डेविस की पुस्तक को बडी लोकप्रियता प्राप्त हुई। एक दिन वह अपनी रूपवना धनी पत्नी को लेकर मास्को के बाजारो मे घूमने निकले। वे फूल की कई दुकानो पर होकर गुजरे और उन्हे देखकर उनके हृदय म दार्शनिक भावना जाग्रत हो उठी। डेविस ने सोचा कि रूस का प्रत्येक युवक वासना के वशीभूत होकर अपनी प्रेयसी विशेष के सामने अपने को अपने प्रतिद्वन्द्वी से ज्यादा अच्छा और बडा सिद्ध करना चाहता है। अपने प्रतिद्वन्द्वी की तुलना में वह अपनी प्रेयसी को जितने अच्छे और बडे फूल अर्पित करता है उतना ही वह अपेक्षाकृत वाछनीयता भी सिद्ध कर पाता है। इसीलिए उसे रुपया कमाना पडता है, और रुपया कमाने का काम लाभ की भावना से प्ररित होने पर ही होता है, जा कि शुद्ध साम्यवाद के लिए घातक है। साम्यवाद का अर्थ ही एक वर्गहीन समाज है। किन्तु प्रेम से तो वर्गगत समाज के निर्माण को ही प्रात्साहन मिलता है।

अत' डविस के कथनानुसार प्रेम और समाजवाद में विरोध है, बडे फूल स्त्रियो को मोह लेते है। डेविस को यह बात मालूम होनी चाहिए थी कि रूसी फूलो से ऐसा कार्य नही लेते। वे प्राय फूलो या फूल के गमलो को अपने अतिथियो के पास ले आते है। परन्तु रूस की नारी साधारणत फूल के बडे गमले के कारण किसी पर मुग्ध नही होती। यदि रूस में अलग-अलग जातियो या वर्गों का निर्माण हो रहा है तो उसका कारण प्रेम-प्रदर्शन की पूँजी-जनित आवश्यकताएँ नही है।

डेविस से अक्सर रूसियो का बडा मनोरजन होता था, विशेष रूप से लिट-विनाव का, जिनमे विनोद की एक बडी प्राजल भावना निहित है। १ जून १९३७ में रूसी सेना के उच्चतम जनरलो के कत्ल किये जाने के बाद एक दिन डेविस ने इस सम्बन्ध मे लिटविनाव से बातचीत की। डेविस ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"मैंने लिटविनाव से साफ-साफ पूछा, "क्या रूसी सरकार को अपनी सेना की सहायता और राज-भक्ति पर पूरा-पूरा भरोसा है।" आप सोच सकते है कि उन्होने क्या उत्तर दिया होगा? उन्होने कहा—"हा, रूसी सरकार अपनी सेना की राज-भक्ति पर विश्वास कर सकती ह।" क्या डेविस ने उम्मीद की थी कि लिटविनाव यह कह देगे कि सेना राजद्रोही है?

बोल्शेविक नेता डेविस को पसन्द करते थे। वे रूस के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के पक्षपाती थे। और एक अच्छे राज-दूत का यही प्रमुख गुण है। रूस डेविस जैसे कामकाजी और पेशेवर आदमियो को, जो पक्के पूजीवादी होते हैं, सर स्टैफर्ड क्रिप्स जैसे वाम-पक्षी विद्वानो की तुलना में

अधिक पसन्द करता है । फिर भी रूस पूंजीवादी डेविस के विचारो को समाजवाद मे नही बदल सका । उनकी "मास्को यात्रा" (मिशन टू मास्को) नामक पुस्तक रूस-विरोधी है । उदाहरण के लिए उसमे डेविस ने एक स्थान पर लिखा है—"सच पूछिए तो रूस की सरकार अकेले एक आदमी स्टालिन मे केन्द्रित है, जिन्होने अपने प्रतिद्वन्द्वियो पर विजय पाई और उनका पूर्ण रूप से अन्त करके सर्वोच्च अधिकारी बन गये ।"

एक बार डेविस ने अमेरिका के विदेश विभाग को अपने गुप्त सकेत में तार दिया—"यहा भयानक आतक फैला हुआ है । मास्को में इस बात के अनेको प्रमाण मिलते है कि यहा के निवासियो के प्रत्येक वर्ग में भय छाया हुआ है । एक भी घर ऐसा नही जिसे इस बात का लगातार डर न हो कि कही रात के समय (अक्सर एक और तीन बजे के बीच) गुप्त पुलिस धावा न बोल दे । पुलिस जब एक बार किसी को पकड लेती है तो उसके बारे में महीनो तक और अक्सर कभी भी, कुछ नही पता चलता । यह अक्सर शिकायत की जाती है कि रूस की मजदूर तानाशाही की गुप्त पुलिस उतनी ही निर्दय और निर्मम है जितना कि पुराने जार के समय मे थी ।

डेविस ने अपनी पुस्तक मे यह भी लिखा है कि साम्यवाद चल नही सकता, वह रूस में नही चला । सोवियत् शासन की निन्दा करते हुए उन्होने लिखा है कि "यहा दल के प्रति कर्त्तव्य की तुलना मे व्यक्तिगत वफादारी को महत्त्व नही दिया जाता । परिणाम यह होता है कि नेतृत्व के मामले में यहा के लोगो को एक दूसरे पर विश्वास नही हो सकता । यह एक गम्भीर और आधारभूत दुर्बलता है । इसके अलावा रूस की आर्थिक व्यवस्था रूसी उद्योग-धधो पर सरकारी नियत्रण होने के कारण सफल नही हुई है बल्कि इसके बावजूद भी उसे सफलता मिली है ।"

तो फिर रूस के कम्युनिस्टो और दल-मित्रो ने डेविस की पुस्तक की इतनी प्रशसा क्यो की ? उस पुस्तक में रूसी सिद्धातो और प्रणालियो के अस्वीकार किये जाने पर भी उसका रूसियो द्वारा स्वागत किया जाना सोवियत्-समर्थक विचारधारा की एक दिलचस्प कुजी है । उसमें स्टालिन की व्यक्तिगत तानाशाही के बाल की खाल निकाली गई है, किन्तु उसमें स्टालिन और रूस की औद्योगिक सफलताओ की प्रशसा की गई है और रूस की वैदेशिक नीति का समर्थन भी किया गया है । इसके अलावा स्वय डेविस ने बाद में मास्को के मुकदमो का समर्थन किया और अपनी पुस्तक का एक ऐसा विकृत फिल्म बनने दिया जिसमें अभियुक्तों का दोष प्रदर्शित करने का

प्रयत्न किया गया है । डेविस के इस काम ने उसे स्टालिन के समर्थको म प्रिय बना दिया ।

मास्को के मुकदमे सन् १९३६, ३७ और ३८ मे हुए, वे रूसी इतिहास के सबसे सकटपूर्ण परिच्छेद थे और स्वय स्टालिन की करतूत थे । इसलिए रूसी सरकार अब भी इस बात की आशा रखती है कि ससार का जन-मत इन मुकदमो को केवल षड्यन्त्र मात्र नही समझेगा । मास्को के मुकदमो और विरोधी-तत्त्वो के उन्मूलन के सम्बध में बहस-मुबाहसा अब भी होता है ।

रूस की गुप्त पुलिस आजकल उच्च श्रेणी के रूसी नेताओ की साव-धानी के साथ निगरानी करती है । वह उनकी चाल-ढाल, टेलीफोन, वार्त्ता और डाक, इन सब पर दृष्टि रखती है । फिर भी मास्को के मुकदमो मे सरकारी इस्तगासे की ओर से एक भी प्रमाण पेश नही किया जा सका । अभियुक्तो को उनके अपराध-स्वीकार के आधार पर ही दण्ड दिया गया ।

मुकदमो की कार्रवाई को, जो अब अग्रेजी मे उपलब्ध है, ध्यान पूर्वक पढने के बाद अभियुक्तो के अपराध-स्वीकार का रहस्य बिलकुल खुल जाता है । उससे पता चलता है कि इस्तगासे और अभियुक्तो में पहले से ही समझौता हो गया था । सफाई पक्ष वालो ने वे ही बयान दिये जो रूसी सरकार ने उनसे देने के लिए कहा । उदाहरणार्थ, बहुत से रूसी नेता स्टालिन के कट्टर विरोधी थे। उन्होने अनुभव किया कि स्टालिन रूसा क्रान्ति का सत्यानाश कर रहा है और रूस को आन्तर्राष्ट्रीय की बजाय राष्ट्रीय और प्रगतिशील की बजाय प्रतिगामी बना रहा है । फिर भी रूसियो की धारणा है कि स्टालिन अदूषित है और कोई भूल नही कर सकता । चूँकि वह कोई गलती नही कर सकता इसलिए लोग उस पर भूल करने का दोषारोपण नही कर सकते । मुकदमे मे अभियुक्तो का स्वतन्त्रता-पूर्वक अपनी भावनाओ को व्यक्त करने का अधिकार है, फिर भी मास्को-मुकदमे के अभियुक्तो ने स्टालिन के सम्बध मे अपने भाव स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त नही किये । उन्होने स्टालिन की कोई निन्दा न कर सरकारी प्रवक्ताओ की भाँति उसकी कीर्ति का गान किया । यदि वे अपने निजी विश्वास के अनुसार अपने भाव प्रकट करते तो वे निश्चय ही स्टालिन को लाञ्छित करते ।

अभियुक्तो से अपराध स्वीकार कराने के लिए उन्हे प्राय महीनो—कभी-कभी दस महीनो—तक रूसी गुप्त पुलिस के कारावास में बद रखा गया । इस बीच वे अपना अपराध स्वीकार करनेसे इन्कार करते रहे और जब तक कि उनका आत्म-बल तोड न दिया गया तब तक वे टस-से-मस नही हुए। अन्त मे अभियुक्तो और सरकार मे समझौता हुआ—वह यह कि अभियुक्तो को मृत्यु या आजीवन

कारावास का दण्ड दिया जायगा, किन्तु यदि मुकदमे की सुनवाई के समय उनका व्यवहार अच्छा रहेगा तो उनके साथ दया दिखाई जायगी। मेरा अपना विश्वास है कि अभियुक्तो को इस बात का आश्वासन दिया गया कि उनको और उनके परिवार वालो को मारा नही जायगा। वे सचमुच छोडे गये या नही, यह मुझे नही मालूम, स्वय अभियुक्तो को इस बात का पक्का भरोसा नही था कि रूसी पुलिस अपना वचन पूरा करेगी। फिर भी इतना पता है कि अभियुक्तो के कुछ बच्चे बाद मे जीवित रहे। जो कुछ भी हो, जब पता चल जाता है कि बिना हाँ में हाँ मिलाये अपनी और अपने बच्चो की जान नही बचेगी तो स्वभावत लोग उस अवसर से लाभ उठाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अक्सर पूछा जाता है कि मास्को के अभियुक्तो ने जार के शासन-काल और नाजी जर्मनी के अनेक क्रान्तिकारियो की भाँति मर जाना ही क्यो नही पसन्द किया। एक बोल्शेविक के लिए जार की पुलिस की अवहेलना करना, उतना कठिन नही था जितना कि उस बोल्शेविक सरकार की उपेक्षा करना, जिसकी स्थापना में उसने स्वय हाथ बटाया था और जिसे वह ससार की अन्य सभी शासन-प्रणालियो से उत्तमतर समझता था, चाहे उसकी नीति के साथ कितना ही मतभेद क्यो न हो। जब वही सरकार उससे एक झूठे अपराध-स्वीकार-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए कहती है तो वह चिडचिडा हो जाता है और उसमें अन्याय के विरुद्ध लडने की इच्छा नही रह जाती। मास्को-अभियुक्तो द्वारा मृत्यु का आह्वान न किया जाने का एक कारण यह भी था। जहाँ तक और कारणों का प्रश्न है, यह स्मरण रखना चाहिए कि जितनें अभियुक्तों ने अपराध स्वाकार किया उनसे अधिक अभियुक्त बिना मुकदमे चलाये ही मार डाले गये। मुकदमो की सुनवाई उन्ही की हुई जिन्होने अपराध स्वीकार कर लिया। ऐसे व्यक्तियो की सख्या ५० प्रतिशत से भी कम थी। हजारो नें अपराध स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और इसीलिए उन्हे मृत्यु-दण्ड भोगना पडा।

यह अपराध-स्वीकार रूसी इतिहास को झूठा बना देता है। इसमें वे परम्परागत रूसी इतिहास की प्रत्येक नई पुस्तक और नए रूसी कोषो के प्रत्येक भाग में या तो पहले सस्करणो में प्रकाशित अनेकानेक महत्त्वपूर्ण और सिद्ध घटनाए निकाल दी गई हैं या उनमें अनगिनत मनगढन्त घटनाएँ जोड दी गई है और इस प्रकार रूस का इतिहास असत्य बना दिया गया है। 'असत्यवादिता' सभी डिक्टेटरो का सचित अस्त्र है। उसका प्रयोग पुस्तको में, समाचारपत्रों में, कूटनीतिज्ञता में और मुकदमो में सभी जगह किया जाता है।

नागरिक बोल्शेविक नेताओ पर सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाने के

अलावा ११ जून १६३७ को रूसी सेनापति मार्शल टुखाचेवस्की और सात अन्य मार्शलो तथा जनरलो पर फौजी मुकदमा भी चलाया गया। यह मुकदमा गुप्त रूपसे किया गया और यह मास्को म सबसे महत्त्वपूर्ण मुकदमा माना जाता है। किसी भी बाहरी आदमी को मालूम नही कि इस मुकदमेमे क्या हुआ। उन आठ मार्शलो और जनरलो के मुकदमे की सुनवाई मार्शलो और जनरलो ने ही की। साल भर के भीतर-ही-भीतर स्वय इन न्यायाधीशो मे से अधिकाश मार डाले गये। मुकदमे के सम्बध म जानकारी का पूर्ण अभाव है। हाँ, इतना अवश्य कहा जाता है कि मुकदमा कभी हुआ ही नही। लेकिन रूस मे ऐसी बातो का पता चलना टेढी खीर है। हमारी जानकारी तो बस उस सक्षिप्त सरकारी विज्ञप्ति तक सीमित है जो रूसी समाचारपत्रो मे प्रकाशित हुई थी और जिसमे बताया गया था कि अभियुक्तो के मुकदमे की सुनवाई हुई, उन्होने राजद्रोह का अपराध स्वीकार किया और उन्हे मृत्यु का दण्ड दिया गया। मुकदमे के बाद रूसी सेना के हजारो अफसर अपने पद से हटा दिये गये।

२७ जुलाई १९३७ को डेविस ने अमेरिका के विदेश विभाग को तार दिया—"जहाँ तक इन जनरलो के जर्मन सरकार से षडयत्र करने के कथित अपराध का प्रश्न है, यहाँ के लोग उसे साधारणत न्याय-सगत मानते है। असली बाते अभी उपलब्ध नही हुई है और इसमे सन्देह है कि वे एक लम्बे अरसे तक उपलब्ध हो सकेंगी। इसलिए यह बताना सम्भव नही कि मुकदमे में वस्तुत क्या हुआ और रूसी सेना के अफसरो का असली अपराध क्या था? राय तो जानी हुई बातो द्वारा निकाले गये निष्कर्ष के ही आधार पर बन सकती है। किन्तु ऐसी बाते मालूम कब है?"

'अमेरिकन मेगजीन' के दिसम्बर १९४१ के अक मे मिस्टर डेविस ने अपनी भूल स्वय स्वीकार की और लिखा कि मास्को के मुकदमे का तत्व में जाने नहीं पाया। डेविस मुकदमे मे गये ता जरूर थे किन्तु अभियुक्तो के अपराध को ठीक-ठीक नही समझ सके। डेविस ने अपना अपराध किस आधार पर स्वीकार किया? निश्चय ही उन्हें कोई नया प्रमाण नही मिला होगा। किसी ने कोई नया प्रमाण दिया हो नही था। न तो सोवियत् सरकार ने, न उसके समर्थको ने ही इस बात का रत्ती भर भी प्रमाण दिया कि रूसी सेना के जनरलो ने, जिनमे से दो यहूदी थे, रूस के विरुद्ध नाज़ी जर्मनी या जापान के षड्यन्त्र मे हाथ बँटाया। प्रमाण तो दूर रहे मुकदमे की प्रारम्भिक बातो तक का पता नही। नागरिक नेताओ के अपराध के बारे मे भी रूस के किसी सरकारी या गैर सरकारी व्यक्ति ने कोई जानकारी नही दी है। मुकदमे के बाद

से अब तक इतने वर्ष बीत गये किंतु रूसी राजधानी मास्को से एक भी बात ऐसी नही मालूम हुई जिससे अभियुक्तो के अपराध का समर्थन किया जा सके। इसका कारण सहज ही समझा जा सकता है।

मास्को के मुकदमे मे सफाई पक्ष वालो ने बताया था कि ट्राट्स्की ने हिटलर के डिप्टी रूडाल्फ हेस से स्वय बाते की थी और रूसी सरकार के तख्ते को उलटने का षड्यत्र रचा था। हेस के विरुद्ध यह एक बडा गम्भीर आरोप है लेकिन समझ मे नही आता कि यूरेमबर्ग की अदालत में युद्ध-अपराधियो पर चलाए गए मुकदमे मे हेस पर और आरोपो के साथ-साथ यह आरोप भी क्यो नही लगाया गया। उस मुकदमे मे रूस का इस्तगासे का एक सरकारी वकील भी था। उसने हेस से ट्राट्स्की के साथ की गई बातो की बाबत पूछ-ताछ क्यो नही की ? क्या इसका कारण यह था कि उसे पता था कि हेस और ट्राट्स्की में बातचीत हुई ही नही ?

हिटलर की पराजय के बाद कितने ही गुप्त नाजी दस्तावेज प्रकाशित किये जा चुके है। अमेरिकन सरकार ने भी जर्मनी के अनगिनत सरकारी पत्र प्रकाशित किये है जिनसे अब तक अज्ञात और अत्यत गुप्त मामलो पर बडा बहुमूल्य प्रकाश पडा है। रूसी सेना ने आधे जर्मन पर विजय प्राप्त की। उसने जर्मनी की राजधानी बर्लिन को जीता। किंतु क्यो उसे एक भी ऐसा पत्र नही मिला जिससे यह सिद्ध हो सकता कि मार्शल टुखाचेवस्की और उनके जनरलो ने रूस पर आक्रमण करने के लिए नाजियो के साथ षड्यत्र किया था, क्या यह एक दिलचस्पी की बात नही कि मास्को मे अब तक कोई भी ऐसा पत्र प्रकाशित नही हुआ, जिससे अभियुक्तो पर लगाये गये आरोप या उनके अप-राध-स्वीकार का समर्थन किया जा सके ?

तो फिर कौन सी ऐसी बात थी जिसके कारण डेविस ने 'अमेरिकन मैगजीन' में अपनी भूल स्वीकार की। उनके लिखने के अनुसार इसका कारण रूस में भेदियो का न होना है लेकिन डेविस को इस बात का अधिकार है कि नई घटनाओ के प्रकाश मे अपने मन मे परिवर्तन करे। किन्तु रूस में भेदियो के न होने से यह बात कैसे सिद्ध होती है कि जो लोग गोली से उड़ाये गये वे भेदिये थे। बहुत-से दूसरे देशो—जनतत्री और सर्वसत्तावादी—मे भी भेदिये नही थे। सम्भवत रूस में भी विरोधियो के उन्मूलन से पहले भेदिये नही थे।

कुछ आलोचको ने कहा कि जर्मनी पर रूस की विजय होने से मास्को के मुकदमे और सैनिक अधिकारियो के उन्मूलन की वाछनीयता सिद्ध होती है। उनका मत था कि चूंकि रूस में विरोधियो का उन्मूलन कर दिया गया है और

रूस नाजियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक लडा है इसलिए यह सिद्ध होता है कि रूस के जर्मनी के विरुद्ध सफलतापूर्वक लडने का कारण यह था कि उसने अपने देश से विरोधियो का उन्मूलन कर दिया था। क्या खूब तर्क है यह। तब तो हम यह भी कह सकते है कि रूस में अकाल पडा और रूस नाजियो के साथ अच्छी तरह लडा, इस लिए रूस का नाजियो के साथ अच्छी तरह लडने का कारण अकाल है।

सच बात यह है कि रूस को अपने सैनिक विरोधियो के उन्मूलन के लिए बडी भयकर कीमत अदा करनी पडी। छोटे-से फिनलैण्ड ने रूसी सेना को इतने दिनो तक क्यो रोके रखा? उसने रूसी सेना को इतनी भारा क्षति क्यो पहुँचाई! रूसियो ने सोचा कि वे फिनलैण्ड को बडी आसानी से कुचल डालेगे। सम्भवत फासी पर लटकाये गये टुखाचेवस्की ने अपने को इस मृग मराचिका से ग्रसित न होने दिया होना कि फिनलैण्ड मे क्रान्ति करा देने से उस पर रूसी आक्रमण का मार्ग खुल जायगा।

रूसी सेना ने फिनलैण्ड मे जो दुर्बलता दिखाई उससे हिटलर को रूस पर आक्रमण करने मे प्रोत्साहन मिला और उन जनरलो की आपत्ति को भी दबाने मे सहायता मिली जो रूस पर आक्रमण करने के विरुद्ध थे। इन जनरलो मे फील्ड मार्शल ब्राउखिख भी थे।

यह कहने की आवश्यकता नही कि रूसी सेना ने जर्मनो के साथ लडने मे बडी प्रतिभा दिखलाई। किन्तु आरम्भ मे उसका कार्य अच्छा नही था। रूस के बडे-बडे प्रदेश हाथ से निकल गये और लाखो रूसी मारे और पकडे गये और घायल भी हुए। सच पूछिये तो रूस एक प्रकार से बिलकुल हार चुका था। मास्को के रक्षक और बर्लिन के विजेता मार्शल ज़ूकाव ने २४ जून १९४५ को मास्को के रेड स्क्वायर मे (जहाँ विजय-प्रदर्शन हुआ था) कहा—"ऐसे कितने ही अवसर आये जब स्थिति निराशाजनक हो गई थी।" ३ महीने बाद २४ अगस्त १९४५ को स्टालिन ने भी ऐसे ही शब्दो का प्रयोग किया। उन्होने क्रेमलिन (रूसी शासन-भवन) मे सैनिक अधिकारियो का स्वागत करते हुए कहा—"सन् १९४१ और ४२ में ऐसे अवसर आये जब कोई आशा नही रह गई थी।"

दिसम्बर, १९४७ मे नाज़ी सेना मास्को के उपनगर खिम्की तक पहुँच गई, जहाँ से बस द्वारा क्रेमलिन का रास्ता थोडी देर का है। स्टालिनग्राड तक मे स्थिति अनिश्चित ही रही। राजनीतिक आलोचक तो केवल अंतिम विजय पर जोर देते है। किंतु रूसी जनता और सेना को पता है

कि युद्ध इतना सरल नही था। रूस को टुखाचेवस्की आदि के उन्मूलन के बाद सम्हलने मे पाच वर्ष लग गये। रूसियो ने इस उन्मूलन का मूल्य लहू द्वारा चुकाया।

रूस के सम्बध मे बहुत-कुछ लिखा गया है। रूस की सब से बडी विशेषता उसकी जन-सख्या है। वहॉ १६ करोड ३० लाख आदमी रहते है। सदियो तक बुरी तरह रहते आने के बाद भी उनकी कार्य-क्षमता अपार है। उनका शरीर कठोर होता है और प्रकृति या इतिहास का उन पर बिलकुल प्रभाव नही पडा है। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता है और सतानोत्पत्ति बडी तीव्र गति से होती है। वे किसी बात से हतोत्साहित नही होते। युद्ध, रोग, दुर्भिक्ष और अपने नेताओ की भूल के कारण उपस्थित होने वाली स्थिति से वे जल्दी सम्हल जाते है। मै उनके साथ १४ वर्ष तक रह चुका हूँ और उनसे प्रेम करता हूँ। वे नम्र और आज्ञाकारी होते है। वे मूल्य भी चुकाते है। मुकदमे और सैनिक उन्मूलन का भी उन्होने मूल्य चुकाया।

मनुष्यो, विशेषत युवको, के मानसिक विकास के लिए आज सारे ससार मे स्वतत्रता और सर्वसत्तावाद मे जो युद्ध हो रहा है उसका रूस के सैनिक-विरोधियो के उन्मूलन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। डेविस ने इस ताना-शाही के उन्मूलन की प्रशसा कर जनतत्र का बडा अहित किया। कत्लेआम का समर्थन करना सर्वसत्तावाद का प्रचार करना है। यदि वह सफल हो गया तो उसमे जनतत्र को धक्का लगेगा।

डेविस ने हमे यह नही बताया कि मास्को के मुकदमो और सैनिक उन्मूलन के सम्बन्ध मे केवल दो ही बाते मानी जा सकती है—एक यह कि अभियुक्त निर्दोष थे और दूसरे यह कि वे अपराधी थे। अगर पहली बात सच मानी जाय तो यह कहना पडेगा कि सैनिक उन्मूलन राजनीतिक हत्याकाण्ड थे, जिनका आयोजन जान-बूझकर प्रतिद्वन्द्वियो और असुविधाओ से छुटकारा पाने के लिए किया गया था। अगर दूसरी बात मानी जाय तो इसका अर्थ यह है कि रूसी सर्वसत्तावाद के किसी पहलू ने, स्टालिन को छोडकर, रूसी क्राति की रचना करने वाले अन्य सभी प्रमुख व्यक्तियो को क्रान्ति और देश के प्रति द्रोही बना दिया था। इन दोनो म से एक बात भी रूसी शासन-प्रणाली के लिए प्रशसनीय नही।

: ६ :

ब्रिटिश जनता और चर्चिल का इंग्लैण्ड

हिटलर के रूस पर आक्रमण करने के दो सप्ताह बाद, जुलाई १९४१ मे मै हवाई जहाज से इग्लैण्ड गया। हवाई जहाज को न्यूयार्क से बरमुदा पहुँचने मे पाच घटे लगे, बरमुदा से होर्टा तक (जो पुर्तगाल एजोर्स मे एक द्वीप है) १४ घटे और फिर वहा से लिस्बन तक ७ घटे ।

समुद्र से ८ हजार फुट की ऊँचाई पर उडना उतना ही आरामदेह, मनोरजक और आसान होता है जितना कि एक आधुनिक मोटर मे चढना। मैंने भोजन मे शोरवा मास, सलाद, डबलरोटी, मक्खन, आइसक्रीम और काफी ली और व्यायाम के लिए लम्बे बरामदे मे टहलने लगा। एज्रोर्स को देखकर ऐसा मालूम होता था मानो ईश्वर ने चट्टानो को सागर मे अललटप्प बिखेर दिया हो। हवाई जहाज नीचे उतरने लगा। दोनो तरफ पहाड थे, जिनकी चोटियाँ बादलो मे छिपी हुई थी । विमान ने उनमे से होते हुए नीचे की ओर गोता लगाया। कुछ झटको के बाद वह पानी पर उतरा और फिर धीरे-धीरे बाँध तक गया। 'आइल डि रे' नाम का एक पुराना जहाज, जो रेड क्रास द्वारा भेजा हुआ भोजन अनधिकृत फ्रास ले जा रहा था, लगर पर आकर रुका। जब हम होर्टा के घाट पर जाकर लगे तो एक दूसरे जहाज ने अपना स्वस्तिक का चमकदार लाल और काला झडा ऊपर उठाया।

जब ग्रीनलैण्ड के आसपास हवा का दबाव कम हो जाता है तो वहा पश्चिमी अफ्रीका की हवा खिचकर आती है और उसके कारण एज्रोर्स के आस-पास का पानी हिल उठता है और ऊपर चढने लगता है। पानी चढने के कारण हमे होर्टा मे २४ घटे की देर होगई। वहा हम एक होटल मे ठहरे, जिसका सचालन फुलमर नाम का एक अमेरिकन-दम्पति करता था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। और मै अपने हवाई जहाज के कप्तान विन्सटन के साथ शतरज खेल रहा था। उसी समय किसी ने रेडियो खोल दिया। जिसमें से यह आवाज आई—

"हम ५००० फुट की ऊचाई पर है। आपको कितनी दूर कहा तक दिखाई दे रहा है ?"

कप्तान विन्सटन ने खेलना बन्द कर दिया और कहा—"लिस्बन से हवाई जहाज आरहा है।"

"यहा से हम १००० फुट ऊचे तक देख सकते है" होटल के मैनेजर ने आने वाले हवाई जहाज के चालक को उत्तर देते हुए बताया।

"मै अन्दाजे से ही उतर रहा हू" चालक की आवाज आई।

"उसे कुछ दिखाई नही दे रहा है" कप्तान विन्सटन ने कहा।

एक मिनट बाद चालक ने फिर कहा—"३००० फुट पर उतर आया हू।"

"बाध के पास लहरे ऊची उठ रही है उनका ध्यान रखना। यहा बडे जोरो की वर्षा हो रही है" होटल के मैनेजर ने सावधान करते हुए कहा।

"हरे राम" विन्सटन ने कहा और कापते हुए हाथो से एक सिगरेट सुलगाई।

शका से हृदय धडकने लगा। हम सब चुप बैठे थे और हवाई जहाज की आवाज सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु कुछ सुनाई नही दिया।

"इस समय तुम कहा हो" मैनेजर ने पूछा।

"१००० फुट की निचाई पर, बाँध के पास पहुच रहा हू" चालक ने उत्तर दिया।

"मुझे कुछ दिखाई नही देरहा है, बन्दरगाह मे कोई जहाज तो नही है ?" उसने पूछा।

"बन्दरगाह के बोचो बीच 'आइल डि रे' खडा है, उसका ध्यान रखना। जमीन उस जहाज से पश्चिम की ओर है।"

"अब तुम हमे दिखाई देने लगे" चालक ने बताया।

"बहुत अच्छा"विन्सटन बोला। "लेकिन उतरना बडा मुश्किल होगा।"

"ऊची लहरो का ध्यान रखना" मैनेजर ने फिर सावधान किया।

विन्सटन ने बेचैनी दिखलाई।

"उतर गये, धीरे-धीरे बाध की ओर जा रहे है" चालक ने बताया।

विन्सटन ने चैन की सास ली और सीटी बजाता हुआ वह शतरज की ओर घूमा। कुछ ही देर बाद चालक ने सूचना दी। "घाट पर पहुँच गये।"

होर्टा और लिस्बन के पुर्तगाल छोटे और दुबले दिखाई देते थे। ऐसा मालूम होता था कि जिन लोगो को अपना साम्राज्य वीर-नाविको से मिला था

उन्हे अब भर-पेट भोजन नही मिलता। जहाजी घाट पर खडे हुए स्त्री-पुरुष मानो हमसे पूछ रहे थे—"जब यूरोप के सब लोग अमरिका जाना चाहते है तो आप लोग यूरोप क्यो आरहे है?"

दूसरे महासमर के दिनो मे पुर्तगाल, स्वीजरलैण्ड और स्वीडेन—विशेष रूप से पुर्तगाल—अन्तर्राष्ट्रीय भेदियो के छत्ते बने हुए थ। लिस्बन से बाहर एस्टोरिल मे, जहाँ फैशनेबिल लोगो का आना-जाना लगा रहता था, नाजी अफसर और ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ खेल-तमाशो मे साथ-साथ बैठते थे, यहूदी शरणागत और जस्टापो के अत्याचारी पास-पास मेजो पर बठकर खाना खाते थे, जापानी एजेण्ट, अमेरिकन हवाबाज, बेल्जियन उमरा, इटैलियन अफसर और तुर्क व्यापारी जुआघर मे नम्रता के साथ एक-दूसरे का रुपया लेते थे। जुआ खेलते समय जापानी सबसे ज्यादा घबराते थे, सफेद रूसो सबसे अधिक गम्भीर रहते थे, नाजी-विरोधी जर्मन सबसे अधिक शान्त रहते थ और नाजी सबसे अधिक हुल्लडबाजी करते थे। अमेरिकन थोडे-से डालरो से ही जुआ खेलते है, वह भी मनोरजन मात्र के लिए और उसके सबध मे अपने घर पत्र लिख सकने के लिए। मैने देखा कि जब कभी मै छोटे दाव लगाकर खेला तो नही हारा और जब कभी मैने दाव पर ज्यादा रुपये लगाये तो उसमे उत्तेजना तो अधिक हुई किन्तु जितना मैने खोया उतना खोना मेरे-जैसे एक स्वतत्र पत्रकार के लिए कल्याणकर नही था।

हॉलैण्ड का एक नि शस्त्र नागरिक हवाई जहाज हमें लिस्बन से ब्रिस्टल (इग्लैण्ड) छ घण्टे मे ले गया। वह फ्रास के नाजी अधिकृत तट के समानान्तर उडता हुआ गया। नाजी जानते थे कि इस प्रकार लोग बराबर इग्लैण्ड आते-जाते रहते है किन्तु जब तक उन्हे किसी विशेष यात्री को रोकने की आवश्यकता नही होती थी तब तक वे किसी को छेडते नही थे। अग्रेज भी जर्मनी के नागरिक हवाई जहाजो के साथ ऐसा ही करते थे।

ब्रिस्टल को जर्मनो की बमबारी से बडी क्षति पहुँची थी। टूटे-फूटे मकानो का मलवा ऐसे बिखरा पडा था जैसे जानवरो को काटने से उनकी आँतडियाँ निकल पडती है। रेलवे स्टेशन की दीवारे गिर पडी थी और छत भी टूट गई थी। फिर भी लोग शान्त थे।

"रास्ते मे कोई परेशानी तो नही हुई," जहा हम उतरे वहा के कारपोरल ने पूछा।

"कुरसी पर बैठ जाइये," सारजण्ट ने कहा। उस समय हम अपने पासपोर्ट की परीक्षा कराने की प्रतीक्षा में थे।

"क्या आप चाय पीना पसन्द करेंगे ?" एक अफसर ने पूछा। ऐसा मालूम होता था जैसे कोई एक हफ्ते के लिए अपने देहात की रियासत मे आ गया हो। सब लोग भद्रता और सहयोग की भावना दिखा रहे थे।

स्टेशन का दृश्य देख कर मुझे सन् १९१८ का स्मरण हो आया, जब कि मै इग्लैण्ड मे एक ब्रिटिश सेना मे स्वयसेवक था। सब जगह वर्दियाँ-ही-वर्दियाँ दिखाई देती थी। औरते तक वर्दियो मे थी। यह एक नई बात थी जो कि पहले महासमर मे नही दिखाई दी थी। सिपाही अपने सामान के मोटे थैलो पर बैठे गाडियो की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाडियाँ खचाखच भरी रहती थी।

प्लेटफार्म के एक कोने मे मैने दो आदमियो को देखा जो स्पष्टत बाप और बेटे मालूम होते थे। बाप जो लगभग पैतालीस वर्ष का था, मेजर का बिल्ला पहने हुए था और उसके रिबनो से मालूम होता था कि वह पहले महासमर का एक पुराना सिपाही है। लडका जो पच्चीस के आसपास था, शाही आकाश-सेना का नीला बिल्ला पहने हुए था। ब्रिटेन मे कही भी मुझे पहले की तुलना मे अधिक म्लानता नही दिखाई दी। वे दोनो आदमी उदास नही थे। बाप १९१७ का फ्रास का अपना एक अनुभव सुना रहा था। बीच-बीच मे लडका मुसकरा उठता था। वे ही लोग जिन्होने २५ वर्ष पहले 'युद्ध का अन्त' करने के लिए युद्ध किया था और बाद मे शान्तिपूर्वक रहने के लिए लडके और लडकियाँ पैदा किये थे, आज अपने लडके और लडकियो के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर एक दूसरे विश्वव्यापी महासमर मे कूद रहे थे।

एक टैक्सी में चढकर हम लदन की उन गलियो मे से होकर गये जिनसे मै अच्छी तरह परिचित था। प्रत्येक गली मे बम के निशान बने हुए थे। यह एक आधुनिक युद्ध था, एक ऐसा युद्ध जो नागरिको से भी लडा जाता है, जो बच्चो के पालनो पर प्रहार करता है, जो भोजन करते समय चार व्यक्तियो के एक पूरे परिवार के प्राण हर लेता है और रसोई मे तश्तरियो को चकनाचूर कर देता है।

लदन मे पहुँचने के थोडी देर बाद मै स्टॉर्म जेम्सन से मिला। वह एक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका है और मेरी पुरानी मित्र है। मैने उनसे उनके ८८ वर्षीय बूढे बाप के बारे मे पूछा। "वह विटबी मे है," जेम्सन ने उत्तर दिया। विटबी इग्लैण्ड के पूर्वी तट पर है। यह वही स्थान है जहाँ नाजी हवाई जहाज उत्तरी सागर को पार कर प्राय अपने बम गिराया करते थे।

"वह बम से मारे तो नही गये ?" मैने पूछा।

"नही सिर्फ घर की खिडकियाँ टूटी है" जेम्सन ने जवाब दिया ।

"तो तुम उन्हे किसी भीतरी नगर मे अधिक सुरक्षित स्थान पर क्यो नही पहुँचा देती" मैने पूछा ।

"क्या कहा आपने ?" वह जोर से बोली । "वह उनका अपना मकान है । उसी मे उनका जन्म हुआ था । क्या आप समझते है कि मै अपना मकान सिर्फ हिटलर के बम के डर से छोड दूँगी ।"

कुछ ऐसे भी लोग थे जो अपने मकान छोडकर भाग जाते थ, किन्तु स्टॉर्म जेम्सन मे मानो इग्लैण्ड की आत्मा दृष्टिगत होती थी । सन् १९४३ मे उसकी छोटी बहन एक उस बमबारी मे मारी गई थी, जो छोटे-छोटे अरक्षित व्यापार-विहीन कस्बो पर दिन-दहाडे की जाती थी । उन कस्बो मे भोली जनता के अलावा और कुछ नही होता था जिससे बमबारी की सार्थकता सिद्ध की जा सकती ।

"उसका अभाव मुझे सारे जीवन भर अखरेगा । लडाई के बाद मै उसके बच्चो को ले आऊँगी और उनका पालन-पोषण करूँगी ।" स्टार्म ने मुझ लिखा ।

एक बार एक शाम की पार्टी मे एक महिला ने सिगरेटो के घटियापन पर खेद प्रकट किया । एक दूसरी महिला ने अखबारो को दिये जाने वाले ख़राब किस्म के कागज़ का उल्लेख किया । "कपडे भी अब पहले से बहुत खराब आने लगे है," एक मेहमान ने कहा ।

"सभी चीज़े पहले से ख़राब हो गई है," एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, "सिर्फ आदमी पहले से अच्छे है ।'

ब्रिटेन के निवासी सचमुच बडे अद्भुत थे । वे यह अनुभव भी नही कर रहे थे कि वे बहादुर बन रहे है । मेरे ब्रिटिश प्रकाशक जोनेथन केप ने मुझसे कहा—"किया क्या जाय ? बम गिरने पर या तो हम चिल्लाय या पागल हो जाय या आत्म-हत्या कर ले या फिर धीरतापूर्वक चुपचाप शान्त बैठे रहे ।"

अग्रेज बडी मर्यादा के साथ कार्य कर रहे थे । फिर भी जब मै थके-मादे और शायद भूखे लदन-निवासियो को पूर्ण अन्धकार मे रास्ता टटोलते अपने घर जाते देखता तो मुझे ऐसा लगता कि यह युद्ध केवल अमानुषिक ही नही है बल्कि मानवी मर्यादा के ऊपर एक प्रहार भी है । मनुष्यो के रहने का यह तरीका नही होता । युद्ध मनुष्य के अच्छे-से अच्छे गुण को बुरे-से-बुरे कार्य के लिए जाग्रत करता है ।

लन्दन मे मै पार्लमेण्ट के मजदूर-सदस्य जार्ज रसेल स्ट्रास के पास ठहरा। उनके साथ एक दूसरे मजदूर-सदस्य अन्युरिन बेवन भी ठहरे हुए थे। साथ मे उनकी पत्नी जेन्नी ली भी थी जो कि स्वय एक मजदूर-नेत्री है। स्ट्रास और बेवन 'ट्रिब्यून' नाम का एक वामपक्षी मजदूर साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करते थे। उसके लेख भी वे ही लिखा करते थे। एक इतवार को सवेरे रीजेण्ट गली से जाते समय मैंने एक आदमी को टहलते और 'ट्रिब्यून' पढते हुए देखा। मैंने उससे पूछा—"इस अखबार के बारे मे आपकी क्या राय है ?" मेरी उसकी आध घण्टे तक बात हुई। घर लौटकर मैंने सारी बात स्ट्रास और बेवन का सुनाई। उन्हे मेरी इस अमेरिकन साहसिकता पर बडा आश्चर्य हुआ। कुछ वर्ष पहले मुझे ऐसा करने मे बडा सकोच हुआ करता था। लेकिन मे देखता हूं कि लोग बात करना पसन्द करते है और अगर आप उन्हे रोककर कुछ पूछे तो वे बुरा नही मानते। ऐसा मै कई देशो मे कर चुका हूँ। सबसे ज्यादा आसानी मुझे उस समय पडती है जब मै किसी के साथ एकदम गम्भीरता से बाते करने लग जाता हूँ, जैसा कि 'ट्रिब्यून' पढने वाले आदमी के साथ हुआ। इसके विपरीत जब मुझे भूमिका-स्वरूप—"बडी अच्छी सुबह है," या "ऐसा मालूम होता है, कि पानी बरसेगा," आदि कहना पडता है तो कभी-कभी मेरी ज़बान बन्द हो जाती है।

जब कभी मै किसी देश को समझने की चेष्टा करता हूँ तो जिससे भी मिलता हूँ उससे अक्सर एक ही तरह के सवाल करता हूँ और उसके परिणामस्वरूप उस देश की नब्ज़ टटोल लेता हूँ, एक प्रकार से वहाँ का जन-मत प्राप्त कर लेता हूँ। मैंने दो सौ आदमियो से पूछा—"मान लीजिये, हिटलर आप से शान्ति का प्रस्ताव करे उस समय आप क्या सोचेगे ?" इस प्रश्न के उत्तर में केवल एक व्यक्ति ने कहा कि इस तरह का प्रस्ताव विचारणीय होगा, शेष सभी लोगो ने उसे अस्वीकार कर दिया, किसी ने अधिक जोश और घृणा के साथ और किसी ने कम।

उस समय तक रूस की विजय नही हो रही थी। अमेरिका सहानुभूति दिखा रहा था और सहायता भी दे रहा था, परन्तु युद्ध से बहुत दूर था। हिटलर के किसी समय भी आक्रमण करने का भय था, लेकिन जनता ने एक मत होकर आगे बढने का सकल्प कर लिया था। यह बात नही थी कि ६० व्यक्ति पक्ष मे हो और ४० विपक्ष में। प्रत्येक व्यक्ति ने शत-प्रतिशत दृढता के साथ निश्चय कर लिया था।

"यहाँ के लोग डिगेगे नही" चर्चिल ने मुझसे कहा था। जनता का

जीत का पूरा-पूरा विश्वास था, इसलिए वह दृढप्रतिज्ञ था ।

इंग्लैण्ड मे नाजी बमो के शोरगुल के बीच एक सामजस्य दिखाई देता था, सामजस्य, एकता नही । एकता तो सर्वसत्तावाद की परिचायिका होती है । सामजस्य जनतन्त्र मे होता है । सामजस्य का अर्थ है भिन्न-भिन्न तत्त्वो का सहयोग । एकता इन सब का बलात् आत्मसमर्पण है । जनतत्री देश के विजयी उम्मीदवार को एक वोट से भी विजय प्राप्त करने पर सार्वजनिक समर्थन प्राप्त हो जाता है, किन्तु नाजियो की "एकता" के लिए चुनाव मे सत्तानवे प्रतिशत बहुमत की आवश्यकता होती है ।

इंग्लैण्ड मे रहते हुए मुझे जो बात सब से आश्चर्य-जनक मालूम हुई, वह था एक जगह देश-भक्तो द्वारा व्यापक रूप से तोड-फोड । बेवन ने, जो बचपन मे कोयले की खान मे काम कर चुके थे, बताया कि कोयले की खानो के मालिक अपनी बुरी चट्टानो को खोद रहे थे और अच्छी चट्टानो को युद्ध के बाद लाभ कमाने के लिए बचा कर रख रहे थे । इस बात पर आसानी से विश्वास करना सम्भव नही था क्यो कि उसका अर्थ था युद्ध के प्रयत्नो को क्षीण बनाना । मैने सरकारी खान विभाग के प्रधान अधिकारियो से बातचीत की । उन्होने भी बेवन की बात का समर्थन किया । फिर भी मुझे इस बात का रीकार्ड रखने मे हिचकिचाहट हुई । उन्ही दिनो व्यापारियो के दैनिक पत्र "आर्थिक समाचार" (फाइनेन्शियल न्यूज़) ने लिखा---'यदि कोयले की खानो के मालिको को अतिरिक्त आय-कर के सम्बन्ध मे रियायते दी जाय तो वे अपनी सब से अधिक उत्पादक चट्टानो को काम मे लाने के लिए अधिक तत्परता दिखायगे ।"

खानो के मालिको द्वारा खराब चट्टानो के काम मे लाये जाने का कारण यह था कि वे जानते थे कि लडाई के दिनो मे सब चीजे, यहा तक कि खराब कोयला, भी बिक जाता है । दूसरी बात यह थी कि ब्रिटिश सरकार उनका प्राय सारा का-सारा लाभ युद्ध का खर्च चलाने के लिए ले लेती था । तो फिर वे अपना अच्छा कोयला क्यो खत्म करते ? क्यो न वे उसे शान्तिकाल के लिए सचित करके रखते जबकि उसके अच्छे होने के कारण ग्राहक आकर्षित होते और जो लाभ होता उसे वे अपने लिए बचा सकते ' जो लोग ऐसा कर रहे थे शायद उनका कोई लडका हवाई बेडे मे रहा होगा । राष्ट्र के लिए वे अपने बेटे के प्राण न्यौछावर कर देने को तैयार थे, लेकिन अपना अच्छा कोयला नही ।

मालिको और मजदूरो, अमीरो और गरीबो, उच्च-वर्ग के भद्र पुरुषो और निम्न-वर्ग के साधारण व्यक्तियो---सभी ने युद्ध मे सहायता दी । हवाई रक्षा का काम करने वालो मे ऊच-नीच का भेदभाव जाता रहा । घरेलू-रक्षा दल

मे जहाँ नागरिको को आक्रमण रोकने का काम सिखाया जाता था वहा दफ्तर का चपरासी अपने अफसर के कधे मे-कधा मिला कर चलता था। राष्ट्र-रक्षा के कार्य मे लगे हुए सभी नागरिको के लिए ब्रिटेन एक मित्रो। का राष्ट्र बन गया था। इसीलिए वहा सामजस्य था मैत्री और सामजस्य के कारण ही इग्लैण्ड सुखी था।

फिर भी कोयले के मालिको ने अपना खराब कोयला ही बेचा और अफसर—अफसर ही बने रहे। युद्ध के कारण समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों मे लोगो का सम्पर्क बढ गया। श्रेणीगत भद-भाव टूटने लगे। जब बमो ने किसी का भेद भाव नही किया तो भला आदमी ही ऐसा क्यो करते ?

फिर भी इस बात को छोड कर कि ब्रिटिश सरकार ने युद्ध कालीन उत्पादन मे हाथ बटाया और भिन्न-भिन्न नियत्रण स्थापित किये, किंतु आर्थिक बल उन्ही लोगो के हाथो मे रहा जिनके हाथो मे पहला था।

जब लोग सकट के समय समान स्थल पर आ जाते तो जीवन के सुख-भोग के समय वे असमान रहना नापसद करते है। इग्लैड मे चर्चिल के ढाचे मे ढले हुए आम लोग हमेशा ही रहेगे। किन्तु कैसे ? घर होगे या गन्दे झोपडे? काम होगा या आलस्य ? जीवन के आरम्भ से अत तक सुरक्षा ? जिस युद्ध ने वर्त्तमान मे सहयोग को प्रोत्साहन दिया उसी ने अतीत के प्रति विरोध उत्पन्न किया।

एक नवयुवक विमान-चालक ने, जो रात्रि के समय युद्ध करने वाले हवाई जहाजो के एक दल का नेता था, मुझे इग्लिश चैनल की सैर कराने के बाद अपने नए जहाज का भीतरी हिस्सा दिखाया। फ्यूज के तारो के पास पीले रग मे १५ छोटे-छोटे स्वस्तिक बने हुए थे जिसका अर्थ यह था कि उस समय तक चालक जर्मनी के १२ हवाई जहाज़ नष्ट कर चुका था। उसने अपने जहाज को वैसे ही थपथपाया जैसे कोई प्यार से अपने घोडे को थपथपाता है। सहसा वह मुझसे पूछ बैठा—"क्या आप समझते है कि यह युद्ध समाप्त हो जाने के बाद हम बेकार हो जायगे ?" वह चिन्तित उतना नही था जितना कि किंकर्त्तव्य विमूढ। युद्ध के समय उसने जिस देश की इतनी सेवा की थी, वह क्या शाति-काल मे उसके लिए कोई काम नही निकाल सकेगा ? उसने यह बात स्वीकार की कि उसे मजदूर दल मे दिलचस्पी है।

मजदूर, विरोधी, विद्वान् और मध्यम श्रणी के लोग जब यह देखते है कि उनकी अपनी आर्थिक शक्ति तो अत्यत सीमित है और जिन लोगो के हाथ में आर्थिक अधिकार है वे उसे छोडने के लिए तैयार नही है तो वे सामाजिक

और आर्थिक उन्नति के लिए शासन सस्था की ओर आशा की दृष्टि से देखते है। सच पूछिये तो आजकल उत्तम जीवन के लिए जो आदोलन चलते है उनका मुख्य उद्देश्य शासन-सस्था को प्रभावित करना और रास्ता दिखाना होता है। यही कारण है कि मजदूरो की इच्छा राजनीति मे प्रवेश करने की होती है। अपने वोटो के बल पर करोडो मजदूर उन लोगो से जिनके हाथ मे आर्थिक अधिकार होता है, राजनीतिक शक्ति छीनने की चेष्टा करते है।

अत जिस युद्ध ने इग्लैण्ड मे सामाजिक सामञ्जस्य उत्पन्न किया उसी ने सामाजिक सघर्ष के भी बीज बोये।

जिन दिनो मै इग्लैण्ड मे था, समाचार पत्रो ने चर्चिल का एक चित्र छापा जिसमे वह बमबारी से अत्यधिक क्षतिग्रस्त नगर प्लाइमाउथ का निरीक्षण करते दिखाये गये थे। वह एक तग गली के बीच टहलते हुए जा रहे थे और उनके मुँह के एक कोने मे उनका अभिन्न सिगार था । उस दिन उनके चेहरे पर अभूतपूर्व मुसकराहट थी। उनके सामने, उन के ठीक पीछे और उनके दोनो तरफ स्त्री-पुरुष और बच्चे भी टहल रहे थे। जनता आप से-आप अपने हर्ष का प्रदर्शन कर रही थी। ठीक उनके सिर के ऊपर कुछ लोग कोठो पर से उनका स्वागत कर रहे थे। चर्चिल ने अपना हैट उतार कर बेत पर रख लिया था। और उसे ऊपर उठा कर हिला-हिला कर वह लोगो के स्वागत का उत्तर दे रहे थे। यह एक जनतत्र का चित्र था। इधर बहुत वर्षों से एक भी तानाशाह इस प्रकार के अज्ञात और अनगिनत नागरिको के आकस्मिक प्रदर्शन के बीच घिरा हुआ नही देखा गया। भय और पत्थर की दीवारे तानाशाह को जनता से अलग कर देती है। चर्चिल को ब्रिटिश जनता का डर नही था, ना ब्रिटिश जनता को चर्चिल से डर था । भय तो तानाशाहो के खडे होने का चबूतरा है।

फिर भी चर्चिल आम जनता के आदमी नही थे । युद्ध से पहले और सन् १९४१ में मेरे ब्रिटेन जाने पर वहा के निवासियो ने मुझसे अक्सर कहा कि पहले और दूसरे महासमरो के बीच ब्रिटेन मे जो राजनीतिक दुर्बलता दिखाई दी थी उसका कारण यह था कि पहले महासमर मे ब्रिटेन के अनगिनत आदमी मारे गये। उन्होने यहा तक कहा कि आज के नेता कल खाइयो मे मारे गये। यह सत्य का एक लघु अश मात्र है। 'लदन इकोनोमिस्ट'ने, जो अर्थ सम्बधी एक गभीर साप्ताहिक पत्र है, शेष वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए सन् १९४२ मे लिखा—"यह बात अस्वीकार नही की जा सकती कि इस देश के प्राय सभी प्रकार के नेता उस वर्ग के है जिसमे यहा की सम्पूर्ण जन-सख्या

का बीसवा भाग भी सम्मिलित नही । इससे भी बडी बात यह है कि इन नेताओ का चुनाव उनकी योग्यता के आधार पर नही होता ।"

'इकोनोमिस्ट' ने यह भी लिखा—"अमेरिका मे जहा ४ करोड ८० लाख व्यक्ति रहते है, ऐसे व्यक्तियो का शासन है, जो २० लाख जन सख्या वाले देशो मे पाये जा सकते है, सिवा उन विशेष व्यक्तियो के जिन्होने अपने पथ की बाधा को नष्ट कर डाला है ।" बाधा किस वस्तु की ? धन और सामाजिक सौभाग्य की ? "देश की प्रतिभा का यह कोई उपयोगी प्रयोग नह माना जा सकता"— 'इकोनामिस्ट' ने निष्कर्ष निकाला । ब्रिटेन मे जन-शक्ति की जो कमी है वह अशत मनुष्य की ही करनी का फल है । यह सत्य है कि सन् १९३५ से १९४५ के बीच केयुद्ध-सलग्न १० वर्षों मे ब्रिटेन की जनशक्ति का लगातार ह्रास होता रहा । किन्तु इससे तो बचे हुए व्यक्तियो की योग्यता को प्रयोग मे लाने की आवश्यकता और भी बढ जाती है और यही कारण है कि सामाजिक भेदभाव को हटाने की माग की जाती है ।

सन् १९१७ मे, रूस में, राजसी और धनी शासको के छोटे से दल और करोडो निर्धनो, मस्त मजदूरो तथा किसानो के विशाल समूह मे महान् भेदभाव था । किंतु यह भेदभाव दुर्बल और कंच की तरह सहज ही टूट सकने वाला था । इसी लिए राइफलो, हथगोलो और शब्दो के थोडे से प्रहारो ने ही उसे चकनाचूर कर दिया । रूस एक पिछडा हुआ देश था, इसलिए उसके अनुकूल ही वहाँ छोटे-बडे के बीच की दीवार लकडी की बनी हुई थी । अन्य देशो में यह बडी मजबूती के साथ ककरीट और इस्पात से बनाई गई है । इग्लैण्ड के विशेषाधिकार-प्राप्त लोग खूब जमे हुए होते है और वे देश-सेवा, शिक्षा, शासन-योग्यता, व्यापारिक अनुभव और उद्योग, बैक तथा व्यापार सम्बधी साहसिकता के भी अलकारो से आभूषित होते है । इन विशेष गुणो का देश के आर्थिक जीवन पर बडा गहरा असर पडता है । वे आसानी से टस-से-मस नही किये जा सकते । किन्तु दीवार की दूसरी ओर के ४ करोड ६० लाख निवासी जिन्हे बाल्डविन और चैम्बरलेन की सतुष्टीकरण सम्बन्धी भूलोने शासको का कम आदर करना सिखा दिया है और जिन्हें युद्ध ने अधिक अपना आदर करना सिखाया है, ऐसे अधिकारो की माग करते है जिनसे दीवार के इस ओर रहने वाले २० लाख निवासियो ने उन्हें अब तक वचित रखा है ।

ब्रिटेन का शासक वर्ग युद्ध करना जानता था, किन्तु वह युद्ध को रोकने म समर्थ नही हो सका था । इसलिए सन् १९४१ मे ही लोगो ने कहना आरम्भ कर दिया कि शाति-स्थापना का काम अनुदारदलियो को नही सौपना चाहिए ।

सन् १९४१ मे इग्लैण्ड से लौटने पर मैने लिखा–"नाजियो के साथ युद्ध करने के प्रश्न पर तो सभी अग्रेज एक मत है, किन्तु उनमे से कुछ थोडे से लोग तो पुराने ब्रिटेन को,जो उन्हे बडा अच्छा लगता था–अक्षुण्ण रखने के लिए लड रहे है और शेष सब एक नए ब्रिटेन के निर्माण के लिए लड रहे है। सच पूछिये तो ब्रिटेन इस समय दो लडाइयो मे सलग्न है—एक हिटलर केनये विधान के विरुद्ध और दूसरी नेविल चैम्बरलेन के पुराने विधान के विरुद्ध।" "और चर्चिल के पुराने विधान के विरुद्ध भी" मुझे यह भी लिखना चाहिए था।

इग्लैण्ड के वामपक्षी नाटककार जे० बी० प्रीस्टले ने अपनी "आउट आव दी पीपुल" नामक पुस्तक मे लिखा—"आपको इस बात का कोई अधिकार नही कि पहले तो आप असली ब्रिटेन को युद्ध मे रत कर दे और फिर बाद में घोषणा करे कि आप एक बिलकुल दूसरे और बहुत कम वास्तविक ब्रिटेन की रक्षा के लिए ऐसा कर रहे है।" उसके बाद से प्रीस्टले को रेडियो पर बोलने नही दिया गया। यहा बात हरल्ड लास्की के साथ हुई। लास्की ने मुझे बताया कि उन्होने जब चर्चिल से प्रतिबध का कारण पूछा तो उत्तर मिला—"चूँकि आप जिस तरह का ब्रिटेन चाहते है वह उस ब्रिटेन से बिलकुल भिन्न है जो मै चाहता हूँ।" फिर भी लास्की, प्रीस्टले और दूसरे द्रोहियो ने सेना और हवाई बेडे के शिविरो मे बातचीत की, लेख और पुस्तके लिखी और जो बाते वे इग्लैड के निवासियो से नही कह सकते थे वही उन्होने रेडियो द्वारा उपनिवेशो के निवासियो से कहा। मुझे भी बी० बी० सी० वालो ने लदन से ब्रिटिश साम्राज्य और उत्तरी अफ्रीका के निवासियो से रेडियो द्वारा बातचीत करने का तो निमत्रण दिया, किंतु अपने देशवासियो से बातचीत करने के लिए नही।"

युद्ध के कारण ब्रिटेन की कुछ नागरिक स्वतत्रताए कम अवश्य हो गई, किन्तु अधिक नही। इग्लैण्ड स्वतत्र ही रहा। बाथ के निकट मे ब्रिटिश आकाश-सेना के एक अड्डे पर जॉन स्ट्रैची से मिला। स्ट्रैची साम्यवाद के समर्थक रह चुके थे। स्टालिन और हिटलर के समझौते के बाद वह भी अन्य साम्यवादियो की भाति युद्ध के विरोधी हो गये थे। किन्तु सन् १९४० के बसत मे नारवे पर आक्रमण होने से उनके विचार बदल गए। उन्होने अपना नाम हवाई आक्रमण के समय रक्षा करने वाले वार्डनो मे लिखाया और जब श्रीमती मिलर बम के नीचे दबकर मर गई तो उन्होने उनके लिए कब्र भी खोदी। इसके बाद वह हवाई बेडे मे शामिल होगये और रात्रि के समय लडनेवाले एक हवाई दल के एडजूटेन्ट नियुक्त कर दिये गये। उनके सोने के क्वार्टरो मे एक पुस्तकालय था, कार्लमार्क्स, लेनिन और ट्राट्स्की की

अनेक पुस्तको के अलावा समाजवाद सम्बन्धी उनकी स्वरचित पुस्तके भा उसमे रहती थी। अधिकारी इस बात को जानते थे फिर भी उन्होने इसकी चिन्ता नही की। अग्रेज सहिष्णु होते है। सहिष्णुता सभ्यता की परिचायक होती है। विचार, वर्ण, जाति, धर्म और राजनीति के भेदभाव के सहन किये बिना जनतंत्र एक मजाक भर रह जाता है।

राजनीतिक मतभेदो के होते हुए भी अनुदार और मजदूर दलो के सदस्यो ने युद्ध-कार्य मे सयुक्त सरकार के साथ पूरा पूरा सहयाग किया। यदि कभी मजदूर दल के नेताओ को चर्चिल की नीतिया नापसन्द आती थी तब भी वे मानते थे चर्चिल की ही बात। मत्रिमडल की बैठको में चर्चिल की ही राय सर्वोपरि रहती थी। मत्रियो ने मुझे बताया कि चर्चिल मत्रिमडल के सदस्यो से अधिक बोलते थे और कभी-कभी इतना बोलते थे जितना कि सब सदस्य मिलकर बोल सकते थे। लोगो को उनकी भाषा के प्रवाह मे बडा आनन्द आता था। उन्होने देखा, और मैने भी चर्चिल के साथ अपनी मुलाकात मे यही अनुभव किया, कि उनकी साधारण और बिना तयार की हुई बातचीत के वाक्य भी उतने ही प्राजल और शास्त्रीय होते है जितने कि उनके अधिक-से-अधिक सावधानी के साथ तैयार किये गये व्याख्यानो के वाक्य।

चर्चिल युद्ध-काल के एक अनिवार्य नेता थे, क्योकि उनके पौरुष और भाषणो से जनता मे स्फूर्ति भर गई। फिर भी उन्होने उत्पादन और उससे सम्बन्ध रखने वाली दूसरी समस्याओ पर ठीक ध्यान नही दिया। उनका मस्तिष्क अर्थ-शास्त्र के अनुकूल था ही नही। यह बात उन्होने स्वय कई बार स्वीकार की। उन्हे एडमिरलो और जनरलो के साथ बैठकर नक्शो और ग्लोबो पर विचार करना और रसायन-शास्त्रियो से नये विस्फोटको के सम्बध मे बातचीत करना अधिक प्रिय लगता था।

चर्चिल को भविष्य म भी अधिक दिलचस्पी नही थी, यह बात उनके शान्ति सम्बधी समस्याओ पर दिये गये सार्वजनिक भाषणो से सिद्ध होती है। वह अतीत के साथ जकडे हुए थे। वह १९ वी सदी के व्यक्ति थे और उस पर उनकी अनुरक्ति थी। वह साम्राज्य, सम्राट् और जाति से प्रेम करते थे। उन्होने ईंटें तो अवश्य पाथी थी किंतु वह ईंट पाथने वालो तक पहुँचने वाला सामाजिक पुल नही बना सके। वह राजसी आदमी थे। लायड जार्ज को ब्रिटेन के उच्च-वर्गों, जनरलो और लार्डों आदि से घृणा थी और वह उनसे लडे भी। किंतु चर्चिल ने इन्हे अमर बनाना चाहा। यह एक आश्चर्यजनक बात थी,

क्योंकि वह उनसे श्रेष्ठ थे। इसीलिए वे लोग चर्चिल से डरते थे और सन् १९४० के राष्ट्रीय सकट से पहले,उन्होने चर्चिल को अधिकार के स्थान पर नही पहुँचने दिया। फिर भी चर्चिल ने उनके विशेषाधिकारो और धन की रक्षा करने की चेष्टा की। उनकी आत्मीयता उच्च वर्गो से उतनी नही थी जितनी कि १९ वी शताब्दी के इग्लैण्ड से, जिसने कि उन्हे उत्पन्न किया था। उनकी दृष्टि मे १९वी शताब्दी एक अनुपम शताब्दी थी, अग्रेजो की अपना शताब्दी वह नैपोलियनीय फ्रास के पतन के बाद की और कैसरीय जर्मनी के उत्थान के पहले की शताब्दी थी जब कि चारो तरफ ब्रिटेन का बोल-बाला था। इसी शताब्दी में महारानी विक्टोरिया के अतर्गत ब्रिटिश साम्राज्य का बिस्तार हुआ था। ब्रिटेन का पुराना प्रताप ही चर्चिल का ईश्वर था। उनकी समझ मे उच्च वर्ग के लोग देश की महानता के परिचायक थे। ऐसा ही भारत था और ऐसा ही था १९वी शताब्दी के इग्लैड का पार्लमेण्टरी जनतन्त्र भी।

चर्चिल ने इग्लैड की इसी परम्परागत मर्यादा की रक्षा करने के लिए लड़ाई की। जनतत्र और निर्धनता के पारस्परिक विरोध के कारण उन्हे कोई पीडा नही होती थी। इग्लैड का स्वतत्रता और भारत की पराधीनता के पारस्परिक विरोध की भी उन्हे चिंता नही थी। जब तक मुसोलिनी ब्रिटेन का शत्रु नही बना था तब तक उन्होने उसकी प्रशसा करने मे भी कोई हिचकिचाहट नही दिखाई। जनरल फ्रैको के लिए भी उनके हृदय मे दया का भाव था। चर्चिल नाज़ी शामन की बर्बरता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। हिटलर उसकी समझ मे ब्रिटेन के लिए जर्मन-सकट का प्रतीक था। यह बात उन्हे आरम्भ मे ही समझ मे आ गई थी और बहरे ब्रिटेन को उन्होने चेतावनी भी दे दी थी।

चर्चिल को नता बनने मे बडा आनन्द आता था। ब्रिटेन के नेतृत्व की बागडोर हाथ मे आते ही उनके पाव जम गये। उनका समय बडे मौज के साथ बीता। वह जानते थे कि लोग मुझे सुनना पसद करते है। मैने देखा है कि जब कभी लोगो ने लोक-सभा मे उनके किसी चुटकुले को पसद किया तो वह हर्ष से किलकारी मार उठे। उनमे अभिनेता के अनेक गुण थे और कुछ-कुछ हास्य की वृत्ति भी। उनमे बचपना भी था और कूटनीतिज्ञता भी। उन्हे फोटो खिचवाना बडा अच्छा लगता था। वह किसी बडे रगमच का केन्द्रीय आकर्षण बनना भी पसन्द करते थे। कई ऐसे अधिकार-पूर्ण इतिहास लिखने के कारण, वह एक सिद्धहस्त इतिहास-निर्माता बन गये थे। निर्विवाद सर्वश्रेष्ठता और सार्वजनिक चाटुकारिता के फलस्वरूप उनकी शारीरिक

शक्ति बढ गई थी ।

चर्चिल को अतीत के रोमास और वर्त्तमान की साहसिकता की अनुभूति तो अवश्य हुई, किन्तु वह भविष्य-द्रष्टा नही थे। वह राजनीतिक क्षेत्र मे एक कवि थे— बायरन के रूप मे नैपोलियन । उन्हे वचन और कर्म दोनो से प्रेम था। वर्त्तमान युग मे ऐसे गुणो का समन्वय निस्सदेह दुर्लभ है। यही समन्वय हिटलर मे भी था।

चर्चिल मे पाशविक आनन्द की प्रवृत्ति और कितनी ही वासनाए भी विद्यमान थी । उनमे आतरिक प्रेरणा भी थी । जनतत्री देशो के कुछ नेता अपने देश को अपना अनुकरण करने के लिए तैयार कराने से पहले जनता के परिपक्व मन की प्रतीक्षा करते है। प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने कितने ही अवसरो पर ऐसा किया । किन्तु चर्चिल साधे सिर के बल कूद पडते थे और आशा रखते थे कि इग्लैण्ड की जनता उनके पीछे पीछे चली आयगी। उदाहरणार्थ, किसी भी व्यक्ति को जनमत को अपने साँचे मे ढालने मे इतनी सफलता नही मिली जितनी चर्चिल को रूस पर जर्मन-आक्रमण के दिन, जब कि उन्होने फौरन माइक्रोफोन उठाकर रूसियो को तात्कालिक सहायता का वचन दिया ।

चर्चिल सब चीजो को विजय से हेय समझते थे । सन् १९१८,१९ और २० मे उन्होने बोल्शेविक शासन मे हस्तक्षेप करने के अभिप्राय से अग्रेजो का एक सशस्त्र सगठन तैयार किया था। वह सदा बोल्शेविज्म के विरोधी रहे। दिसम्बर १९४१ मे उन्होने व्हाइट हाउस में भोजन करते समय एक पडोसी से कहा कि रूस मे भयकर एकाधिकारवाद है। फिर भी इसकी चिन्ता नही की गई, विजय के लिए रूस का सहयोग आवश्यक था। लोग जानते थे कि चर्चिल युद्ध मे जीतने के लिए तुले बैठे है। दृढ प्रतिज्ञता का औरो पर भी प्रभाव पडा। उसके कारण विरोधियो को अपना विरोध कोमल बनाना पडा। बेवन और लास्की जैसे लोग उन पर बार-बार कटाक्ष करते रहे और चर्चिल भी उन पर उलटकर वार करते रहे । फिर भी मजदूर-दल ने उनका मित्रता पूर्वक समर्थन किया और मन्त्रि-मण्डल के कुछ सदस्यो, मसलन बिलकिसन पर उनका जादू चल गया ।

इस दल के बीच मजदूर-दल के मन्त्री शासन करने की कला सीखते रहे । एक दिन मैं गृह-विभाग मे हरबर्ट मॉरिसन के दफ्तर में गया और वहा से हम दोनो उनकी की कार में बैठकर एक गाव मे एलेन बिलकिसन के छोटे से घर में छुट्टी मनाने गये । मॉरिसन ने बताया कि उन्हे पुस्तके पढने के लिए काफी समय मिल जाता था। किन्तु अपना अधिक-से-अधिक समय वह सर

कारी कागजो विशेषत विदेश विभाग के पत्र-व्यवहार का अध्ययन करने मे लगाते थे, ताकि वह शासन का ढग ज्यादा अच्छी तरह से समझ सके। इसमे सन्देह नही दूसरे मजदूर मन्त्रियो ने भी अपने पद से इसी प्रकार का लाभ उठाया। पाच वर्ष तक एक ऐसी सरकार मे कार्य करने के बाद, जिसने ब्रिटेन को विजय की ओर अग्रसर किया, मजदूर-दल पर शासन करने के अयोग्य होने का आरोप नही लगाया जा सकता था। इसके कारण अनुदार दलियो के हाथ से वह बहाना जाता रहा जिसका उन्होने पहले के चुनावो मे काफी सफलता के साथ मजदूर-दल के विरुद्ध प्रयोग किया था। जुलाई १९४५ मे मजदूर दल की जो इतनी शानदार विजय हुई उसका यह भी एक कारण था। 'नेशन' के १६ अगस्त १९४१ अक मे मैने लिखा था—"मजदूर दल को इस बात का-विश्वास है कि वह उन उच्च और मध्यम वर्गो के लोगो को अपना समर्थक बनाता जारहा है जिन्होने कभी उसकी देश-भक्ति और योग्यता मे विश्वास नही किया।

मॉरिसन ५३ वर्ष के थे। उनकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण है और उनमे वाक् चातुरी और सहृदयता भी है। लन्दन के निवासी उनसे परिचित है। उनके साथी उन्हे 'अरबर्ट' या 'अर्बं' कहकर पुकारते है। पहले वह डाक ले जाया करते थे और बाद मे टेलीफोन आपरेटर रहे। फिर वह लन्दन कौन्टी कौसिल के नेता बने और १९४० मे चर्चिल मन्त्रि-मण्डल में गृह-मन्त्री नियुक्त हुए।

एक बार गृह-विभाग मे मॉरिसन के वेटिंग रूम मे बैठे-बैठे मैने अगीठी के सगमरमर के कार्निस पर एक लाल फ्रेम रखा हुआ देखा। वह लगभग पाच इच चौडा और ९ इच लम्बा था और उसके भीतर सफेद कागज पर मोटे मोटे लाल अक्षरो मे 'मृत्यु-दण्ड' लिखा हुआ था। उसी के नीचे कुछ नाम, तारीख आदि अकित थे। मैने सोचा कि उसे पास जाकर देखना मेरे लिए ठीक नही। किन्तु मै मॉरिसन के दफ्तर मे गया तो उन्होने अपनी सेक्रेटरी कुमारी मैक्डोनैल्ड से कहा—"इनको मृत्यु-दण्ड दिखा दो।" कुमारी मैक्डोनैल्ड ने मुझे १२ नामो की एक सूची दिखाई। प्रत्येक नाम के आगे जुर्म, दण्ड देने की तारीख, अपील की तारीख और अदालत का नाम भी लिखा हुआ था। पहले दो नाम लाल स्याही से काट दिये गये थे और उनके सामने अखीरी खाने मे लिखा हुआ था—"फासी दे दी गई।" मारिसन ने कहा—"शुरू-शुरू मे जब मेरे मन मे यह भावना उठा करती थी कि किसी मनुष्य के जीवन और मरण के बीच मेरे हस्ताक्षरो की ही रुकावट है तो मुझे अपने हस्ताक्षर करने मे बडी कठिनाई पडती थी। किन्तु बाद में मै इस निष्कर्ष पर पहुचा कि कुछ लोगो को मारना, विशषत युद्ध-काल मे, सरकार के लिए

अनिवार्य होता है और अन्तिम आदेश पर हस्ताक्षर करने में मै जितनी ही देर करूगा उतनी ही रातें मै जागकर बिताऊगा ।"

"केवल हस्ताक्षर ? अपना पूरा नाम भी नही लिखना पडता ? " मैने पूछा ।

"गृह-विभाग की परम्परा के अनुसार केवल हस्ताक्षर करने पडते है । पूरा नाम लिखने की आवश्यकता नही ।" मारिसन ने उत्तर दिया । सम्राट् द्वारा क्षमा की याचना अस्वीकृत हो जाने पर भी फाँसी देने वाले को मॉरिसन के हस्ताक्षर के लिए प्रतीक्षा करनी पडती है।

मॉरिसन एक योद्धा है । वह केवल अपनी बाई आँख से देखते है लेकिन देखते बहुत है । जिस निर्धनता के बीच उनका जन्म हुआ था उससे उन्हे घृणा है । वह सरल जीवन बिताते है और बनते नही । उनके मित्रो का कहना है कि यदि उनमे और अरनेस्ट बेविन मे चलती न होती तो वही मजदूर दल के नेता होते । चू कि ऐसी स्थिति मे इन दोनो मे से एक भी नेतृत्व नही ले सका था, क्लेमेंट एटली दल के नेता बने ।

अरनेस्ट बेविन एक लडाकू प्रकृति के व्यक्ति है । उनका शरीर बलिष्ठ है । वह कठोर और हठी है और अमीर-उमराओ की तुलना मे खुलम-खुल्ला मजदूरो को ज्यादा अच्छा समझते है । चर्चिल के मन्त्रि-मण्डल मे वह उत्पादन के सयोजक थे और यह बात उनके शत्रु भी मानते है कि उन्होने अपना काम बडी योग्यता के साथ किया । मन्त्रि-मण्डल मे सम्मिलित होने से पहले वह इग्लैण्ड के सबसे बड़े मजदूर-सगठन यातायात कर्मचारी सघ (ट्रान्सपोर्ट वर्कर्स यूनियन) के नेता थे और उसे उन्होने अपने फौलादी पजे में दबा रखा था । उनके साथ मेरी जो मुलाकात हुई वह मेरी सबसे असफल मुलाकात थी । मैने शायद युद्ध से पहले की ब्रिटिश विदेश-नीति की कुछ निंदा करके उनकी गलत रग मल दी थी । वह देश-भक्त थे और देश की निन्दा सहन नही कर सकते थे । मैने एक घटे तक इस बात की चेष्टा की कि लड़ने के बजाय वह मुझसे सीधे मुँह बातें करें, किंतु बाद मे निराश होकर मैने यह प्रयत्न छोड दिया ।

मजदूर-सघो और मजदूर-दल की भिन्न-भिन्न सस्थाओ के कम्युनिस्टो मे अपनी फूट और खिजलाहट पैदा करने वाली चालबाजियो से मॉरिसन बेविन और व्यापार बोर्ड के सभापति ह्यू डाल्टन को भी, जिन्हे मै उनकी विदेशी मामलो में दिलचस्पी के कारण कई वर्ष से जानता था, कम्युनिस्टो का कट्टर विरोधी बना दिया है । किंतु ब्रिटिश मजदूर-दल के नेताओ और दूसरे

कार्यकर्ताओ का साम्यवाद का विरोध मुख्यत उनके स्वतत्रता प्रेम के कारण कम हो जाता है। कितने ही मजदूर दली ऐसे है जिनका मार्क्स के सिद्धातो से विरोध है किंतु फिर भी वे समाजवाद मे विश्वास करते है। वे अपने देश के कुछ प्रधान उद्योगो और बैंको का राष्ट्रीय-करण चाहते है और शासन-सस्था का प्रयोग निर्धनो और अरक्षितो के त्राण के लिए करना चाहते है। उनके "समाजवाद" को हम दूसरे शब्दो मे "मानवीय कल्याण" कह सकते है। उनके लिए समाजवाद कोई सिद्धान्त नही बल्कि मनुष्य जाति की उन्नति का साधन-मात्र है।

मजदूर-दल वाले समाजवादी जनतत्री है। वे समाजवादी होते हुए भी जनतत्र मे विश्वास करते है और इसीलिए उन कम्युनिस्टो से भिन्न है जो समाजवादी तो है किंतु जनतत्र मे न तो विश्वास करते है न उसका अनुकरण ही करते। यही कारण है कि कम्युनिस्ट समाजवादी जनतत्रियो से घृणा करते है और जितना विरोध कम्युनिस्टो और मजदूर-दलीयो मे आपस मे होता है उतना उनका पूँजीवादियो से भी नही होता।

यह बात नही कि कम्युनिस्ट अत्यधिक वाम-पक्षी थे। बेवन का दल कम्युनिस्टो को अपने से अधिक दक्षिणपक्षी मानता था। बेवन, रसेल, स्ट्रास और उनके मित्रो को चर्चिल से अनुरक्ति नही थी। किन्तु कम्युनिस्टो का नारा था—"चर्चिल का अबाधित रूप से समर्थन करो।" लदन मे सूचना विभाग के बाहर मैने एक खुली सभा मे ब्रिटेन के प्रधान कम्युनिस्ट हैरी पोलिट को एक ऐसे झडे के नीचे खडे होकर बोलते देखा जिस पर "सरकार को मजबूत बनाओ" लिखा हुआ था। कितने ही उप-चुनावो मे कम्युनिस्टो न मजदूर उम्मीदवारो के विरोध मे अनुदारदलियो का समर्थन किया।

ब्रिटिश मजदूर-दल के बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति उसके वामपक्षी दल मे है और प्रभाव और शक्ति रखने वाले व्यक्ति दक्षिणपक्षी दल मे। क्लेमेन्ट एटली मजदूर-दल के "निर्जीव मध्य" माने जा सकते है। मजदूर-दल के अधिकाश सदस्य तो उनके दाहिने पक्ष मे है किन्तु जो लोग उनकी बाई ओर है वे उनके नीचे आग लगा सकते है। मैने एटली को कई बार पार्लमैण्ट मे अपने दफ्तर मे और लोक-सभा के भोजन-भवन मे बैठे हुए देखा था। (एटली को विरोधी दल के नेता होने के कारण सरकार की ओर से एक दफ्तर मिला हुआ था और वेतन भी मिलता था।) गृह-युद्ध के समय हम दोनो स्पेन मे थे। सन १९४१ मे मै उनसे नम्बर ११ डाउनिंग स्ट्रीट मे मिला। यह जगह चर्चिल के सरकारी निवास-स्थान (१० डाउनिंग स्ट्रीट) के

बिलकुल पडोस मे थी। एटली उन दिनो डिप्टी प्रधान मत्री थे और प्रधान मत्री चर्चिल प्रेजिडेट रूजवेल्ट से मिलने के लिए अन्ध महासागर की एक खाडी मे गये थे, जहाँ दोनो ने 'आगस्टो' नामक क्रूजर में बैठकर एटलाटिक अधिकारपत्र तैयार किया था। यह बात १४ अगस्त की है। उस दिन सवेरे समाचार पत्रो और रेडियो ने रहस्यपूर्ण ढग से और बडी ही गम्भीरता के साथ घोषणा की थी कि दोपहर बाद एटली एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करेगे। उस दिन मैने रिफार्म क्लब मे एक अग्रेज मित्र के साथ भोजन किया। अनुमान लगाये जा रहे थे कि एटली क्या कहेगे। कुछ लोगो को आशा थी कि अमेरिका युद्ध मे प्रवेश करेगा। अधिकाश लोगो का खयाल था कि रूज्र-वेल्ट और चर्चिल अपने युद्ध-लक्ष्यो की घोषणा करेगे। भोजन के बाद, एक दुबले-पतले बूढे आदमी ने गुशलखाने मे कहा—"लोग कहते है कि वे यह बताने जा रहे है कि हम किसलिए लड रहे है। यह बात तो हम स्वय जानते है। हम हिटलर को हराना चाहते है।" १५ आदमियो का एक दल बिलियर्ड के कमरे मे रेडियो पर कान लगाये बैठा था। एटली साधारण उत्तेजना-विहीन स्वर मे बोले। ब्रिटिश जनता को चर्चिल के प्रतिभाशाली रेडियो-भाषण सुनने की आदत पड गई थी। एटली ने एटलांटिक अधिकारपत्र की आठो बातें पढ कर सुना दी। उनके बोलना बन्द करते ही लोग उठकर जाने लगे। किसी ने ताला नही बजाई, किसी ने आलोचना नही की। कोई भी प्रभावित दिखाई नही दिया, सभी निराश-से हो गये। लोगो को आशा थी कि अमेरिका ब्रिटेन के कन्धे-से-कन्धा मिलाने के लिए युद्धक्षेत्र मे उतर आयेगा।

कलब से मै ११ डनिंग स्ट्रीट एटली के दफ्तर में गया। वह मेरी ओर फुर्ती के साथ हिलते हुए आये। मैने उनसे कहा कि आपका वक्तव्य रेडियो पर बिलकुल साफ-साफ सुनाई दिया। इस पर वह हर्षपूर्वक मुसकराये। इस बार वह न तो अपनी चुरट पी रहे थे, न 'अच्छा', 'ठीक' आदि कहकर उदासीनता ही दिखा रहे थे। वह बातचीत और टीका-टिप्पणी के लिए इच्छुक मालूम होते थे। हमने ब्रिटेन की गृह और विदेश-नीति के प्रति की जाने वाली अमेरिकन आलोचनाओ के सम्बन्ध मे बातचीत की।

एटली जमकर बहस करते है। यदि उन्हे कोई बात कहनी होती है तो वह उसपर दृढतापूर्वक जमे रहते है। दूसरे ऊब उठते है, किंतु वह अपने आडम्बरहीन ढग से बहस करते ही रहते हैं। उनके सम्बन्ध मे एलेन विलकिसन ने कहा है—"मै उन्हे मजदूर-दल की एक तूफानी बैठक मे देख चुका हूँ। वहाँ बडे-बडे भावुक वक्ता जोशीले भाषण दे रहे थे। सारे वाता-

वरण मे बिजली-सी दौड जाती थी, सकट निकट दिखाई देता था और पार्टी खतरे मे होती थी। इस पर एटली धीरे से उठते और अपने शान्त तर्कशील स्वर मे एक भावुकताशून्य सार्थक भाषण करते "मैने देखा है कि ऐसे भाषण के बाद २०० क्रुद्ध व्यक्ति कमरे से बाहर निकल गये और कुछ समझ मे नही आया कि आखिर झगडा हो किस बात पर रहा था।"

एटली मे चमत्कार लाना कठिन हैं। उनके मजदूर दली अनुयायी इस बात की चिन्ता नही करते, बल्कि चमत्कार हीन होने के कारण उनके ऊपर और भी अधिक विश्वास करते है। ब्रिटेन के मजदूर वर्ग को इस बात का भय है कि उपाधियो, धन और उपाधिधारियो के मिलन निमत्रण ऐसी सूक्ष्म रिश्वतें है जिनसे उनके नेता ठगे जा सकते है। एटली को वे इन सब बातो से बरी समझते है। उन्हे वे रैमजे मैकडोनैल्ड से, मज़दूर-दली प्रधानमत्री बनने के बाद १९३१ मे अनुदार दल मे शामिल हो गये थे, भिन्न समझते है।

हैरल्ड लास्की ने, जो ११ डाउनिंग स्ट्रीट मे एटली के सलाहकार का काम करते थे, मुझसे यह बात कही—"एक बार मै ह्वाइट हाउस मे रूजवेल्ट से बातें कर रहा था। रूजवेल्ट ने मुझसे पूछा कि क्या आप हमारे लन्दन-स्थित राजदूत बिन्घम को पसन्द करते है? मैने उत्तर दिया कि बिंघम से कभी मुलाकात नही हुई। इस पर प्रेज़िडेट रूजवेल्ट को आश्चर्य हुआ। मैने उन्हें बताया कि बिघम मजदूर दल के लोगो से ज्यादा नही मिलते-जुलते। इग्लैण्ड लौटने पर कुछ दिनो बाद मै अमेरिकन राजदूतालय मे भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया गया। वहा एटली भी थे। वह बिंघम की दाहिनी तरफ बैठे थे। बातचीत धीरे-धीरे चलती रही। बिंघम ने एटली से पूछा कि क्या इधर आपने कोई शिकार किया है? एटली ने उत्तर दिया कि अखीरी शिकार मैने १९१७ मे किया था। इस पर बिंघम ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—'शिकार मे आपने क्या मारा? 'जर्मनो को', एटली ने धीरे से उत्तर दिया।

एटली द्वारा रेडियो पर एटलाटिक अधिकारपत्र की घोषणा किये जाने के कई दिन बाद मैने सूचना-मत्री ब्रैण्डन ब्रेकन से कहा—"क्या आप इस बात से सहमत है कि यदि चर्चिल को अपनी ही इच्छा से काम करना होता तो वह एटलाटिक अधिकारपत्र को कभी प्रयोजनीय नही समझते? उन पर युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यो की घोषणा करने के लिए जनता की ओर से कोई दबाव नही था। अत उस घोषणा-पत्र की बात निश्चय ही रूजवेल्ट की ओर से आरम्भ की गई होगी, ब्रेकन मुझसे सहमत थे। चर्चिल को ब्रिटिश जनता की नैतिकता उत्तेजित करने के लिए अधिकारपत्र की आवश्यकता नही थी किन्तु रूज़वेल्ट

को इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

एटलांटिक अधिकारपत्र की दुर्बलता उसका आधारभूत कल्पना मे ही है। उसकी कल्पना शान्ति की स्थापना के लिए किसी बुनियादी सिद्धान्त के रूप मे नही की गई थी, बल्कि अमेरिका को मनोवैज्ञानिक रूप से युद्ध के लिए तैयार करने के साधन के रूप मे। वह शान्ति के लिए प्रचार मात्र था। जब शान्ति-निर्माण का कार्य वस्तुत आरम्भ हुआ तो शुरू शुरू मे उस अधिकारपत्र की उपेक्षा या अवज्ञा की गई और बाद मे वह बिलकुल भुला दिया गया।

ब्रिटेन के विदेश-मन्त्री ऐन्थनी ईडेनका युद्धोत्तर समम्याओ और सामाजिक प्रश्नो से चर्चिल की अपेक्षा अधिक सम्बन्ध था। किन्तु यदि उन्हें अमेरिका की दिलचस्पी का पता न लग गया होता तो सन् १९४१ मे वह भी शान्ति समझौते की इतनी अधिक बाते न कर सके होते जितनी कि उन्होने कीं। ईडेन जानते थे कि अमेरिका के अभी युद्ध मे प्रवेश न करने का एक कारण यह था कि ब्रिटेन अभी पिछलो हा लडाई लड रहा था। जो लोग यह समझते थे कि सन् १९१९ की शान्ति निरर्थक सिद्ध हो गई है वे किसी दूसरे युद्ध मे भाग लेने के इच्छुक नही थे और आगामी शान्ति के सम्बन्ध में कुछ आश्वासन चाहते थे।

ईडेन योग्य और मिलनसार व्यक्ति है। उनकी मिलनसारी का परिचय उनके आगे के ६ बडे-बडे दातो से मिलता है। चर्चिल के बाद इग्लैण्ड मे वही सबमे अधिक लोकप्रिय राजनीतिज्ञ थे वेही और चर्चिल के सम्भावित उत्तराधिकारी समझे जाते थे। (उस समय तक किसी ने मजदूर-दल के विजयी होने की कल्पना भी नही की थी)। ईडेन का जन्म १२ जून १९९७ को हुआ था। वह चर्चिल से बाद की पीढी के थे। उनका यह सिद्धात कि सामाजिक सुरक्षा के बिना शान्ति नही मिल सकती, २० वी सदी का सिद्धान्त है।

ऐन्थनी ईडेन के बडे भाई जॉन ईडेन प्रथम महासमर के पहले वर्ष मे हो युद्ध-मोर्चे पर मारे गये थे। दो साल बाद उनके दूसरे भाई ब्रिटिश जलसेना में काम आये थ। स्वय ईडेन उस युद्ध में लडे थे। इन घटनाओ और सेनाओ ने उन्हे नूतन विचार-धारा से सम्बद्ध कर दिया था। उनके बाबा बगाल के गवर्नर थे और उनकी मा का जन्म भारत मे हुआ था। उनका परिवार, ख्यातिप्राप्त, सम्पत्तिशाली और अनेक उपाधियो से विभूषित था। जिसकी एक शाखा मेरीलेंड और उत्तरी कैरोलीना के उपनिवेश में थी। इन बातो के कारण ईडेन अनुदार दल से सम्बद्ध थ।

अनुदार दल वाले ईडेन को सम्भवत. उनके अनेक "विचित्र" सामा-

जिक विचारो के कारण, दुर्बल समझते थे। मजदूर दल वाले भी उन्हे ऐसा ही समझते थे, क्योकि वह अनुदार विचार के थे, यद्यपि उन्हे राजनीति का और अच्छा ज्ञान होना चाहिए था।

ब्रिटेन के किसी अनुदारदली नवयुवक के माने यह नही है कि वह अन्य प्रौढ अनुदारदलियो की तुलना मे कम अनुदार है। सच पूछिये तो अनुदार पथ के दुर्ग पर २०वी सदी के निरन्तर प्रहारो के कारण उसके रक्षको मे को दुर्ग की दीवारो को और भी अधिक शक्तिशाली बनाने की प्रेरणा होती है। वे गड्ढा और भी गहरा कर लेते है जिससे कि उनके पैर आसानी से न उखड सके। ब्रैन्डेन ब्रैकन, जो कि सूचना विभाग के मन्त्री थे, युवकअनु दार-दलियो मे सबसे अधिक सैनिक प्रवृत्ति के थे। वह धनी, भावुक और तीक्ष्ण बुद्धि के थे। उन्हे मै लडाई के पहले से ही जानता था। युद्ध आरम्भ हो जाने पर सन् १९३९ मे जब मै पहली बार ब्रिटेन गया ता उन्होने मुझे चर्चिल से मिलाने मे सुविधा प्रदान की। इसके अलावा उन्होने कितने ही दूसरे अफसरो से भी मुलाकात कराने मे सहायता दी। १८ सितम्बर को उन्होने मुझे सूचना विभाग के नये और आधुनिक भवन में भोजन के अपने प्राइवेट कमरे मे भोजन करने के लिए बुलाया।

मेरे अलावा वहाँ तीन और व्यक्ति थे—ब्रैकन, उपनिवेशो के मन्त्री लार्ड मोइन और डोमीनियन सेक्रेटरी वाइकाउन्ट क्रेनबोर्न। तीनो के तीनो अनुदारदली थे। हम डेढ बजे इकट्ठे हुए थे और मै वहाँ से चार बजे वापिस आया। ब्रैकन ने मुझे बताया कि मोइन, जो कि एक शराब बनाने वाले परिवार के थे, युद्ध से पहले ही अवकाश ग्रहण कर चुके थे और अब अपनी रुचि के अनुकूल कितने हा सास्कृतिक कार्यों मे लगे हुए थ, जैसे औषधि, पूर्व ऐतिहासिक पशु आदि के अध्ययन मे। (बाद मे फिलिस्तीन के दो आतकवादियो ने उनकी हत्या कर दी।) क्रेनबोर्न के पिता सेलिसवेरी के अमीर थे और उनका परिवार पुराना प्रभावशाली सेसिल परिवार था।

बातचीत के दौरान में किसी ने म्यूनिख के आत्म-समर्पण की चर्चा छेडी। ब्रैकेन ने कहा—"म्यूनिख की सधि हमारे लिए सर्वनाश सिद्ध हुई। चेकोस्लोवेकिया को बचाने के लिए हमें लडना चाहिए था।"

"हमारे पास विमानबेधी तोपे नही थी" मोइन ने विरोध करते हुए कहा।

"वाल्टर! अगर तुम यह जानते कि सितम्बर १९३८ और सितम्बर १९३९ के बीच हमारे यहाँ हवाई जहाजो और बन्दूको के उत्पादन की गति

कितनी दयनीय थी तो तुम्हे पता चल जाता कि युद्ध मे प्रवेश करने से पहले कभी कोई राष्ट्र युद्ध की तैयारी नही करता" ब्रैकेन ने उत्तर दिया।

मैंने कहा कि म्यूनिखके सकट के समय रूस पश्चिमी देशो की ओर से लडता। ब्रैकेन मुझसे सहमत थे, उन्होने कहा—"पेरिस को जीतने मे हूणो ने—जर्मनो को वह सदा हूण ही कहा करते थे—चेक-टैंको का प्रयोग किया और चेकोस्लोवेकिया के स्कोडा कारखाने के बराबर जर्मनी मे कोई दूसरा कारखाना नही है।"

"फिर भी", चश्माधारी अध्ययनशील और खोखले मस्तिष्क वाले क्रनबोर्न ने कहा, "रूस से सलाह लिये बिना पोलैण्ड को सहायता देने का वचन देना मूर्खता का काम था।"

मैंने कहा कि "वह समस्या हल नही हो सकती थी, पोलैण्ड की काई भी सरकार रूसी सेना को अपने देश मे प्रवेश नही करने देती।"

"मै जानता हूँ कि स्पेन के मामले मे तुम्हारा मुझसे मतभेद है" ब्रैकेन ने क्रैनबोर्न से कहा। "मै समझता हू कि धार्मिक प्रश्नो के कारण हम वहाँ कुछ नही कर सकते थे। किंतु जब सितम्बर १९३० में नॉयन में ब्रिटिश और फ्रासीसी जल-सेना ने भूमध्यसागर मे गश्त लगाने और राज्यानुयायियो के पास शस्त्र ले जाने वाले जहाजो का इटैलियन पनडुब्बियो द्वारा डुबाया जाना रोकने का निश्चय किया तो उन्होने इस कार्य पर ध्यान के साथ विचार किया।

"चैम्बरलेन की तरह यह कहना कि इग्लैण्ड जैसी जल-सेना वाला राष्ट्र अपने जहाजो की रक्षा नही कर सकता, निस्सदेह एक मूर्खता की बात थी।" क्रैनबोर्न ने बीच में टोकते हुए कहा "हमें मुसोलिनी और फ्रैको से कह देना चाहिए था कि हम न केवल अपने जहाजो की रक्षा करेंगे बल्कि उन पर आक्रमण करने वाले जहाजो को डुबा भी देगे, चाहे उसका अर्थ युद्ध ही क्यो न समझा जाय।"

"हमें इटैलियनो को हब्श देश में ही रोक देना चाहिए था, तो फिर स्पेन की घटना घटती ही नही", ब्रैकेन ने कहा।

"इस बात में मै तुमसे सहमत हूँ", क्रैनबोर्न बोले।

मोइन इससे सहमत नही थे, वह सदा से ही तुष्टीकरण के पक्षपाती थे।

उन लोगो ने मुझसे स्टालिन के बारे में पूछा। मैंने बताया कि स्टालिन निर्दय और अवसरवादी है किन्तु है, एक महान् पुरुष।

"हैरी हॉपकिन्स की भी यही रिपोर्ट है", ब्रैकेन ने कहा।

"क्या स्टालिन प्रभावशाली है", क्रैनबोर्न ने पूछा।

"नही, देखने मे प्रभावशाली नही है", मैने उत्तर दिया।

मोइन ने मुझसे रूस की त्रासकारी घटनाओ की बात पूछी। मैने वहाँ की गुप्त पुलिस की कुछ बाते बताई।

"बुडेनी और वारोशिलाव जैसे जनरलो के बारे मे आपका क्या खयाल है ?" ब्रैकेन ने पूछा। "उन्होने तो अपने काम मे बडी अयोग्यता दिखाई है।"

"वे राजनैतिक जनरल है," मैने कहा। सेना-विभाग के दफ्तर का काम ऐसे जनरलो द्वारा होता है जिनके बारे मे रूस से बाहर के देशो को कुछ पता नही।"

"क्या आप समझते है कि टुखाचेवस्की ने सचमुच नाजियो के साथ षड्-यन्त्र रचने का अपराध किया था ?" ब्रैकेन ने पूछा।

"मुझे इस पर विश्वास नही, क्योकि मुझे इसका कोई प्रमाण नही मिला", मैने उत्तर दिया "वहा के सिपाही बहादुरी के साथ लडते रहे है। रूसी सिपाही सदा ही बहादुरी से लडे है, किंतु सेना विभाग के दफ्तर का काम निम्नकोटि का मालूम पडता है।"

"लेनिनग्राड मे उनका वानलीब से हमेशा मतभेद रहता है और मै समझता हू कि सैनिक दफ्तर मे उससे अच्छा काम करने वाला और कोई नही है।"

हमने इस बात पर विचार किया कि जाडे के दिनो मे रूस मे जर्मनो के लडने की सभावना है या नही। मैने यह मत प्रगट किया कि हमे यह नही सोचना चाहिए कि मौसम या प्रादेशिक कठिनाइयो के कारण रूस मे जाडो मे लडाई नही हो सकती। हमने तेल, वोल्गा के रक्षा-प्रबध और ऐसे ही ऐसे दूसरे विषयो पर भी विचार किया। मैने कहा "मै समझता हू कि हिटलर का रूस पर आक्रमण करने का उद्देश्य यह था कि इग्लैण्ड सधि की याचना करे। वह जानता है कि ब्रिटेन और अमेरिका को व्यापक रूप से युद्ध-सामग्री का उत्पादन आरम्भ करने मे अभी एक साल लगेगा। इस एक साल मे वह रूस को कुचल डालने और आपके सामने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देने की आशा रखता है कि आप जीत न सके और उससे सधि के लिए बात-चीत करे।"

"यह बात ठीक है", ब्रैकेन ने कहा। "हिटलर का समय निर्धारण बिलकुल ठीक था।"

तीन बजे क्रैनबोर्न और मोइन चले गये। ब्रैकेन उनके साथ लिफ्ट तक गये और मुझे रुकने को कह गये। हमने एक घटे और बातचीत की।

लिफ्ट से लौटकर ब्रैकेन ने मुझसे कहा कि ब्रिटिश सरकार को इस बात की निरन्तर चिंता लगी रहती है कि स्टालिन हिटलर से अलग सधि न कर ले। ऐसी सभावना पर सारे इग्लैण्ड मे चर्चा चल रही थी। ब्रैकेन ने मुझसे कहा—"युद्ध बैडमिटन के खेल की तरह है, जिसमे चिडिया कभी इधर और कभी उधर रहती है। पहले पूर्व मे पोलैंड मे युद्ध हुआ, बाद मे पश्चिम मे नीदरलैण्ड और फ्रास मे। अब फिर पूर्व मे रूस मे युद्ध हो रहा है। क्या इसके पश्चात् फिर पश्चिम में होगा?'

ब्रैकेन सोडा और हिस्की पीने लगे और मुझसे बोले कि रूस को युद्ध मे रत रखने के लिए ब्रिटेन को क्या करना चाहिए? मैने उत्तर दिया--"रूस को शस्त्र देते रहिए, इस बात की चेष्टा कीजिए कि तुर्की रूस के विरुद्ध जर्मनी के साथ न मिल जाय, स्पेन को नाजियो से बचाये रखिए और रूस को इस बात का विश्वास दिला दीजिए कि आप हिटलर को मनाये-बहलायेगे नही। मुझे विश्वास है कि रूस यह सोचता है कि आप चाहते है कि रूस और जर्मनी एक दूसरे को मार खाय।"

"लेकिन अब हम कदापि तुष्टीकरण को चेष्टा नही करेगे, हमने बहुत कुछ सीख लिया है," ब्रैकेन ने कहा।

हमने यूरोप मे दूसरा मोर्चा खोलने के प्रश्न पर भी विचार किया। इसके विरुद्ध जितने भी तर्क दिये जा सकते थे, ब्रैकेन ने दिये। ये ही तर्क मै कौसिल के लार्ड प्रेजिडेण्ट सर लार्ड एन्डरसन और मजदूर-मत्रियो से भी सुन चुका था। ये तर्क विशुद्ध सैनिक तर्क थे। अकेले ब्रिटेन के पास इतने आदमी और अस्त्र-शस्त्र नही थे कि वह जर्मनी के अधिकाश सैनिको के रूसियो के साथ भिडे रहने पर भी जर्मन-सेना का सामना कर सकता।

"सब कुछ होते हुए भी रूस के साथ हमारे सम्बन्ध पहले से अच्छे होते जारहे है," ब्रैकेन ने कहा। "शुरू-शुरू मे हमारी बिलकुल नही बनी। क्रिप्स उनके लिए अधिक वाम-पक्षी थे, वे डेवनशायर के ड्यूक या उनके ही जैसे किसी और व्यक्ति को ज्यादा पसन्द करते। किन्तु अब स्टालिन और क्रिप्स की खूब तन रही है। मोलाटाव के साथ उनके सम्बन्ध उतने अच्छे नही है, किन्तु मोलोटोव इतना महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नही है।"

क्रिप्स के बाद मैने वाशिगटन-स्थित ब्रिटिश राजदूत हैलीफैक्स की चर्चा की। "ओह! हैलीफैक्स और रूजवेल्ट तो बडे ही अच्छे मित्र है," ब्रैकेन ने कहा। "वे दोनो ही पादरियो मे विश्वास करते है और धर्म की बाते करते है।"

ब्रैकेन ने यह भी बताया कि मै ब्रिटिश व्याख्यानदाताओ को अमेरिका जाने से रोक रहा हू । "हम अमेरिका के लिए युद्ध के जितने निकट आने की आशा कर सकते है, वह उतना ही निकट आगया है," ब्रैकेन ने कहा, "किंतु हमे उससे सैनिको की आशा नही ।"

"इसी भरोसे पर तो हिटलर भी कूदता है," मैने कहा । 'एक ओर तो वह ब्रिटेन से सधि का प्रस्ताव करेगा और दूसरी ओर अमेरिका से कहेगा कि जब तक अमेरिका अपने ५० लाख आदमी लडाई मे नही झोकेगा तब तक ब्रिटेन नही जीत सकेगा ।"

"यह तो अमेरिका कभी नही करेगा," ब्रैकेन ने कहा ।

"तो, आपकी जीत रूस पर निर्भर है," मैने कहा ।

"इसीलिए तो हमसे जितना भी हो सक रहा है हम रूस की सहायता कर रहे है," ब्रैकेन ने कहा । आरम्भ मे स्टालिन ने हमसे प्रतिमास उतने हवाई जहाज माँगे जितने हम साल भर मे बना पाते है । जब हमने उसका स्वप्न भग किया तो उसने अपनी माग आधी कर दी । हमारे पास जितना भी है, हम सब उसे दे देंगे, चाहे उसके कारण हम स्वय सकट मे क्यो न पड जाय ? आप तो जानते ही है कि जब क्रिप्स ने स्टालिन को सभावित जर्मन आक्रमण की सूचना दी तो स्टालिन ने उस पर विश्वास करने से इन्कार किया ।"

"मै समझता हू कि स्टालिन को यह बात मालूम थी कि जर्मनी आक्रमण करने वाला है," मैने कहा "लेकिन उस समय रूस हिटलर के सामने औधे मुँह पडा था और अग्रेजो की इस आशा की पुष्टि नही करना चाहता था कि वह शीघ्र ही जर्मनी से लडेगे ।"

"तो आप समझते है कि स्टालिन को इस बात का पता था," ब्रैकेन ने कहा । "आप तो जानते ही है कि स्टालिन और चर्चिल की खूब बन रही है । मन्त्रिमण्डलो की बैठको मे चर्चिल यह कहकर कि आज चाचा जी के पास से मेरे पास तार आया है खुशी से फूल उठते है ।"

मैने पूछा कि क्या ब्रिटेन को रूसी-जर्मन युद्ध में काम आये हुए व्यक्तियो की ठीक-ठीक सख्या मालूम है । ब्रैकेन ने उत्तर मे बताया—"पहले दस सप्ताहो मे रूस के तीस लाख और जर्मनी के बीस लाख आदमी खेत रहे । कैदियो की सख्या अपेक्षाकृत कम है, उन्हे क्वार्टर नही दिये जाते । अमेरिकन जनरलो का खयाल है कि जर्मन-सेना अजेय है और रूस हार जायगा । वे मध्य पश्चिम के निवासी है और जर्मनो का आदर करते है । अगर रूस ने घुटने टेक दिये तो हम सबके लिए बहुत बुरा होगा ।"

"केवल इस कारण से कि रूस के पतन से आपके सर्वनाश की सम्भावना है, आपको उसे रोकने के लिए अधिक-से-अधिक धन-जन का व्यय करने के लिए तयार रहना चाहिए," मैने कहा।

"यदि इस कार्य मे हमारे एक लाख सैनिक भी मारे जाय तो हमे चिंता नही," ब्रैकेन ने कहा। "लेकिन क्या आपको इस बात का विश्वास है कि हम जो कुछ भी करेंगे उससे एक भी जर्मन-सैनिक पूरब से हटाया जा सकेगा? हिटलर ने फ्रांस और हालैण्ड में सेनाए सुरक्षित कर रखी है। हमने यह बात स्टालिन को समझा दी है और वह सन्तुष्ट है।"

ब्रैकेन को काम करना था, इसलिए मित्रतापूर्वक हाथ मिलाकर हम एक-दूसरे से अलग होगये।

सन् १९३९ की जर्मन-रूसी सधि और स्टालिन द्वारा सन् १९३५ में आरम्भ किये गये सैनिक विरोधी के उन्मूलन की घटनाओ की चर्चा की भाँति सन् १९३८ की म्यूनिख घटना की चर्चा भी, आजकल जहाँ राजनीतिक प्रवृत्ति वाले लोग इकट्ठे होते है, वही छिड जाती है। ब्रैकेन के भोज में म्यूनिख पर वाद-विवाद हुआ। २३ सितम्बर १९४१ को जब मै लण्डन में चेकोस्लोवेकिया के प्रेजिडेन्ट एडवर्ड बेनेश से मिला तो उनके मस्तिष्क मे भी सबसे अधिक म्यूनिख का ही ध्यान था।

"आप अच्छे तो है ?" मैने उनकी लदन-स्थित निर्वासित सरकार के प्रधान कार्यालय में प्रवेश करते हुए पूछा।

"हाँ, अच्छा हूँ," उन्होने उत्तर दिया।

"क्यो ?" मैने पूछा।

"पहले मै नरक में वास कर रहा था," उन्होन कहा, "लेकिन तब से अब स्थिति अच्छी है। अब हम युद्ध कर रहे है। हमारे लिए तो म्यूनिख के समय ही लडना अधिक उचित था। यह बात निश्चित रूप से नही कही जा सकती कि जर्मनी सुडेटनलैण्ड के मामले पर लड हो पडता। मुझे रिपोर्ट मिली थी कि वह उस समय तैयार नही था। लेकिन अगर वह हम पर आक्रमण करता भी तो हम चार या सम्भवत छ महीने तक उसे रोके रखते। हमारी सुडेटनलैण्ड की किलेबन्दियां मैजीनो लाइन से ज्यादा अच्छी थी।

"किंतु क्या आस्ट्रिया की ओर से आपकी सीमा खुली हुई नही थी ?" मैने पूछा।

"हाँ, वहाँ हमारी किलेबन्दी ज्यादा अच्छी नही थी, फिर भी खासी अच्छी थी," बेनेश ने उत्तर दिया। "यह तो ठीक है कि प्रेग नष्ट हो जाता,

किन्तु हम भी तो ड्रेसडेन और लिपज़िग को नष्ट कर देते और बर्लिन पर भी बमबारी करते। उसके बदले आज चेकोस्लोवेकिया के स्कोडा और दूसरे कारखानो मे इग्लैण्ड और रूस के विरुद्ध कार्य हो रहा है। हमारे पास १७०० हवाई जहाज थे जो कि जर्मनी के हवाई जहाजो से किसी भी तरह कम न थे। फ्रास के पास १५०० हवाई जहाज थे और इग्लैण्ड के पास १५०० से २००० तक। यह सभी हवाई जहाज प्रथम कोटि के थे। जर्मनी के पास ३००० विमान थे। चेकोस्लोवेकिया का पतन फ्रास की नैतिकता और फ्रास तथा रूस के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए भी बुरा था। म्यूनिख की घटना मानो यूरोप के लिए एक सर्वनाश थी। हम इस बात के लिए तैयार थे कि पहले वोहीमिय में लडे और फिर मोरेविया, स्लोवेकिया और रूमेनिया के रास्ते पीछे हटते हुए रूस चले जाय। रूमेनिया से रूसी सीमा की ओर एक रेलवे लाइन भी जाती थी।"

मैने डाक्टर बेनेश से यह लाइन नक्शे मे दिखाने को कहा और उन्होने दिखा दिया।

डाक्टर बेनेश ने फिर कहा—"दिखाने के लिए तो हमने यह लाइन रूमेनिया के लिए उधार बनवाई थी, लेकिन असल मे हमने अपने पीछे हटने का रास्ता तैयार कराया था। हमने अपने विमान-चालक भेजकर रूस के ३०० बम॰ वर्षक हवाई जहाज मगा लिये थे और हम भी उसी तरह के हवाई जहाज बनाना शुरू करने जा रहे थे। हवाई जहाज हमने रूमेनिया पर उडाये। इस मामले मे रूमेनिया के राजा कैरोल ने बडी मित्रता दिखाई और कहा कि हमसे पूछने की आवश्यकता नही। कैरोल रूमेनिया से होकर रूसी सेना को चेको-स्लोवेकिया आने देते लेकिन पोलैड ऐसा कभी नही करता। फिर भी रूसी सेना पोलैड को तटस्थ छोडकर रूमेनिया से होकर हमारे यहा आ सकती थी।"

डाक्टर बेनेश ने बातचीत मे और भी अधिक दिलचस्पी लेते हुए कहा—"सितम्बर १९३८ में रूसियो ने तीन बार सहायता देने का वचन दिया उस महीने के आरम्भ में हमारे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए रूस ने कहा कि अगर फ्रास सहायता देगा तो वह भी देगा। यह बात असतोष जनक थी, क्योकि हमे इस बात की आशका थी कि फ्रास सहायता नही देगा। इसलिए हमने रूस को फिर लिखा और उसने हमे सलाह दी कि यह मामला हम राष्ट्र-संघ में उठावे। किन्तु मुझे भय था कि राष्ट्र-सघ शायद ब्रिटेन और फ्रास के दबाव मे पडकर जर्मनी का सामना करने का विरोध करेगा और इस दशा मे यदि हम लडते तो कहा जाता कि हम सघ के निर्णय के विपरीत काम कर रहे है अन्त म रूस

ने हमसे कहा कि हम सब बातो का विचार छोडकर लड़ने लगे और उसने रूमेनिया से होकर और आकाश-मार्ग से भी सहायता देने का वचन दिया।"

उस भयकर सितम्बर की याद आते ही बेनेश के मुख की रेखाए और झुरिया और भी गहरी गड गई। ब्रिटेन और फ्रास की धमकी के कारण वह लडाई न करने के लिए रज़ामन्द हुए थे, किंतु म्यूनिख ने चेकोस्लोवेकिया का गला घोट दिया था। बेनेश को इस बात की पहले से आशका थी, किन्तु वह ब्रिटेन और फ्रास का विरोध नही कर सकते थे। "मै अपने देश को पूरा स्पेन नही बनाना चाहता था," उन्होने मुझसे कहा। "अगर हमने रूसी सहायता स्वीकार करके युद्ध आरम्भ कर दिया होता तो मै बोलशेविक कहलाता।"

बेनेश ने यह सकेत किया कि उनकी सरकार को तुष्टीकरण में विश्वास करने वाली जनतत्री सरकारो की ओर से भी विरोध का सामना करना पडा था। उन्होने आह भरते हुए कहा—"यदि लडाई ११ महीने बाद आरम्भ न होकर १९३८ मे ही शुरू हो गई होती, तो शायद फ्रास बच जाता। उस समय तक हिटलर की पश्चिमी दीवार तैयार नही हुई थी और स्पेन के राज-भक्त तब भी लड रहे थे।"

बेनेश मुझसे इस बात मे सहमत थे कि सन् १९३८ म ब्रिटेन और फ्रास का मिलकर हिटलर को तुष्ट करना वैसा ही था जैसा सन् १९३९ में स्टालिन का हिटलर को फुसलाना मनाना। "रूस को फ्रास की रक्षा करनी चाहिए थी," बेनेश ने अनिच्छा पूर्वक कहा।

एक दिन शनिवार को दोपहर बाद मे रेल से ब्रिटेन के हरे-भरे गावो की ओर चल पडा और एक छोटे से स्टेशन पर उतर गया। स्टेशन पर प्रथम महासमर के ब्रिटिश प्रधान मत्री डेविड लायडजार्ज के सेक्रेटरी श्री वाइट व्हाइट ने मेरा स्वागत किया। वहा से घर की ओर जाते समय उन्होने दो कैनेडि-यन सिपाहियो को भी मोटर मे चढा लिया था, जिन्होने कहा कि हमने लडाई मे नाम लिखवा रखा है, किन्तु महीनो तक निष्क्रिय पडे रहने के कारण ऊब गये है। उन्हे यह जानकर बडा रोमाच हुआ कि वे लायड जार्ज की मोटर मे बैठे हुए थे।

हिटलर से बरखटेसगैडेन मे मिलने के बाद लायड जार्ज ने चर्ट मे खलि-हानो के पास बने हुए अपने मकान की प्रधान बैठक को फिर से बनवाया था और उसमे हिटलर के 'घोसले' की तरह एक लम्बी चौडी खिडकी लगवा ली थी। घाटी का दृश्य जैसा कि मैने सन् १९३८ की यात्रा में देखा था उससे कही अधिक सुन्दर होगया था। लायड जार्ज के पियानो पर से हिटलर का वह

चित्र, जिस पर हिटलर ने अपने हस्ताक्षर किये थे, हटा लिया गया था। इसी तरह, ब्रिटेन के वाशिंगटन-स्थित भूतपूर्व राजदूत लार्ड लोदियन का चित्र भी, जो पहले लायड जार्ज के सेक्रेटरी रह चुके थे, हटा लिया गया था। फिर भी वहा फ्रेम मे जडे हुए कई चित्र थे, जिनमे से एक वुडरो विलसन का था। इस चित्र पर वुडरो विलसन ने लिखा था "अपने मित्र लायड जार्ज को"। अब भी उनके प्रेम या मित्रता मे कोई कमी नही आई थी। उनके अतिरिक्त, वहाँ फील्ड मार्शल स्मट्स, फाच, क्लेमेन्शियो, लार्ड बर्केनहेड और लायड जार्ज की माता के भी चित्र थे। एक लम्बी कोच पर साप्ताहिक "न्यू स्टेट्समैन" और "नेशन" की प्रतिया, अनेक वामपक्षी परचे, साप्ताहिक "पिक्चर पोस्ट" के कितने ही अक और कई पुस्तके पडी हुई थी।

लायड जार्ज कमरे मे कुछ कूदते हुए से आये। किन्तु वह इतने स्वस्थ नही मालूम पडते थे जितना कि मैने उन्हे १९३८ मे देखा था और उनके कोट के कालर पर पडने वाले लम्बे रूपहली बाल भी उतने चमकदार नही रह गये थे। उन्हे यह बात याद थी कि पिछली मुलाकात मे हमने मुख्यत स्पेन के सम्बन्ध मे बातचीत की थी। "अफसोस!" उन्होने कहा "यदि वहा हमने ठीक समय पर सावधानी से काम किया होता तो शायद यह लडाई रुक जाती। युद्ध स्पेन मे आरम्भ नही हुआ। वहा से पहले तो हब्श और मचूरिया मे लडाई हुई थी, किन्तु तानाशाहो को रोकने के लिए सबसे अच्छा अवसर स्पेन ही मे था।" इसके बाद लायड जार्ज फौरन रूस की चर्चा छेड बैठे। "स्टालिन सधि नही करेगा वह जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा?" लायड जार्ज ने दृढता के साथ कहा जोर इस बात पर जोर दिया कि रूस पर से जर्मन दबाव कम करने के लिए हमे फ्रास मे दूसरा मोर्चा खालना चाहिये। मैने उनसे कहा कि जितने भी मत्रियो से मेरी बातचीत हुई है, उन सबको, यहा तक कि चर्चिल के दाहिने हाथ सर जॉन ऐण्डरसन को भी, इस बात का विश्वास है कि ब्रिटेन इस समय दूसरा मार्चा खोलने मे समर्थ नहीं है।

"क्यो नही?" लायड जार्ज न तडाक से पूछा। "वे कहते है कि जहाज काफी नही है? वाह, जहाज का क्या बहाना! मार्च १९१८ मे जब हमारी फौजें फ्रास मे घुसी तो मैने खाद्य-कन्ट्रोलर को आदेश दिया कि सारे जहाज एटलाटिक से हटाकर उधर ले जाओ। हमने फ्रास मे फौज-पर-फौज उतार दी और स्थिति सभाल ली। अगर मै होता तो फ्रास मे एकदम एक या दो लाख सिपाही भेज देता। अगर हमारे पास सामान की कमी है तो समझ मे नही आता कि हम पिछले बारह महीनो से क्या करते रहे है। जून १९१५ और जुलाई

१९१६ के बीच मैने १३ लाख सैनिको को शस्त्र सज्जित करके फ्रास भेजा था।"

मैने कहा कि यह युद्ध पहले के युद्ध से भिन्न है, कि आज की सेनाओ को टैको-जैसे भारी अस्त्र-शस्त्रो और हवाई जहाजो की आवश्यकता है।

"टैक ?" लायड जार्ज ने कहा, "हॉ, इन्हे बनाने के लिए हमारे पास काफी समय था। विन्सटन मे साहसिकता की भावना नही है। पहले महा-समर मे गैलीपोली मे उन्हे जो अनुभव हुआ था उससे उनकी साहसिकता भग हो गई है। विन्सटन ने यूरोप मे कुछ करना नही चाहा। जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो चर्चिल रूजवेल्ट से मिलने चले गये। उन्होने अपने को दूर इसलिए रखा कि उन पर कुछ और करने के लिए दबाव न पड सके।"

इसी समय नौकरानी जलपान की ट्राली लेकर आई, जिस पर चाय डबलरोटी, मक्खन और शहद रखा हुआ था। लायड जार्ज ने मक्खन निकले हुए दूध का एक गिलास पिया और कहा—"मै यही पिया करता हूँ।" दूध पीते समय उनका हाथ कॉप रहा था। उनकी उम्र ७८ वर्ष की थी और उन्होने सिगरेट पीना छोड दिया था।

मैने एक रिपोर्ट की चर्चा की, जिसमे यह कहा गया था कि सन् १९३७ और १९३८ मे रूजवेल्ट ने विश्व की समस्या को हल करने के लिए हिटलर स्टालिन, मुसोलिनी, चेम्बरलेन और दलादिये को अमेरिका निमन्त्रित करने का विचार किया था।

"तो उन्होने ऐसा क्यो नही किया ? यह तो एक बडा ही अच्छा खयाल था," लायड जार्ज ने कहा। कुछ क्षण बाद उन्होने सन्देह की भावना प्रकट करते हुए कहा—"लेकिन नही, स्टालिन नही आता, वह लिटविनाव को भेज देता और तब हिटलर भी स्वय न आकर रिबनट्राप को भेजता और सम्मेलन का कोई नतीजा नही निकलता।"

मैने लायड जार्ज से एटलाटिक अधिकारपत्र के सम्बन्ध मे उनका मत पूछा।

"आखिर उस अधिकार-पत्र का मतलब क्या है ? मुक्त व्यापार ?"—लायड जार्ज ने कहा और 'ख-ख' की आवाज करते हुए आनन्द के साथ अपना सिर इधर-उधर हिलाया। उन्हे यह विश्वास नही था कि एटलाटिक अधिकार-पत्र का अर्थ मुक्त व्यापार है। उन्होने कहा—"उसमे और नि शस्त्रीकरण की बात भी तो है। वारसाई की सधि मे भी यही योजना थी किंतु वह काम नही कर सकी। फ्रासीसियो ने अपने को नि शस्त्र करने से इकार कर दिया। केवल ब्रिटेन और अमेरिकनो ने इसको महत्त्व प्रदान किया।"

लायड जार्ज के पुत्र ग्विलिम, जो पार्लमेंट के सदस्य और खाद्य-मत्री लार्ड वुलटन के सहकारी थे, अपनी लम्बी पत्नी और पुत्र डेविड के साथ चाय पीने आये। लायड जार्ज ने पूछा कि युद्ध मे प्रवेश करनेके सम्बन्ध मे अमेरिकनो की क्या भावना है। साथ-ही-साथ उन्होन कहा भी—"केवल वही देश, जो सचमुच युद्ध मे रत होता है, युद्ध के लिए पूर्ण रूप से उत्पादन करने और उसके श्रम को सहन करने को तैयार हो सकता है।"

"क्या आप समझते है कि अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने से पहले ही रूस का पतन हो जायगा," उन्होने चिन्ता के साथ पूछा। हमने इस आनुमानिक प्रश्न पर काफी देर तक विचार किया और फिर दूसरा सवाल उठाया— "क्या ब्रिटिश जर्मनी पर बम बरसाकर जीत सकता है ?"

"हुँह," लायड जार्ज ने कहा—"जिस तरह वे अपने हवाई आक्रमणो द्वारा हमें नही दबा सकते, उसी तरह हम भी उन पर बम बरसाकर उन्हे नही जीत सकते। यह काम बमो से नही हो सकता।"

मैने उनसे कहा कि मुझे ऐसा आभास हुआ है कि ब्रिटेन में रूस को सहायता देने की तात्कालिक आवश्यकता को अधिक महत्त्व नही दिया जा रहा है।

"मेरी समझ मे इसका कारण यह है कि हम पर बमबारी नही हो रही है", लायड जार्ज ने कहा। "लोग गोलाबारी की सीमा से बाहर निकलकर बडे प्रसन्न होते है। सन् १९१८ मे जब हमारी सेना फ्रास मे घुसी तो मै वहा क्लैमैन्स्यू से मिलने गया। मेरी उनकी मुलाकात ब्यूविले मे हुई। यह बात अप्रैल १९१८ की है। जब मै मोटर पर जा रहा था तो हमारी कुछ रेजीमेटे लाइन से बाहर आ रही थी। वे हफ्तो तक खाइयो मे पडे रहे थे और उन्होने जर्मनो के तमाचे भी खूब खाये थे। वे युद्ध-भूमि से अधिक पीछे नही थे, वहाँ बन्दूको के छूटने की आवाज़ सुनाई दे रही थी फिर भी उनके चेहरो पर रोशनी थी और वे खुश हो-होकर गा रहे थे।"

मैने लायड जार्ज से पूछा कि क्या आपकी समझ मे इग्लैण्ड अभी दो साल और डटा रह सकता है "क्यो नही ?" उन्होने छूटते ही उत्तर दिया। जैसा कि आप जानते है, मुझे आक्रमण करने मे विश्वास नही। बहुत कुछ रूस पर निर्भर है। उसे धन-जन की भीषण क्षति उठानी पडी है। वे आक्रमण नही बल्कि प्रत्याक्रमण करके लडते रहे है, और इस प्रकार लडना हमेशा मँहगा होता है। जर्मनो ने टैको और यन्त्रो का उपयोग किया है, जिनके कारण मनुष्यो की मृत्यु कम होती है। पिछले दिनो मे चर्चिल के साथ बैठा-

बैठा प्रथम महासमर की मृत्यु-सख्या पर विचार कर रहा था और हमे यह बात याद थी कि उस समय जब हमे अपने सैनिक सदर मुकाम से जर्मन क्षति के सम्बन्ध मे आई हुई सूचना पर शङ्का होती थी तो हम उन्हे जर्मनो की रिपोर्टो से मिलाते थे और तब पता चलता था कि जर्मनो की रिपोर्टे ज्यादा सही है। उदाहरण के लिए, पास चेन्डीकल की लडाई मे, हेग ने रिपोर्ट दी थी कि जर्मनी के ५८ डिवीजनो का सफाया हो गया है, लेकिन हम जानते थे कि यह रिपोर्ट गलत है और अब हमे मालूम है कि जर्मन-सैनिको की मृत्यु-सख्या का ज्यादा सच्चा विवरण जर्मन विज्ञपतियो मे मिला करता था।"—हेग पिछले महासमर मे ब्रिटेन के प्रधान सेनापति थे, जिन्हे लायड जार्ज बहुत नापसन्द करते थे।

लायड जार्ज के पुत्र ग्विलिन, जो अब तक बिलकुल चुप थे, बोले—जहा तक इस युद्ध का प्रश्न है, जर्मनी अपनी यू-बोटो द्वारा हमारे जहाजो के डुबाये जाने के सम्बन्ध मे झूठा समाचार दे रहा है।" लायड जार्ज ने यह बात मान ली और यह भी स्वीकार किया कि नाजी अपनी हवाई क्षति को भी कम करके बताते है।

इसके बाद वह फिर अमेरिका की बात करने लगे और बोले—"जीत अमेरिका के औद्योगिक उत्पादन पर निर्भर है।" मैने उन्हे बताया कि वहा का उत्पादन लगातार और तेजी के साथ बढ रहा है। इसे स्वीकार करते हुए उन्होने कहा—"हॉ, लेकिन पिछले महासमर में अमेरिका ने इतना अच्छा काम नही किया। अमेरिकन फौजें फ्रासीसी बन्दूके इस्तेमाल कर रही थी और कही-कही तो ब्रिटिश बन्दूके भी, क्योकि वह अस्त्र-शस्त्र से पर्याप्त रूप से सज्जित हुए बिना ही यूरोप मे आगई थी।"—मैने उनसे कहा कि ऐसी बात इस युद्ध मे नही होगा।

मेरी दृष्टि मे लायड जार्ज इतिहास की साकार मूर्ति थे। समस्याओ को समझने की उनमे आश्चर्यजनक क्षमता थी और जितनी विचार-शक्ति उनमे थी उतनी शायद मन्त्रिमण्डल के तीन सदस्यो मे एक साथ मिला देने पर भी नही हो सकती। हमारी बात कभी अमेरिका और कभी ब्रिटेन पर चलती रही। उन्हे अमेरिका के सम्बन्ध मे बातचीत करना ज्यादा अच्छा लगता था और मै चाहता था कि वह इग्लैण्ड की भी बाते करे। अमेरिका की बाबत बातचीत करते हुए उन्होने मुझसे उन लोगो के बारे मे पूछा जो अमेरिका का युद्ध से अलग रखने के पक्ष में थे।

एक क्षण रुककर मैने कहा—"आपके मन्त्रिमण्डल से बडे आदमी

क्यो नही है ?"

"तुम्हारे मे क्यो नही है !" उन्होने तपाक से जवाब दिया। न तो रूजवेल्ट के ही मन्त्रिमण्डल मे कोई बडा आदमी है, न विल्सन के मन्त्रि-मण्डल में ही था।"

"क्या इसका कारण यह है कि चर्चिल को किसी प्रतिद्वन्द्वी को प्रोत्सा-हन देने मे भय लगता है !" "मैंने कहा—"सभी बडे आदमियो को अपने आस-पास बडे आदमियो को रहने देने मे भय लगता है।"

"नही, अगर वह आदमी सचमुच बडा है तो उसे भय नही लगेगा", लायड जार्ज ने कहा। मुझे विश्वास है कि उनका सकेत अपने से था।

"चर्चिल को प्रतिद्वद्वियो से डरने की कोई ज़रूरत नही," लायड जार्ज ने फिर कहा, 'देश उन्हे चाहता है और केवल उन्हे ही चाहता है।"

इस बातचीत से उनका ध्यान रूस की ओर खिच गया। उन्होने कहा--"रूसी सेना विभाग का काम ठीक चलता नही मालूम होता है। बुडेनी एक साहसी घुडसवार अफसर है।"

'बुडेनी सार्जेन्ट-मेजर है और उन्हे मार्शल की पदवी प्राप्त है," मैंने कहा। इस पर लायड जार्ज हँसे और उन्होने मुझसे पूछा कि स्टालिन कैसा आदमी है। कुछ देर बाद वह उठ खडे हुए और उन्होने मुझसे अपने मुला-कातियो के रजिस्टर मे हस्ताक्षर करने के लिए कहा। मुझसे पहले ब्रिटेन के पीछे पडे रहनेवाले दो पत्रकारो—माइकल फुट और फ्रैंक ओवेन—के हस्ताक्षर थे। पृष्ठ के सिरे पर रूसी राजदूत ईवान मैस्की और श्रीमती मैस्की के दस्त-खत थे।

ग्विलिम और उनकी पत्नी के साथमै कुछ देर खेत मे घूमता रहा। हमने कुछ सेव और बेर तोडकर खाये। एक वाटिका के अन्दर हमे लार्ड जायज हरे रग की ऊनी टोपी पहने चुस्ती के साथ टहलते और अपनी जायदाद निरीक्षण करते हुए मिले। वह एक महान् व्यक्ति मालूम होते थे, जैसे कि वह वस्तुत है।

मै मकान के पीछे के लम्बे-चौडे उद्यान मे बैठकर धूप ले रहा था और रविवार के समाचारपत्र पढ रहा था। उस दिन कही से टेलीफोन नही आया। मेरे मेजबान और लन्दन के दूसरे व्यक्ति गॉव में छुट्टी मनाने गये थे। घर के अन्दर से बी० बी० सी० द्वारा ब्राडकास्ट किये जाने वाले शास्त्रीय सगीत की ध्वनि आ रही थी। एला अन्दर बैठी हुई सुन रही थी और मै भी बीच-बीच में अख़बार पढना रोककर सुनने लगता था। लम्बे-चौड़े मैदान के किनारे-किनारे

रग-बिरगे सुन्दर फूल उगे हुए थ। उस दिन ७ सितम्बर था । वातावरण शात और सुखद था। ठीक एक साल पहले ३५० नाजी विमान टेम्स नदी पर उडते हुए आये थे और उन्होने ब्रिटिश आकाश-सेना के परदे को फाडकर लण्डन पर बमो के रूप मे मृत्यु की वर्षा की थी। उसी दिन जर्मन के एक सौ तीन आक्रमण विमान मारकर गिरा लिये गये थे । जर्मनी वाले इससे स्तम्भित रह गये थे। फिर भी लण्डन के आकाश-मार्ग पर नियत्रण स्थापित करने के लिए ३१ अक्टूबर तक लडाई चलती रही थी । इसके बाद जर्मन हवाई बेडा थककर पीछे हट गया था किंतु बीच-बीच मे उसके आक्रमण होते ही रहे। १० मई १९४१ को उसने जो आक्रमण किया वह उसका सबसे भीषण आक्रमण था। नागरिक रक्षा के अधिकारी सर वैरेन फिशर ने मुझे बताया कि इस प्रकार के १० आक्रमणो से लण्डन पूरा-का पूरा नष्ट हो सकता था ।

उस भीषण आक्रमण के ६ सप्ताह बाद जर्मन आकाशी-सेना ने अपना ध्यान रूस पर केन्द्रित करना आरम्भ किया। इग्लैण्ड मे मै ६ हफ्ते ठहरा। किन्तु इस बीच केवल एक—और वह भी बहुत ही हलका-सा—आक्रमण हुआ। फिर भी रक्षा का कार्य करने वाले लोग सदा सावधान रहे। हजारो रुकावट डालने वाले गुब्बारे जो सामने से देखने मे तिमिगल—ह्वेल मछली—जैसे और और पीछे से सेवार-जैसे मालूम देते थे आकाश में ऊँचे उडते रहे । वे एक दूसरे से लोहे के लम्बे और मजबूत तारो मे बँधे हुए थे और ये तार ज़मीन पर भारी-भारी ट्रको मे जकडे हुए थे। ये गुब्बारे सख्या मे इतने अधिक थे कि किसी भी आक्रामक विमान को उनके जाल के अदर प्रवेश करने का साहस नही होता था क्योकि ऐसा करने से उसके तार से कटकर दो टुकडे हो जाने का डर था। अत जर्मन-विमानो को विमानबेधो तोपो की पहुँच के भीतर आते ही रुक जाना पडता था।

फिर भी एक विस्तृत लक्ष्य-क्षेत्र बिलकुल सुरक्षित नही रह सकता । सन् १९४० मे एक दिन जर्मनी के तीन बम जमीन के नीचे ४० फीट तक घुस गये, जहाँ सैकडो व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए छिपे हुए थे। विक्टोरिया जिले मे तो एक बम ने ५८ हजार टेलीफोनो के तार नष्ट-भ्रष्ट कर डाले। जनवरी १९४१ में लन्दन मे गैस के प्रधान तार ८ हजार जगहो पर टूट-फूट गए । अक्टूबर १९४० में बमो ने दक्षिणी रेलवे को अस्त व्यस्त कर दिया था। जर्मन-आक्रमणो के कारण ब्रिटेन के २० लाख मकान पूर्णत या अशत नष्ट-भ्रष्ट हो गये।

किन्तु यह परिच्छेद अब समाप्त हो चुका था। जब मैने उस युद्ध-

कालीन शान्त रविवार के दिन 'आवजर्वर' पढ़ना आरम्भ किया तो कुछ मध्यम श्रेणी के ब्रिटिश बम-वर्षक पूर्व की ओर जाते हुए दिखाई दिये और जितनी देर मे मैने अपना भोजन और चार समाचार पत्रो का पढना समाप्त किया उतनी देर मे वे जर्मनी और नाजी कृत यूरोप पर बम बरसाकर धड-धडाते हुए वापस आगये। इग्लैण्ड ने पाँसा पलट दिया था क्योकि जर्मनी रूस की ओर झुक गया था। यह विराम शाति उस समय तक कायम रही, जब तक कि जर्मनी के नये प्रकार के बमो ने हिटलर के सामने यह स्वप्न एक बार फिर लाकर खडहर नही कर दिया कि इग्लैड पर आकाश-मार्ग से आक्रमण करके युद्ध जीता जा सकता है।

सन् १९४१ की गर्मियो में भा, जब जर्मनी के वैमानिक आक्रमण नही हो रहे थे, हजारो बूढी औरते सरकार द्वारा बनाये गये, लदन के तहखानो मे लकड़ी पर सोया करती थी। उन्हें इस बात का बडा भय था कि कही घर में सोते-सोते ही बम न बरस पडें। जहाँ बमो ने मकानो के ब्लाक के ब्लाक धराशायी कर दिये थे, जैसा कि लन्दन के की ईस्टहैम और दूसरे कारखानो के क्षेत्रो में हुआ था, वहा की सारी-की-सारी आबादी तहखानो में सोती ही नही बल्कि रहती भी थी। इन तहखानो मे पानी के नलो, पाखानों, कैन्टीनो, बिजली और रेडियो तक का प्रबन्ध था लोग पटरियो पर दो-दो या तीन-तीन की पक्ति में सोते थे। बच्चे नीचे की पक्ति मे सुलाये जाते थे। सबेरे सब बच्चे स्कूल भेज दिये जाते थे और दोपहर बाद वे फिर इन बदबूदार और शोर-गुल से भरी हुई गुफाओ में आ जाते थे जहा हमेशा कोई-न-कोई रहता ही था। स्त्रियाँ मुझे यह बताते हुए कि वर्तमान स्थिति मे उनका जीवन कितना अनियमित हो गया है, रो पडती थी। लन्दनने युद्ध का कीमत न केवल मनुष्यो के प्राणो, टूटे हुए घरो, कम भोजनो, और बुरे कपडो से चुकाई, बल्कि उसका प्रभाव जनता की स्नायुओ पर भी पडा। और जब असर स्नायु पर पडता है तो उसकी पीडा धीरे-धीरे मृत्यु तक भुगतनी पडती है और अगली पीढी भी उससे वचित नही रह पाती। यार्क, बाथ, राटरडम, शेफील्ड और ब्रिटेन के दूसरे छोटे-छोटे कस्बो मे, जहा मै गया स्थिति कुछ अधिक भिन्न होते हुए भी अच्छी थी। यूरोप मे हालत बहुत बुरी थी।

लडाई के बाद का यूरोप भयभीत स्त्रियो, पुरुषो और बच्चो का यूरोप है। अपने देशो का पुर्ननिर्माण इन्ही स्त्रियो, पुरुषो और बच्चो को करना है। साथ-ही साथ, उन्हे अपना भी पुर्ननिर्माण करना है और मानवीय भद्रता के प्रति अपने विश्वास को पुन. जाग्रत करना है।

ब्रिस्टल से मै हवाई जहाज मे लिसबन गया वहा न्यूयार्क जाने वाले हवाई जहाज मे स्थान पा जाने के लिए मुझे दो दिन तक प्रतीक्षा करनी पडी। मै जानता था कि जाने का प्रबध दो चार दिनो मे हो ही जायगा, फिर भी बडा क्रोध आ रहा था। एक ऐसी जगह पर रहने मे, जहा मै रहना नही चाहता था, बडा भार मालूम हो रहा था। वहा हजारो शरणागत महीनो से प्रतीक्षा कर रहे थे। इनमे से अधिकाश यहूदी थे और उन्हे इस बात का भरोसा नही था कि वे कभी वहा से निकल भी पायगे या नही। जैसा कि अमेरिका के विदेशी सम्वाददाता, जे ऐलेन, ने एक बार कहा था, इन शरणागतो को यह बात मालूम थी कि हिटलर पुर्तगाल पर पलक मारते अधिकार कर सकता है।

एक दिन मै अमेरिकन आकाश-सेना के कप्तान गेलवॉर्डेन (जो पहले "शिकागो टाइम्स" मे थे) "वाशिगटन" पोस्ट के मालिक यू जान मेयर सैमहरवर्ट, श्रीमती हरवर्ट और ब्रिटश राजदूतालय के मैकल स्टूअर्ट के साथ साड की लडाई देखने के लिए एक गाव मे गया। स्पेनिश की लडाई बडी रोमाचकारी होती है और पुर्तगीज साड की लडाई नीरस साड से लडने वाला व्यक्ति घोडे पर चढकर लडता है। स्पेन में तो हर एक सॉड मार दिया जाता है, किंतु पुर्तगाल मे उसके गिर जाने के बाद कई वीर पुरुष उसके सिर, उसकी पूछ और दूसरे हिस्सो को पकडकर उसे खीचते हुए ले जाते है।

गलियो मे हम जो पुर्तगाज मिले वे ब्रिटेन के समथक थे। यह बात उनके कोटो में लगे हुए विजय सूचक बटनो से स्पष्ट हो रही थी और उन पर जर्मनो की पराजय की अच्छी प्रतिक्रिया होइ रही थी। तानाशाही शालाजार की धार्मिक फाशिस्ट सरकार की जमता ब्रिटेन का समर्थन इसलिए करता थी कि उसे यह पता था कि पुर्तगाल के प्रति इग्लैण्ड का कोई नीचता पूर्ण आयोजन नही है। फिर भी उसे इस बात की चिन्ता थी कि यदि यूरोप मे फासिस्ट विरोधियो की विजय हो गई तो शायद वह कायम न रह सके। इसलिए इग्लैण्ड और जर्मनी दोनो के साथ चाल चलता रहे और दोनो को अपना माल बेचकर पैसा कमाता रहा।

लिस्बन मे नाजी पुस्तके और अग्रेजी अखबार दोनो ही कोनो की अनेक दूकानो पर बिका करते थे। मैने जर्मनी के दैनिक और साप्ताहिक पत्रो को पढा उन सबमें यही राग अलापा गया था कि रूस मे जर्मनी को बडीकठिनाइया भोगनी पड रही है, उन्हे कीचड, गीली मिट्टी की जमीन रेतीला सड़को और यातायात सम्बन्धी दूसरी असुविधाओ का सामना करना पड़

रहा है। सब जगह यही बात स्वीकार की गई थी कि जर्मनी के सैनिक अधिकारियो ने रूस की शक्ति के सम्बन्ध मे जो अनुमान लगाया था, उससे वह अधिक शक्तिशाली है।

गलियो, भोजनालयो और सिनेमा-घरो मे मैने जो पुर्तगाल देखे उनमें स्पेनियार्डों की अपेक्षा कम तेज, शक्ति और हास्यवृत्ति थी। किन्तु स्पेनियार्डों का तरह वे भी बहुत शोर-गुल करते थे और एक दूसरे की पीठ पर मारते भी थे। वहा -पुरुषही-पुरुष दिखाई पडते थे। स्त्रिया होटलो और विश्रामालयो मे बहुत ही कम जाती थी।

: ७:

भविष्य-दर्शन

"मै रविवार को सवेरे ९ बज यूरोप से रवाना हुआ और सोमवार शाम को ३ बजे न्यूयार्क पहुँच गया।" न्यूकासल (पेन्सिलवेनिया) मे स्टेट-शिक्षक-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ उसमे लोग हाँफते हुए-से दिखाई दिये। सबके हृदय मे यह भावना बैठी हुई थी कि अब युद्ध होने ही वाला है।

२४ अक्तूबर को इन शिक्षको से मैंने कहा—"मै यूरोप से युद्ध-स्थिति का विचारपूर्वक अध्ययन करके लौटा हूँ और उसका साराश यह है—ब्रिटेन जीत नही सकता। शायद जर्मनी भी नही जीत सकता और ब्रिटेन समझौता करके युद्ध समाप्त नही करेगा। तो इसका निष्कर्ष क्या निकला ? यही कि केवल अमेरिका मे ही युद्ध को समाप्त करने की क्षमता है और वह अधिनायको को हराकर ऐसा कर सकता है। इसलिए यदि हम युद्ध नही करेंगे तो लडाई लम्बी होती जायगी।" मेरा भाषण एक स्टेनोग्राफर ने लिखा था और उसकी एक प्रति मेरे पास भेज दी थी, जो मेरे पास है।

हमारे यहाँ युद्ध में भाग लेने और न लेने के समर्थको के बीच जो वादविवाद चल रहा था उसका अन्त जापान ने ही कर डाला। पर्ल हार्बर में जापान न हमें बतला दिया कि ससार मे वायुयानो की कमी नही और हम बीसवी सदी में रह रहे है।

७ दिसम्बर १९४१ की शाम को मै आर्थर उपहम पोप से मिला। ये महाशय ईरानी मामलो के विशेषज्ञ है और रूस के सम्बन्ध में सम्पादक के नाम पत्र लिखा करते थे। उनके यहाँ गद्देदार कुर्सियो पर बैठकर हमने चाय पी। जब मै वापस जा रहा था तो वर्दीधारी लिफ्ट चलाने वाले ने कहा—"हवाई द्वीप मे जापानियो ने हम पर हमला कर दिया है।" उसी दिन शाम को न्यूयार्क से सिनसिनाटी जाती हुई गाडी मे बैठे हुए नागरिक यात्रियो ने रेडियो सुना। उनकी ख़ामोशी से उनके विषाद का पता चल रहा था।

पर्लहार्बर पर आक्रमण कर निस्सन्देह जापान ने एक आत्मघातक भूल की। वह ऐसा करने के लिए क्यो प्रेरित हुआ ? ७ दिसम्बर १९४१ के प्रहार का उद्देश्य निश्चय ही अमेरिकन जल-सेना को बरबाद करने या उसे बुरी तरह से पगु बना देने का था। क्या जापान ने अमेरिका की औद्योगिक क्षमता को सचमुच इतना अल्प समझा था कि उसे यह आशा ही नही थी कि हम शीघ्र ही इस हानि को पूरा न कर सकेगे ? क्या उसने अमेरिका के उत्साह को इतना गिरा हुआ मान लिया था कि हम उस प्रहार को चुपचाप सहन कर लेगे और आगे कुछ कार्रवाई ही नही करेगे ? क्या वास्तव मे टोकियो वाले इतने मूर्ख थे ?

सवाल यह नही कि जापानियो ने डच पूर्वी इन्डीज, मलाया और बर्मा पर आक्रमण क्यो किया , वहॉ उन्होने दो ऐसे साम्राज्यो की बहुमूल्य सम्पत्ति को हथियाने का सुअवसर देखा जो यूरोपीय युद्ध के कारण क्षीण बन गए थे। किन्तु साथ-ही-साथ उन्होने अमेरिका को क्यो लडाई मे घसीटा ? अपने विरुद्ध बेमतलब अमरीकी सैन्य-शक्ति को जुटाने मे क्या बुद्धिमत्ता थी? टोकियो के सामन दो रास्ते थे, या तो वह उत्तर दिशा मे आगे बढकर सोवियत् रूस के क्षेत्रो पर अधिकार कर सकता था, या दक्षिण की ओर बढ कर ब्रिटेन, हालैड और फ्रास की भूमि को हथिया सकता था। जापान के बहुत से राजनीतिक विचारक रूस को ही अपना प्रधान सकट मानते थे और वे चाहते थे कि जैसे ही सन् १९४१ के अक्तूबर, नवम्बर और दिसम्बर के महीनो मे हिटलर मास्को की ओर बढे और यूक्रेन के औद्योगिक प्रदेश मे प्रवेश करे वैसे ही वह भी साइबेरिया मे जा घुसे। यह कार्रवाई जापान की थल-सेना द्वारा की जाती।

उधर जापान की जल-सेना यह कह सकती थी कि दक्षिण की ओर बढने से जापान को जितना कच्चा माल और जन-बल प्राप्त हो सकेगा उतना रूस को अपने दूर पूरब के क्षेत्रो मे प्राप्त नही है और साथ ही चीन का युद्ध भी समाप्त हो सकेगा।

इससे यह तो पता लग जाता है कि जापान दक्षिण मे हागकाग, मलाया और सिगापुर की ओर क्यो बढा, किंतु यह नही मालूम हो पाता कि जापान ने अमेरिका को लडाई मे कूदने के लिए क्यो प्रेरित किया ! क्या सहज विजय की आशा से जापान के समुद्री अधिकारियो की दृष्टि धुँधली पड गई थी ? यह हो सकता है। उन्मत्त तो आखिर उन्मत्त ही होते है क्योकि वे अपने कार्यों के परिणाम की परवाह नही करते। पर्ल हार्बर की भूल पहली भूल नही थी। ऐसी

भूलें तो शक्ति-उन्मत्त अधिकारी करते ही आये हैं। हो सकता है कि मध्य-कालीन मनोवृत्ति वाले जापानी योद्धा आधुनिक ढग के शस्त्रो से सुलज्जित होने के कारण पथभ्रष्ट होगये हो।

फिर भी पर्ल हार्बर पर आक्रमण करना जापान के लिए तर्क की दृष्टि से आवश्यक था। यदि जापान को पीछे रहना था तो उसके लिए यह आवश्यक था कि १९४१ के ऐसे अवसर पर जब कि उसके सुदूर पूर्व के प्रतिद्वद्वी और सम्भावित शिकार—ब्रिटेन, हालैंड और रूस—हिटलर के साथ लडाई मे बुरी तरह उलझ हुए थे, गम्भीर क्षति उठा चुके थे, तो वह कही-न-कही प्रहार करता।

जब फ्रास हार चुका था और इग्लैंड के पैर लडाखडा रहे थे, तब जून १९४० मे जापान के लिए दक्षिण की ओर बढने का अच्छा अवसर होता। तैयार न होने के कारण ही जापान सितम्बर १९४० मे फ्रासीसी हिन्द-चीन को हडपने के अलावा कुछ और नही कर सका। रूस दूसरा कारण था। जब कि हिटलर और जगह उलझा हुआ था, तटस्थ रूस यूरोप मे जारकालीन प्रदेशो पर अधिकार करने की ओर कदम उठा चुका था। एशिया मे कितने ही जारकालीन प्रदेशो पर जापान का अधिकार था। टोकियो ने सोचा कि यदि वह दक्षिण मे बढा तो कही मास्को उक्त प्रदेशो पर भी फिर से अधिकार करने का प्रयत्न न करने लगे। किन्तु अप्रैल १९४१ में रूस और जापान मे सधि हो जाने से और उसी वर्ष जून में हिटलर के रूस पर आक्रमण करने से दूर पूरब में रूसी कार्रवाई का भय जाता रहा। इस घटना ने जापान की दिसम्बर १९४१ की महान् कार्रवाई के लिए रास्ता साफ कर दिया।

१९३९, १९४० और १९४१ में जापान और अमेरिका के कूटनीतिक सम्बन्ध लगातार बिगडते गये थ। १० जुलाई १९३९ को अमेरिका के विदेश मत्री श्री कार्डेल हल ने वाशिंगटन में जापानी राजदूत से कहा कि अमेरिका सम्पूर्ण चीन और प्रशान्त सागर के द्वीपो के साथ वह व्यवहार नही देखना चाहता जो मचूरिया के साथ हुआ था। इस के साथ-साथ ही अमेरिका ने जापान पर आर्थिक दबाव डालना भी शुरू किया और अमरीकी बेडे का बहुत बड़ा भाग प्रशान्त सागर में भेज दिया गया। अगस्त १९४० मे हवाई जहाजो के काम आने वाली अमेरिकन गेसोलीन और अनेक प्रकार के मशीनी औजारो का जापान भेजा जाना बन्द कर दिया गया और अगले महीने मे लोहे और इसपात के टुकड़े का निर्यात भी बन्द कर दिया गया। २६ जुलाई १९४१ को प्रेजीडेन्ट रूज़-वेल्ट ने सरकारी आदेश द्वारा अमेरिका मे समस्त जापानी सम्पत्ति को ज़ब्त कर लिया। इससे दो दिन पहले उन्होने जापान से फ्रासीसी हिन्द-चीन की

तटस्थता का आदर करने को कहा था। परन्तु जापानी सेनाए इस समृद्धिशाली उपनिवेश पर बराबर अधिकार जमाती गईं। १७ अगस्त १९४१ को चर्चिल के साथ एटलांटिक अधिकार पत्र के सम्बन्ध मे बातचीत करने के फौरन बाद प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट ने वाशिंगटन स्थित जापानी राजदूत से यह साफ-साफ कह दिया कि यदि जापान ने बल-द्वारा या बल का भय दिखाकर पडौसी-देशो पर सैनिक अधिकार जमाने की नीति जारी रखी तो अमेरिका उचित अधिकारो और स्वत्वो की रक्षा के लिए तत्काल ही आवश्यक कार्रवाई करने के लिए बाध्य हो जायगा ।

वह तारीख शायद सबसे ज्यादा सगीन थी। जापान का जहाजी बेडा डच और ब्रिटिश साम्राज्यो के बडे-बडे नये प्रदेशो को हडपने को तैयार बैठा था। हिन्द-चीन पर जापानी अधिकार का रूज़वेल्ट की सरकार ने जो ज़बर-दस्त विरोध किया था उससे जापान समझ गया था कि यदि उसने किसी और देश पर विशेष रूप से बोर्नियो, सुमात्रा और मलाया सरीखे कच्चे माल के भण्डार और सैनिक महत्त्व के प्रदेशो पर आक्रमण किया तो उसकी अमेरिका मे बडी गम्भीर प्रतिक्रिया होगी । अमेरिका का रुख दिन-पर-दिन अधिक लडाकू होता जा रहा था।

प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट को आशा थी कि वह बातचीत द्वारा आक्रमण रोक सकेंगे। यह प्रयास प्रशसनीय था। किन्तु उस समय अमरीका के समुद्री बेडे और थल-सेना मे जो कमजोरिया थी, उनको ध्यान में रखते हुए, यह कहा जा सकता है कि प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट ने आवश्यकता से अधिक कूटनीतिज्ञता दिखलाई। जो कुछ भी हो, इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि अमेरिका को दो-चार महीने पहले युद्ध मे डालने के लिए पर्ल हार्बर का सकट मोल लेना उचित था अथवा नही। जापान के लिए यह सम्भव नही था कि वह अपनी विस्तार-नीति का तिलाजलि दिये बिना और अन्त मे, चीन मे प्राप्त किये गये सारे प्रदेशो को त्यागे बिना रूजवेल्ट की माँगो को पूरा करता। जापानी साम्राज्य-वादी अपने-आपको ऐसे शान्तिपूर्ण कार्य करते देखने की कल्पना नही कर सकते थे। सन् १९४१ मे उन्होने इग्लैण्ड के ही सदृश एक महान् साम्राज्य स्थापित करने का बडा अच्छा अवसर देखा। उनका विश्वास था कि बृहत्तर एशिया की चहारदीवारी मे वे अजेय होगे।

अत जापान ने अमेरिका पर अचानक प्रहार कर उसकी जलसेना को पंगु बना देने का निश्चय किया और उस समय की प्रतीक्षा करना ठीक नही समझा जब अमेरिका की सेनाएँ पहले से अधिक शस्त्र-सज्जित होकर स्वय

युद्ध मे प्रवेश करती। सन् १९४१ की गर्मियो मे वाशिगटन में जो बातचीत चली थी उससे जापान को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया था कि अमेरिका का युद्ध मे प्रवेश करना अनिवार्य है। जापान चाहता था कि उस अवसर पर अमेरिका को किसी भयानक विपत्ति का सामना करना पडे। इसीलिए उसने पर्ल बन्दरगाह पर अचानक आक्रमण किया।

एक महान् साम्राज्य को जीतने और बनाये रखने की लालसा से जापान ने बर्मा और (शायद) भारत, टिमोर और (शायद) आस्ट्रेलिया फिलीपाइन, वेक और ग्वाम को घेरकर एक बृहद् वृत्त बनाने का आयोजन किया। जापान को आशा थी कि इन दूरस्थ छावनियो से सहायता पाकर और उनके द्वारा रक्षित रहकर वह लम्बे-से-लम्बे घेरे का सामना कर सकेगा। उसे यह बात सूझी ही नही कि अमेरिका उस वृत्त को पहली ग्वाडलकनाल के निकट काटेगा, और फिर लेटे मे उसे भग करता हुआ अन्त मे ओकिनावा मे वह वृत्त के केन्द्र मे जा घुसेगा और साथ-ही-साथ जापान पर भी उस समय तक बम, परमाणु-बम और गोले बरसाता रहेगा जब तक कि सम्राट् हिरोहितो हार मानकर आत्म-समर्पण न कर दे।

जापान ने रूस पर हिटलर के आक्रमण का अर्थ यही निकाला होगा कि हिटलर ने इग्लैंड पर आक्रमण करने और उसे हराने मे अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली है। रूस पर आक्रमण करके हिटलर ने लडाई मे अडगा लगाना चाहा था। उसने सोचा कि रूस पर अधिकार करने के बाद जर्मनी हराया नही जा सकेगा। उधर जापान के युद्ध में आजाने से ब्रिटिश और अमरीकी सेनाए यूरोप और एशिया मे बट जायगी, जिससे जर्मनी का न हारना और भी निश्चित हो जायगा। इसके अलावा उसने सोचा कि अपराजित जर्मनी ब्रिटेन और अमेरिका की इतना अधिक सेनाए अपन मे उलझाये रखेगा कि वे जापान को कुचलने मे समर्थ नही हो पायगे। अत जर्मन-युद्ध के अनिश्चित काल तक रुके रहने का अर्थ यह था कि जापान का युद्ध भी अनिश्चित काल तक रुका रहता।

रूस, यूरोप और प्रशान्त के क्षेत्रो पर धुरी राष्ट्रो का आधिपत्य होजाने से ब्रिटेन और अमेरिका की विजय रुक जाती। धुरी राष्ट्र समझते थे कि इन परिस्थितियो मे बुरे-से-बुरा यही हो सकता है कि दोनो बराबर रहे। सम्भव है कि कुछ नाजियो और जापानियो ने अन्त में विजयी बनने के स्वप्न भी देखे हो।

धुरी देशो के इन अनुमानो में रूस और अमेरिका की शक्ति वास्तविकता से कम आकी गई।

इंग्लैण्ड से वापस आने के बाद के महीनो मे दिये गये अपने भाषणो मे मैने बराबर औद्योगिक उत्पादन बढाने, रूस को अधिक सहायता देने और शान्ति की रूपरेखा तैयार करने की आवश्यकता पर जोर दिया। तब से मै शान्ति पर ही जोर देता आया हू। यद्यपि मुझे युद्ध से घृणा है, फिर भी मै युद्ध के पक्ष मे था, क्योकि मै वास्तविक शान्ति चाहता हू और जानता हू कि जब तक शक्तिशाली आक्रमणकारी देश कमजोर और छोटे देशो को अपना शिकार बनाते रहेगें तब तक ससार को वास्तविक शान्ति नसीब न होगी।

१९४२ के बसन्त मे अमेरिका केपश्चिमी भागो का दौरा करते हुए मैने जापानी हवाई आक्रमण के सम्बन्ध मे बहुत लोगो मे दयनीय घबराहट देखी। कुछ लोगो की माग यह थी कि हमारी सेनाए अमेरिका की रक्षा के लिए अमेरिका में ही रहनी चाहिए। धनी लोग सानफ्रासिस्को, सीटल आदि शहरो को छोडकर अरिजोना और नेवडा आदि सुरक्षित स्थानो मे जा रहे थे। मैने अपने श्रोताओ से कहा कि केवल ५ सेट मे मै युद्ध-काल के लिए शत्रु-बम से मृत्यु अथवा हानि के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति का भारी रकम के लिए बीमा करा सकता हूँ।

सानफ्रासिस्को के पत्रो ने मेरे १२ फरवरी को दिये गये एक भाषण का निम्नलिखित उद्धरण छापा था—"युद्ध के अन्तिम परिणाम (विजय) के सम्बन्ध में मै आशावादी हूँ, किन्तु मुझे यह महसूस नही होता कि हम अभी युद्ध कर रहे है। युद्ध के लिए अभी सैनिको और कारखानो का ही सगठन हुआ है, नागरिको का नही। नागरिको को चाहिए कि वे सरकार के ऐसा करने से पहले ही स्वयमेव अपने रहन-सहन के मान को घटा दे।"

यूरोप में पडी हुई पुरानी आदत के अनुसार मैने जहाँ भी सम्भव हुआ कारखानो का निरीक्षण किया। सीटल में मैंने एक वायुयान बनाने के कारखाने मे पूरा एक दिन लगाया। टकोमा और पोर्टलैड मे मैने जहाज़-निर्माण के केन्द्रो को देखा। मैने जो कुछ देखा वह उत्साह-वर्द्धक था। ७ मार्च १९४२ को मैने "नेशन" पत्र मे निम्नलिखित सम्वाद भेजा "एक ही महीने में एक बहुत बडे कारखाने मे, जो शायद युद्ध का सबसे अधिक प्रभावशाली आधुनिक-शस्त्र तैयार कर रहा है, उत्पादन मे ७० प्रतिशत की वृद्धि हुई है।" यह सकेत, जो उस समय आवश्यकतानुसार गोपनीय रखना पडा था, बोइग फ्लाइग फोर्ट्रेस फैक्टरी की ओर था।

मैने अपनी रिपोर्ट मे यह भी लिखा था—"पर्ल हार्बर ने लोगो मे जोश भर दिया है। कारखानो के कर्मचारी युद्ध-सम्बन्धी दैनिक विज्ञप्तियो को पढ़ने

के कारण यह समझ गये है कि हर रोज़ वे जो काम करते है उसका प्रभाव युद्ध के मोर्चे पर पडता है।"

अलग-अलग काम करने वाले गोला-बारूद के कारखानो के व्यवस्थापको की भी यही प्रतिक्रिया थी। जब मैने उनसे पूछा कि आपकी क्या शिकायत है तो उन्होने उत्तर दिया—"कागज, वाशिंगटन जानकारी चाहता है, स्टेट भी यही जानकारी चाहती है, हल्के पद वाले और अधिक बाते जानना चाहते है, फिर वाशिगटन का कोई और विभाग उन्ही आकडो के लिए तार भेजता है जो उसके पास वाले विभाग ने पहले ही इकट्ठे कर लिये है। यह सब अनवरत रूप से चलता रहता है।"

एक कारखाने मे एक अफसर ने एक बनती हुई इमारत की ओर इशारा किया। वह बोला—"इसमे कई सौ पहलवान काम करेगे और दफ्तरो की विलम्बकारी आदत से युद्ध लडेगे।" मेरे पास ऐसा कोई साधन नही था जिससे मै यह निश्चित रूप से पता लगा सकता कि यह शिकायत ठीक थी या नही। किन्तु इसमे सदेह नही कि केन्द्रीय और स्थानीय दफ्तरो मे ऐसे अनेक बातूनी और सवाल-जवाब करने वाले लोग थे जिनसे कारखाने वालो में क्रोध उत्पन्न होता था और उत्पादन-कार्य मे रुकावट भी पडती थी।

"अनुपस्थिति" सारे राष्ट्र के लिए सिर दर्द बन गई थी और इसके कारण कारखानेदारो को श्रमजीवियो की मार-धाड का अवसर भी अच्छा प्राप्त हुआ था। मैने भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रो से कुछ आकडे इकट्ठे किये थे। अनुपस्थित रहने वालो मे अधिकतर बच्चो की माताए थी। रक्षा सम्बन्धी काम करने वाले बहुत से लोग दूर के प्रान्तो से आये हुए थे। अगर कोई बच्चा बीमार पड जाता तो मा के काम पर चले जाने पर उसकी देख-रेख करने के लिए दादी, मौसी, भतीजी आदि कोई भी नही थी। जिनके पास रहने का स्थान नही था वे लोग स्वय एक समस्या बन गये थे। घर, खाने-पीने की वस्तुओ एव फर्नीचर आदि की खोज मे मजदूर अक्सर काम से गैरहाजिर रहते थे। अनुपस्थिति का एक कारण मजदूर लोगो का एकाएक सम्पन्न हो जाना भी था, जिसके फलस्वरूप मदिरा-पान और फिजूलखर्ची फैल गई और युद्ध-कालीन विषमताओ से आचरण मे भी शिथिलता आगई। बडे शहरो की सडको पर प्रात-काल बिखरी हुई ह्विस्की की खाली बोतलो को देखकर यह पता चल जाता था कि उस दिन-युद्ध सबधी कारखानो मे बहुत से लोग अनुपस्थित रहे। अनुपस्थित रहने वाले व्यक्ति जान-बूझकर हानि पहुचाना चाहते थे सो तो नही, वस्तुत उनकी स्थिति बडी दयनीय थी। एक कारखाने में मज़दूरनियो के

बच्चो के लिए शिशु-केन्द्र खोलते ही अनुपस्थिति बहुत कम हो गई थी ।

सब लोगो का ध्यान ऊँचे वेतनो पर था । मैने सैनिको और धनी नागरिको को कहते सुना "यदि युद्ध-क्षत्र में लडन वाला व्यक्ति २१ डालर प्रति मास के पीछे २४ घटे का नौकर बनकर अपने जीवन के लिए खतरा मोल लेता है तो कारखानो म काम करने वालो को ४० या ५० डालर प्रति सप्ताह क्यो दिये जाय । मशीनो की खड-खडाहट और तेज़ टार्चों के प्रकाश के बीच मैंने युद्ध का कार्य करने वाले मजदूरो से यह प्रश्न किया—पतलून पहने और लिपस्टिक लगाये हुए एक सुन्दर लडकी ने उत्तर देते हुए कहा—"अगर हमारा मालिक लाखो कमाता है और सरकार द्वारा मुनाफाखोर घोषित किये जाने का खतरा उठाता है, ता मै भी इतनी अच्छी मज़दूरी को क्यो न लूँ कि बढे हुए नये दामो पर अपनी आवश्यकता की चीज़े आसानी से खरीद सकू ?" बोझ उठाने की मशीन पर काम करने वाले एक व्यक्ति ने कहा —"जब मालिक २१ डालर मासिक लेगा तो मै भी इतना ही लूगा" पास ही से एक और कारीगर ने चिल्लाकर कहा "मै छुट्टी के दिनो की तनख्वाह छोड दूँ तो क्या वह मैकार्थर के सिपाहियो के पल्ले पडेगी ? नही, वह तो कम्पनी के मालिको की ही जेबो मे जायगी ।" लडाई के दिनो में अमेरिका के लोगो में त्याग की दृष्टि से समानता नही थी ।

अमेरिका के पश्चिमी भाग के हुल्लडबाजो की खूब बन आई थी । उनमें से बहुतो का खयाल था कि वे श्रीमती रूज़वेल्ट पर आक्षेप करके या अमेरिका मे पैदा हुए जापानियो के अमरीकी बच्चो को देशनिकाला देकर युद्ध जीत लेगे । मेरी उन स्त्रियो से बातचीत हुई जिन्हे आशका थी कि ट्रक चलानेवाले जापानी किसान सब्जियो मे विष मिला देगे । मुझे बताया गया कि तटवर्ती क्षेत्रो से जापानियो को हटा देना चाहिये, क्योकि इस बात का भय था कि हवाई आक्रमण से क्रुद्ध होकर अमेरिकावासी कही उन्हे मार न डाले । सनसनी फैलाने वाले अखबारो ने पुकार उठाई कि सारे जापानी नजरबन्द कर दिये जाय । इक्के-दुक्के हमलो की सख्या भी बढती गई । कोई क्राइस्ट-जैसा व्यक्ति कैलिफोर्निया म कह सकता था—"पहला पत्थर उसी को फेकने दो जिसने अपने माता-पिता को चुन लिया है ।"

कैलिफोर्निया मेलोग मुझे बडे निरुत्साह-दिखाई दिये । "दूर पूरब के विशेषज्ञो" ने भविष्यवाणी की थी कि हम "जापानियो को तीन सप्ताह मे मार गिरायेंगे ।" जब नागरिको को पता लग गया कि यह भविष्यवाणी कितनी मूर्खतापूर्ण थी तो उनम हास्यास्पद आत्माभिमान के बदले अनावश्यक निराशावाद

की भावना जाग उठी ।

फिर भी, उत्पादन लगातार बढ रहा था । मैंने ३ मार्च को मिल्वौकी मे एक भाषण देते हुए कहा —"अमेरिका की मोटर अब चलने लगी है ।" मैंने इस बात का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया कि हम जिस शान्ति की स्थापना करेंगे वह "प्रतिकारात्मक होगी दण्डात्मक नही ।" मैंने आगे चलकर यह भी कहा "सच्चा जनतत्र ही शान्ति का एकमात्र मार्ग है, किंतु इसका आज तक किसी भी महान् युद्ध के बाद प्रयोग नही किया गया ।

११ मार्च, १९४२ को सेंट पाल के एक डिस्पैच मे मेरे भाषण का निम्नलिखित उद्धरण दिया गया—"यह जान लेने पर कि मैं इग्लैण्ड को पराजित नही कर सकता, हिटलर ने इग्लैण्ड पर विजय पाने के बदले रूस पर आक्रमण करना ठीक समझा । यह अब मित्रराष्ट्रो का काम है कि वे रूस को युद्ध मे लगाये रखे । इच्छा से या अनिच्छा से अब स्टालिन इस युद्ध मे 'फरिश्तो' की ओर से लड रहा है और अगर 'फरिश्ते' जीवित रहना चाहते है तो उन्हे चाहिए कि वे युद्ध मे कूद पडे और रूस की सहायता करे । रूस को सहायता, अधिक सहायता की आवश्यकता होगी ।"

१५ मार्च को मैंने लूइसविले (केटकी) मे एक सार्वजनिक सभा मे कहा था—"रूस इस युद्ध का मुख्य आधार है और भारत शान्ति का प्रतीक है ।" मैंने यह भी कहा कि यद्यपि इस समय लाल-सेना ने हिटलर को रोक लिया है फिर भी उसमे अभी लडने की पर्याप्त शक्ति शेष है ।

इस बीच दूर पूरब मे जापानी तेजी से आगे बढ रहे थे । इस पर अपना मत प्रकट करते हुए मैंने कहा—"बर्मा और मलाया के हमारे हाथो से निकल जाने का एक कारण तो अस्त्र-शस्त्र की कमी थी और दूसरा अगरेजो की साम्राज्यवाद सम्बन्धी प्रतिगामी विचार-धारा । ब्रिटेन की कमजोरी का कारण यह है कि बौद्धिक दृष्टि से ब्रिटिश सरकार आधुनिक समय से एक पीढी पीछे है । चर्चिल के व्यक्तित्व मे सभी शताब्दियो का सम्मिश्रण विद्यमान है सिवा बीसवी सदी के ।" मैंने अमेरिकन सरकार से आग्रह किया कि वह भारत को स्वतत्रता प्राप्त करने मे सहायता दे । कारण, "हो सकता है हम युद्ध तो जीत ले, किंतु शान्ति हमारे हाथ से निकल जाय । मैं इस बात को उठती हुई सभ्यता के लिए एक लाछन समझता हूँ कि प्रत्येक देश मे लोगो को शान्ति के प्रति सन्देह है और उन्हे आशका है कि शान्ति चिरस्थायी नही होगा । वर्साई की सन्धि में उन बुनियादी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओ को नही सुलझाया गया जिनके कारण युद्ध उत्पन्न हुआ था । इसी

प्रकार की सन्धि हम अब भी स्थापित कर सकते है, किन्तु यदि हम ऐसा करेगे तो, हमे एक और युद्ध लडना पडेगा।"

रूसी सेना उस समय जर्मनी द्वारा हडपी गई रूसी भूमि का पाँचवाँ भाग ही मुक्त कर पाई थी। फिर भी अमेरिका मे रूस के प्रति भय की भावना बढती जा रही थी। न्यूयार्क के पी० एम० नामक पत्र ने मुझसे "क्या अमेरिका के लिए विजयी रूस स डरने का कोई कारण हो सकता है" शीर्षक लेख लिखने को कहा। उस लेख का परिचय कराते हुए फ्रीडम हाऊस के सभापति हर्बर्ट आगर ने लिखा था—"कुछ अमेरिकन यह गुप्त रूप से चाहते है कि रूस हार जाय, या, कम-से-कम, रूसी-जर्मन मोर्चे पर युद्ध लम्बा पड जाय।"

मैंने "पी० एम०" के २७ अप्रैल १९४२ वाले अक मे लिखा "विजयी रूस से अमेरिका को क्या डर हो सकता है? कम्युनिस्ट-क्रान्ति का? यह खयाल हास्यास्पद है। अमेरिका के कम्युनिस्ट मुट्ठी भर है और घृणा की दृष्टि से देखे जाते है। जब उन्होने प्रजातन्त्री स्पेन के सहायतार्थ कुछ किया था तब उनका प्रभाव पडा था, या अब जब वे पूजीवादी अमेरिका की रक्षा और रूस को सहायता पहुँचाने के लिए प्रयास करते है तो उनका थोडा-बहुत प्रभाव दिखाई देता है। किन्तु यदि वे अमेरिकन सरकार को उलटने का प्रयत्न करे तो वे एक रेजिमेट भी नही जुटा पायेगे। यदि क्रान्ति का भय नही तो क्या रूस द्वारा आक्रमण का भय है? क्या विजय प्राप्त करने के बाद रूस अमेरिका पर आक्रमण कर सकता है? यह एक मजाक की-सी बात मालूम देती है। रूस के प्रति भय की भावना उभारने के बजाय, हमे इस बात पर जोर देना चाहिए कि हिटलर को (और इसलिए जापान को भी) पराजित करने मे अभी तक सबसे अधिक सहायता रूस ने दी है। हमारा ध्येय रूस को अधिक मजबूत बनाना होना चाहिए।"

मैंने इस लेख के अत मे दो शब्द चेतावनी के रूप मे भी लिखे, किन्तु "पी० एम०" ने उसे छापा नही। उसने मेरा केवल यह वाक्य प्रकाशित किया—"बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होगा कि युद्ध समाप्त होने पर हमारी और रूस की कैसी मनोदशा है।" इसके बाद के जो तीन वाक्य निकाल दिये गये थे, वे ये थे—"अगर हम साम्राज्य स्थापित करना या दूसरे देशो को हडपना या सारे ससार मे एक मात्र एग्लो-अमेरिकन नेतृत्व का ही झडा फहराना चाहेगे तो दूसरे देश हमारा उतना ही विरोध करेगे जितना शायद हम रूस का करें यदि उसकी युद्धोत्तर नीति दूसरे देशो को हडपने की हो। रूस अपनी सीमाओ

के भीतर बलात् दूसरे राष्ट्रो को खपाकर अपने को सुरक्षित नही समझ सकता, ठीक वैसे ही जैसे हम ब्रिटिश, डच और फासीसी साम्राज्यो का सिरदर्द मोल लेकर अपने को सुरक्षित नही समझ सकते। ऐसी कार्रवाई का परिणाम अधिक कष्ट और अधिक युद्ध ही हो सकता है।"

पता नही, ये पक्तिया किसने निकाली! मूर्ख लोग समझते है कि किसी समस्या को हल करने का तरीका उसे छिपाना और उसकी अवहेलना करना है। असल मे वाशिगटन के उच्चाधिकारियो मे रूस की युद्धोत्तर नीति के सम्बन्ध मे चिता दिन-पर-दिन बढती जा रही थी। ह्वाइट हाउस को पता लगा कि ब्रिटेन के विदेश मत्री ईडन से बातचीत के दौरान मे स्टालिन ने यह घोषणा की कि वह बाल्टिक राष्ट्रो और पूर्वी पोलैण्ड को रूस मे मिलाना चाहते है। अमेरिका के लदन-स्थित राजदूत जॉन जी० विनेट ने, जिनसे इग्लैण्ड मे मेरी कई बार घनिष्ठता के साथ बातचीत हुई, मुझे २५ अप्रैल को न्यूयार्क के रूजवेल्ट होटल के अपने कमरे मे बिलकुल गुप्त रूप से बताया कि रूस कर्जन लाइन तक की समस्त पोलिश भूमि को अपने में मिला लेगा, किन्तु रूजवेल्ट युद्ध-काल मे इस प्रकार के सीमा-परिवर्तन नही चाहते। इस का मतलब यह था कि अमेरिका रूस की विस्तार-नीति का विरोध करने को तैयार था? मित्र-राष्ट्र, जो युद्ध मे विजय के लिए एक दूसरे की सहायता कर रहे है, युद्ध के बाद लाभ उठाने के लिए चालें चल रहे थे।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की अन्तर्राष्ट्रीय विषयो की परिषद् (रायल इस्टीट्यूट ऑव इन्टरनेशनल अफेयर्ज) मे मैने १९४१ मे अपने इग्लैण्ड-प्रवास के समय एक भाषण दिया था। उस समय पेरिस-शान्ति-सम्मेलन के एक सुयोग्य इतिहासज्ञ ने मुझसे कहा था—"युद्ध के बाद इग्लैण्ड अमेरिका का छोटा साझीदार बन जायगा, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नही।" रायल इस्टीट्यूट मे काम करने वाले उनके दो सहयोगी भी उनसे सहमत थे। उनमें से एक ने कहा—"अमेरिका और रूस के बीच ब्रिटेन मध्यस्थ का काम करेगा।" दूसरे ने राय दी कि शायद अनुदारदल वाला ब्रिटेन राष्ट्रवादी रूस से गठबन्धन कर ले, जिसके परिणाम-स्वरूप यूरोप दो हिस्सो में बँट जायगा। इस पर इतिहासज्ञ ने कहा—"किन्तु यूरोप में रूस के साथ हम अकेले शायद सुखी न रहे।"

जब मैने अमेरिका के विदेश विभाग के एक अधिकारी से इस बातचीत का उल्लेख किया तो उसने इतना ही कहा—"युद्ध के बाद अमेरिका रूस से कम शक्तिशाली नही होगा।" १९४२ में मित्र-राष्ट्रो की विजय आरम्भ तो नही हुई थी किंतु अमेरिका की बढती हुई शक्ति और रूस की दूसरे देशो को

हडपने की प्रत्यक्ष लालसा के कारण तीन महान् राष्ट्रो मे युद्धोत्तर दलबन्दी की सम्भावना पर अच्छे खासे वादविवाद होने लगे थे।

अमेरिका और पेतॉं-कालीन फ्रास का सबध भी काफी वादविवाद का विषय बन गया था। मैने वाशिंगटन मे एक कूटनीतिज्ञ से कहा—"देश भर का भ्रमण करने से मुझे पता चला है कि हमारे नवयुवक खुशी-खुशी सेना मे भरती हो रहे है, वे अच्छा काम करेंगे। किन्तु प्रोत्साहन नही दिया जाता, इसीलिए उनमे उत्साह नही है। उनमे से बहुत ही कम इस बात को जानते है कि यह लडाई क्यो लडी जा रही है। लोगो की समझ मे नही आता कि हिटलर को सहयोग देने वाला विची (फ्रास) सरकार से हमारी मित्रता क्यो है? 'हम क्यो लड रहे है' यह प्रश्न प्राय सभी जगह पूछा जाता है। यदि हम फ्रास की विची सरकार से नाता तोड ले और फ्रास, स्पेन तथा भारत के प्रति स्पष्ट रूप से फाशिस्ट विरोधी नीति ग्रहण करें, तो हमारे उद्देश्य स्पष्ट हो जायगे और जन-साधारण को विश्वास हो जायगा कि रूजवेल्ट और चर्चिल ने ऐटलाटिक अधिकार-पत्र मे जो कुछ लिखा है वही उनका करने का इरादा भी है।"

अमेरिका के शासनाधिकारी यह जानते थे कि अमेरिका की फ्रास सबधी नीति से जनता चिढी हुई है। प्रवक्ता यह स्वीकार करते थे कि अब फ्रासीसी समुद्री बेडे जर्मनी के हाथो में पडने का खतरा नही रहा। पहले वे इसी बेडे के भविष्य के सबध में चिन्ता प्रकट कर विची सरकार के प्रति अपनी नीति का समर्थन करते थे। "किन्तु मान लीजिये हम फ्रास की भूमि से आक्रमण करना चाहते है और वहा हमारे एजेटो के महत्त्वपूर्ण सम्पर्क है, तब क्या हमे उन सम्पर्कों को नष्ट होने देना चाहिए?" यह बात रूजवेल्ट के एक सलाहकार ने मुझसे वाशिंगटन ने सन् १९४२ के बसन्त-काल मे पूछी।

राजदूत विनेट ने मुझे बताया कि ब्रिटिश सरकार को, जिसका फ्रास की पेतॉं-सरकार से कोई सबध नही था, यह आशा थी कि हम फ्रॉंस से अपने सबध बनाये रखगे।

किसी भी देश के विदेश विभाग की मनोवृत्ति का पता इस बात से लगता है कि उसके अधिकारियो को यह खयाल बना रहता है कि वे दूसरे देशो के साथ संबध बनाये रखने और सुधारने और उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के "कारबार" में लगे हुए है। (ऐसा ही मैने उन्हे कई बार कहते सुना है) यही कारण है कि जब किसी देश से सबध-विच्छेद का प्रस्ताव आता है तो कूटनीतिज्ञ उसका तीव्रता से विरोध करते है और उस समय वे सिद्धान्तो की चिंता नही करते और न यही ध्यान रखते है कि उसका जनता की नैतिकता

पर क्या प्रभाव पडेगा ।

पर्ल हार्बर के धक्के से धीरे-धीरे सम्हलते हुए अमेरिका के विचारशील व्यक्तियो ने सन १९४२ मे यह सोचना आरभ किया कि आखिर यह युद्ध लडा किसलिए जा रहा है । जापान, जर्मनी और इटली को पराजित करने के लिए ? निश्चय ही । किंतु, क्या इतना ही काफी है ? विजय के बाद क्या होगा ?

अमेरिका की सबसे बडी अदालत के सहकारी न्यायाधीश, फेलिक्स फ्रैंकफर्टर के सामने मैंने अमेरिकन जनमत के सबध मे अपनी राय सक्षेप मे इस प्रकार प्रकट की—"देश युद्ध का अर्थ समझने के लिए अटकले लगा रहा है । अन्त मे अमेरिका को आदर्शवादी शान्ति और साम्राज्यवाद में से किसी एक बात को अपनाना पडेगा । जब जनता को हमारी महान् शक्ति का पता चल जायगा तो सम्भव है वह नवीन प्रदेशो पर अधिकार करना चाहे । रूस की विस्तार नीति के कारण मुझे एक चिन्ता यह भी है कि कही ऐसा न हो कि हम भी उसी मार्ग का अनुसरण करने की ठान बैठें । दूसरा रास्ता यह हैकि हम प्रभाव के सभी केन्द्रो, साम्राज्यो और उच्च व्यापारिक मूल्यो के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से फाशिस्ट विरोधी नीति ग्रहण करे और एटलाटिक अधिकार पत्र का ईमानदारी के साथ पालन करे । यही कारण है कि फाशिस्ट समर्थक विची सरकार से हमारा सम्बन्ध बनाये रखना लोगो को अखरता है और उन्हे भारत से दिलचस्पी होती है ।" (इस पर जस्टिस फ्रैंकफर्टर ने क्या कहा यह बतलाने की मुझे स्वतत्रता नही ।)

उन दिनो भारत के समाचार पहले पृष्ठ पर छपा करते थे । जापान बर्मा मे प्रवेश कर चुका था । जर्मनो के तुर्की पर आक्रमण करने व मिस्र को जीतलेने की भी सम्भावना थी । युद्धको जीतने का धुरीराष्ट्रो के लिए एक ही तरीका था और वह यह कि एशिया मे किसी स्थान पर सम्भवत भारत में जर्मन और जापानी सेनाए एक दूसरे से आ मिलें । भारत मे राजनीतिक आन्दोलन जोरो पर था । प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने युद्धके भूतपूर्व सहकारी मन्त्री कर्नल लुई जॉनसन को अपने विशेष दूत के रूप में नई दिल्ली भेजा था । ब्रिटिश सरकार ने भी सर स्टैफर्ड क्रिप्स को, जो पहले मास्को मे ब्रिटिश राजदूत थे और अब ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल मे है, लिखित प्रस्ताव देकर भारत भेजा था । भारत के सभी दलो ने इन प्रस्तावो को ठुकरा दिया था । अब क्या होगा ? क्या जापान भारत पर आक्रमण करेगा ? क्या हिटलर निकट पूरब मे घुस पडेगा ?

बृहस्पतिवार २२ अप्रैल को मैंने श्री समनर वेल्स से कहा कि मै भारत जाना चाहता हूँ। उन्होने अपने पैड पर पेंसिल से कुछ लिखा और ठीक एक सप्ताह बाद मुझे न्यूयार्क मे टेलीफोन द्वारा बताया—"अगर आप तीन दिन के भीतर-भीतर टीका आदि लगवाकर अपनी तैयारी कर ले तो रविवार को न्यूयार्क से जानेवाले वायुयान मे आपको जगह मिल सकती है।" मैंने इस पर बडी प्रसन्नता प्रकट की और पासपोर्ट माँगा। उन्होने पासपोर्ट उसी शाम को डाक द्वारा भेजने का वादा किया, जो अगले दिन सवेरे मुझे मिल गया। मै व्यर्थ के सवालो, आवेदन-पत्रो और दफ्तरो की झिक-झिक से बच गया। मैंने तुरन्त ही हैजे, टाईफाईड, पीतज्वर, चेचक आदि के टीके लगवा लिये, और सोमवार ३ मई को हवाई जहाज से रवाना हो गया। (उसी दिन मेरे दोनो बेटो का जन्मदिन था।) मैंने बहुत प्रमोद और मनोरजन की आशा की थी, किंतु मेरे पास जितना समय था उसको दृष्टि मे रखते हुए मेरी आशाए कम पूरी हुईं।

: ८ :

भारत की ओर

वायुयान में ५० व्यक्ति थे। इनमें कुछ तो अमेरिका के इंजीनियर थे, जो भारत में अबरक के उत्पादन को बढाने जा रहे थे—जिसकी अमेरिका को युद्ध-कार्य के लिए आवश्यकता थी। इनके अलावा अमेरिकन अफसर थे जो चीन में चीनी हवाई-सेना को सगठित करने जारहे थे, और कुछ अमेरिका के विदेश विभाग के कार्यकर्ता थे, जो मुहर बन्द डाक के थैले लिये हुए थे, जिनसे वे कभी जुदा नही होते थे। हमारे साथ एक अमेरिकन दम्पति भी था जो तीन साल पीत-ज्वर से युद्ध करने ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका जारहे थे। उसी विमान में एक पोलिश कूटनीतिज्ञ भी विराजमान थे जो मिस्र और रूस के रास्ते चीन जारहे थे। म्यामी में हमारे साथ कई लैटिन-अमेरिकन और अमेरिकन सैनिको का एक दल भी आ मिला जो अफ्रीका गोल्ड कोस्ट पर स्थित अमेरिकन सैनिको के लिए खजाची का काम करने जारहा था।

अगले दिन सवेरे हमारा हवाई जहाज सान ज्वान (पोर्टो रीको) पर उतरा। मैने टापू के गवर्नर रेक्सफर्ड जी० टगवेल को टेलीफोन किया जिनसे मै पहले मास्को में मिला था। वह मेरे पास आये और हवाई जहाज के रवाना होने तक लगभग एक घटा हम बातचीत करते रहे। प्रेजिडेट रूजवेल्ट ने निजी परीक्षणो की धुन में ही विद्वत्सघ में से टगवेल को पोर्टो रीको का गवर्नर 'नेशन' के प्रबन्ध सम्पादक अर्नेस्ट ग्रूनिग को अलास्का का गवर्नर और "न्यूरिपब्लिक" के एक सम्पादक राबर्ट मार्स लोवेट को वर्जिन टापुओ का गवर्नर नियुक्त किया होगा। शायद इसके उत्तर में रूजवेल्ट मुझसे कहते—"जो काम दूसरे करते है उसकी तो टीका टिप्पणी कर दी। अब आप स्वय उस काम को कीजिये और देखिये कि वह आपको कितना पसन्द आता है।" मै जानता हू ग्रूनिग को अपना काम बहुत पसन्द था। सम्पादन या सिद्धात निर्धारण का कार्य करने की बजाय व्यावहारिक शासन कार्य करने के कारण टगवेल, ग्रूनिग और लोवेट की उदार विचार-धारा में कोई परिवर्तन नही आया और वे अनुदारदली नही बने। वास्तव

राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले दुराचारो के ज्ञान मे और उन दूषित प्रभावो का पता होने के कारण जो राजनीतिज्ञो पर प्राय डाले जाते है, शासनसत्ता के प्रति उनका आलोचनापूर्ण दृष्टिकोण परिपुष्ट होगया ।

जब हमारा हवाई जहाज सुरिनम के ऊपर उड रहा था तो हम पोकर खेल रहे थे और उस डच उपनिवेश की रक्षा करने वाले अमेरिकन सिपाहियो के बारे मे बाते कर रहे थे । सुरिनम मे ऐसे घने जगल है जिनके बीच से होकर गुजरना सम्भव नही । किन्तु ऊपर से ऐसा जान पडता था मानो सुरिनम सैकडो मील लम्बा, साफ-सुथरा सुरक्षित जगल है जिसमे कही-कही झरने के किनारे फूस की झोपडियाँ बनी हुई है और कही-कही एक लाल छत के मकान के चारो तरफ, जो शायद एक जागीर है बहुत-सी झोपडियो का एक घेरा-सा बना हुआ है । वायुयान पर एक ब्राजीलियन भी था जिसने अमेरिकन हवाई सेना के लिए अड्डो की खोज मे सारा दक्षिणी अमेरिका छान रखा था और जिस प्रदेश के ऊपर से हम जा रहे थे वह उसके जलथल के एक एक भाग से परिचित था । उसने बताया कि वास्तव मे जगल बहुत साफ है । उसमे घास फूँस कम है और जगली जानवर बहुत कम है। चीते, जगौर, प्यूमा,जगली बिल्लियाँ आदि तो इक्के दुक्के है, किन्तु जगली पक्षी और छोटे-बडे साप अनगिनत है। यहाँ के बन्दर इतने छोटे होते है कि आसानी से आदमी की हथेली पर बैठसकते है । बडे-से-बडे बन्दर दो फिट ऊचे होते है ।

हमारे अगले पडाव बेलम (ब्राजील) का रास्ता अभी ४५ मिनिट का शेष रह गया था कि हवाई जहाज की चार मोटरो मे से एक बद होगई । हवाई जहाज के तीन पखो को स्थिर देखकर हमें बडी चिंता हुई किन्तु यात्रियो मे से एक व्यक्ति, जो हवाई जहाजो की मरम्मत आदि करता था, बोला कि यदि हवाई जहाज के दो ही मोटर काम करते हो तब भी वह ठीक से उतर सकता है । हम पारा नदी पर उतरे । उस समय वर्षा हो रही थी । गरम देशो की सन्ध्याकालीन अधियारी में चालक का पथ-प्रदर्शन करने के लिए हवाई जहाज में जो सर्चलाइट लगा हुआ था उसके प्रकाश में वर्षा की धाराए चादी जैसी श्वेत दिखाई देती थी ।

बेलम मे हम पाच दिन ठहरे । इस बीच में मोटर की मरम्मत भी हो गई । बेलम पारा राज्य की राजधानी है । वह भूमध्य रेखा से १०० मील दक्षिण की ओर स्थित है, किन्तु मई में भी वहा गरमी न थी । रातें सुखद और ठडी थी और सोते समय चादर तथा कम्बल ओढना पडता था। वहाँ सवेरे गरमी बढने से पहले ही बादल छा जाते है और सूर्य को ढक लेते है । प्रायः दिन भर

हवा मन्द-मन्द चलती रहती है। दोपहर समाप्त होते-होते वर्षा का भय होने लगता है। जितने दिन हम वहा रहे हर रोज वर्षा हुई। इस पर जब मैने पूछा कि क्या यह बरसात का मौसम है तो मुझे बताया गया कि "नही, बरसात तो जनवरा मे आरम्भ होता है"। वह ता खुश्की का मौसम था।

जिन कीडो-मकोडो को मै अमजानिया से अभिन्न समझता था वे वहा देखने मे नही आये। बेलम में मुझे एक मच्छर भी दिखाई नही दिया। चिडिया-घर मे मैने चीटियो को खाने वाले जानवर देखे पर चिडियाँ और मक्खियाँ वहा उतनी ही कम दिखाई दी जितनी अमेरिका के शहरो में दिखाई देती है। वहा के पार्कों मे उडने वाले और रेगने वाले कीडे भी नही थे।

जिस बात से मुझे सबसे अधिक आश्चर्य हुआ वह थी वहा की प्राचीन और गौरवपूर्ण सभ्यता। अज्ञानवश मै समझा करता था कि वहा की बस्ती मे बडी गरमी होगी और बासो के सहारे खडी फूस की झोपडिया-ही-झोपडिया होगी। पारा की नीव फ्रासिस्को काल्डीरो कास्टीलो ब्राको नामक पुर्तगाल नाविक ने सन १६१५ मे बडे दिन से एक दिन पहले रखी थी। (यह बात मुझे एक गाइड बुक से मालूम हुई जिसमें शहर का पूरा विवरण दिया हुआ था।) वहा एक बडा गिरजाघर है। पत्थर के कई छोटे-छोटे गिरजाघर है और बहुत से स्कूल तथा सार्वजनिक भवन। इसकी चौडी सडको पर काटे हुए गोल पत्थर बिछे है और पगडडिया सीमेट की बना है। नगर मे ट्रॉलिया और बसे भी चलती है। ज्यादातर सडको के दोनो तरफ घने वृक्ष है जिनकी ऊपर की पत्तिया एक दूसरे से मिल जाती है और उनके कारण छाया रहती है। वहा पौधे इतनी जल्दी और और आसानी से उगते है कि वृक्षो की छाल से ही कोपले फूट पडती है।

हमबाल्ट, अगासीज और मार्टीन्स आदि प्रसिद्ध पर्यटको ने अमेजन क्षेत्र मे बेलम को ही अपने पर्यटन और ढूढ-खोज के लिए केन्द्र बनाया था। बेलम आजकल फोर्ड के रबड के बगीचो के लिए बन्दरगाह का काम करता है। ये बगीचे पारा नदी से ऊपर की ओर छ सौ मील दूरी पर है। अमेरिका के वाइस-कौसल, हार्ट के कथनानुसार इन बगीचो में काम करने वाले अमेरिकन मजदूरो को बगीचो व जगलो के बीच रहते हुए भी घर के सारे सुख उपलब्ध है।

अमेजोनिया किसी समय रबड की जननी थी। किन्तु वहा रबड की खेती की ओर से बडी लापरवाही दिखाई गई। ब्राजीलियनो का कथन है कि रबड के बीज के निर्यात पर कडा सरकारी प्रतिबन्ध होने पर भी "एक साहसी अग्रेज" वहा से ७०,००० बीज ले भागा। ये बीज सबसे पहले लदन के क्यू गार्डन में बोये गये और वहा से उखाड़कर पौधे मलाया, सुमात्रा, जावा, लका आदि

स्थानो में व्यावसायिक दृष्टि से लगाये गये। आज अमेरिकन पूजीपतियो की सहायता से ब्राजील रबड के ससार मे फिर पाँव जमाने की चेष्टा कर रहा है।

हजे और पैरा-टाइफाइड के जो टीके मुझे लगवाने रह गये थे उन्हें लगाने के लिए डा० आरलेण्डो लीमा आये। "निकर पहने हुए ये कौन आदमी है", उन्होने मनोरजन के भाव से पूछा। डाक्टर बढिया सफेद सूट और नेक-टाई आदि पहने हुए थे। वह उत्तरी अमेरिका के रहने वालो को विचित्र समझते थे। बेलम मे मै निकर पहने हुए था और न्यूयार्क मे डा० लीमा ने मुझे आस्तीन ऊपर चढाए हुए और जाकट उतारकर कन्धो पर रखे ले जाते हुए देखा था। पहले दिन शाम को मै होटल के खाने के कमरे मे बिना जाकट के चला गया। हैड वेटर ने, जो सफेद और काला सूट पहने हुए था, नम्रता-पूर्वक यह कहकर कि हम खाली कमीज पहने हुए लोगो के लिए खाना नही परसते, मुझे वापस लौटा दिया। सभी लैटिन अमेरिकनो की भाँति ब्राजील-निवासी भी पोशाक आदि पर बहुत ध्यान देते है।

डा० लीमा ने बताया कि वह रियो डि जैनरो के मेडिकल कॉलिज मे पढे थे और उच्च-शिक्षा उन्होने १९०८ मे जर्मनी मे पाई थी। "आप इतने वृद्ध तो नही दिखाई देते", मैने कहा।

"मै ५७ वर्ष का हूँ" उन्होने कहा। उनके बाल घने और काले थे। जब मैने ध्यानपूर्वक देखा कि उनका एक-भी बाल पका नही था तो उन्होने कहा—*"यह स्वाभाविक ही है क्योकि मै भूरी जाति का हूँ। मै अशत भारतीय हूँ,"* उन्होने गर्व से कहा, "हम रक्त का सम्मिश्रण करते है, यह अच्छा होता है।" वहाँ गलियो मे हब्शियो जैसी मुखाकृति वाले श्वेत वर्ण के लोग और चीनियो-जैसी आँखो के भूरे चेहरे वाले लोग आमतौर पर दिखाई देते है। पुर्तगाल के आरम्भिक अधिवासी ब्राजील मे उस समय आये थे जब पुर्तगाल भी दूर पूरब के अन्वेषण मे व्यस्त था। बेलम मे लम्बे आदमी प्राय नही मिलते, ऐसे ही भूरे बालो वाली स्त्रियाँ भी वहाँ कम है। स्त्रिया यहाँ हैट नही पहनती।

बेलम के भूमध्य रेखा के निकट होने से मुझे रूस की याद आ गई। इसका एकमात्र कारण यह था कि मुझे प्रेजिडेंट गटूलियो वर्गास का फोटो प्रत्येक स्थान पर टँगा हुआ मिला। सबसे अधिक वह फोटो दिखाई दिया जिसमें वर्गास और रूजवेल्ट ह्वाइट हाउस में इकट्ठे भोजन कर रहे थे। अमेरिका से अच्छा सम्बन्ध होने के कारण मान प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है और प्राय लैटिन अमेरिका के डिक्टेटरो की ख्याति को अमेरिकन पूँजी और कृपाभाव के कारण चार चाँद लगे है। किंतु इस बात से रियो डि जैनरो से

दक्षिण मे रहने वालो के बीच अमेरिकनो की लोकप्रियता बढी नही।

दक्षिण अमेरिका के जिन फाशिस्ट डिक्टेटरो ने युद्ध जीतने में सहायता की उनका तो अमेरिकन सरकार ने समर्थन किया किंतु जिन फाशिस्ट डिक्टे-टरो ने युद्ध मे सहायता नही की उनका उसने विरोध किया। इससे लैटिन की फाशिस्ट विरोधी शक्तियो की यह धारणा नही हुई कि उत्तरी अमेरिका अधि-नायकवाद का विरोधी है।

हमारा मरम्मत किया हुआ वायुयान बेलम से नेटाल पहुँचा जो कि ब्राजील से अफ्रीका जाने का निकटतम हवाई अड्डा है। वहाँ से १४ घटे की साधारण उडान के बाद हम अथमहासागर को पार कर लैगोस (नाइजीरिया) जा पहुँचे। इस ब्रिटिश उपनिवेश की आबादी २,१०,००,००० है। इन लोगो के बारे में हम लोग बहुत ही कम सोचते है। ये लोग तीन विभिन्न जातियो के है और अलग-अलग भाषाए बोलते हैं। हवाई अड्डे के पास एक कैंटीन था जिसमे केवल गरम लेमोनेड मिलता था। इसम तीनो जातियो का एक-एक बैरा था। ये एक दूसरे से टूटी-फूटी अग्रेजी में बात करते थे। लैगोस से अग्रेज़ी के कई पत्र निकलते है जिनमे एक समाजवादी दैनिक भी है। वहाँ मै एक स्कूल में गया जिसका सचालन मिशनरी करते थे। उसमे पाँच-छ साल की गहरे चॉकलेटी रग की लडकियाँ, जिनके तार जैसे बाल बीसियो कडी चोटियो में गुथे हुए सूर्य की किरणो की तरह सीधे खडे थे, अपनी भाषा में यह वाक्य पढना सीख रही थी, "क्राइस्ट समुद्र की सतह पर चलता था।" वे मुझे स्वच्छ और आश्चर्य-चकित-सी दीख पडी।

लैगोस मे हम अमेरिका के फेरी कमान के सुपुर्द कर दिये गये जिसने हम में से कुछ को दो घटे सात मिनट मे ५४० मील पार कर कानो के उत्तर मे पहुँचा दिया गया। कानो एक मुस्लिम राज्य की राजधानी है। यहाँ के अमीर को अग्रेजो से सहायता के रूप में एक मोटी रकम मिलती है और इसके बदले वह अग्रेजो की इच्छानुसार काम करता है और ऐसा ही अपनी प्रजा से भी कराता है। यहाँ के लोग अरबों से मिलते-जुलते है, और मैंने ऊबड़-खाबड़ अरबी में उनसे कुछ बाते की।

कानो मे हम ब्रिटिश बारको मे सोये और अगले दिन सबेरे ५ बजे एक नये अमेरिकन अड्डे से मैडुगुरी के लिए रवाना होगये। वहा हम सात बजे एक और नये अमेरिकन हवाई अड्डे पर जा उतरे। यहाँ हम लोग, एक भयकर आधी में घिर गये और हमारे लिए आगे चलना असम्भव होगया। एक अफ-सर ने बताया कि हमें सारा दिन और सारी रात मैडुगुरी मे ही बितानी होगी।

अफ्रीका के ऐसे बियाबान जगल म २४ घटे गुजारन के विचार से मुझे प्रसन्नता नही हुई। किन्तु विरोध करना निरर्थक था। हम एक ढीली ढाली बस मे बैठ गये जो गहरे गड्ढो वाली सडक पर से हिलती-हिलाती चलने लगी । जब कभी यह बाबा आदम के समय की बस किसी बैलगाडी को जाने को जगह देने के लिए रुकती तो अमेरिका के १६-२० वर्षीय नौजवान उडाको मे से कोई एक, जिसे अभी कॉलेज या विश्वविद्यालय से निकले दो-तीन महीने हुए थे, चिल्ला उठता, "जर्सी सिटी, अब आगे टाइम्स स्क्वेयर आयगा" या "अब सब लोग यूनियन स्टेशन पर पहुच कर रहेगे ।" उन युवको ने स्वीकार किया कि उन्हे घर की याद सता रही है ।

हब्शी स्त्री-पुरुष, जो करीब करीब बिलकुल नगे थे, किंतु सिर पर भूस के लम्बे-चौडे हैट ओढे हुए थे, झुलसती धूप मे रुई के खेतो मे काम कर रहे थे । हर वस्तु निम्न कोटि की और पुराने जमाने की जान पडती थी । वायुयान ने हमे बाबा आदम के युग मे ले जा पटका था ।

फेरी कमान के मेहमानो के रूप मे हम लोग कमान के कैम्प मे ठहरे । कैम्प की सारी झोपडिया नई थी और लकडी की बनी हुई थी । उनकी हरेक खिडकी मे इकहरी जाली और हरेक दरवाजे पर दुहरी जाली लगी हुई थी । प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग खाट थी जिस पर मच्छर-दानी टँगी हुई थी । हर कमरे के साथ गुशलखाना था जिसमें ठडे और गरम पानी के फव्वारे, अमेरिकन साबुन की बडी-बडी टिक्कियाँ, आधुनिक शृगार की सामग्री, बिजली के उस्तरे के लिए प्लग, बिजली की रोशनी, एक बडा रिफरिजरेटर था, जिसमे उबले हुए बरफ के समान ठडे पानी की भूरी बोतले भरी थी । जैसे ही बोतल खाली होती थी वैसे ही एक हब्शी बैरा उसे भर देता था ।

घटी बजने पर हम लोग खाना खाने गये । हमारे हटते ही नौकरो ने कमरो में सब ओर फ्लिट छिडकना शुरू किया ताकि अगर कोई मक्खी या मच्छर अन्दर आगया हो तो मर जाय। खाने के कमरे मे अधेरा-सा कर दिया गया था और वहाँ बिजली के पखे चल रहे थे । एक भी मक्खी कही नही थी । स्थानीय बैरे, जो शायद उन्ही दिनो जगली क्षेत्रो से लाये गये थ, सफेद सूट पहने हुए थे और उनके हाथो पर सफेद सूती दस्ताने चढे हुए थे । वे नगे पॉव खामोशी से आते-जाते थे और उन्हो ने भोजन की टाइप की हुई एक सूची लोगो में बॉटी ।

अगले दिन सवेरे उसी भोजनालय मे मेजो पर सफेद मेजपोश और नैपकिन रखे हुए थे । "कार्न फ्लेक चाहिए या आटे का दलिया", एक अमेरिकन हब्शी बैरे ने पूछा । मेरी दूसरी प्लेट अडो की थी । इसके बाद गेहूँ

के केक और मक्खन और साथ में मुरब्बा आया, और अन्त मे मलाई और चीनी वाली स्वादिष्ट काफी आई। ये सब पदार्थ मैडुगुरी-जैसी उजाड भूमि में मिले ! युद्ध जीतने के लिए अगर अमेरिकन नवयुवको को घर से दूर जाना पडा, तो उन्हे अफ्रीका के जगलो तक मे इतना अधिक घर का-सा आनन्द मिला जितना कोई भी हितेच्छु सरकार किसी के लिए जुटा सकती है। नाई-जीरिया से लेकर भारत तक सब फेरी कमानो का यही हाल था।

जब कि जर्मनी और इटली दक्षिणी यूरोप, भूमध्यसागर और उत्तरी अफ्रीका के बहुत से भागो पर अधिकार किये हुए थे और प्रशान्त के द्वीपो और मलाया तथा बर्मा पर जापान का नियत्रण था, हमारे लिए अमेरिका और इग्लैड से एक ही सुरक्षित हवाई रास्ता था—वह था मिस्र, तुर्की और रूस से होकर ईरान हिन्दुस्तान और वहाँ से चीन।

इस रास्ते से उडने वाले हवाई जहाज सेना के जहाज थे और उनमे सुख-सुविधा की कोई व्यवस्था नही थी। यात्री अलुमिनियम की गहरी सीटो पर बैठते थे और वायुयान की हिलती हुई 'दीवाल' से पीठ लगा लेते थे। अगर इस तरह बैठा-बैठा कोई थक जाता था तो वह नीचे फर्श पर बैठ सकता था, या सामान रखने की जगह पर जा सकता था जहाँ बन्दूके आदि युद्ध-सामग्री पडी होती थी। मैडुगुरी से फ्रासीसी अफ्रीका मे लेक चैड तक और वहाँ से झुल-सते हुए सूडान मे खारतूम तक हम रेतीले मरुस्थल और रेत की ऊची चट्टानो के ऊपर से उडे। हमारा वायुयान ऊपर तक रबड के छोटे-छोटे टायरो के बक्सो से भरा था। इस तरह के टायर हवाई जहाजो के पीछे के पहियो मे लगे रहते है। ये टायर उधार-पट्टा व्यवस्था के अन्तर्गत अमेरिका से रूस जा रहे थे। कुछ बक्स रास्ते मे ही खुल गये और हमे फुदकते हुए फर्श पर टायरो के अन्दर बैठकर बडा आनन्द आया। मै भारत के सम्बन्ध में शुस्टर और विट की लिखी हुई एक पुस्तक पढता रहा।

खारतूम से काहिरा मै एक दूसरे वायुयान से गया, जिसके चालक सान एजलो (टेक्सास) निवासी टी० एफ० कालिन्स और पेंसिल्वेनिया निवासी रेमण्ड वाइज (जूनियर) थे। उन्होने कहा कि हम पूरे ६०० मील की यात्रा बिना कही रुके एक उडान मे पूरी कर लेगे। यह बडी अच्छी बात थी क्योकि भूमि पर उतरने का मतलब विलम्ब और भयानक गर्मी का सामना करना ही था। उडने से पहले वाइज ने कहा—"काहिरा के आधे रास्ते में हमे वादी हाल्फ़ा मे ठहरना है। वहाँ अस्पताल मे एक अमेरिकन सैनिक है जिसके पैसे खतम होगये है, हम उसके लिए १५० डालर ले जा रहे है।" वादी हाल्फ़ा

रेगिस्तान के बीच मे है। वहाँ खजूर के वृक्षो का एक छोटा-सा झुण्ड और कुछ झोपडियाँ है। वहाँ सिर्फ एक अमरिकन था जो अपने घर से ११००० मील दूर बैठा हुआ था। हमने उसके लिए बहुत-सी पत्रिकाओ का भी बडल बाँधकर तैयार कर लिया।

काहिरा मे सभी सभ्य सामग्रिया उपलब्ध थी। हमे अपनी यात्रा मे एक बढिया होटल का कमरा, ठड पेय, स्नान के लिए टब, स्वादिष्ट भोजन और घूमने के लिए टैक्सी मिली। हमने विदेशी सम्वाद-दाताओ और कूट-नातिज्ञो से भट भी की। उन दिनो अलेग्जेडर कर्क, जिनसे मेरा परिचय पहले रोम मे और फिर मास्को मे हुआ था, मिश्र मे अमेरिकन राजदूत था। नाजी जनरल रोमेल से काहिरा भयभीत था। ब्रिटिश सैनिको मे वीरता तो थी किन्तु वे कमजोर थे। कर्क के मस्तिष्क मे एक बात जमी हुई थी।

अमेरिका को इटली पर अवश्य हमला करना चाहिए। कर्क को खयाल था कि ऐसा करने से मिश्र और स्वेज नहर की रक्षा हो जायगी और सारे यूरोपीय युद्ध का पासा पलट जायगा। कर्क बहुत ही धनवान है और जो उन्हे नही जानते वे उनकी गणना आसानी से अमेरिका के राजसी कूटनीतिज्ञो मे कर सकते है। इसमे सन्देह नही कि मेहमानदारो की खूब शान के साथ खातिरदारी करने मे उन्हे मजा आता है। किन्तु उनकी बुद्धि बडी कुशाग्र है और वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को खूब समझते है। उनमें बड-प्पन का अहकार दिखाई देता है और कभी-कभी वह बनते भी बडे है। किन्तु वास्तव मे उनमे यह भाव है नही। वह तो केवल उन सिद्धान्तो के लिए लडते है जिनमे उनका विश्वास है। वह बराबर आग्रह करते रहे कि हमे रूमा-निया के तैल-क्षेत्रो पर बम-वर्षा करनी चाहिए।

प्रसिद्ध शैफर्ड्स होटल में पहुँचने पर मेरी अपने पुराने मित्र मारिस हिंडसे से टक्कर होगई, जो तभी-तभी मास्को से आये थे। उसके बाद हमारी भेंट कर्नल लुई जॉनसन से हुई, जिन्हे प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने अपने विशेष दूत के रूप में भारत भेजा था। उनके साथ इडियानापोलिस के एक उद्योगपति कर्नल आर्थर डब्ल्यू० हेरिंगटन भी थे जो निकट पूरब मे दीर्घ काल तक काम कर चुकने के कारण उस प्रदेश से अच्छी तरह परिचित थे। जॉनसन ने हेरिंगटन का सहायता से भारतीय स्थिति का अध्ययन किया था और मार्च तथा अप्रैल १९४२ मे क्रिप्स-योजना सबधी बातचीत की निकट से समाक्षा की थी। मै जॉनसन से उन दिनो मिला था जब वह अमेरिका मे युद्ध के उपमन्त्री थे। इस पद पर वह १९४० तक रहे। मुझे आशा थी कि भारत मे उनकी सहायता

से मुझे लोगो के साथ सम्पर्क स्थापित करने और जानकारी हासिल करने में सुविधा मिलेगी। किन्तु भारत के मौसम और जलवायु के कारण वह अस्वस्थ हो गये थे और इलाज के लिए अमेरिका वापस जा रहे थे। मुझे उनकी बातो से पता लगा कि भारत के अनुभवो ने उन्हे इस बात का विश्वास दिला दिया है कि भारत के शासन मे परिवर्तन होना चाहिए। भारत के राष्ट्रीय नेता जवाहरलाल नेहरू के सबन्ध मे उन्होने बडे उत्साह और आदर की भावना से बातचीत की।

पूरब जाने वाले वायुयान के लिए मुझे काहिरा मे चार दिन तक प्रतीक्षा करनी पडी। मै होटल के बारजे मे एक अमेरिकन पत्रकार के साथ बैठ जाया करता था और हम आपस मे बाते किया करते थे। "आपको मालूम है कि यहाँ फरवरी मे क्या हुआ था," उसने पूछा। मैने कहा—"नही।" रहस्यमय ढग से और बहुत-सी इधर-उधर की बातो के बाद उसने चुपके से मेरे कान मे कुछ कहा। अलैग्जैंडर कर्क ने मुझसे कहा कि काहिरा की फरवरी की घटनाओ .का मुझे पता लगाना चाहिए। मेरे द्वारा पूछने पर उन्होने कुछ बाते बतलाईं और फिर विषय बदल दिया। इस प्रकार असगत वाक्यो को जोडकर मै एक कहानी बनाने लगा। इस सम्बन्ध मे काहिरा से कोई व्यक्ति कुछ नही लिख सकता था क्योकि ब्रिटिश सेसर इस सिलसिले में विशेषरूप से कडा था। मेरा इस बारे मे कुछ लिखने का इरादा नही था, किन्तु मुझे उत्सुकता थी और मै बाते जानना चाहता था। इसलिए मैने ब्रिटिश राजदूत सर माइल्स लैम्पसन से, जो थुलथुले शरीर के एक हँसमुख व्यक्ति थे, मिलने का समय नियत किया। हमने चर्चा तो अनेक विषयो की की किन्तु गहराई के साथ किसी पर बातचीत नही की। अन्त मे मैने कहा.— "फरवरी की घटनाओ के सम्बन्ध मे मुझे इतनी काफी जानकारी हो गई है कि मै उसके बारे मे इस विश्वास के साथ बातचीत कर सकता हूँ कि मै जो कुछ जानता हूँ वह बिलकुल गलत नही है। फिर भी मेरी जानकारी के कुछ अश गलत और अपर्याप्त अवश्य होगे।" लैम्पसन ने कहा कि तुम जो कुछ जानते हो वह बताओ। मैने बता दिया और उसने उस पर टीका-टिप्पणी की। घटनाएँ ये थी—फर्वरी, १९४२ मे ब्रिटिश सरकार और मिस्र के शाह फारूक के आपसी सम्बन्ध बहुत अधिक बिगड गये थे। शाह को कोई मुश्किल से ही युद्ध और अग्रेजो का समर्थक कह सकता था। सम्भवत. धुरीराष्ट्रो के प्रति उनके मन में कुछ सहानुभूति भी थी। इसका कारण यह नही था कि शाह को इटैलियनो अथवा जर्मनो से प्रेम था, बल्कि उन्होने शायद यह सोचा हो कि

अगर अंग्रेज़ हार जायगे तो मिस्र को और भी अधिक स्वतन्त्रता मिल जायगी। जब ब्रिटिश सरकार ने यह माँग की कि काहिरा-स्थित विची-मंत्री से गोपनीय सदेश भेजने की सुविधाये वापस ले ली जाय तो मामला एकदम बहुत गभीर हो गया। यह सन्देह किया जाता था कि विची-मन्त्री ब्रिटिश सैनिक गतिविधि के बारे मे पेता की सरकार को गोपनीय सूचनाएँ भेजते है। स्वभावत ये बाते पेता सरकार से जर्मनो को मालूम हो जाती थी। शाह ने विची-मत्री से इन सुविधाओ को वापस लेने से इकार कर दिया था। इसलिए सर माइल्स लैम्पसन और ले० जनरल राबर्ट जी० स्टोन ने शाह से भेट करने की आज्ञा मागी। नियत दिन को ब्रिटिश टैको और सैनिको ने शाह के महल को घेर लिया। तब लैम्पसन और स्टोन शाह के कमरे मे घुसे। प्रत्येक व्यक्ति सौजन्य और शिष्टाचार के साथ बाते कर रहा था। अंग्रेजो ने सुझाव पेश किया कि शाह महोदय के लिए हवाई अड्डे पर एक वायुयान तैयार है जो उन्हे बहुत दूर एक ऐसे स्थान पर ले जा सकता है जहा वह चिर-काल तक रह सकेगे--किंतु ये सब बाते तब होती जब वह विची के राजदूत के सम्बन्ध मे एक आज्ञा जारी करने को तैयार न होते और अपना प्रधान-मन्त्री न बदलते। शाह ने ये बातें स्वीकार कर ली।

नाजियो ने काहिरा पर बम नही बरसाये। मिस्री लोग पहले जैसी चहल-पहल के साथ जीवन-यापन करते रहे। युद्ध से उन्होने खूब लाभ उठाया।

२१ मई १९४२ को मै काहिरा से चल पडा। मेरा हवाई जहाज स्वेज नहर और दक्षिणी फिलस्तीन के राफा प्रदेश के ऊपर से उडा जहाँ पर मै १९१९ मे ब्रिटिश सैनिक के रूप मे कई महीने रह चुका था। इसके बाद वह हवाई जहाज गाजा, जो अब युद्ध के कारण बहुत फैल गया है, हरे समुद्र के तट पर स्थित सफेद यहूदी नगर तेल अवीव और जूडिया की खुश्क पहाडियो के ऊपर उडता हुआ बगदाद के पास हबानिया पहुचा। इस यात्रा मे हमे ४॥ घटे लगे। ईराकी सिपाहियो ने हमे हवाई अड्डे के पास वह पहाडी दिखाई जिस पर १९४१ मे रशीदअली की विद्रोही सेना ने अंग्रेजो से लडते समय मोर्चा जमाया था।

भोजनालय मे खाना खाने के बाद दो घटे मे हम बसरा जा पहुँचे। यहाँ यूफ्रेटीज और टाइग्रिस नदिया मिलकर शत्त-अल अरब नामक नदी बन जाती है, जो होटल के बाहर बागो के साथ-साथ धीरे-धीरे बहती है। होटल एयर-कडीशड है। पखे एक मिनिट के लिए भी बन्द नही हुए। सोते समय मैने कोई चादर नही ओढी और सारी रात पसीना पोछता रहा। बसरा की

तुलना मे अफ्रीका ठण्डा है।

बसरा के पास उधार-पट्टे का सामान लाने ले जाने के लिए एक र्लासथो का हवाई अड्डा था। यहाँ हवाई जहाज और रबड के टायर अड्डे पर उतार दिये गये। वहाँ से हम शरजा चले गये, जो अरब के स्वतत्र प्रदेश ओमन मे है। यहाँ कही जगल है, कही पहाड और कही समुद्र। शरजा मे हम ब्रिटिश हवाई कम्पनी के होटल मे सोये। अगले दिन प्रात छः बजे ७४० मील दूर प्राय: सारे रास्ते समुद्र के ऊपर से उडकर हम भारत के पूर्वी द्वार कराची मे पहुँच गये। हम एक अमेरिकन हवाई अड्डे पर उतरे, वहाँ के सभी कर्मचारी अमेरिकन थे। यह अड्डा अमेरिका के बडे हवाई अड्डो जैसा ही था, जहाँ अमेरिकनो की बेतकल्लुफी से चित्त प्रसन्न होगया। किसी ने मुझसे पास-पोर्ट तक के लिए नही पूछा। मैने वहाँ के इचार्ज कर्नल मेसन से पूछा—"नई दिल्ली के लिए जहाज अब कब दिलवाइयेगा।" "तीस मिनट में" उन्होने उत्तर दिया। मैने कैंटीन से सीले बिस्कुटो का एक डिब्बा खरीदा और हवाई जहाज पर जा चढा। २३ मई की शाम को मैं अपने निश्चित स्थान भारत की राजधानी नई दिल्ली में जा पहुँचा।

: ६ :

पूरब और पश्चिम का मेल

पूरब मे एक ओर तो हाथी पर चढने वाले महाराजो की चमक दमक है और दूसरी ओर किसान की झोपडी की जघन्य दरिद्रता, एक ओर शेरो का शिकार, तो दूसरी ओर रोटी के लिए दौड-धूप, एक ओर आकर्षक रगो के वस्त्र और दूसरी ओर जीवन का फीकापन। पूरब एक रहस्य है, एक महान् षड्यत्र, एक रोमास, एक भयानक भुखमरी—असह्य जीवन-भार और असामयिक मृत्यु। पूरब मे प्रकृति की रहस्यपूर्ण सुन्दरता और जीवन की स्पष्ट कुरूपता दोनो ही का समान रूप से दिग्दर्शन होता है।

पश्चिम जीवन का सुख लेता है और पूरब जीवन का अर्थ समझने के लिए भटकता फिरता है। पश्चिम की गति उन्मादपूर्ण है। पूरब धैर्य के साथ प्रतीक्षा करता है। पश्चिम नवीन की खोज मे प्रयत्नशील है और पुरातन को शृगार का हेतु मात्र मानता है। पूरब पुरातन से अभिन्न है पश्चिम पढता अधिक है और सोचता कम है। पूरब पढता कम है और चिन्तन को आदर्श अवस्था मानता है।

पश्चिम मे जीवन का ताल-स्वर मशीनो में मिलता है, पूरब मे मानव में। पश्चिम को धन, अधिकार, बल और सौन्दर्य की लालसा है। पूरब इनके आगे झुकता है पर आदर निर्बलता, सादगी, विनय और आत्मसयम का करता है।

पूरब पश्चिम से भिन्न है। किन्तु यह अन्तर देश का है या काल का? क्या यह इसलिए है कि एशिया बीसवी नही बल्कि १४ वी शताब्दी मे रहता है। जब यूरोप १४ वी शताब्दी में था तो वह आज के यूरोप की अपेक्षा आज के एशिया से अधिक मिलता-जुलता था।

एशिया पश्चिम से सैकडो वर्ष पूरब की ओर है।

एशिया की समस्या यह है कि वर्त्तमान में किस प्रकार रहना आरम्भ किया जाय।

भारत की समस्या बीसवी शताब्दी के समकक्ष होना है।

भारत का सघर्ष पूरब और पश्चिम का सघर्ष नही है बल्कि १७वी और २०वी शताब्दियो का सघर्ष है।

मै न्यूयार्क से मई १९४२ में चला था और गर्मियो भर भारत मे ही रहा। किन्तु मोटर मे तीन मील यात्रा करने या तीन मिनिट की सैर भर से मुझे तीन शताब्दिया पीछे "ब्रिटेन मे बनी" दुनिया की याद आ जाती थी। भारत मे पश्चिम को लाने वाले पुर्तगाल, फ्रासीसी और अग्रेज थे। वे भारत मे है, किन्तु भारत के नही है। जो कुछ अग्रेज लाये भारतीयो ने उसे स्वीकार किया, किन्तु उन्होने अग्रेजो को स्वीकार नही किया। और न ही अग्रेजो ने हिन्दुस्तानियो को स्वीकार किया। कवि रुडयार्ड किपलिग की इस पक्ति का अर्थ "पूरब पूरब है और पश्चिम पश्चिम, और दोनो कभी नही मिलेगे" यह है कि अग्रेज और हिन्दुस्तानी कभी नही मिलेगे, क्योकि स्वामी और नौकर कभी नही मिलते।

कराची के अमेरिकन हवाई अड्डे पर, जहाँ मैने भारत मे प्रवेश किया, मुझे कोई हिंदुस्तानी या अग्रेज दिखाई नही दिया। नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर भी मुझे कोई हिंदुस्तानी नजर नही आया। नई दिल्ली की सडको पर और इम्पीरियल होटल मे कुछ हिंदुस्तानी थे। परन्तु नई दिल्ली भारत का इग्लैण्ड है--सरकारी अफसरो के लिए एक अग्रेजी शहर। भारत मे पहुँचने पर पहले दिन भारत को देखे बिना सोने को जी नही चाहता था। इसलिए मैने होटल के खजाची से डालरो के बदले मे रुपये देने के लिए कहा ताकि मै उन्हे लेकर पुरानी दिल्ली जा सकू। "इस काम को करने में मुझे घटो लगेगे" खजाची बोला, "और मैनेजर की आज्ञा लेनी होगी।" मैनेजर अग्रेज था। उसने मुझे चेतावनी देते हुए कहा--"बेहतर हो अगर आप रात को पुरानी दिल्ली न जाय। वहाँ कोई भी किसी समय आपकी पीठमें छुरा घोप सकता है।" फिर भी उसने मुझे ४० रुपये दे दिये और मै मोटर में बैठकर पुरानी दिल्ली चल दिया। रास्ते में मैने गायो और बैलो को सडको पर सोते देखा और अर्धनग्न, क्षीणशरीर व्यक्तियो को फुटपाथो पर पडे देखा। मै अकेला एक मनोरजन-गृह मे जा बैठा और वहाँ भारी कपडो से लदी एक लडकी का नृत्य देखने लगा। उसके बाद मै सही-सलामत होटल वापस आ गया। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मै गरमी, गदगी, गर्द और पिछडेपन से साक्षात्कार करके लौटा हूँ।

हिंदुस्तान के सम्बन्ध मे जो बातें मुझे सब से ज्यादा याद है, वे है, वे व्यक्ति जिनसे मै मिला और वे समस्याए जिनका मैने अध्ययन किया। हिंदु-

स्तान में बात करने का एक ही विषय है—स्वय हिन्दुस्तान । अक्सर मैने अमेरिका, रूस और युद्ध की बात छेडनी चाही, किन्तु मै असफल रहा । हिन्दुस्तान की समस्याए इतनी दुखदायी और आवयश्यक है कि सारा ध्यान उन्ही की ओर केन्द्रित रहता है । हिदुस्तान बीमार है और ऐसा मालूम होता है कि उसके दिल या पेट मे कोई रोग है । यह रोग तभी भुलाया जा सकता है जब वह दूर हो जाय ।

भारत दो भागो मे विभाजित है । एक ओर तो करोडो का वह जन-समूह है जो शारीरिक रूप से दुर्बल और आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से बहुत पिछडा हुआ है, इसलिए वह अपने आप को निराशा की भावना से ऊपर नही उठा सकता । दूसरे दल मे वे चोटी के लाखो आदमी है जो राष्ट्रीय दरिद्रता, प्रतिकूल जलवायु और उस हीनता की भावना पर काबू पाने के लिए सतत सग्राम मे व्यस्त है, जो एक विदेशी स्वामी की दासता मे रहने के कारण उनके मस्तिष्क मे सदा बनी रहती है ।

भारत जैसे पिछडे हुए देश को सफलता की सीढियो पर अधिकार करने और फिर उस अधिकार को बनाये रखने के लिए जो घोर सग्राम करना पडा है, और अतीत मे देश की जो कठोर स्थिति रही है, उससे धन, प्रतिष्ठा और मान की प्राप्ति के हेतु प्रतियोगिता तीव्र बन गई है । प्रतियोगियो मे असाधारण जोश और वेग होते है । उन्हे ऐसा अनुभव होता है कि समय हाथ से निकला जा रहा है । असफलता का भय उनमे अपूर्व शक्ति और अत्यधिक कटुता पैदा कर देता है । असफलता प्रतिशोध की भावना को जन्म देती है । यह सब होते हुए भी वे व्यक्ति निजी व्यवहार मे स्वच्छन्द होकर दाशनिको की भाति बाते करते है । घनिष्ट सम्बध रखने वाले मामलो पर भी वे बिना किसी आडम्बर के और बडी स्पष्टवादिता से बाते करते है । निराशा और असफलता की बात मैने गरीबो, आदर्शवादी विद्यार्थियो, करोडपतियो, हिन्दू उच्चाधिकारियो, परिश्रमी व्यापारियो—सभी के मुह से सुनी ये लोग निराशा का कारण ब्रिटिश राज्य को ही समझते थे । किंतु मैने देखा कि जातीय भेदभाव और आर्थिक उन्नति के लिए अवसर की कमी भी इस निराशा का एक कारण है । निस्स-न्देह भारतवासियो की आशाएँ भंग होगई है, यही कारण है कि उनका सामू-हिक व्यवहार मुझे कम असाधारण नही लगा । भारतीय राजनीति मे कोई रोग घुस गया है और उसे एक डॉक्टर की आवश्यकता है ।

गाधीजी के इतने अधिक अनुयायी होने का कारण यह बताया जाता है कि वह आधे देवता माने जाते है और वे एक निपुण राजनीतिज्ञ है । लोगो में

इस बात पर अक्सर बहस होती है कि वह सत है अथवा राजनीतिक नेता। सबसे बडी बात तो यह है कि वह भारत के डॉक्टर है।

यह बात मुझसे जवाहरलाल नेहरू ने कही जब नई दिल्ली पहुँचने के अगले दिन ही मै उनसे मिला। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के नेतृत्व के मामले में जवाहरलाल नेहरू गाधीजी के उत्तराधिकारी माने जाते है। गाधीजी ने भारतीयो की आत्म सम्मान की भावना को जाग्रत करने मे सफलता प्राप्त की है और यही वह रज्जु है जो नेहरू और गाधी को एक सूत्र मे बाँधती है। वास्तव मे ये दोनो व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न है। नेहरू तो एक प्रकार के पश्चिम है जो पूर्व में काम कर रहा है। १९४१ मे उनकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। अब तक उनके जीवन के लगभग १० साल हिन्दुस्तान की जेलो मे कटे है। कुछ साल वह हैरो और केम्ब्रिज मे रहे। अग्रेजी स्कूलो की नेहरू पर छाप लगी है। ऐसे ही आधुनिक ससार का भी उन पर गहरा प्रभाव है। नेहरू का रोम-रोम देश के यत्रहीन पिछडेपन का विरोध करता है। उधर गाधी को इन्ही बातो मे आनन्द आता है।

वेश-भूषा, खान-पान, धार्मिक दृष्टिकोण तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से गाधीजी प्राचीन भारत के प्रतिनिधि है। किन्तु इस प्राचीनता में नेहरू केवल इतना विश्वास रखते है, जितने से वह भारतवासियो के लिए ग्राह्य बने रहें और उन्हे उनमें परिवर्तन करने का अवसर मिले।

मै नेहरू को जेनीवा, पेरिस और लन्दन मे यूरोपियन वेशभूषा में देख चुका था। अब मैंने उन्हे सफेद खादी का चुस्त पाजामा पहने देखा, जो टखनो तक आता था, उस पर उन्होने कुरता पहन रखा था जो घुटनो को छूता था और कुरते के ऊपर एक हलके नारजी रग की वास्कट थी। वह नगे पॉव थे किन्तु जिस सोफे पर हम बैठे थे उसके पास ही उनके काले चमडे के बूट पडे थे। उन्होने मेरा परिचय अपनी चचेरी बहन से कराया, जिनके यहा वह ठहरे हुए थे। वह एक आई सी एस अफसर की पत्नी है। उन्होने सफेद साडी पहन रखी थी और उनके माथे पर लाल चमकदार बिन्दी लगी हुई थी। बिन्दी उनके सुहाग की निशानी थी। उन्होने हमे सन्तरो का रस पिलाया।

थोडी-थोडी देर के बाद बाहर लटकी हुई खस की टट्टी पर पानी छिडके जाने का शब्द सुनाई पडता था। टट्टी से छनकर आने वाली गरम हवा को पानी ठडा कर देता था और बाहर आकाश तक छाई हुई धूल अन्दर नही आ पाती थी। मकान कुछ नीचा था, किन्तु उसकी बनावट और सजावट यूरोपियन ढग की थी, सिवा उन आभूषणो के जो पूर्वी ढग के थे और अत्यन्त

सुन्दर लगते थे।

नेहरू ने एक लम्बी नली मे डालकर कई सिगरटें पी। वह बहुत हसते रहे जिससे उनके सफेद सुन्दर दाँत दिखाई देते रहे। उनका रग रेत की तरह भूरा है। वह गजे है और उनके कानो पर सफेद बालो के गुच्छे है, पर है वह अत्यन्त सुन्दर।

एक प्रश्न के उत्तर में नेहरू ने स्वीकार किया कि अग्रेजो ने भारत को शान्ति और सुव्यवस्था दी है। "परन्तु उन्होने हमे कमजोर और पथभ्रष्ट भी कर दिया है" उन्होने कहा—"भारतीय गौरव और राष्ट्रीय भावना का फिर जो उत्थान हुआ है वह तो पिछले २२ या २३ वर्षों से ही हुआ है, जब से गाधी जी ने ('जी', शब्द का प्रयोग आदर के लिए किया जाता है) अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। इससे पहले अगर एक पुलिस का सिपाही किसी किसान को मार बैठता था तो और लाग भाग खडे होते थे। अब वे ही लोग किसान की रक्षा के लिए दौड पडते है। हिन्दुस्तानियो मे अब साहस का सचार हो चुका है। यह केवल राजनीतिक हथियार ही नही है, हमने इसके द्वारा मालगुज़ारी को भी बढने से रोका है।"

गाधी ने भारतीयो में अग्रेजो के विरोध की भावना को जन्म दिया है, वह उसके प्रतीक है। दुबले-पतले लगोटी और चप्पल पहने हुए गाँधी ब्रिटिश सरकार के नियमो की अवहेलना कर पैदल समुद्र की ओर चल देते है। लाखो हिन्दुस्तानी उनके पीछे हो लेते है और इस प्रकार वह यात्रा तीर्थ-यात्रा बन जाती है। इस यात्रा मे युवको का आदर्शवाद दिखाई देता है और साथ-ही-साथ एक नेताहीन राष्ट्र की किसी के नेतृत्व में कार्य करने की आकाक्षा भी फूटी पडती है। "डाडी मार्च" द्वारा भारतवासियो को एक नेता के पद-चिन्हो पर चलने के अवसर की झलक मिलती है और गाधी की कृपा से उनके अनुयायियो को उन विदेशियो के सामने खडे होने मे अभिमान होता है जो उनके घर पर अपना आधिपत्य जमाये हुए है।

गाधी का वाइसराय के सग मरमर के महल की सीढियो पर चढना हिन्दुस्तानियो के हृदयो को विशेष महत्त्व की भावना से ओत-प्रोत कर देता है। गाधी अनशन करते है, साम्राज्य काप उठता है। गाधी का एक असहयोग आन्दोलन हिंसात्मक हो जाता है। उसका पश्चात्ताप करने के लिए गाधी व्रत रखते है। हिंसा बन्द हो जाती है। अधिकार के तामझाम के बिना ही—क्योकि गाधी न तो किसी को दण्ड दे सकते है न पारितोषिक—गाधी जनता पर नियत्रण रखते है। गाधी का कहना है कि अबलो से बल की धारा बहेगी।

अबलो की कीर्ति ही गाधीका बल है। हजारो लोग उन्हे बापू कहते और समझते हे। वह अपने हस्ताक्षर मे 'बापू' लिखते है। एक पत्र मे उन्होने मेरे पास भी 'बापू' ही लिखकर भेजा है।

गाधी भारत की निराशा को दूर करने की प्रतिरोधक औषधि है। जब से उन्होने भारतीयो का नेतृत्व ग्रहण किया तब से भारतवासी अपना मस्तक ऊँचा उठाकर चलना सीख गये है। नेहरू उनके आभारी है। नेहरू अभिमानी, भावुक और तूफानी प्रकृति के व्यक्ति है। "हमे उपनिवेश-पद नही चाहिए," उन्होने एक बार कहा था। "आस्ट्रेलिया या कनाडा की तरह भारत इग्लैण्ड की पुत्री नही है। भारत तो स्वय माता है। भारत शताब्दियो तक एक सभ्य देश रहा है। अग्रेज हमे ब्रिटिश कामनवैल्थ मे सम्मिलित होने को कहते है, जिसके कुछ राष्ट्र (उदाहरणार्थ दक्षिणी अफ्रीका) भारतीय प्रवासियो से भेदभाव करते है। इससे अच्छा तो यह होगा कि हम एक अत र्राष्ट्रीय सघ में सम्मिलित हो, जिसमे केवल ब्रिटेन ही नही बल्कि ब्रिटेन के अलावा चीन, अमेरिका, रूस और सारी मानव-जाति शामिल होगी।

मैने नेहरूजी को गाधीजी के बारे में बात करने के लिए प्रेरित किया। वह बोले– "गाधी भारत के राष्ट्रीय नेता है। किंतु उनका सन्देश समस्त विश्व के लिए है। वह भारतीय है। किंतु उनकी आध्यात्मिकता सार्वलौकिक है।"

"गाधी मे डिक्टेटर का भी पुट है" मुसकराहट के साथ नेहरू ने स्वीकार किया। किंतु उन्होने कहा, "बाध्य करने की जितनी शक्ति गाधी के एक उपवास मे हैं उतनी हिटलर के आतक मे नही। गाधी को हडतालो में विश्वास नही। पच द्वारा निर्णय को वह अधिक अच्छा समझते हे। इसके बावजूद भी जब एक बार कपडा-मिलो के कुछ मजदूरो ने हडताल कर दी तो मिल-मालिको को समझौता करने को बाध्य करने के लिए गाधी ने उपवास आरम्भ कर दिया और मालिको ने फौरन समझौता कर लिया। कौन-सा ऐसा हिंदुस्तानी है जो गाधी के जीवन को सकट मे डालने या एक दिन के लिए भी उनका कष्ट बढाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले सकता है?"

सेवाग्राम मे मै महात्मा गाधी के साथ एक सप्ताह तक रहा। सेवाग्राम भारत के मध्य में एक गाव है। जिस सप्ताह मे मै वहा था उसके पहले तीन दिन नेहरू भी वही थे।

मै एक कच्ची झोपडी में रहा जिसकी छत फूस की थी। मै मूज की चारपाई पर खुले मैदान में सोया और मैने वही खाया जो गाधी खाते थे— सब्जियो के उबले हुए पत्ते और आलू, कच्ची प्याज और गाय का दूध, आम,

शहद और बिस्कुट। हर रोज यही चीजे बनती थी। दो दिन तक तो मै ठीक रहा किंतु जब तीसरे दिन भी ये ही चीजे खाईं तो मैने कहा — "धन्यवाद, मै नही लूँगा।" गाधी, जो खाद्य-सम्बन्धी समस्याओ में बहुत रुचि रखते हैं और खाते समय मुझे ध्यानपूर्वक देखते थे, बोले, "आपको सब्जियाँ पसन्द नहीं।"

"मुझे इन सब्जियो का स्वाद अच्छा नही लगता।" मैने उत्तर दिया।

इस पर उन्होने कहा, "आपको इसमे नमक और नींबू खूब मिलाना चाहिए।"

"तो दूसरे शब्दो मे आप चाहते हैं कि मैं स्वाद को मार डालू" मैंने हँसकर कहा।

"नही, मै चाहता हूँ कि आप स्वाद को और अच्छा बनायें" गांधी ने कहा।

आप तो इतने अहिंसक है कि आप स्वाद को भी मारना नहीं चाहते," मैंने कहा।

नि सन्देह गाधी शान्तिवादी है। किंतु उनसे मैने जो बातें की और उनके जीवन का जो मैंने अध्ययन किया उससे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि उनका शान्तिवाद राजनीतिक है धार्मिक नही। वह सम्पूर्ण शान्तिवादी नही है। वह युद्ध का विरोध इसलिए करते है कि ऐसे युद्ध में उन्हें विश्वास नही जिसका अवलम्बन आधुनिक राष्ट्र विजय और आधिपत्य के लिए है। यदि उनमे सामर्थ्य होती तो वह द्वितीय विश्वयुद्ध को रोक देते, क्योंकि उन्हे इस बात में विश्वास नही था कि किसी भी देश की सरकार मे इतनी योग्यता है कि वह विजय द्वारा मानवता का उद्धार कर सके।

यदि आप निकट से देखे तो आपको मालूम होगा कि गाधी की अहिंसा और शान्तिवाद एक ही नही हैं। गांधी की अहिंसा का अर्थ लडने से इकार करना नहीं है। यह वह अस्त्र है जिससे गांधी लडते हैं। उपवास भी उनके लिए अस्त्र ही है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पास एक यही अस्त्र है। जनता के पास कोई शस्त्र नहीं है।

गांधी ने मुझे बताया कि अहिंसात्मक प्रतिरोध को उन्होंने किन परिस्थितियों में अपनाया। सारी घटना मूल-रूप से भारतीय है। गाधी ने कहा—"आरम्भ १९१६ में हुआ। मै लखनऊ में कांग्रेस-दल के लिए कार्य कर रहा था। एक किसान मेरे पास आया। दूसरे किसानों की तरह वह भी गरीब और दुर्बल था। आते ही उसने कहा— 'मेरा नाम राजकुमार शुक्ल है। मैं चम्पारन का रहने वाला हूँ और चाहता हूँ कि आप मेरे जिले मे चलें।' उसने अपने ज़िले के

किसानो की दुर्दशा का वर्णन किया और मुझसे प्रार्थना की कि मैं उसके साथ चलूं। चम्पारन लखनऊ से कई सौ मील दूर है, किन्तु उसने बराबर इस तरह आग्रह के साथ कहा कि मैने जाने का वादा कर लिया।"

गाधी तत्काल ही नही जा सके। इसलिए वह किसान देश भर के दौरे मे हफ्तो उनके साथ रहा। आखिरकार १९१७ मे वह उन्हे साथ लेकर कलकत्ते से चम्पारन जाने वाली गाडी मे बैठ ही गया।

गाधी का विचार चम्पारन के किसानो से उनकी अवस्था के बारे मे पूछ ताछ करने का था। "किंतु", बात को जारी रखते हुए गाधी ने कहा, प्रश्न के दूसरे पहलू का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मै अंग्रेज कमिश्नर से भी मिलना चाहता था। जब मै कमिश्नर के पास गया तो उसने मुझे धता बताई और तत्काल ही ज़िले से बाहर चले जाने की सलाह दी। मैने यह सलाह स्वीकार नही की और हाथी की पीठ पर चढकर मै देहात की अवस्था का पता लगाने के लिए एक गाँव की ओर चल दिया।

"रास्ते मे एक पुलिस का प्यादा मेरे पास पहुँचा और उसने चम्पारन से बाहर चले जाने का आदेश दिया। पुसिल वाले को साथ लेकर मै अपने ठहरने की जगह गया और वहाँ पहली बार मैने सविनय अवज्ञा का आश्रय लिया। मैंने जिले से बाहर जाने से इकार कर दिया। उस घर के चारो तरफ लोगो की भीड इकट्ठी हो गई। भीड को नियत्रण में रखने मे मैने पुलिस के साथ सहयोग किया।

"फिर मुकदमे के लिए मै कचहरी पहुँचाया गया। सरकारी वकील ने न्यायाधीश से मुकदमा स्थगित करने की प्रार्थना की, परन्तु मैने आग्रह किया कि मुकदमा चलना चाहिए। मै कचहरी में यह घोषणा करना चाहता था कि चम्पारन छोडने के आदेश की अवज्ञा मैंने जान बूझकर की है। मैने न्यायाधीश से कहा कि मै चम्पारन में किसानो की अवस्था के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने आया था और मुझे अंग्रेजी कानून की अवहेलना इसलिए करनी पडी कि मै एक उच्चतर कानून के आदेशानुसार काम कर रहा था। वह कानून मेरी आत्मा का आदेश था।

"अंग्रेजो के विरुद्ध सविनय अवज्ञा का यह मेरा पहला कार्य था। इसके द्वारा मैं यह सिद्धान्त स्थापित करना चाहता था कि किसी भी अंग्रेज को इस बात का अधिकार नही कि अगर मैं अपने देश के किसी भी भाग में शान्तिपूर्ण उद्देश्य लेकर जाऊँ तो वह मुझे वहाँ से निकल जाने के लिए कहे। मैने अपने आपको दोषी स्वीकार किया।"

सरकारी अधिकारियो ने गाधी से अनुनय विनय किया कि आप अपना दोष स्वीकार न करे। वे उन्हे अपराधी ठहराना नही चाहते थे। किन्तु गाधी ने ऐसा करने से इकार कर दिया। अन्त मे सरकार के सामने और कोई चारा नही था सिवा इसके कि वह मुकदमे को बरखास्त कर गाधी को मनचाहा कार्य करने दे।

"सविनय अवज्ञा का विजय हुई" गाधी न कहा। १९१७ के उस दिन से गाधी ने सविनय अवज्ञा प्रणाली के दोषो को दूर करके उसमें अनेक सुधार किये हैं। स्वतत्रता की माग करने वाले प्रदर्शको की भीड पर पुलिस लाठी-चार्ज करती है। प्रदर्शक सडक पर लेट जाते हे और बराबर पिटते जाते है। कुछ देर बाद यह कार्य इतना जघन्य हो जाता है कि अग्रेज अधिकारियो को पुलिस हटा लेनी पडती है। हिन्दुस्तानी विदेशी कपडा खरीदना बद कर देते है। वे टैक्स देने से भी इकार कर देते है। वे सडको पर लम्बे लेटकर अग्रेज अफसरो की मोटर गाडियो को रोक लेते है।

गाधी ने बहुत चतुराई से हिन्दुस्तानियो की निष्क्रियता तथा उदासीनता को एक युद्ध के अस्त्र का रूप दे दिया है। अग्रेज शासकों द्वारा सिखाई गई विनम्रता अब अग्रेजो के ही विरुद्ध प्रयुक्त होती है केवल साहस इसमे जोड दिया गया है। गाधी की यही देन है।

एक बार मैने गाधी से कहा कि इग्लैण्ड लोकतत्रवादी देश है। किन्तु उन्होने आग्रहपूर्वक उत्तर दिया कि यह सम्भव नही कि घर में तो इग्लैंड जनतत्री हो और बाहर साम्राज्यवादी। वास्तव में साम्राज्यवाद जनतत्र का बिलकुल उलटा है। केवल इसलिए कि हममे शारीरिक शक्ति तो है लेकिन हमें दूसरो पर राज करने का अधिकार नही दिया गया। अगर हम किसी देश को बहुत दिनो तक दासता मे जकडे रखे तो निश्चय ही हमारा यह कार्य जनतंत्री सिद्धान्तो के प्रतिकूल ही होगा। साम्राज्यवाद का अर्थ अनधिकृत बलात्कार है। इस सीमित परिधि के भीतर रहते हुए अग्रेज भारत में अनेक जनतत्री नियमोपनियमो का प्रतिपादन करते है। किसी भी यूरोपीय तानाशाही देश में गाधी जैसे व्यक्ति को रातो-रात इस प्रकार ठिकाने लगा दिया जाय कि अगले दिन सवेरे उनका कुछ पता ही न चले। नाज़ी जर्मनी जैसे देश में सामूहिक सविनय अवज्ञा की कल्पना भी नही की जा सकनी और न ही सोवियत् रूस में अहिंसक असहयोग सम्भव है। किन्तु गाधी जानते हैं कि जब तक भारत, इग्लैण्ड और अमेरिका में जनमत पर कोई प्रतिबन्ध नही तब तक अग्रेज उन्हे न तो ठिकाने लगाएगे, न लगा सकते हैं। इन देशो म मत-प्रदर्शन की जो स्वतत्रता है उसी के

कारण गांधी भारत की आज़ादी के लिए अपने अहिंसक आंदोलन का युद्ध आरम्भ कर सके।

गांधी के साथ एक सप्ताह अतिथि के रूप में रहकर मैं निरन्तर सोचता रहा कि इनकी शक्ति का रहस्य क्या है। कांग्रेस-दल, जिसका ये और नेहरू नेतृत्व करते हैं, एक बड़ी ही ढीली-ढाली संस्था है। जिसके सदस्य चार आना वार्षिक चन्दा देते हैं; किन्तु ऐसा करने मात्र से वे किसी विशेष अनुशासन या कार्यप्रणाली से बँध नहीं जाते। गांधी के पास न धन है, न संपत्ति और न संगठन-कार्य का कोई अस्त्र है। फिर भी उनमें ऐसे करोड़ों भारतीयों की श्रद्धा है जिन्होंने उन्हें कभी देखा भी नहीं। इनमें से बहुत से व्यक्ति उनके आह्वान पर भारी बलिदान कर सकते हैं, अपने प्राण और स्वतंत्रता को भी संकट में डाल सकते हैं। जब वह अनशन करते हैं तो असंख्य व्यक्ति उत्कण्ठापूर्वक उनकी शय्या की ओर निहारते हैं। यह सब क्यों ?

इसका आंशिक कारण धार्मिक है। भारत एक बड़ा ही धर्म-प्रधान देश है और हिन्दुओं की, जो गांधी के सबसे अधिक अनुयायी हैं, ईश्वर के सम्बन्ध में एक विचित्र भावना है। हिन्दू-धर्म एक व्यापक धर्म है। इसमें बौद्ध-मत, ईसाई-मत और मूर्ति-पूजा—इन तीनों मतों के गुण हैं। गांधी पक्के हिन्दू हैं, किन्तु वह कुरान से परिचित हैं और इस्लाम के कुछ सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं। गांधी के मिट्टी के बंगले में एक ही सजावट का उपकरण है—महात्मा ईसा का चौखटे में जड़ा हुआ एक छपा चित्र, जिसके नीचे लिखा है—'वही हमारी शान्ति है।' "मैं क्राइस्ट का अनुयायी हूँ," गांधी ने मुझसे कहा। हिन्दू धर्म सब धार्मिक सिद्धान्तों को खपा लेता है और किसी का उन्मूलन नहीं करता। इसलिए हिन्दूमत का कोई कट्टर अथवा आधारभूत सिद्धान्त नहीं हैं, इसके सभी आधारभूत सिद्धान्त परिवर्तनशील हैं, जिसका अर्थ यह है कि वास्तव में वे अनिवार्य सिद्धान्त नहीं हैं।

हिन्दू धर्म इतना विशाल है कि इसमें नास्तिकता, अद्वैतवाद और मूर्तिपूजा तीनों के लिए स्थान है। हिन्दू मूर्तियों के आगे नृत्य और प्रार्थना करते हैं। किन्तु जब मैंने कुछ हिन्दुओं से पूछा कि क्या आप मूर्ति में विश्वास करते हैं, तो वे बोले—"नहीं हमारा विश्वास तो एक ईश्वर में है।" नेहरू ने कहा—"यदि नियागरा जल-प्रपात भारत में होता तो वह भी एक देवता ही माना जाता। असंख्य हिन्दू गांधी को ईश्वर का अवतार मानते हैं। एक हिन्दू पूँजीपति से मेरी बात हुई। उनका कांग्रेस-दल से प्रेम नहीं और न उनका राजनीति से कुछ सम्बन्ध है, फिर भी दृढ़तापूर्वक उन्होंने मुझसे कहा—

'गाधी जैसे महापुरुष हजार साल मे एक बार ही जन्म लेते है, उनके स्वागत के लिए स्वर्ग के द्वार खुले है।

किन्तु क्या कारण है कि गाधी को ही इतनी प्रतिष्ठा मिली और क्या कारण है कि मुसलमान और अहिन्दू भी उन्हे अपना नेता समझते है ? सेवा-ग्राम-वास के छठे दिन मैने यह प्रश्न गाधी के प्राइवेट सेक्रेटरी महादेव देसाई से किया, जो अब स्वर्ग सिधार चुके है, और जिन्होने १० वर्ष से अधिक गाधी की सेवा की थी। मैने कहा—"इन दिनो मै बराबर गाधी की अनन्त प्रभावशीलता के मूल कारण को समझने की चेष्टा करता रहा हूँ। अस्थायी-रूप से मै इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस प्रभाव का मुख्य कारण गाधी की लगन या राग है ।"

"यह बात ठीक है" देसाई ने उत्तर दिया।

"मगर इस रोग का मूल कारण क्या है" मने पूछा।

वह बोले—"इसका मूल कारण उन सब रोगो का शमन करना है जो मास हड्डी के बने होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति मे विद्यमान है।"

"आपका मतलब काम से है ?" मैने पूछा।

"काम, क्रोध और मोह", देसाई ने गिनाते हुए उत्तर दिया। "गाधी अपनी गलती आप जान सकते है। वह अपने आपको दण्ड दे सकते है और दूसरो के दोषो को भी अपने ऊपर ले सकते है। वह पूर्ण रूप से अपने नियत्रण मे है। इसी के कारण उन में असाधारण शक्ति और राग का सचार होता है ।"

राग सभी महापुरुषो का एक आवश्यक अग है। वह सत् और असत् दोनो ही हो सकता है। हिटलर मे भी यह प्रचुर मात्रा मे था। राग बौद्धिक विषय-सम्बन्धी और नैतिक तीनो प्रकार का हो सकता है, किन्तु महापुरुष मे यह होता है अवश्य ।

इस प्रकार गाधी की महत्ता के रहस्य को समझने की चेष्टा करते समय मैने स्वय गाधी से पूछने का निश्चय किया। मै उनके साथ सबेरे-शाम घूमने जाया करता था। एक दिन शाम को मैने उनसे कहा—"मै आप से एक प्रश्न करने जा रहा हूँ जो व्यक्तिगत नही बल्कि राजनीतिक है । इतने लोगो पर अपने प्रभाव का कारण आप क्या समझते है ?"

गाधी ने उत्तर दिया—"मै सोचता हूँ कि मेरे प्रभाव का कारण यह है कि मै सत्य का अनुयायी हूँ। सत्य ही मेरा ध्येय है । किन्तु सत्य केवल वचन मे ही नही होता, इसका वास्तविक अर्थ दैनिक जीवन में व्यावहारिक

रूप से सत्य का अनुसरण करना है।" मेरे खयाल से उनका सकेत सात्विक जीवन की ओर था। यदि वह चाहे तो लोग उन्हे सभी कुछ दे सकते है, किंतु कुछ विशेष अवसरो को छोडकर उनका भोजन, उनके वस्त्र और उनका घर ठीक उसी तरह का होता है जैसा हिंदुस्तान के ९० प्रतिशत लोगो अर्थात् किसानो का। कुछ लोग समझते है कि राजनीतिक प्रभाव डालने क लिए यह एक ढोग है। चूँकि उन्हे इस प्रकार रहने की कोई आवश्यकता नही है इसलिए यह नही कहा जा सकता कि यह सब जान-बूझकर किया गया है। सभी त्याग ऐसे ही किये जाते है। गाधी इसी ससार मे रहते है। ३० करोड से अधिक हिन्दुस्तानी भी उसी ढग से अपना जीवन व्यतीत करते है। वे गाधी मे अपना प्रतिबिम्ब देखते है। गाधी के रहन-सहन के तरीके से उन्हे अपने को गाधी मे मिलाने को सहायता मिलती है।

मैने इस विषय पर और भी बाते की। घूमते-घूमते मैने फिर पूछा—"क्या यह सत्य नही है कि जब आप स्वतन्त्रता का समर्थन करते है तो अनेक भारतीयो की हृदय-तन्त्री के तार झकृत हो उठते है। जिस प्रकार एक गायक अपने श्रोताओ को मोहित करने के लिए प्रयत्न करता है उसी प्रकार आप भी एक ऐसा स्वर निकालते है जिसे भारतवासी सुनने को तत्पर रहते है। मैने देखा है कि जनता प्राय उन्ही स्वरो का सबसे अधिक स्वागत करती है जिन्हे वह कई बार सुन चुकी है और जा उसे भाते है। क्या इसका यही कारण नही कि आप जा कुछ कहते और करते है वह वही है जो जनता चाहती है कि आप कहे और करे।"

गाधी ने कहा—"हा, हो सकता है कि यह बात ऐसी ही हो।"

गाधी की प्रभावशीलता एक जटिल तत्त्व है जिसके कई कारण है। एक कारण यह है कि भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के नायक के रूप में गाधी ठीक समय पर अवतरित हुए है। एक नेता की हैसियत से उनका असली रूप १९१९ म प्रकट हुआ जब ससार के अनेक पराधीन देशो मे, जिनमे भारत भी एक था, राष्ट्रीयता की लहर-सी फैल गई थी। प्रथम विश्व-युद्ध मे इतने युवको की आहुति के बाद भी स्वतन्त्रता की ओर नगण्य प्रगति होने के कारण सारे भारत पर निराशा के बादल छाये हुए थे। गाधी का उदय मानो देश की आवश्यकता और प्रार्थना का ही परिणाम था।

१९४२ की गर्मियो में हिन्दुस्तान में एक बार फिर घोर निराशा छाई हुई थी। मार्च के महीने मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स चर्चिल सरकार के कुछ लिखित प्रस्ताव लेकर भारत आये थे। इन प्रस्तावो में भारत के शासन-विधान में कुछ

युद्ध-कालीन और कुछ युद्धोत्तर व्यवस्था की गई थी। विभिन्न कारणो से सभी भारतीय दलो ने इन प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया। क्रिप्स-मिशन की असफलता की प्रतिक्रिया-स्वरूप भारत मे उत्साहहीनता और सकट दिखाई दे रहा था।

स्वभावत गाधी कभी हतोत्साह नही होते। वह एक योद्धा है। निराशा के शिकार तो प्राय अकर्मण्य ही होते है, कर्मठ लोग तो निराशा के मूल कारणो से जूझने मे व्यस्त रहते है, वे निराशा के आगे झुकते नही। १९४२ मे, जब मै गाधी से मिला, तो ७३ वर्ष के होते हुए भी वह आशावादी, उत्साहपूर्ण और प्रसन्नवदन थे। अतीत में उनकी रुचि नही थी। लायड जार्ज की भाति अतीत की सस्मृतिया उनके मस्तिष्क मे कभी नही उमडती थी। वह भविष्य की ओर ही देखते ही थे। उनके जीवन का ध्येय, भारत की स्वतन्त्रता, अभी पूर्ण नही हुआ था।

भारत को स्वाधीनता प्रदान करने में क्रिप्स-मिशन की असफलता के कारण गाधी मे कुछ करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। इष्ट-फल की प्राप्ति के लिए गाधी कर्म को साधन मानते है और प्रतिकार रूप मे कर्म को स्वय साध्य भी मानते है। उन्होने एक बार मुझसे कहा—"चीन को अमेरिका और इग्लैण्ड से कहना चाहिये कि हम अपनी स्वतन्त्रता की लडाई को आपकी सहायता के बिना स्वय ही लडेगे। स्वतन्त्रता मै उसी को मानता हूँ। यह बुद्धिमत्ता है। औरो पर निर्भर रहकर जो स्वतत्रता प्राप्त की जाय वह वास्तव मे स्वतन्त्रता नही होती। जिस साधन के द्वारा साध्य उपलब्ध किया जाय वह साधन भी उपलब्धि का आवश्यक अग होता है। वास्तविक जन-तत्र मे ऐसा ही होना चाहिए। स्टालिन के रूस मे अच्छा और बुरा—दोनो ही—शिखर से आरम्भ होता है। सभी निर्णय चोटी के तानाशाही नेता करते है और फिर ये निर्णय आम लोगो तक पहुँचाये जाते है, जो अधी आज्ञाकारिता के अभ्यस्त होने के कारण इन्हे मशीन की भाँति ग्रहण कर लेते है। एक ऐसी शासन-प्रणाली मे जहा साध्य की वाछनीयता के कारण साधन भी वाछनीय मान लिया जाता है, साधन का कोई शैक्षिक और नैतिक महत्त्व नही रह जाता और उसके परिणाम स्वरूप सिडीपन और राजनीतिक अनैतिकता उत्पन्न होती है।

गाधी अपने-आपको जनतत्र का रक्षक घोषित नही करते, फिर भी वह हृदय से जनतत्रवादी है, क्योकि वह साधनो के सम्बन्ध मे बडे सतर्क रहते है, किसी बात को वह छिपाकर नही रखते, अपने अनुयायियो से उनका व्यवहार निष्कपट होता है, और वह एसे कार्यक्रम म विश्वास रखते है जिसे

नेता और अनुयायी दोनो एक साथ करे। वास्तव मे गाधी का आदर्श यह मालूम होता है कि राजनीतिक क्षेत्र मे विभिन्न स्वर-तालो के समन्वय से स्वय ही एक मधुर स्वर निकले। उदाहरणार्थ, वह भारतीय राष्ट्रवादियो को आतक या गुप्त कार्रवाई मे भाग लेने का अनुमति नही देते। देश-व्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने से पहले वह इसकी सूचना अग्रेज अधिकारियो को दे देते है। जब आन्दोलन शुरू होता है तो काग्रेस दल के नेता सार्वजनिक स्थानो मे खडे होकर अहिंसक असहयोग करने की इच्छा प्रकट करते हुए पुलिस को अपने को गिरफ्तार कराने के लिए आमत्रित करते है, अग्रज तुरन्त ही उन सबको, जिनकी सख्या हजारो मे होती है, पकडकर जेल मे ठूस देते है। इसके बाद जनता चाहे वह काग्रेस की सदस्य हो या न हो उस नेतृत्वहीन आदोलन मे भाग लेने लगती है और अपने गाँवो और कस्बो मे असहयोग आरम्भ कर देती है। वह कर देना बन्द कर देती ह। यह सब उस समय तक चलता रहता है जब तक या तो आन्दोलन स्वय क्षीण नही हो जाता या गाधी यह समझकर कि उनके उद्देश्य की पूर्ति अथवा आशिक पूर्ति हो चुकी है या यह देखकर कि आन्दोलन असफल रहा है, उसे वापस नही ले लेते।

क्रिप्स मिशनकी असफलता के परिणाम स्वरूप गाधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय किया। आन्दोलन ९ अगस्त १९४२ को गाधी जी, नेहरू और हजारो दूसरे लागा की गिरफ्तारा से आरम्भ हुआ। नेहरू १९४५ में छोड़ दिये गये।

जिन दिनो मै गाधी के पास था उनके मस्तिष्क में आगामी आन्दोलन की रूपरेखा निर्धारित होरही थी इसका बीजारोपण एक दिन आप-ही-आप मई के महीने मे हुआ जब कि गाधी ने साप्ताहिक मौन धारण कर रखा था। उन्होने मन मे सोचा—"अग्रेजो का चला जाना चाहिए" इस पर विचार कर लेने के बाद उन्होने एक लेख लिखा और जो कोई भी सुनने को तैयार होता उससे वह इसकी चर्चा करते। उन्होने मुझसे भी चर्चा की और बताया कि इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उद्देश्य अग्रेजो को हिन्दुस्तान से चले जाने के लिए बाध्य करना है।

प्रतिदिन शाम को गाधी मुझसे एक घटे बात किया करते थे। ठीक एक घटे के बाद वह धोती के भीतर से अपनी निकिल की बडी घडी निकालते और हसकर कहते "अब" जिसके सुनते ही मै उठकर चल देता था। समय के वह बहुत पाबन्द है।

तीसरे दिन मै उनकी कुटिया के कच्चे फर्श पर पतले तकिये के पास

बैठा था। हम उनके "भारत छोडो" प्रस्ताव पर विचार कर रहे थे। मैने कहा–"मेरा ख्याल है कि अग्रेजो के लिए भारत को पूर्ण रूप से छोडकर चला जाना सम्भव नही होगा। इसका अर्थ तो भारत को जापान के हाथो मे सौपना होगा। इग्लण्ड इस बात के लिए कभी तैयार नही होगा और न अमेरिका ही इसे पसन्द करेगा। यदि आप यह चाहते है कि अग्रेज बोरिया बदना बाधकर यहा से चले जाय तो आप निश्चय ही एक असम्भव बात की माग कर रहे है। यह तो वृक्ष के सामने भूकने के समान होगा। निश्चय ही आपका यह मतलब नही कि वे अपना सेनाये भी यहा से हटा ले।

गाधी की बुद्धि बडी कुशाग्र और प्रतिभाशाली है। किन्तु इस बार वह कम से-कम दो मिनट तक खामोश रहे, जिससे जान पडता था कि वह कुछ सोच रहे है। आखिर वह बोले "आप ठीक कहते है। इग्लैण्ड, अमेरिका तथा अन्य देश भी अपनी सेनाये यहा रख सकते है ओर भारत की भूमि का सैनिक कार्रवाई अड्डे के रूप मे प्रयोग कर सकते है। मै नही चाहता कि जापान युद्ध मे विजयी हो। मै धुरी राष्ट्रो को विजयी देखना नही चाहता। किन्तु मेरा विश्वास है कि जब तक हिन्दुस्तानी स्वतत्र नही हो जाते तब तक अग्रेज जीत नही सकते। ब्रिटेन कमजोर है और भारत पर राज्य करते हुए नैतिक दृष्टि से तो वह और भी अरक्षणीय है। मै इग्लैण्ड का अपमान करना नही चाहता।"

तत्पश्चात् गाधी के लखपति मित्र जी० डी० बिडला ने, जो वस्त्र-व्यवसाय के राजा है, मुझे बताया कि उनके पास महात्मा गाधी का पत्र आया है जिसम उन्होने लिखा है कि मुझसे बातचीत करने से इस विषय पर उनका मत बदल गया है। यही बात गाधी ने राजगोपालाचार्य से भी कही और राजगोपालाचार्य ने मुझे बताई। किन्तु गाधी के कई घनिष्ठ साथियो ने उनकी मौलिक योजना मे इस सशोधन को पसन्द नही किया और शब्दो मे उनके सामने अपना विरोध प्रकट भी किया।

"मै समझौता-प्रेमी व्यक्ति हू, क्योकि मुझे यह कभी निश्चय नही होता कि मै ठीक रास्ते पर हूँ", एक दिन गाधी ने मुझसे कहा। इस आश्चर्यजनक जटिल पुरुष के व्यक्तित्व का यह भी एक पहलू है। आगे चलकर उन्होने कहा, "किन्तु इस समय मुझे सबसे अधिक चिन्ता अनिवार्य भविष्य की है।" यह उनके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू है। उन्होने आयोजित सविनय अवज्ञा आन्दोलन को त्यागने से इन्कार कर दिया।

"युद्ध समाप्त होने तक आप इसे क्यो नही स्थगित कर देते ?" मैने उनसे पूछा। "क्योकि मै तत्काल ही काम करना चाहता हू और लडाई के

रहते हुए देश के लिए अपने आपको उपयोगी बनाना चाहता हू," उन्होने उत्तर दिया। मेरा ख्याल है कि उन्हे अपनी वृद्धावस्था का भी ध्यान था। हो सकता है भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह उनके जीवन का अतिम काम हो। फिर भी उन्होने कहा, "अपने प्रेजिडेन्ट (रूजवेल्ट) से कह देना कि मै चाहता हू कि कोई मुझे इस कार्य को करने से विमुख कर सके।" यह उनके व्यक्तित्व का तीसरा पहलू है। एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होने के कारण वह जानते थे कि यदि रूजवेल्ट उन्हे यह विश्वास दिला सके कि युद्ध मे विघ्न न पडने देने के विचार से आन्दोलन स्थगित कर देना चाहिए, तो बाद मे उनके लिए भारत का स्वाधीनता के मामले मे हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो जायगा।

शुरू मे नेहरू गाधी की १९४२ की सविनय अवज्ञा की योजना के पक्ष मे नही थे, क्योकि उन्हे आशा थी कि भारत के शासन में परिवर्तन करने के लिए अमेरिका अपने प्रभाव का प्रयोग करेगा। वह अन्तर्राष्ट्रवादी और फाशिस्ट-विरोधी है। युद्ध से पहले भी वह फाशिस्ट अत्याचार और आक्रमण के घोर शत्रु थे। नेहरू को भय था कि यदि भारत मे अग्रेजी सरकार के कार्य मे सार्वजनिक रूप से बाधा डाली गई तो उससे युद्ध कार्य में कठिनाइया पैदा होगी। गाधी का दृष्टिकोण भारतीय था। स्वतत्र राष्ट्र के अधिकारो से वचित रहने के कारण बहुत से हिन्दुस्तानियो का दृष्टिकोण अपने देश पर ही केन्द्रित हो गया है, मुझ से एक बम्बई की महिला ने कहा—यह तो वही हुआ कि कोई आदमी जबरदस्ती हमारे घर मे घुस आये और फिर बाहर निकलने से इकार करे। भारतवासी अग्रेजो से छुटकारा पाने के लिए इतने व्यग्र है कि प्राय उन्हे और कुछ दिखाई ही नही देता। नेहरू तथा उनके कुछ साथी विश्वव्यापी दृष्टि-कोण वाले व्यक्ति है, किन्तु १९४२ में वे अपनी बात नही मनवा सके। गाधी ने नेहरू को सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समर्थन के लिए मना लिया।

इस जोश और अधीरता के होते हुए भी, गाधी बडे सहिष्णु और परिपक्व है, नेहरू ऐसे नही। दो कारणो से वह अग्रेज साम्राज्यवादियो को नापसन्द करते है। एक तो इसलिए कि वे (अग्रेज) साम्राज्यवादी है और दूसरे इसलिए कि वे प्रतिगामी है। ४५ करोड चीनियो और विश्व की प्रगति पर साम्राज्यवाद का जो दूषित प्रभाव पडा है उसे वह भूलते नही। वह जानते है कि साम्राज्यवाद के कारण युद्ध निरर्थक हो जायगा और शाति भी नष्ट हो जायगी।

जब तक कि द्वितीय विश्व युद्ध मे सभी पुराने साम्राज्यवाद धरा-शायी नहीं हो जाते। तब तक शाति से दूसरे साम्राज्यवाद के उठ खडे होने

की सम्भावना थी। यही भारत में मेरी दिलचस्पी का कारण था। भारत की स्वतत्रता मे मेरी रुचि इसलिए थी कि मै उसे स्वतत्र और श्रेष्ठतर ससार का प्रवेश-मार्ग समझता था। नेहरू के राष्ट्रवाद मे यह अन्तर्राष्ट्रवाद निहित है, किन्तु गाधी को, नेहरू को यह विश्वास दिलाने मे कठिनाई नही पडी कि जब तक अग्रेजो को बाध्य नही किया जायगा तब तक वे भारत से कभी नही जायगे। अपने मित्र क्रिप्स के भारत मे रहते समय और भारत से जाने के बाद के व्यवहार से नेहरू बहुत ही क्षुब्ध थे। अवज्ञा आन्दोलन का आश्रय लेने मे उन्हे यदि सकोच था तो केवल इसलिए कि वह फाशिस्टो की विजय नही चाहते थे। किन्तु उनके पास गाधी की इस दलील का कोई उत्तर नही था कि यदि देश मे एक ऐसी सार्वजनिक क्रान्ति हो सकी जिसके कारण अग्रेज हिन्दुस्तान को पूर्ण स्वराज्य देने को बाध्य हो जाय। तो केवल भारत ही नही बल्कि चीन और सारे ससार मे फाशिस्ट-विरोधी भावना प्रबल रूप से जाग्रत हो उठेगी और उसके फलस्वरूप मित्रराष्ट्रो की विजय शीघ्र हो सकेगी।

जून १९४२ मे मैने नेहरू को बम्बई की एक सार्वजनिक सभा मे कहते सुना—"मै स्वय हाथ मे तलवार लेकर जापान से लडूगा, किन्तु मै ऐसा स्वतत्र होकर ही कर सकता हू।"

इसलिए सिद्धान्त रूप से गाधी और नेहरू सहमत थे। युद्ध-काल में यदि भारत स्वाधीन हो जाता तो धुरी देशो के लोगो से हिन्दुस्तानी कह सकते—यद्यपि तुम्हारी पराजय हागी फिर भी तुम्हारे लिए श्रेष्ठतर जगत् के द्वार खुल जायगे। इसी प्रकार वे धुरी-विरोधी राष्ट्रो से यह कह सकते—विजय के फलस्वरूप शाति और मानव-समाज की उन्नति होगी।

उस समय यदि अवज्ञा आन्दोलन के सम्बन्ध मे नेहरू के मन मे कोई शका रही होगी तो उसे गाधी के आग्रह ने दूर कर दिया होगा। गाधी स्वाधीनता आन्दोलन की सबसे मूल्यवान् विभूति है। वही वह पूजी है जिसके नेहरू उत्तराधिकारी बनेंगे। एक ऐसे युद्ध के समर्थन के प्रश्न को लेकर जो देश मे लोकप्रिय नही समझा जाता था और जिसके सम्बन्ध मे स्वय उनका अपना मत निश्चित् नही था, नेहरू कैसे अपने आप को इस उत्तराधिकार से वचित कर सकते थे।

सेवाग्राम में जब गाधी और नेहरू इस विषय पर बातचीत कर रहे थे तो नेहरू बहुत ही दुखी जान पडते थे। परन्तु जब वह एक बार गाधी के पक्ष मे चले गये तो स्वय गाधी से भी अधिक अदम्य होगये। जब मै सेवाग्राम से लौटने लगा तो गाधी और उनके सेक्रेटरी, देसाई ने मुझसे कहा कि मै वाइसराय

के सामने गाधी को बुलाकर बातचीत करने का प्रस्ताव रखू। गाधी को तब भी दुखदायी अवज्ञा आन्दोलन के रुकने की आशा थी। किन्तु बाद मे जब बम्बई मे मैने नेहरू से पूछा कि क्या आप समझते है कि गाधी का वाइसराय से बातचीत करना ठीक होगा तो उन्होने क्रोधपूर्वक कहा—"नही, वह वाइसराय से क्यो मिले ?" अब नेहरू अपना निश्चय कर चुके थे।

गाधी मे कटुता नही है। अग्रेज नेहरू से बात करने की अपेक्षा उनसे बात करना अधिक अच्छा समझते है। मै हिन्दुस्तान मे जितने भी अग्रेज उच्चाधिकारियो से मिला नेहरू के बारे मे सभी ने नाक-भौ सिकोडकर बाते की, किन्तु गाधी के बारे मे नही। गाधी को न समझने पर भी अग्रेज यह समझ सकते है कि वह इस प्रकार व्यवहार क्यो करते है। किन्तु उनकी समझ मे नही आता कि नेहरू, जिन्होने अग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है और जो ऊचे घराने मे जन्मे है, उनका क्यो विरोध करते है। नेहरू से वे अधिक नाराज़ इसलिए है कि वे समझते है कि कहाँ तो नेहरू को हमारा साथ देना चाहिए और कहाँ वह हमारा इतना कडा विरोध करते है।

नेहरू की बुद्धि बडी तीक्ष्ण है और वह एक सुन्दर लेखक है। साफ-सुथरे, सत्यवादी, आत्मालोचक और नम्र है। मर्यादा और क्रोध उनके प्रमुख गुण है। आधुनिक जीवन मे मानव पर जो अपमान लादे जाते है, उनके प्रति उनका रोम-रोम विद्रोह करता है।

अपने जीवन का प्रथम भाग नेहरूने एक महान् व्यक्ति की प्रतिच्छाया में व्यतीत किया है। वह महान् व्यक्ति उनके पिता स्वर्गीय प० मोतीलाल नेहरू थे। अपने जीवन का दूसरा भाग नेहरूने एक दूसरे महान् व्यक्ति की प्रतिच्छाया मे बिताया है। वह दूसरा व्यक्ति है मोहनदास कर्मचन्द गाधी। जब तक वह इस प्रतिच्छाया से मुक्त नही होगे तब तक उनकी अपनी महानता पूर्ण रूप से विकसित नही होगी।

इतिहास ने नेहरू को एक विशेष कार्य सुपुर्द किया है। भारतीय स्वाधीनता का आन्दोलन स्वतत्र और एकान्त बनने की एक आदि-प्रेरणा है। साथ-ही-साथ वह सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए भी एक सघर्ष है। नेहरू का कर्त्तव्य देश को आर्थिक अभावो और भय से मुक्त करना है। वे इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

: १० :

भारत की समस्याएं

भारत में सात दिन रह चुकने के बाद (ये सब दिन नई दिल्ली ही में कटे) मैंने अनुभव किया कि बडी से-बडी दूरी जो मैंने पैदल तय की थी वह थी टैक्सी से मकान के दरवाजे तक का रास्ता। चुनाचे मैंने घूमने का निश्चय किया। मैं सूरज के डूबने की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु मकानो और फर्शों से इतनी गरमी निकल रही थी और हवा भी अभी इतनी गरम थी कि मै मुश्किल से चल पाया और सडक पार कर कनॉट सर्कस के बडे पार्क में जा बैठा। खडे होकर मैंने चारो ओर देखा, थोडा-सा चला और फिर बैठ गया। गरमी के कारण घूमना मुश्किल था।

पार्क में एक जगह साफ और चमकदार आँखो वाले भूरे रग के १२ लडके हाकी के बल्ले लिये घास पर बैठे थे। वे सम्भवत अपने खेल के बारे मे कोई सभा कर रहे थे। इधर-उधर लडके हवाई हमलो से रक्षा के लिए खोदी गई खाइयो के अन्दर-बाहर दौड रहे थे। बडे लोग छोटी-छोटी सूखी घास पर बैठे थे। कभी-कभी हरी, गुलाबी और टमाटर के रग की चमकती हुई साडी की झलक भी दिखाई दे जाती थी।

पार्क के किनारे-किनारे जो पगडडी बनी थी उस पर लकडी की एक ऊँची प्याऊ थी जिसमें दो बडे मटके रखे थे। इनके पास एक बूढा आदमी बैठा था। वह एक काँसे के लोटे से पानी निकालकर पीने आने वाले व्यक्तियो के चुल्लू में डाल देता था। मै प्याऊ को देख रहा था। सफेद सूट पहने एक और आदमी भी उधर ही देख रहा था। वह हँसा और मेरी ओर सकेत करके उसने मुझे भी पानी पीने को कहा। मै उसके पास गया। उसने अग्रजी मे मुझे बताया कि वह एक डॉक्टर है। वह प्याऊ उसी की बिठाई हुई थी। राहियो को चारो ओर मील भर तक कही पीने का पानी नही मिलता था, इसीलिए उसने वहाँ प्याऊ लगवाई थी। इसी प्रकार वह और उसके पाँच मित्र कनॉट सर्कस में पानी पिलाने का प्रबन्ध प्रतिवर्ष करते थे। प्रत्येक

व्यक्ति का ५०) मासिक खर्चा पडता था और प्याऊ गरमियो में पाँच छ महीने रहती थी। डॉक्टर ने बताया कि नई दिल्ली में भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा बिठाई गई इस प्रकार की बीसियो प्याऊ है। उसने यह भी कहा, कल बर्फ मिल सकेगी और एक नली भी आ जायगी और फिर मटको को ऊपर से ढाप दिया जायगा। जितनी देर हम बाते करते रहे लोग बराबर पानी पीने आते रहे।

"पानी का प्रबन्ध अधिकारी क्यो नही करते" मैने पूछा।

उसने जवाब दिया—'यह तो मै आपसे पूछता हूँ। हम कई बार सरकार के पास आवेदन-पत्र भेज चुके है, किन्तु वह कहते है कि पार्क मे पाइप या फव्वारे लगाने से पार्क की शोभा जाती रहेगी। ये प्याऊ हम अधिकारियो की आज्ञा के बगैर बिठाते है और उन्होने हमसे ऐसा न करने के लिए कह रखा है। हमे इस कार्य के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है"। उस आदमी ने बताया कि वह कांग्रेस-दल का सदस्य है और क्षत्रिय है, जिसकी गणना ब्राह्मणो के बाद होती है। "लेकिन आज हमारे पास शस्त्र नही है और हम लड नही सकते", उसने कहा।

अमेरिकन हवाई सेना के कप्तान कुलर और मै होटल की दूसरी मजिल से झुककर बाहर देख रहे थे। अमेरिकन सेनाओ के लिए बनाये जाने वाले मकानो आदि की चिनाई मे काम करने वाले भारतीय मजदूर और मजदूरनियाँ पुरानी दिल्ली अपने घरो को वापस जा रहे थे। पुरुष प्रायः नगे थे और केवल एक लँगोटी बाँधे हुए थे, किन्तु स्त्रियाँ जिप्सियो (खानाबदोशो) की तरह रग-बिरगे लंहगे पहने हुए थी। बहुत-सी स्त्रियो ने गोद में बच्चे ले रखे थे। झुलसती हुई धूप मे १० या १२ घटे काम करके अब ये लोग चार या पाच मील पदल पुरानी दिल्ली मे अपने-अपने घरो को जा रहे थे। वे सब दीनता के क्षीण प्रतीक जान पडते थे।

"कितना भयानक दृश्य है!" मैने कप्तान से कहा।

'यह गुलामी है, गुलामी" कप्तान ने उत्तर दिया। वह दक्षिण केरोलिना का रहने वाला था।

कुछ दिन बाद मैने वाइसराय की कार्यकारिणी के एक अंग्रेज सदस्य से खाने पर पूछा कि नई दिल्ली में इतनी बसे क्यो नही है जिस पर चढ़कर ये लोग घर जा सकें?

"ये लोग बसो का किराया नही दे सकते।" अंग्रेज सदस्य ने उत्तर दिया।

हैदराबाद मे जब मै रेलगाडी में सवार हुआ तो मेरे डिब्ब में एक हिंदुस्तानी भी था। हैदराबाद शहर हैदराबाद रियासत की राजधानी है। इस रियासत पर निज़ाम राज्य करता है, जो ससार का सबसे धनी आदमी माना जाता है। मेरे डिब्बे में जो आदमी बैठा था वह हिन्दुस्तानी मुसलमान था और भारतीय हवाई सेना में अफसर था। वह अपने स्क्वाड्रन के लिए एक नया वायुयान लेने पूना जा रहा था। वह जापानियो के विरुद्ध बर्मा में लड चुका था। यद्यपि वह स्वेच्छा से भरती होकर अग्रेज़ो के साथ तीन वर्ष तक सेना मे काम कर चुका था, फिर भी अग्रेज़ो की जैसी निन्दा उसने की ऐसी मैने किसी और भारतीय के मुख से नही सुनी। खिडकी की ओर उगली करते हुए वह बोला—"इन आदमियो की तरफ देखिये। इन्हे जानवरो की तरह ज़िंदगी बितानी पडती है।" हम गाँवो मे से होकर गुजर रहे थे, जहाँ लोग बास या गारे या खजूर की शाखाओ से बनी हुई झोपडियो मे रहते थे। बडे बडे लडके तब बिलकुल नगे थे। स्त्रियाँ चिथडे पहने थी और पुरुष लगोटी। "अग्रेजो ने हिन्दुस्तान का शोषण किया है" वह अफसर बोला "जब तक मैने जॉन गन्थर की पुस्तक "इन्साइड एशिया" नही पढी थी तब तक मुझे इसकी अधिक जानकारी नही थी। अग्रेज हमे जान-बूझकर अज्ञानी और गरीब बनाकर रखते है और हमारे देश के विकास को रोकते है।"

हिन्दुस्तान मे दो-चार दिन रहने के बाद ही पता चल जाता है कि यहाँ भयानक दरिद्रता है और सभी वर्गो और दलो के लोग हृदय से अग्रेजो के विरोधी है।

वाइसराय की कार्यकारिणी के सदस्य, सर फीरोज खा नून ने एक दिन मुझसे कहा—"अग्रेज एशिया और अफ्रीका में कही भी स्थानीय लोगो को मित्र नही बना सके और न उनके रहन-सहन मे आधुनिक सुधार कर सके। न्यूयार्क की तो बात दूर है, लन्दन और पेरिस मे भी हम आज जो कुछ देखते है वह सब पिछले १५० वर्षों मे ही जुटाया गया है। किन्तु हिन्दुस्तान मे १५० वर्ष म प्राय कुछ भी नही बदला; चारो ओर वही दारुण दरिद्रता और फटे चिथडे दिखाई देते है। हाँ, यह बात ठाक है कि यद्यपि हिन्दुस्तानी अधिक नही खाते फिर भी मरते कम है क्योकि अग्रेजो ने स्वास्थ्य सम्बधी व्यवस्थाएँ कर दी है।" नून मुसलमान जमीदार है। वह अग्रेजो से सहयोग करते है और गाधी-विरोधी हैं।

"हिन्दुस्तान के अग्रेजो मे बडा सामाजिक अहकार है और वे हमारा आर्थिक शोषण करते है।" यह मुझसे वायसराय की कार्यकारिणी के सप्लाई

सदस्य, सर हामी मोदी ने कहा। मोदी एक लखपति पारसी है।

स्वय लार्ड लिनलिथगो ने मुझसे कहा था—"हिन्दुस्तान इतना इग्लैण्ड-विरोधी कभी नही रहा है जितना आज है।"

भारतीय पत्रकार-सघ ने मुझे बम्बई में अपनी एक सभा में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। यह तय पाया कि भाषण देने की बजाय मैं प्रश्नो के उत्तर दूगा। एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मैने युद्ध-प्रयत्नो के समर्थन पर जोर दिया और यह बताने का प्रयत्न किया कि यदि फाशिस्टो की विजय होगई तो भारत पर और हम सब पर क्या बीतेगी।

"भारत के लिए जापानी फाशिस्टवाद और अग्रेजी फाशिस्टवाद में कोई अन्तर नही है" पत्रकार बोला।

मैंने कहा—"देखिये, इग्लैण्ड फाशिस्ट नही है। इग्लैण्ड बहुत ही जनतत्रवादी है और कई राजनीतिक मामलो में तो वह अमेरिका से भी अधिक जनतत्री है। मै जानता हूँ कि कभी-कभी भारत में अग्रेज दमन के जो कार्य करते है उन्हे आप पसन्द नही करते। किन्तु मै जब से इस देश में आया हूँ हर चार पाँच आदमियो मे से एक ने मुझे बताया है कि वह जेल हो आया है। मै रूस और जर्मनी मे सालो रहा हूँ। उन देशो में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई दे जो जेल होकर आया हो। वहाँ तो जो एक बार जेल में जाता है वह जेल का ही हो रहता है और बहुत-से तो वहाँ गोली से उडा दिये गये है।"

एक दूसरा भारतीय पत्रकार बोला—"अग्रेज उसे गोली से नही मारते, वे हमे हलाल करते है।"

मैंने उससे इस बात का अभिप्राय पूछा। उसने कहा—"हिन्दुस्तान मे औसत आयु २७ वर्ष की है।" यही अक बाद मे मैंने सरकारी अक-सग्रह मे भी देखा। इग्लैण्ड में औसत आयु ६० और अमेरिका में ६३ वर्ष की है।

तीसरे पत्रकार ने बताया कि "भारत में जन्म लेने वाले बच्चो में से ४५ प्रतिशत ५ वर्ष के होने से पहले ही मर जाते है।" यह भी जन सख्या-की पुस्तक में लिखा हुआ है।

बम्बई की मजदूर-बस्तियों और थाना जिले में, जो बम्बई से अधिक दूर नही है, मैंने जैसी भयकर दरिद्रता देखी वैसी न तो १९२० से बाद के रूस और पोलैंड में देखी न १९३० के बाद स्पेन के भूखे-नंगे देहातो में। पर्लबक का कहना है हिन्दुस्तानी किसान चीनी किसान से भी अधिक गरीब है। मिलो में काम करने वाले मजदूर किसानो से नाम मात्र के लिए अच्छे है। "लंदन इकानोमिस्ट" के अनुसार जितने में "हिन्दुस्तानी मजदूर साल भर तक गुजर करते है,

उतना तो अग्रेज मजदूर केवल सिगरेट तम्बाकू मे फूंक डालता है ।" सन् १९३१ की जन-सख्या सबधी पुस्तक की भूमिका में ब्रिटिश जन-सख्या विभाग के प्रमुख अफसर, श्री जे० एच० हटन ने लिखा है कि बम्बई में "२, ५६, ३७९ लोग एक कमरे में ६-६ या ९-९ के हिसाब से रहते ह बम्बई के अधिकाश निवासियो को प्रति व्यक्ति ६ वर्ग फुट के हिसाब से रहने का स्थान मिल पाता है ।" तब के बाद से बम्बई की आबादी और भी अधिक हो गई है।

यह बात अक्षरश सत्य है कि भारत के कई करोड निवासी हमेशा भूखे रहते है। निरन्तर कष्ट देने वाली इस स्थायी भूख के कारण केवल शरीर की शाति ही क्षीग नही होती—मस्तिष्क भी पेट में उतर आता ह। हिन्दुस्तानी ग्रामीण यह नही जानते थे कि युद्ध में कौन किसके साथ लड रहा है और अग्रेज किसकी ओर से युद्ध कर रहे है। जब मैंने उनसे पूछा कि लडाई के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है, तो उन्होंने जवाब दिया-"हम भूखे हैं।" इसी तरह जब मैंने पूछा कि अग्रेजो की तरफ से तुम्हारा क्या खयाल है, तब भी उन्होने यही उत्तर दिया—"हम भूखे है।"

भारतीय राजनीति की रूपरेखा पेट में तैयार की जाती है।

भारत की वर्तमान दशा के कारण भारत के इने-गिने शिक्षित और राजनीतिक लोगो में अग्रेजो के प्रति शत्रुता के भाव पैदा होगये है।

जब मै वैभवशाली देशी नरेशो और लखपती व्यवसायियो से मिला तो मैंने भर्त्सना की कि आप लोग अपनी जनता के दु ख-निवारण में अधिक सहायता क्यो नही देते ? वे इस दिशा में अधिक प्रयत्न कर सकते है और उनमे से कुछ ऐसा करते भी है। किन्तु चालीस करोड लोगो को तिल भर भी ऊपर उठाना एक महान् कार्य है और इस कार्य को कोई एक व्यक्ति नही कर सकता। वास्तव में अकेले ब्रिटेन मे सम्भवत इस समस्या को हल करने की क्षमता नही है। इसके लिए उस तरह के अन्तर्राष्ट्रीय साधनो को जुटाने की आवश्यकता है जिनके फलस्वरूप परमाणु बम बनाया जा सका और धुरी राष्ट्र हराये जा सके।

भारत की आबादी ५० लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ रही है। श्री हटन ने १९३१ की सरकारी जन-सख्या-पुस्तक में लिखा था—"इग्लैण्ड में लोग जितने धनी है उतनी ही कम उनमें जन्म सख्या पाई जाती है।" उनका कहना है कि भारत, चीन और रूस में अधिक जन्म संख्या का यह भी कारण है। अगर मान लिया जाय कि धार्मिक या राजनीतिक कारणो से सरकार हस्तक्षेप नहा करेगी तो उस दशा मे सन्तति-निग्रह की सफलता एक सीमा तक शिक्षा,

ट्रेनिंग और ऐसे साजो-सामान पर निर्भर होगी जो एक औसत दरजे के भारतीय के लिए महगा पडेगा। इसलिए भारत मे जन्म-सख्या घटाने के लिए उत्तरोत्तर आर्थिक अवस्था की सबसे पहले जरूरत है। यह भी ठीक है कि जन्म-सख्या मे कमी होने से रहन-सहन की अवस्था मे सुधार होगा, किन्तु जहा तक भारत का सम्बन्ध है। आर्थिक दशा को सुधारने से पहले सन्तान-निग्रह पर जोर देना बिलकुल उलटी बात होगी।

सरकारी जन-सख्या विवरण के अनुसार भारत की आबादी १९३१ मे ३३,८०,००,००० थी और १९४१ मे ३८,५०,००,००० थी, अर्थात् १० साल में जन-सख्या मे ५ करोड की वृद्धि हुई। यही भारत की सबसे बडी समस्या है।

सोवियट रूस में, अपूर्व औद्योगिक प्रसार के दिनो म, जब पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत बडे-बडे कारखानो और महान् नगरो का आविर्भाव होरहा था, उपयोगी धन्धो म हर साल दस लाख आदमी खप जाते थे। किन्तु भारत में जहा प्रति वर्ष ५० लाख नये पेट उत्पन्न होते है, पिछले बीसियो सालो से बहुत ही कम औद्योगिक उन्नति हुई है। सन् १९२२ में प्रकाशित एक सरकारी अग्रेजी पुस्तक मे इडियन मेडिकल सर्विस के डाइरैक्टर जनरल मेजर-जनरल सर जॉन मिगाव ने लिखा था– "यह स्पष्ट है कि जीवन की आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन में जो वृद्धि हो रही है उससे कही अधिक वृद्धि आबादी मे हो रही है। अत स्थिति में यदि कोई मौलिक परिवर्तन न हुआ तो आर्थिक जीवन का मौजूदा मान जो पहले से ही बहुत नीचा है, अनिवार्य रूप से और भी नीचा होता जायगा। एक सीमा तक भविष्य निश्चय ही अन्धकार पूर्ण है।" बाद की घटनाओ ने मिगाव की शोकपूर्ण भविष्य वाणी की पुष्टि की। हिन्दुस्तान मे रहन-सहन का मान बराबर घटता जारहा है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनो मे भारत के इसपात और अस्त्र-शस्त्र के उत्पादन में वृद्धि हुई, किन्तु समग्र औद्योगिक उत्पादन में कमी हुई।

भारत में मैने ऐसे कई ब्रिटिश कागजात और सरकारी वक्तव्य प्राप्त किये थे (वे प्रकाशित भी किये जा चुके है) जिनसे यह सिद्ध होता है कि भारत के औद्योगिक विस्तार मे ब्रिटिश सरकार ने बाधाये डाली है। हिन्दुस्तान से न्यूयार्क आते हुए मै जब फिलस्तीन मे ठहरा तो मैने यह बात अपने मित्रो से कही। उन्होने बताया कि फिलस्तीन मे भी अग्रेजो की यही नीति है और साम्राज्यवादियो की तो सभी जगह यही नीति है उपनिवेशो को कच्चे माल या आधे तैयार किये हुए माल के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाय। "फार्चून" पत्रिका के सम्पादक स्वर्गीय रेमड लेस्ली बूएल ने लिखा था—"अमेरिका की क्रान्ति मुख्यत. व्यापार-

वृत्ति के प्रति और जहाजरानी, चीनी स्टाम्प आदि कानूनो में निहित शोषण के प्रति विद्रोह था। ब्रिटेन ने उपनिवेशों को उस समय तक व्यापार, उत्पादन और भूमि तक मे विस्तार करने का अधिकार नही दिया जब तक कि उससे ब्रिटेन के व्यापारियो को प्रत्यक्ष लाभ न हो।" सन् १७७६ की अनुदार मनोवृत्ति आज भी जोरो पर है। साम्राज्यवाद उतना ही बदलता है जितना उसे बाध्य होकर बदलना पडता है। आर्थिक उन्नति मे वह बाधक होता है।

भारत, चीन (जो नाम मात्र के लिए स्वतत्र होते हुए भी अभी अर्ध-औपनिवेशिक अवस्था मे है) एशिया और अफ्रीका के अन्य औपनिवेशिक देश और लैटिन अमेरिका के भी बहुत से भाग आर्थिक दृष्टि से मरुभूमि के समान हैं। इस मरुभूमि में १५ खरब प्राणी निवास करते है। उन्हे खाने और पहनने को बहुत कम मिलता है और रक्षा के लिए स्थान भी कम मिलता है। उत्पादन और उपभोग दोनो ही का स्तर इतना नीचा है कि लज्जा आती है। इन देशो मे समस्त ससार की तीन चौथाई जनता निवास करती है और वह शेष चौथे भाग को भी नीचे की ओर घसीटती है।

पूरब के पिछडे रहने के कारण पश्चिमी ससार को आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक क्षति उठानी पडती है। निर्धन, रोगी और अपराधी चाहे किसी भी समाज के हो वे सबके लिए भार-समान ही होते है। ससार आखिर एक ही जाति तो है।

यह एक पागलपन की-सी बात मालूम पडती है कि जिस ससार में उत्पादन की इतनी शक्ति हो जितनी कि उसने युद्ध के दिनो मे दिखाई, करोडो पुरुष, स्त्रिया और बच्चे बेकार, भूखे, नगे और अरक्षित रहे। यह सब पागल-पन ही नही घोर अपराध है, ईसाइयत और जनतत्र के सिद्धान्तो के बिलकुल विपरीत है।

वर्तमान युग की महान् चुनौती यह है कि जिस प्रकार आजकल हम रह रहे है और जिस प्रकार हम मशीनी और टेकनिकल प्रगति का पूरा लाभ उठाने के बाद रह सकते है, उन दोनो में साम्य स्थापित करे। पृथ्वी के गर्भ में असीम सम्पत्ति छिपी पडी है और यदि हमें अधिक सम्पत्ति की आवश्यकता होगी तो हमारी निर्माण-शक्ति का जादू उसे समुद्र के जल, समुद्र के घास-फूस, कोयले की राख और रेत से पैदा कर देगा। परमाणु का विस्फोट हमारे सामने कल्पनातीत सम्पत्ति उपस्थित कर देगा। इस सम्पत्ति को उपभोग के योग्य बनाने के लिए हमारे पास असीम जन-शक्ति है जो प्रत्येक नई मशीन के साथ बढ़ती जाती है। जन-शक्ति, मस्तिष्क-शक्ति और भौतिक सम्पत्ति के इस अक्षय

भण्डार के रहते हुए वह सभ्यता, जो दरिद्रता, रुग्णता और निरक्षरता को सहन करती है, हास्यास्पद प्रतीत होती है।

वास्तव म दोष शताब्दियो की दीर्घायु का है। शताब्दिया बीत जाती है किन्तु उनकी विचार-धाराएँ, उनके राजनीतिक, और आर्थिक रूप तथा उनके नैतिक मान बाद में भी हमे परेशान करते रहते है। विज्ञान के द्वारा हमे इक्कीसवी शताब्दी का भी पूर्वाभास हो गया है। विज्ञान ने बाहुल्य और स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसी के द्वारा मानव को पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और शून्य के बन्धनो मे मुक्त होने की आशा है। किंतु राजनीति अब भी उसी दकियानूसी काल मे फँसी है, जब न भाप के इजन थे न बिजली थी और न हवाई जहाज थे। राजनीति मध्ययुग के पक मे उलझी हुई है और उसने मानव को भय और अभाव की रस्सी में जकड रखा है। राजनीतिज्ञ अब भी भौगोलिक सीमाओ, राष्ट्रीय स्वतंत्रता और साम्राज्यगत आधिपत्य के आधार पर शाति-सधिया करते है।

या तो राजनीति विज्ञान को ले बैठेगी या विज्ञान, जिसकी शक्तियो पर सगठित मानव का नियत्रण नही है, भूमडल की धज्जियाँ उडा देगा।

जीवन से भारतीयो को जो कुछ मिल सकता है और जो वास्तव में मिल रहा है उन दोनो के बीच इतना अखरने वाला और उन्माद-प्रेरक अतर है कि इसी से भारत के नैराश्य, असन्तोष और क्षोभ का पता चल जाता है। भारत भूमण्डल का पचमाश है। गत ५० वर्षों मे एशिया की जन सख्या दुगुनी होगई है। आज एशिया जाग्रत अवस्था मे है। उसे स्वाधीनता, सुरक्षा, समृद्धि और गौरव की चाह है। आर्थिक या राजनीतिक दृष्टि से यह ससार उस समय तक निष्क्लेश नही हो सकता जब तक कि एशिया और दूसरे भूखडो के खरबो जीव उस सुख-सुविधा मे हिस्सा नही लेते जो उन्हे मनुष्य द्वारा खडी की गई पुराने ढग की बाधाओ के हटते ही प्राप्त हो सकती है।

भारत की सभी समस्याएँ—राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक—भारत की करुण दरिद्रता और अवरुद्ध आर्थिक गति की काली पृष्ठभूमि में ही समझी जा सकती है। उदाहरणार्थ, हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भारत के व्यावसायिक पिछडेपन का विचित्र किन्तु गहरा प्रभाव है। भारतीय शहरों में रोजगार बहुत ही सीमित है जिसके फलस्वरूप सरकारी नौकरियाँ ही भारतीयो का मुख्य व्यवसाय बन गया है। इनके लिए प्रतिस्पर्धा बडी तीव्र रहती है और बहुत से हिन्दुस्तानी इनम खप भी जाते है, क्योकि अग्रेजों को शहरी कर्मचारियो की बहुत बड़ी सख्या मे आवश्यकता रहती है। भारत मे ब्रिटिश

शासक बडे कमाल के साथ शासन करते है। उनकी शासन सस्था तो कही दिखाई देती ही नही। वाइसराय के गोपनीय सेक्रेटरी सर जॉन थॉर्न ने, जिनके साथ मै एक बार खाने पर मिला था और जिनसे मैने कुछ आँकडे मागे थे, मुझे १३ जुलाई १९४२ को लिखा कि इडियन सिविल सर्विस मे ५७३ अग्रेज है और इडियन पुलिस मे ३८६ बडे और लगभग ४५० छोटे अग्रेज अफसर है। साराश निकालते हुए सर जॉन ने लिखा—"इसलिए यह कहना ठीक होगा कि कुल मिलाकर भारत पर शासन करने वाले अग्रेजो की सख्या १४०० है।" यह तो ठीक है कि ब्रिटिश शक्ति का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश जल और थल सेनाओ और अप्रत्यक्ष रूप से, व्यापारी वर्ग मे भी है किन्तु शासन के वास्तविक यत्र को चलाने वाले अग्रेजो की सख्या १४०० ही है, शेष सब हिन्दुस्तानी है।

आई० सी० एस० और शासन-सम्बन्धी दूसरी नौकरियो मे ऐसे हजारो हिन्दुस्तानी भरती किये जाते है जिन्हे इन नौकरियो का काम विशेष रूप से सिखाया गया होता है। ये लोग सभी सम्प्रदायो और वर्गो के होते है किन्तु हिन्दू इनमे सबसे अधिक होते है। आम तौर पर भारत मे इसका कारण यह बताया जाता है कि हिन्दू अधिक शिक्षित और बुद्धिमान होते है। मेरे खयाल मे बात कुछ और है। जब अग्रेज भारत में आये तो उन्होने मुसलमान शासको को पद-च्युत किया। सन् १८५७ के विप्लव के बाद तो विशेष रूप से अग्रेज मुसलमानो से, जिन्होने विप्लव मे प्रमुख भाग लिया था, सशक रहने लगे। इसलिए मुसलमानो को सरकारी नौकरियो मे प्रवेश करने से हतोत्साह किया जाता था। इसके अलावा चूंकि कुरान के अनुसार सूद खाना वर्जित है, इसलिए और अन्य कारणो से भी मुसलमानो ने लेन-देन, उद्योग-धधे और बडे व्यापार हिन्दुओ के हाथो मे छोड दिये। परिणाम यह हुआ कि मुसलमान या तो बडे जमीदार बने रहे या छोटे किसान। शहरो मे रहने वाले मध्यम वर्ग के मुसलमानो की सख्या नही के बराबर थी।

शहरो मे रहने वाले मध्यम वर्ग के हिन्दुओ और धनी हिन्दू और पारसी व्यवसायियो ने यह महसूस किया कि अग्रेज हमारे आर्थिक विकास मे तो रोडे अटकाते ही है साथ ही-साथ सामाजिक व्यवहार में भी वे हमारा अपमान करते है। अत वे भारतीय स्वतत्रता का समर्थन करने वाली सस्था काग्रेस के प्रधान कार्यकर्त्ता और प्रतिपालक बन गये। काग्रेस ने हिन्दू और मुस्लिम बौद्धिक वर्ग की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली।

चूंकि मध्यम और उच्च वर्ग के हिन्दू अग्रेजो के विरोधी थे, इसलिए बीसवी शताब्दी के आरम्भ से अग्रेजो ने मुसलमानो की लल्लो-चप्पो करनी शुरू की।

हिन्दू पूजीपति राष्ट्रीय स्वाधीनता चाहते हैं ताकि वे साम्राज्यवाद का प्रतिस्पर्धा और हस्तक्षेप से बचे रहकर फल-फूल सके। दूसरी ओर मुस्लिम जमीदारो को भय है कि अगर स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही हिन्दुओ ने जमीदारी प्रथा मे सशोधन कर दिया तो उनकी सम्पत्ति और आय सकट मे पड जायगी। इसलिए उच्चवर्गीय मुसलमानो के हृदय मे स्वतन्त्रता के लिए स्थान नही है। श्री मुहम्मद अली जिन्ना की मुस्लिम लीग मे अधिकतर उच्चवर्ग के मुसलमान ही हैं।

मुसलमानो में भी एक मध्यम वर्ग की स्थापना करने के अभिप्राय से सरकारी नौकरियो का एक अश मुसलमानो के लिए सुरक्षित कर दिया गया, चाहे वे इन नौकरियो के लिए हिन्दू उम्मीदवारो की अपेक्षा कम योग्य ही क्यो न हो। सन् १९०९ मे अंग्रेजो ने जाति या धर्म के आधार पर पृथक्-निर्वाचन-पद्धति स्थापित की जो अब भी जारी है। इसके अनुसार सार्वजनिक चुनाव आदि मे हिन्दू केवल हिन्दू के लिए और मुसलमान केवल मुसलमान के लिए मत दे सकते हैं। इस प्रकार मुस्लिम राजनीतिज्ञो की आकाक्षाओ को प्रोत्साहन मिला, मुसलमानो मे एकता का सूत्रपात हुआ और साम्प्रदायिक भेद-भाव दृढ होते गये।

शहरो मे पुराने मध्यम वर्ग के हिन्दुओ के मुकाबले मे एक नये मध्यम वर्ग के मुसलमान खडे होगये। मुसलमानो का राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए अंग्रेज उन्हे प्रोत्साहन देने लगे। इसके कारण हिन्दू अंग्रेजो का और भी अधिक विरोध करने लगे और हिन्दू-मुसलमानो का पारस्परिक वैमनस्य बढ गया।

भारत में मै जिस किसी से भी मिला—इनमे भारत के वाइसराय, सर आर्चिबाल्ड वेवल, अनेक सर्वोच्च अंग्रेज अधिकारी, जिन्ना, गाधी, कांग्रेस के मुसलमान राष्ट्रपति आजाद भी सम्मिलित है—सभी ने इस बात की पुष्टि की कि देहात मे हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच मे सघर्ष नही के बराबर है, और भारत का ९० प्रतिशत भाग देहातो मे है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या मनुष्य द्वारा बनाई गई एक शहरी समस्या है। इससे केवल यही पता लगता है कि शहरो मे रोजगार की कमी है।

जिन्ना ने मुझे बताया कि भारत के ७५ प्रतिशत मुसलमान पहले हिन्दू थे, जिन्हें सैकडो साल हुए मुगल विजेताओ ने मुसलमान बना लिया था। नेहरू ने ऐसे मुसलमानो की सख्या ९५ प्रतिशत बताई थी। कुछ भी हो, अधिकाश हिन्दुओ और मुसलमानो का जातीय स्रोत एक ही है। रंग-रूप और भाषा की दृष्टि से एक बगाली मुसलमान और बंगाली हिन्दू मे कोई अन्तर नही। जाति-शास्त्र की दृष्टि से सोवियत् रूस, स्विट्जरलैंड और सम्भवत अमेरिका की अपेक्षा

भी भारत कही अधिक एकजातीय है ।

भारतीय जीवन मे धर्म को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । यद्यपि हिन्दू गाय की पूजा करते है और मुसलमान इसे खाते है, फिर भी, देहातो मे साम्प्रदायिक वैमनस्य नगण्य-सा ही है । इसकी प्रधानता तो शहरो में ही दिखाई देती है । शहरो मे हिन्दुओ के खान-पान-सम्बन्धी प्रतिबन्धो के कारण और विवाह से पहले और बाद के रीति-रिवाजो के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला भेद-भाव आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण और भी बढ जाता है । यदि जीवन मे प्रवेश करने वाले नवयुवको के सामने औद्योगिक नौकरियो की वैकल्पिक सूची उपस्थित हो तो राजनीतिक स्थानो के लिए प्रतियोगिता इतनी तीव्र न रहे ।

नये मध्यम वर्ग के मुसलमानो और पुराने मध्यमवर्ग के हिन्दुओ के बीच बढती हुई प्रतिद्वन्द्विता ने मुस्लिम राजनीतिज्ञो के लिए नये अवसर प्रस्तुत कर दिये । तब मुहम्मदअली जिन्ना ने काग्रेस-दल से त्याग-पत्र दे दिया और वह मुस्लिम लीग के नेता होगये । काग्रेस मे सभी धर्मों के लोग शामिल है इसलिए भारतवर्ष का वही एकमात्र महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दल है । अन्य दल—हिन्दू सभा और मुस्लिम लीग आदि—साम्प्रदायिक दल है । केवल उनके उद्देश्य राजनीतिक है ।

सन् १९४२ में मुस्लिम लीग के प्राय सभी सदस्य जमीदार थे । ज्यो-ज्यो शहरो मे हिन्दुओ और मुसलमानो मे तनातनी बढती गई, और ज्यो-ज्यो अग्रेजो की सहायता से जिन्ना ने मुसलमानो को अधिक नौकरिया दिलाने की अपनी योग्यता प्रमाणित की, त्यो-त्यो सामाजिक दबाव और स्वार्थ ने पेशेवर और बौद्धिक मुसलमानो को काग्रेस मे शामिल होने से रोका । किन्तु लीग के जागीरदारो से भी उनका सहयोग सम्भव न था । मुस्लिम काश्तकारो के लिए भी यह सम्भव नही था कि वे जमीदारो के प्रति अपनी शत्रुता को भूल जाते और लीग से सहानुभूति प्रकट करते ।

चूंकि मुसलमानो मे एक ही धर्म होते हुए भी वर्गीय सघर्ष मिटा नही इसलिए जिन्ना को किसी ऐसी युक्ति का आवश्यकता थी जिससे मुसलमान काश्तकारो व जमीदारो और नये मध्यमवर्ग के बीच की खाई भरी जा सके । यह युक्ति उन्हे राष्ट्रीयता मे मिल गई । सन् १९४० मे पहली बार जिन्ना ने घोषित किया कि हिन्दुस्तान के मुसलमान एक राष्ट्र है और उन्होने उनके लिए एक राष्ट्रीय प्रदेश की माग प्रस्तुत की । वह इसे 'पाकिस्तान' कहते है और उनकी योजना के अनुसार इसमे मुस्लिम बहुमत वाले प्रात सिंध, पजाब, बिलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, आसाम और बगाल शामिल है ।

धर्म और राष्ट्रीयता मिलकर एक शक्तिशाली सयोग बन जाते है और इन्ही से जिन्ना को अधिक सार्वजनिक समर्थन प्राप्त हुआ है। मार्च १९४२ की क्रिप्स-योजना, जिसमे सिद्धान्त रूप से पाकिस्तान के औचित्य को स्वीकार कर लिया गया था, जिन्ना के लिए मुँहमागी मुराद थी ।

भारत के ९,२०,००,००० मुसलमानो मे जिन्ना सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वह समुद्र के किनारे बम्बई में एक महान् और भव्य भवन मे रहते है, जिसका छज्जा सगमरमर का है। जिन्ना लम्बे, बहुत ही दुबले, सुन्दर मुख वाले किंतु भद्दे दागदार दाँतो वाले व्यक्ति है। जब मै उनसे पहली बार मिला तो वह शेरवानी, चुस्त पाजामा और बिना मोजे के काले चमडे के पम्प शू पहने हुए थे। ऐनक का शीशा धागे से बँधा लटक रहा था। हिन्दुस्तानी समझते है कि वह योग्य है और पथ-भ्रष्ट नही किये जा सकते ।

उनकी दलील यह थी--मुसलमान स्थायी रूप से अल्पसख्यक नही रहना चाहते। वे आत्म-निर्णय की स्वतत्रता चाहते है। यह ठीक है कि अधिकाश मुसलमान पहले हिन्दू थे, किन्तु इस्लाम तो एक व्यावहारिक जीवन-शैली है। आप देख सकते है मुस्लिम वेश-भूषा, भवन-निर्माण-कला, भोजन तथा भाषा में हिन्दुओ से भिन्न है। मुस्लिम भारत को हिन्दू भारत से अलग कर देना चाहिए और उसे एक स्वतत्र राज्य अथवा पाकिस्तान का रूप दे देना चाहिए।

इस पर मैने कहा कि सभ्य मानव का तो यह कर्त्तव्य है कि वह वर्तमान के भेद-भाव को दूर करे न कि उन्हे तीव्र बनावे। वह बोले, "मै यथार्थवादी हूँ। मेरा काम तो जो स्थिति है उससे निपटना है न कि उससे, जो होनी चाहिए।"

जिन्ना ने स्वीकार किया कि अग्रेजो की नीति सम्प्रदायो मे भेद-भाव बनाये रखने की है ताकि वे सहज ही भारत मे अपना आधिपत्य कायम रख सकें। "अग्रेजो ने भारतीय शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था को बहुत क्षति पहुचाई है," उन्होंने कहा।

तीन दिन बाद जब मै फिर जिन्ना से भेंट करने गया तो उन्होने कहा कि क्रिप्स-प्रस्तावो में पाकिस्तान के सिद्धान्त मान लिये गए है, यद्यपि व्यवहार में "केवल सिंध असेम्बली ही इसके पक्ष मे मत दे सकती है। सीमा-प्रान्त पर काग्रेस का अधिकार है। पजाब असेम्बली भी शायद पाकिस्तान के पक्ष में मत देने से इकार कर दे। अत· यद्यपि सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है तथापि इसकी विधि मान्य नही है।"

इसके उत्तर में मैंने कहा—"दूसरे शब्दो मे यो कहिये कि अग्रेज ने आपको पाकिस्तान नही दिया और बहुत से मुसलमान भी इसके विरुद्ध है। अब आप चाहते है कि गाधी जी आपको पाकिस्तान दे दे।"

"गाधी तो इसके लिए पहले ही वचन दे चुके है", उन्होने कहा। "वह कह चुके है कि यदि मुसलमान अलग होना चाहते है तो उन्हे कोई नही रोक सकता। यदि पाकिस्तान के प्रश्न पर हिन्दू और मुसलमान सहमत होजाय तो हमें यह मिल जायगा। हम एक दूसरे के पडोसी होगे। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनो ब्रिटिश राष्ट्र-मडल मे स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेश होगे।"

जिन्ना व्यापक इस्लाम के समर्थक है—जिसका अभिप्राय मोरक्को से चीन तक इस्लामी साम्राज्य स्थापित करना है। उनका खयाल है कि अगर फिलस्तीन मे यहूदियो की प्रधानता रही तो इससे उनकी योजना मे बाधा पडती है।

नेहरू और गाधी के सम्बन्ध मे जिन्ना ने विस्तारपूर्वक और उग्रता से बाते की। "नेहरू ने होमरूल सोसायटी में मेरे नीचे काम किया है" उन्होने अपने सस्मरण बताते हुए कहा—"गाधी भी मेरे नीचे काम कर चुके है। मेरा उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानो मे एकता स्थापित करना था। सार्वजनिक जीवन में मैंने १९०६ में पदार्पण किया। मै भी काग्रेस मे था। जब मुस्लिम लीग सगठित हुई तो मैने काग्रेस पर इस बात का जोर डाला कि वह लीग को भारतीय स्वतत्रता की उपलब्धि में सहायक मानकर उसका स्वागत करे। सन् १९१५ मे मैने लीग और काग्रेस को बम्बई मे एक ही समय अपने अधिवेशन बुलाने पर तैयार किया ताकि दानो सस्थाएँ एकता के सूत्र मे बद्ध दिखाई दे। इस प्रकार की एकता मे सकट देख अग्रेजो ने खुले अधिवेशन को बलपूर्वक भग कर दिया, किन्तु बन्द कमरे मे सयुक्त अधिवेशन बराबर होता रहा। सन् १९१६ मे फिर मैने दोनो सस्थाओ के अधिवेशन लखनऊ मे इकट्ठे बुलवाये। वहाँ हमने हिन्दू-मुस्लिम सहयोग के लिए लखनऊ-पैक्ट तैयार किया। सन् १९२० तक, जब कि गाधी प्रकाश में आये, प्रतिवर्ष इसी प्रकार अधिवेशन होते रहे। इसी वर्ष से स्थिति बिगडनी शुरू हो गई। लदन में गोलमेज़ कान्फ्रेस के अवसर पर मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि एकता की आशा निरर्थक है। गाधी एकता नही चाहते थे। मुझे बडी निराशा हुई और मैने इग्लैण्ड ही मे रहने का निश्चय किया। मै भारत मे अपनी मिल्कियत बेचने तक के लिए नही गया। यह कार्य मैने एक दलाल के द्वारा किया। इग्लैण्ड मे मै सन् १९३६ तक रहा। मैने प्रिवी कौंसिल मे वकालत प्रारम्भ की और मुझे

उसमे आशातीत सफलता मिली। मेरा भारत लौटने का इरादा नही था। किन्तु प्रति वर्ष मुझे मित्र मिलते थे और भारतीय स्थिति से अवगत कराते हुए कहते थे कि आप वहाँ चलकर बहुत कुछ कर सकते है। अन्त मे मैने भारत आना स्वीकार किया। ये सब बाते मैने आपको यह सिद्ध करने के लिए बताई है कि गाधी स्वतत्रता नही चाहते। वह नही चाहते कि अग्रेज भारत छोड जाय। वह तो हिन्दू-राज स्थापित करना चाहते है। सर्वप्रथम वह हिन्दू है।"

मै जब ताजमहल होटल मे अपने कमरे में वापस आया ता मैने मार्च १६४० के लाहौर अधिवेशन मे प्रधान पद से दिया गया जिन्ना का अभिभाषण पढा। इसमे उन्होने कहा था "मेरी समझ मे बुद्धिमानी इसी मे है कि कोई भी किसी दूसरे व्यक्ति का अत्यधिक विश्वास न करे।"

मैने जिन्ना के अन्य भाषण भी पढे और उनका साप्ताहिक पत्र, "डान" देखा। वह अपने विरोधियो पर मिट्टी उछालते है और निरर्थक वादविवाद करते है। वह विरले ही कोई बडी या नई बात करते है। वह कोई आगे का रास्ता नही सुझाते, वह स्वय दुबले पतले है और उनकी बाते भी दुबली-पतला होती है। वह एक ही राग अलापते है—मुसलमान पाकिस्तान चाहते है। किन्तु वह पाकिस्तान को मुसलमानो की पुनर्जागृति के रूप मे व्यक्त नही करते। सस्कृति और भाव के क्षेत्र मे उनका पाकिस्तान कोई नया पग नही है। वह यह तक ठीक-ठीक नही कहते कि पाकिस्तान क्या है और कहा स्थापित होगा। वह सौदा पटाते है और कहते है—जब तक आप मेरी आधी बात मानने का वचन नही देगे तब तक मै आपको पाकिस्तान का विस्तृत विवरण नही दूँगा। वह राजनीतिज्ञ नही, एक राजनीनिक व्यापारी है। बात-बात मे वह "वैधानिक और कानून की दृष्टि से" कहते है, और उसी से उनका परिचय मिलता है। उनमें पटुता है, किन्तु विम्तार नही।

मै जिन्ना के साथ ५ घटे रहा। इस बीच प्राय वही मुझसे बात करते रहे। वह मुझे विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। जब मै उनसे कोई प्रश्न करता था तो मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो मैने ग्रामोफोन के किसी रिकार्ड पर सूई चढा दी हो। वह जो कुछ कहते थे मै पहले भी सुन चुका था या लीग के प्रकाशित साहित्य में पढ सकता था। जब मै गाधी से कुछ पूछता तो ऐसा जान पडता था कि मैं एक मौलिक और रचनात्मक कार्य कर रहा हूँ। मै उनके मनोभावो को प्रकट होते सुन और देख सकता था। किन्तु जब जिन्ना बात करते थे तो मुझे ग्रामोफोन की सूई की घिस-घिस की-सी ही आवाज आती सुनाई देती थी। जिन्ना ने सिवा निष्कर्षो के मुझे और कुछ नही दिया। गाधी

किसी भी निष्कर्ष की ओर बढते थे तो वह मुझे भी उसका निरीक्षण करने देते थे। गाधी से भेंट करना एक सनसनीपूर्ण तथा बौद्धिक अनुभव है। जिन्ना की मुलाकात नीरस होती है चाहे वह कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यो न हो –

जिन्ना मुसलमानो के नेता नही, उनके वकील है। उनका पक्ष बार-बार और अच्छी तरह से पेश करते है। किन्तु उनकी बातो से मुस्लिम जनता के अपार धन और सहृदयता का लेश मात्र भी पता नही चलता। मुसलमान आकर्षक होते है, बहुत-सी बातो मे तो बुद्धिमान हिन्दुओ से भी अधिक आकर्षक होते है। उनमे जोश है, जीवन के प्रति प्रेम है, सङ्गीत है, कविता है। किन्तु जिन्ना से बाते करते समय किसी को इन बातो का ख्याल तक नही आ सकता है।

नई दिल्ली मे महात्मा गाधी के पुत्र देवदास गाधी के घर पर, जो 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक है, मै एक और मुसलमान से मिला। वे खान अब्दुलगफ्फार खा थे, जो व्यापक रूप से ''सीमा प्रान्तीय गाधी' के नाम से पुकारे जाते है। वह सीमा-प्रान्त के मुसलमानो के नेता है। जिन्ना का विरोध करते है और गाधी का समर्थन। सीमा-प्रात के किसानो मे काग्रेस के जो असख्य अनुगामी है उन्हे इन्होने ही सगठित किया है। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से वह उन लोगो मे से है जिन्होने भारत मे मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। वह ६ फुट से अधिक लम्बे है, उनका शरीर बलवान है तथा सिर मजबूत और बिलकुल अडे जैसा। उनके सिर और दाढी पर भूरे-काले बालो की खूँटिया है। वह आयु मे ६० वर्ष से अधिक है किन्तु उनकी काली चमकदार और चुभने वाली आखो से यह मालूम होता है कि वह अभी ३० वर्ष के ही है। मिलने वाले पर उनकी मुखाकृति का जा प्रभाव पडता है उससे दसगुना उनसे बातचीत करने से पडता है। उनके बोलने से पहले ही मैने उनकी शक्ति को महसूस कर लिया। उनका घर पेशावर जिले के एक गॉव मे है जहा वह किसानो की तरह रहते है। अपने पिता के समान वह भी धनी थे किन्तु उन्होने अपनी सम्पत्ति को त्याग दिया। उन्होने नीले भूरे रग का लम्बा ढीला कुरता और चौडी मोहरी की सलवार पहन रखी थी जो सीमा-प्रात के उनके स्वजातीय पठानो का खास पहरावा है। हाथ से बुने हुए इन कपडो का रग उड-सा गया था और गर्दन के पास उनके कुरते पर एक पैबन्द भी लगा हुआ था। उनके हाथ लम्बे और करीब-करीब सफेद है और उनके पैरो की बनावट बडी सुन्दर है। मुझसे हाथ मिलाने के बाद उन्होने अपने हाथ को दिल पर रख लिया।

मैने उनसे पूछा कि जिन्ना के पाकिस्तान के बारे मे आपकी क्या राय

है। उन्होने जवाब दिया, "मै तो इसकी वास्तविकता का अन्दाजा उन लोगो को देखकर लगाता हू जो मेरे प्रात मे इसके समर्थक है। वहा इसका समर्थन धनी खान, पैसे वाले नवाब और प्रतिगामी मुल्ला करते है। पाकिस्तान उन लोगो के हाथ मजबूत करेगा जो हमारे किसानो का शोषण करते है।"

"क्या पाकिस्तान इस्लाम से मजबूत होगा", मैने पूछा।

उन्होने क्रोध से कहा—"जिन्ना एक बुरे मुसलमान है। वह पैगम्बर के सच्चे अनुयायी नही है।"

"क्या आप धर्मनिष्ठ है ?" मैने पूछा। "हा, मै मस्जिद म पाच बार नमाज़ पढता हू, मै खुदा के एक सच्चे खिदमतगार की जिंदगी बिताता हू। सीमा-प्रात मे हमारा आन्दोलन खुदाई खिदमतगार के नाम से प्रसिद्ध है। कभी-कभी इसे लाल कुर्ती वालो का आन्दोलन भी कह देते है, किन्तु लाल रग की विचार-धारा से इसका कोई सम्बन्ध नही। हम व्यापक शिक्षा और उच्च आदर्शों के प्रतिपादक है। तीन वर्ष हुए जब मैने अधिक स्कूल स्थापित करने का सुझाव प्रस्तुत किया था तो अग्रेजो ने मुझे जेल मे डाल दिया और मुल्लाओ ने मेरा विरोध किया।"

उन्होने मुझसे अग्रेजी में बात की और चुन-चुनकर प्रत्येक शब्द का प्रयोग किया। मैने सोचा—"हिन्दुस्तान के दूर-दराज पर्वतीय प्रान्त के रहने वाले इस व्यक्ति से मिलना और तत्काल ही उससे सम्बन्ध स्थापित करना कितना रोमाचकारी है।"

यदि गाधी का भारत की मिट्टी और रेत से नाता है तो गफ्फारखा का भारत की चट्टानो और पर्वतीय जल-प्रपातो से सम्बन्ध है।

एक बार उन्होने अग्रेजो से कहा कि मैं हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान के बीच के कबायली प्रदेश मे चलूँगा एव लड़ाकू तथा उपद्रवी अफ्रीदियो और वजीरों को इस बात के लिए प्रेरित करूँगा कि वे अग्रेज़ो से और आपस मे लड़ना-भिडना बन्द कर दे। उन्हे आशा थी कि वह इन लोगो को गाधी के अहिंसावाद की ओर ला सकगे। किन्तु अग्रेज़ो को इस बात का डर था कि कही अफ्रीदियो मे इनका प्रभाव न हो जाय, इसलिए उन्होने गफ्फारखा को उस क्षेत्र में जाने की आज्ञा नही दी।

"मेरे प्रान्त के आदमियो का गाधी मे विश्वास है क्योकि गाधी हिन्दु-स्तान की आजादी चाहते है" गफ्फारखाँ ने कहा।

जिन्ना मुसलमान काश्तकारो को बतलाने का प्रयत्न करते है कि वे केवल मुसलमान है और उन्हे एक मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना करनी चाहिए।

गफ्फारखा, नेहरू और दूसरे काग्रेसी नेता मुसलमान किसानों से कहते है कि वे आर्थिक दृष्टि से किसान, धार्मिक दृष्टि से मुसलमान और राजनीतिक दृष्टि से हिन्दुस्तानी है, हिटलर ने जर्मनो से कहा था कि वे केवल जर्मन है। उसे आशा थी कि राष्ट्रवाद के उन्माद मे मजदूर अपने वर्गीय शत्रुओ को भूल जायगे और केवल जातीय शत्रुओ—जर्मनी के यहूदियो और शष सभी ससार से घृणा करेगे। जिन्ना का धर्ममूलक जातिवाद भी उससे कम खतरनाक नही।

कुछ समय तक तो अग्रेज जिन्ना की खुशामद करते रहे और उनके हाथ मजबूत करते रहे क्योकि वे गाधीजी के स्वाधीनता आन्दोलन के मुकाबले मे कोई और दल खडा करना चाहते थे। अपने साम्राज्य पर से एक सकट टालने के लिए अग्रज सारे एशिया के लिए खतरा खडा करने को तैयार थे।

गाधी कहते है कि भारत को हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मे विभाजित करना एक कलक है। दूसरे शब्दो में इसे मूर्खता कहना चाहिए। ईराक और ईरान के ही समान पाकिस्तान भी एक दयनीय देश होगा, यद्यपि उनसे जरा बडा होगा। दो हिन्दुस्तान सारे ससार के लिए सिर दर्द बन जायगे। विभाजन और सघर्ष के कारण भारत कमजार हो जायगा और वह चीन तथा यूरोप के छोटे राष्ट्रो की ही भाँति बडे राष्ट्रो के षड्यन्त्रो और कुचालो का अखाडा बनकर रह जायगा।

स्वतत्र सघीय भारत मे हिन्दु-मुस्लिम समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित बाते आवश्यक होगी—

प्रान्तो के लिए व्यापक स्वाधीनता, और हिन्दू-बहुमत प्रान्तो मे मुस्लिम अल्पमतो के लिए और मुस्लिम बहुमत प्रान्तो में हिन्दू अल्पमतो के हितो की रक्षा की कानूनी गारटी।

धार्मिक आधार पर स्थापित पृथक् निर्वाचन पद्धति का उन्मूलन तथा राजनीति से धर्म को अलग कर देने का दृढ प्रयास।

भारतीय सेना और स्कूलो मे धार्मिक पृथक्ता और भोजन-सम्बन्धी भेद-भाव छिन्न-भिन्न हो रहे है। कितने ही भारतीय विद्यार्थियो ने मुझे बताया कि आजकल के नवयुवक अपने माता-पिताओ की अपेक्षा धार्मिक और जातीय भेद-भाव बहुत कम मानते है । १९३१ की जन-सख्या-पुस्तक के अनुसार "साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दुओ और मुसलमानो के मिल-जुलकर रहने मे कोई दुस्तर बाधा नही जान पड़ती। तजोर और मदुरा मे तो

ऐसे हिन्दुओ के मन्दिर है जिनके कुलक्रमागत ट्रस्टी मुसलमान है।" १६३१ के एक जन-सख्या सुपरिन्टेन्डेण्ट ने लिखा है—"अग्रेजी पढे लिखे आम लोग अब धर्म को ओर से पूर्णत उदासीन और असबधित से रहते है।"

जहाँ धार्मिक खुराफात और धर्म-मूलक राजनीति होगी, वहाँ निश्चय ही दरिद्रता, अनक्षरता और प्रान्तीयता का वास भी होगा। अगर शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय और लोग सम्पन्न हो जाय तो शहरो की हिन्दू-मुस्लिम तनातनी काफूर हो जाय। हिन्दुस्तान मे रहन-सहन का मान ऊँचा करने और लोगो के स्वास्थ्य मे सुधार करने के हेतु औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी क्रान्ति परम आवश्यक है। आर्थिक प्रगति से सास्कृतिक जागृति बढेगी और दोनो मिलकर आजकल के कठोर साम्प्रदायिक और जातीय विभाजनो को निश्चय ही नष्ट कर देंगे।

मतभेदो के प्रति असहिष्णुता एक पुराना रोग है और इससे वे देश भी अछूते नही जो आज अपनी सभ्यता के बारे में सबसे अधिक घमण्ड के साथ बोलते है। भारत में तो अभी इस समस्या पर प्रहार किया जाना भी ठीक से आरम्भ नही हुआ। भारत मे अनिवार्य शिक्षा का अभाव है, जिसके द्वारा देश-व्यापी सामान्य भाषा का सहज ही प्रचार हो सकता है। हरिजनो और अछूतो के बच्चे (जिनके सम्बन्ध मे यह खयाल किया जाता है कि उनका साया भी सवर्ण हिन्दू को अपवित्र कर देगा) जब हिन्दुओ, सिखो, ईसाइयो, मुसलमानो और अग्रेजो के बच्चो के साथ बैठेगे तो यह प्रमाणित हो जायगा कि हमारे असख्य वहम और प्रतिबन्ध मूर्खतापूर्ण है। इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्थाओ के विस्तार से और रोजगार में वृद्धि हो जाने से उन गलतफहमियो और दीवारो के नष्ट होने मे सहायता मिलेगी जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो और धर्मों के बीच खडी है। आज अछूत या "दलित जातियाँ" शहरो मे केवल मेहतरों का काम, सडको आदि की सफाई और चमडे का काम करती है जिसे सवर्ण हिन्दू गन्दा काम समझते है। आजकल जब कि रोजगार की भारी कमी है, प्रत्येक जाति या सम्प्रदाय इस बात का प्रयत्न करता है कि वह अपने पेशे को एकाधिकार के रूप मे ग्रहण करे। इसीलिए अछूतो को अधिक लाभदायक और कम गदे कार्य करने के लिए प्रोत्साहन नही दिया जाता।

हिन्दुओ की वर्ण-व्यवस्था एक प्राचीन व्यवस्था है। आधुनिक काल में इसका अर्थ भारत की आर्थिक व्यवस्था और शिक्षा को सदा के लिए अप्रगतिशील रखना है।

मुझे भारत मे जो सबसे कटु व्यक्ति मिला वह सबसे प्रसिद्ध अछूत है—

डॉक्टर भीमराव जी अम्बेदकर। उनके पिता और दादा वर्षों अग्रेजी-सेना में रहे और इस असाधारण परिस्थिति के कारण ही अम्बेदकर भारत में शिक्षा प्राप्त कर सके। बाद मे महाराजा बडौदा द्वारा दी गई छात्रवृत्ति की सहायता से उन्होने कोलम्बिया विश्वविद्यालय (न्यूयार्क) से एम० ए० और पी० एच० डी० की उपाधिया प्राप्त की। वह जर्मनी मे बोन विश्वविद्यालय तथा लदन विश्वविद्यालय में भी पढे। वह एक ख्यातनामा लेखक, वकाल और अर्थ-शास्त्री है। उनका शरीर गठा हुआ है और उनकी आत्म-शक्ति सुदृढ है। वह बहुत ही "टेढे" है और इतने ही भावुकताहीन और बौद्धिक है, जितने बहुत से हिन्दू दार्शनिक और अबौद्धिक है। वह हिन्दुओ स घृणा करते है, और इसका कारण भी है। भारत क पाँच या सात करोड अछूतो के प्रति जैसा घृणित व्यवहार होना है वैसा इस ससार मे कोई भी मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के प्रति नही करता। मै समझता हूँ कि हिन्दुओ के इस खयाल ने कि अछूत का दूर का सम्पर्क भी उन्हे भ्रष्ट कर देगा, हिन्दुओ को स्वय भ्रष्ट कर डाला है। ऐसे बर्बरतापूण विचारो से धर्म कलकित हो जाता है।

गाधी वचन और कर्म द्वारा अछतो के उत्थान का प्रयत्न करते रहे है। वह अछूतो के हाथो का तैयार किया हुआ भोजन करते है और अछूत उनके गाँव मे उनके बहुत ही निकट रहते है। इसीलिए अछूतो में गाँधी के बहुत अनुयायी है और सम्भवत वे गाधी को अम्बेदकर की अपेक्षा अधिक जानते है।

अम्बेदकर गाधी के विरोधी और पाकिस्तान के समर्थक है। हिन्दुस्तान मे मै जितने आदमियो से मिला उनमें से एक भी अग्रजो का इतना बडा समर्थक नही जितना कि अम्बेदकर। अगस्त १९३० मे अम्बेदकर ने हरिजनो के सम्मेलन में कहा था—"मुझे भय है कि अग्रेजो द्वारा हमारी दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा के प्रचारित किये जाने का कारण यह नही है कि अग्रेज हमारी इस दुर्दशा का निराकरण करना चाहते है बल्कि यह कि ऐसा करने से उन्हे हिन्दुस्तानी राजनीतिक प्रगति रोकने का बहाना मिल जाता है।" अम्बेदकर का कहना कि सवर्ण हिन्दुओ और हरिजनो के बीच शत्रुता होने के कारण अग्रेजो को भारत मे जमे रहने के लिए एक और दलील मिल गई है। फिर भी सन् १९४२ में अम्बेदकर ने वाइसराय की कार्यकारिणी का सदस्य बनना स्वीकार किया और इस प्रकार वह अग्रेजो के सहयोगी बन गये। दण्ड देने वाले हिन्दुओ के प्रति अम्बेदकर का विद्वेष इतना अधिक है कि जो चीज हिन्दू अस्वीकार करते है उसका वह स्वागत करते है और जिस बात को हिन्दू कहते है उसे वह

अस्वीकार करते है । अम्बेदकर मे हमे परम्परागत अन्याय और कष्ट की गूज सुनाई देती है जिसके फलस्वरूप अधिक से अधिक विचारवान व्यक्ति में भी विचारहीन आवेग उत्पन्न हो जाते है ।

मैने अस्पृश्यता के बारे मे एक कट्टरपन्थी हिन्दू से बात की । वह भारतीय सघ न्यायालय के सदस्य सर एस० वरदाचार्य थे, जिनके नाम मुझे भारत के न्यायाधीश सर मारिस ग्वायर ने पत्र दिया था । सर मारिस से परिचय प्राप्त करने के लिए मै अपने साथ फेलिक्स फ्रैकफर्टर का पत्र लाया था । सर मारिस ग्वायर के अनुसार "नई दिल्ला मे अकेले वरदाचार्य ही एक-मात्र राजनीतिक दार्शनिक थे ।"

मेरी टैक्सी जब वरदाचार्य के बगले पर पहुँची तो वह भारतीय न्यायाधीश प्रवेश द्वार पर मुझसे मिलने आये । वह बिना कालर की सफेद कमीज पहने हुए थे जिसके सारे बटन सोने के थे । चूडीदार पाजामा पहने हुए थे । पाँव नगे थे—न जूते न मौजे । सिर के मध्य मे चोटी के लम्बे बालो की उन्होने गाँठ बाँध रखी थी । बाकी बाल काटकर छोटे कर दिये गये थे । इनके कारण देखने मे वह चीनी जान पडते थे । ललाट के बीचो बीच एक लाल रग का पतला-सा तिलक लगा था । कनपटिओ से नाक तक दो सफेद धारिया कही-कही से खिची हुई था, जा बीच से टूटी हुई थी । इन तिलको को देखकर मेरी उत्सुकता बढी । वह लगभग ६० वर्ष के थे और बडी अच्छी अग्रेजी बोलते थे, यद्यपि वह कभी भारत से बाहर नही गये थे ।

उन्होने कहा —"भारत एक महान् देश हैं, इसके कुछ निवासी अब भी वृक्षो पर रहते है और कुछ ऐसे है जिन पर ऑक्सफोर्ड की शिक्षा और सभ्यता की छाप लगी है । यहाँ भिन्न-भिन्न जातियाँ और धर्म है जिन्हे एकता के सूत्र मे बाँधने की आवश्यकता है, किन्तु अग्रेजो ने जो एकता हमे दी है वह शासन सम्बन्धी ही है । वह शिखर से आरम्भ होती है और वही समाप्त हो जाती है। हमारे देश में उन्नति भी हुई है, किन्तु यह औरो ने अपने लाभ के लिए की है और इससे हमें जो लाभ हुआ है वह नाममात्र है । उदाहरणार्थ, हमारी शिक्षा साहित्य-प्रधान रही है, क्योकि पहले ईस्ट इडिया कम्पनी को और बाद में ब्रिटिश सरकार का दफ्तरो में काम करने के लिए क्लर्कों की आवश्यकता थी । परन्तु, जब इन पढे-लिखे आदमियो मे से वे लोग, जिन्हे नौकरियाँ नही मिलती, राजनीति मे पदार्पण करके सरकार को तग करते है, तो अग्रेज यह नही समझते कि इसका दायित्व स्वय उन्ही पर है ।"

मेरे कुछ कहे बिना ही वह धारा-प्रवाह बोलते रहे– "हिन्दुस्तान में

अग्रेजो का रैन-बसेरा-सा है। जब वे यहाँ उद्योग स्थापित करते है तो उन्हें भारत के हितो की नही बल्कि अपने हितो की चिन्ता रहती है। हमारे शासको के जीवन मे भारत एक घटना मात्र है। वाइसराय की तरह वे यहाँ पॉच, दस या बीस वर्ष ठहरते है और खूब मौज उडाते है। यही कारण है कि भारत पिछडा हुआ है और आधुनिक ससार के अन्य राष्ट्रो के बीच उसका कोई स्थान नही।"

माथे के तिलक के सम्बन्ध मे मेरी उत्सुकता कम नही हुई थी। मैने पूछा कि 'ये क्या है ?' उन्होने जवाब दिया —"मै ब्राह्मण हूँ। हिन्दू एक सामूहिक शब्द है। कुछ हिन्दू त्रिदेव के तीन स्वरूपो मे से किसी एक के विशेष भक्त होते है। उन स्वरूपो मे से एक विष्णु है, दूसरे शिव। इनमे से मेरे इष्टदेव विष्णु है और विष्णु के सभी अनुयायियो को ऐसा तिलक धारण करना चाहिए।"

"हमेशा ?"

"हॉ," उन्होने उत्तर दिया, "किन्तु दुर्भाग्य से बहुतो को इसमे लज्जा आती है।"

मैने उनसे पूछा कि क्या आप अस्पृश्यता में विश्वास करते है।

"सवाल अस्पृश्यता में 'विश्वास' करने का नही है," वरदाचार्य ने निन्दा-भाव से कहा। "इसके आदि कारण को समझना आवश्यक है। यदि आप आत्मा के आवागमन मे विश्वास करते है, तो आपको मालूम होना चाहिए कि यदि किसी आत्मा ने एक जन्म मे कुकर्म किये है तो दूसरे जन्म मे उसका हरिजन के घर मे जन्म हो सकता है।"

मैंने कहा–"यह बात असभ्यता की सूचक है कि किसी शरीर को उसकी पूर्व जन्म की आत्मा द्वारा किये गये ऐसे कुकर्म के लिए दण्ड दिया जाय जिसका उत्तरदायी वर्त्तमान शरीर नही है।"

"आप सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से बात कर रहे है," उन्होने प्रतिवाद करते हुए कहा। "यदि एक हरिजन लदन मे उच्च शिक्षा प्राप्त करके भारत वापिस आवे तो उसे आत्मिक अयोग्यता के अतिरिक्त और किसी अयोग्यता का कष्ट सहन नही करना पडेगा।"

"फिर भी" मैंने कहा "उनमें से अधिकाश इतने गरीब है कि वे लदन जाने की कल्पना तक नही कर सकते।"

वह बोले—' रेलगाडी में आप नही जान सकते कि कौन हरिजन है और कौन नही। व्यावहारिक जीवन में अस्पृश्यता का प्रभाव- स्वतः शिथिल

होता रहता है।"

कट्टर हिन्दू होते हुए भी वरदाचार्य ने अस्पृश्यता का समर्थन न करके वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध मे मेरी शकाओ का समाधान करने की चेष्टा ही की। अन्य दूसरे हिन्दुस्तानियो ने भी मुझे बताया कि शहरी जीवन मे सवर्णो और हरिजनो के बीच का भेद-भाव कम हो जाता है।

एक और कृत्रिम विभाग ऐसा है जिसके कारण भारत की एकता का ह्रास हुआ है। वह है देशी रियासते, जिन पर महाराजा राज्य करते है। चालीस करोड हिन्दुस्तानियो मे से लगभग एक चौथाई इन रियासतो मे रहते है, जिन पर प्रत्यक्ष रूप से तो भारतीय नरेशो का किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अग्रेजो का राज्य है। विस्तार मे ये रियासते एक दूसरे से भिन्न है— एक ओर तो हैदराबाद है जिसकी आबादी १,७०,००,००० है और दूसरी ओर छोटे-छोटे घटक है जिनकी जन-सख्या मुश्किल से दो चार सौ ही है। रियासते देश भर मे अनियमित रूप मे इधर-उधर बिखरी हुई है। इनके निवासी भी भारत के अन्य भागो की तरह, विभिन्न जातियो और धर्मो के है।

सन् १९४२ मे नरेन्द्र-मण्डल के चाँसलर बीकानेर नरेश थे। एक दिन बम्बई में जब मै अपने होटल के कमरे मे बैठा था, तो मेरे पास उनके सेक्रेटरी का फोन आया कि महाराजा साहब मुझसे मिलना चाहते है। मैने भेंट के लिए प्रार्थना नही की थी। इसलिए मै हैरान था कि वह मुझसे क्या बातें करना चाहते है। तभी-तभी मै गाँधी जी के साथ एक सप्ताह रहकर लौटा था। बीकानेर नरेश यह जानना चाहते थे कि सविनय अवज्ञा आदोलन के सम्बन्ध में गाँधी का क्या आयोजन है? क्या उन्हे वाइसराय और गाधी के बीच मध्यस्थता करने का काम नही सौंपा गया था?

जैसे ही मै महाराजा के बम्बई-स्थित महल की ड्योढी में पहुचा वैसे ही सफेद वरदी पहने हुए भूरे रग के दरबान एकदम सीधे खडे होगये। एक सेक्रेटरी तुरन्त ही मुझे महाराजा के गोल कमरे में ले गया। महाराजा वहा खडे थे। वह अत्यत ओजस्वी प्रतीत होते थे, उनका सिर विशेष रूप से सुन्दर था। वह सफेद सूट और हलके पीले रग की कमीज पहने हुए थे। गला ऊपर से खुला था। भीतर से हलके पीले रग का बनियान भी दिखाई देता था। उनकी घनी मूछ अधपकी और उमेठी हुई थी। उनकी घनी भौंहे प्राय बिलकुल काली थी, किन्तु उनके सुन्दर सिर के बाल पूर्णत सफेद थे। उनके कानो पर लम्बे-लम्बे काले बाल खडे थे।

महाराजा की आवाज़ कुछ भारी सी थी। उन्होने बताया कि वह

बम्बई गले के आपरेशन के लिए आये थे। "कोई एसी गम्भीर बात नही," वह बोले, "गले के अन्दर एक नस फूल गई है, इसे काट दिया जायगा और फिर सब ठीक हो जायगा।" (गले के फोडे के कारण ही कुछ मास बाद उनकी मृत्यु हो गई)। वह विशुद्ध अग्रेजी बोलते थे और उनका उच्चारण भी अग्रेजी ढग का था।

महाराजा का पहला प्रश्न यह था —"कहिये, महात्माजी ने आपसे क्या कहा ?"

सात दिन की बात को मैने या सक्षेप में बताया —"गाधी अधीर है और परिवर्तन चाहते है। मुझे तो ऐसा जान पडा है कि भारत अग्रेजो का बडा कट्टर विरोधी है।"

महाराजा ने कहा—"ब्रिटिश भारत तो पूर्ण रूप से अग्रेजों का विरोधी है। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि अग्रेज अपने को हिन्दुस्तानियो से विलकुल अलग रखते है। क्या आप जानते है कि यहाँ ऐसे कई क्लब है जिनमे हिन्दुस्तानी शामिल नही हो सकते। 'याच क्लब' ही उन मे से एक है। इन क्लब वालो ने मुझसे एक बार कहा—"अगर श्रीमन्त चाहे तो इसमे शामिल हो सकते है।" मैने जवाब दिया —"नही, धन्यवाद, मै बकिंघम पैलेस मे आपके सम्राट के साथ भोजन कर चुका हू और मुझे आपके क्लब की आवश्यकता नही।"

"क्या आप का खयाल है कि अग्रेज यहाँ सदा के लिए ठहर सकते है ?" मैने पूछा।

महाराजा बोले—"ब्रिटेन ने रियासतो को कई वचन दे रखे है और वह उन्हे तोड नही सकता।"

मैने महाराजा से कहा—"अभी-अभी जब मै हैदराबाद मे था तो मैने उन सब सधियो के विवरण पढे जो १७ वी शताब्दी से लेकर अब तक अग्रेजो ने मैसूर और हैदराबाद की रियासतो के साथ की है। मेरा विचार है कि ये सब सधियाँ ब्रिटिश सरकार द्वारा रियासतो पर लादी गई है और अब अग्रेज़ बहाना बना रहे है कि वे इन्हे तोड नही सकते।"

बीकानेर-नरेश हँस कर बोले—"ठीक है, मैसूर कोई महत्वपूर्ण रियासत नही है। रहा हैदराबाद, सो उसकी बात अलग है। क्योकि वहाँ एक मुसलमान नरेश हिन्दू बहुमत पर राज करता है। आपको अपनी सधि दिखाऊगा।" उन्होने घटी बजाई और नारगी रग का पग्गड बाँधे हुए आदमी अन्दर आया। उससे महाराजा ने प्राइवेट सेक्रेटरी को भेजने को कहा। एक

मिनिट बाद किसी ने दरवाजा खटखटाया। अपने को बोलने से बचाये रखने के लिए महाराजा ने सीटी बजाई और सेक्रेटरी अन्दर आ गया। महाराजा ने उस से अंग्रेजी मे बात की। सेक्रेटरी उसी समय चला गया और थोडी देर बाद ही दोनो तरफ से छपा हुआ एक कागज लेकर वापस आगया। महाराजा ने वह कागज मुझे दे दिया। महाराजा चुपचाप बैठे रहे और मै उसे धीरे-धीरे पढने लगा।

उसे पढ चुकने के बाद मैने कहा—"इस सधि मे दो महत्त्वपूर्ण शब्द है—"अधीन और सहयोग"। "आप अधीन है और अंग्रेजो से सहयोग करना आपके लिए आवश्यक है।"

सधि पर ९ मार्च, १९१८ दिल्ली की तारीख पडी थी। धारा ३ में लिखा था :

"महाराजा सूरतसिह और उनके उत्तराधिकारी अधीन सहयोग के आधार पर ब्रिटिश सरकार से व्यवहार करेगे और उसकी उच्च सत्ता को स्वीकार करेंगें और किसी अन्य सरदार या रियासत से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखेगे।"

"ठीक है," महाराजा ने कहा "फिर भी यह एक अच्छी सधि है।" उन्होने भारी लाल पेंसिल उठाई और धारा १ पर निशान लगाते हुए कहा, "यह अच्छी धारा है"। इसी प्रकार धारा २ और ९ पर लगाते हुए उन्हे अच्छा बताया। धारा १ मे मैत्री सम्बन्धी भूमिका है। सक्षेप में, धारा २ मे लिखा है—"ब्रिटिश सरकार बीकानेर राज्य और उसकी सीमाओ की सुरक्षा करने का वचन देती है।" सम्पूर्ण धारा ९ इस प्रकार है—"महाराजा और उनके उत्तराधिकारी अपने प्रदेश के एकाधिकारी शासक होगे और उनकी भूमि में अंग्रेजी सत्ताधिकार लागू नही किये जायगे।"

महाराजा ने कहा—"हमने इस सधि की शर्तों को अक्षरश. पूरा किया है और ब्रिटिश सरकार को सैनिक सहायता दी है। सम्राट् के लिए मैं स्वयं रणभूमि में लडा हूँ।"

मैने कहा—"गाधी ने मुझे बताया था कि यदि अंग्रेज शासन-सत्ता भारतीयो को सौंपना स्वीकार कर लें तो तत्काल ही एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जायगी, जिसमे मुसलमानो, नरेशो और हिन्दुओ के प्रतिनिधि होंगे।"

"ऐसी सरकार से भी हम उसी सुरक्षा की आशा करेगे जो इस सम हमे ब्रिटिश सरकार से मिलती है" महाराजा ने उत्तर दिया।

मैने पूछा—"किन्तु क्या आप समझते है कि इस प्रकार की दो भिन्न-भिन्न शासन प्रणालियो का साथ-साथ जीवित रहना सम्भव है ?"

"क्यो नही ?" उन्होने चकित होकर पूछा। मैने कहा—"राष्ट्रीय सरकार व्यापक मताधिकार आरम्भ करेगी और अन्य जनतत्री सुधार भी करेगी।"

इस पर वह बोले—"मै एक स्वतत्र शासक हूँ। किन्तु मेरी प्रजा ब्रिटिश भारत की प्रजा से अधिक सुखी है। आप एक बार बीकानेर अवश्य आये। हिन्दुस्तान के कई सर्वोत्तम अस्पताल बीकानेर मे है। उनमे से एक अस्पताल एक जर्मन यहूदी शरणार्थी के अधीन है। हमारी रियासत मे सुन्दर सडके और स्कूल है। मै अपनी प्रजा से अच्छा व्यवहार करता हूँ। हाँ, वे लोग ब्रिटिश भारत के लोगो की अपेक्षा पिछडे हुए अवश्य है और जनतत्र के लिए परिपक्व नही है।" मैने पूछा— "क्या आपके यहाँ भी हिन्दू-मस्लिम उपद्रव होते है"।

"सदियो से हमारे यहाँ कभी उपद्रव नही हुए," वह बोले "किन्तु अब यह रोग ब्रिटिश भारत से रियासतो मे भी आ रहा है। हमारी रियासत के उत्तरी भाग में मुल्ला लोग आगये है। जो हमारे मुसलमानो को बहकाते है कि उन्हे हिन्दुओ से कोई वास्ता नही रखना चाहिए। मै आपसे स्पष्ट शब्दो में बात कर रहा हूँ और मेरा विश्वास है कि जब भी कही उपद्रव होता है तो उसे आरम्भ करने वाला प्राय मुसलमान होता है। जिन्ना साहब गन्दे और गर्हित व्यक्ति है। मै आपको उनके निजी जीवन के बारे में कुछ बाते बताऊँगा। जब वह युवक थे तो उनका एक पारसी के घर मे आना-जाना शुरू हो गया। उनका नाम ठीक से याद नही, लेकिन सर पेटिट था। उनके घर मे जिन्ना का पुत्र के समान आदर होता था। उन्होने उस पारसी की पुत्री से प्रेम करना आरम्भ किया और उससे विवाह कर लिया। अब आप स्वय देखिये कि जब किसी घराने मे पुत्र की भाँति आपसे व्यवहार किया जाय तो क्या आपको उसी घर की लडकी से प्रेम करने लगना शोभा देगा ? यह विवाह सुखद नही था। उस लडकी ने अब अपने पिता को छोड दिया है और एक पारसी से विवाह कर लिया है जो हाल ही मे ईसाई हो गया है। जीवन की यही विडम्बना है।"

मैने महाराजा से जिन्ना के पाकिस्तान के बारे में पूछा। समस्या का विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए उन्होने कहा कि पाकिस्तान व्यावहारिक योजना नही है और मुसलमान वास्तव मे इसे नही चाहते। उन्होने अपना मत प्रकट करते हुए यह भी कहा—"पाकिस्तान से हिन्दुस्तान का विभाजन हो जायगा।

यह सारा झगडा आगाखा की गलती से शुरू हुआ था, जो ब्रिटिश वाइसराय लार्ड मिन्टो से मिलने वाले मुस्लिम शिष्टमण्डल के नेता थे। [यह भेट १ अक्तूबर १९०६ मे हुई थी] आगाखा ने आग्रह किया था कि भारत मे धार्मिक आचार पर पृथक् निर्वाचन-पद्धति चालू की जाय।"

मैने पूछा—"मगर अग्रेजो ने यह प्रार्थना क्यो स्वीकार कर ली ?"

महाराजा बोले— "शिष्टमण्डल की भेट को सरकार की ही प्रेरणा से किया गया एक कार्य कहा गया है। अग्रेज ही ऐसा चाहते थे। साम्राज्य में अक्सर ऐसी ही कूटनीतिज्ञता से काम लिया जाता है। 'दो दलो को परस्पर लडाकर उन पर शासन करो।"

मुलाकात करते मुझे एक घटा हो चुका था। महाराजा ने घटी बजाई और सेक्रेटरी से मेरे लिए बीकानेर सम्बधी पुस्तक लाने को कहा। जब हम पुस्तक की प्रतीक्षा कर रहे थे, महाराजा बोले— "बातचीत बडी अच्छी रही, मुझे खुशी है कि आपने आने का कष्ट किया। किन्तु वास्तव मे, मै "लाइफ एड टाइम" वाले बिल फिशर की प्रतीक्षा मे था। उनसे मै कई बार पहले मिल चुका हूँ।" इस पर हम दोनो खूब खिलखिलाकर हँसे। यह महाराजा के सेक्रेटरी की गलती थी।

"आइये जरा वर्षा ऋतु का दृश्य देखे" महाराजा ने कहा। समुद्र के ऊपर आकाश मे काले-काले बादल छाये हुए थे। वह मुझे अपने उद्यान के लम्बे-चौडे लॉन मे ले गये जहाँ बहुत बडा नीला कालीन बिछा था। कालीन के बीच मे बेत की कुरसियाँ रखी थी। उद्यान के अन्त मे एक दीवार थी। नीचे चट्टानी समुद्र-तट था। समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरें दीवार से टकरा रही थी और उसके छीटे हमारी ओर आ रहे थे। काले बादलो मे गडगडाहट हो रही थी। वर्षा होने ही वाली थी। महाराजा ने दो महिलाओ से मेरा परिचय कराया, जो दीवार के पास खडी थी। वहाँ से हम सब प्रकृति का वह खेल देखते रहे। एक महिला तो भारतीय डाक्टर थी और बीकानेर के एक अस्पताल मे काम करती थी, और दूसरी हगेरियन यहूदिन थी। उनके बाल सफेद थे और वह महाराजा के तीन सुन्दर पोतो की 'गवर्नेस' थी, जिन्होने उसी समय बाबा के स्वागत के लिए एक खिडकी से अपने चमकते हुए आकर्षक चेहरे बाहर निकाले थे।

महाराजा ने मुझे जो पुस्तक दी उसका नाम था—"बीकानेर की प्रगति के चार दशक"। यह बीकानेर दरबार का सरकारी प्रकाशन था और सन् १९३७ मे प्रकाशित हुआ था। बीकानेर का क्षेत्रफल २३,३१७ वर्ग मील है,

बेल्जियम और हालैण्ड के सम्मिलित क्षेत्रफल से कुछ ही छोटा। बीकानेर मे कोई नदी नही है। सन् १६०१ मे वहाँ की जन-सख्या ५,८४,७५५ थी और १९३१ मे ९,३६,२१८ हो गई। बीकानेर नगर (राजधानी) की जन-सख्या ८५,९२७ है। रियासत में हिन्दुओ की सख्या ७,२५,०८४, मुसलमानो की १,४१,५७८, सिखो की ४०,४६९ और जैनियो की २८,७३३ है। रियासत की सबसे बडी आवश्यकता पानी है। वहाँ की खेती वर्षा पर निर्भर है, जो कभी नही भी होती। वहाँ कई भयकर अकाल पड चुके है।

बीकानेर के महाराजा ने ४४ वर्ष शासन किया। वर्साई की शान्ति-सधि पर उनके भी हस्ताक्षर है। मध्य-कालीन भारत की वे एक विभूति थे।

नरेश जानते है कि आजकल ससार मे और भारत मे एक नई हवा चल रही है। प्रसिद्ध कवयित्री और स्वतत्रता की अथक समर्थक श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मुझे बताया कि कई भारतीय नरेश गोपनीय रूप से काग्रेस-दल के सम्पर्क मे है। नरेन्द्र मण्डल के एक सेक्रेटरी ने मुझसे कहा—"रियासते भारत के लिए "अलस्टर' सिद्ध नही होगी", अर्थात् वे इग्लैण्ड को स्वतत्र भारत से अच्छा नही समझेगी। नरेश अब धीरे-धीरे अपने आपको इस परिवर्तन के अनुकूल बना रहे है। उदारतम नरेशो में इन्दौर के महाराजा है।

एक दिन अमरीका सेना के जनरल ऐडलर शिकार के लिए इन्दौर के महाराजा के महल पर पहुँचे। कुछ दिन बाद, ३० मई १९४२ को समाचार-पत्रो ने महाराजा इन्दौर द्वारा लिखित प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट के नाम एक "खुला पत्र" प्रकाशित किया। इस पत्र मे महाराजा ने रूजवेल्ट से भारत और ब्रिटेन के झगडे मे बीच-बचाव करने को कहा था। उन्होने लिखा था—"भारत विभाजित और असन्तुष्ट है।"

महाराजा ने यह भी लिखा था—"नरेश तो मै केवल अपने जन्म के सयोग से हू। जहाँ तक मेरे निजी विश्वास का प्रश्न है मै अन्तर्राष्ट्रीयता और जनतत्र का समर्थक हूँ।"

ऐसा पत्र लिखने के लिए वाइसराय ने तुरन्त ही महाराजा इदौर को डाट-फटकार बताई। उनके द्वारा किये गये पापो में एक यह भी था कि उन्होने अपनी रियासत को आधुनिक, जनतत्री विधान देना स्वीकार कर लिया था।

भारत की रियासतें मध्यकालोन विचार-धारा के गढ है। अपने-आप को बनाये रखने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस दकियानूसी सस्था को कायम रखने के लिए बाध्य है। रियासते १६ वी शताब्दी की प्रतीक है और उनका काम २० वी शताब्दी को पीछे खीच रखना है।

भारतीय रियासतो को हम साम्राज्यवाद की सब से अधिक विचक्षण युक्ति कह सकते है। इन रियासतो का वास्तविक उद्देश्य क्या है, इस सम्बन्ध मे मेरे पास अग्रेज अधिकारियो द्वारा घोषित की गई कम-से-कम ६ विभिन्न नीतियो के वक्तव्य है। उनम से मै दो को यहाँ उद्धृत करता हूँ। प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स ने, जिन्होने प्राय अग्रेजो और नरेशो के बीच सरकारा शृखला का काम किया है, २८ मई १९३० के "ईवनिग स्टैडर्ड" नामक लदन के पत्र मे लिखा था—"ब्रिटिश भारत के अन्दर-बाहर फली हुई ये सामत रियासते सुरक्षा की दृष्टि से बडी उपयोगी है। इन्हे हम सविग्घ भूमि मे फैलाये गये मैत्रीपूर्ण दुर्गो का जाल कह सकते है। इन स्वामीभक्त रियासतो के कारण भारत मे अग्रेजो के विरुद्ध साधारण विद्रोह का सफल होना बहुत कठिन होगा।"

भारत के वाइसराय, लार्ड कैनिग ने ३० अप्रैल १८६० को कहा था—"सर जॉन मैल्कम बहुत पहले ही कह चुके है कि यदि हम सारे भारत को अग्रेजी जिलो मे ही बाट देगे, तो इस बात की सम्भावना नही कि हमारा साम्राज्य ५० वर्ष से अधिक तक चल सकेगा। किन्तु यदि हम बहुत-सी रिया-सतें कायम कर दे, उन्हे राजनीतिक अधिकार से वचित रखे और उनसे केवल शाही अस्त्र के तौर पर काम ले, तो हम भारत मे तब तक रह सकेगे जब तक हमारी जलसेना का प्रभुत्व अक्षुण्ण रहेगा। इस सम्मति के आधारभूत सत्य मे मुझे बिलकुल सन्देह नही और हाल ही की घटनाओ ने यह विषय हमारे लिए इतना विचारणीय बना दिया है जितना पहले कभी नही था।" "हाल की घटनाओ" का अभिप्राय १८५७ के विप्लव से था।

इग्लैण्ड के विकसित जनतत्र का ज्ञान रखने वाले न्याय-प्रिय व्यक्तियो के लिए यह विश्वास करना निस्सन्देह बडा कठिन है कि उपनिवेशो पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए अग्रेज अनेक सद्भावनाओ को उठाकर ताक पर रख देते है और जनता के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक मतभेदो को उत्तेजित कर उनसे लाभ उठाते है। किन्तु थल और जल सेनाओ तथा एक छोटे शासन-यत्र द्वारा ४० करोड आदमियो पर राज्य करना आसान काम नही। हिन्दुस्तानियो मे आत्म-प्रतिपादन की उठती हुई भावना के कारण यह काम और भी कठिन है। इसलिए जहाँ से भी सम्भव होता है अग्रेजो को हिन्दुस्तानियो का समर्थन प्राप्त करना ही पडता है। यह समर्थन उन्हे कठ-पुतली महाराजाओ से मिलता है। युद्ध के दिनो मे यह समर्थन उन्हे कम्युनिस्टो से भी मिला, जो सरकार से आर्थिक सहायता लेते थे और जिनका दल भारत

का एक मात्र युद्ध-समर्थक दल था। अपनी स्थिति दृढ बनाने के लिए वे हिन्दू-मुस्लिम और हिन्दू-हरिजन भेद-भावो से लाभ उठाते है। वे शासन कर रहे है क्योकि वे हिन्दुस्तानियो मे फूट डाल सकते है। यदि ४० करोड हिन्दुस्तानी खुशहाल हो, शिक्षित हो और एकता के सूत्र मे बधे हो तो उन्हे शीघ्र ही ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त होने के साधन मालूम हा जाय। यही कारण है कि भारत में अंग्रेजो का प्रधान लक्ष्य यह कभी नही रहा कि देश सम्पन्न बने, सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नति करे, अथवा एकता के सूत्र मे बँधे।

निश्चय ही अंग्रेजो ने भारत मे रेले, सिंचाई की प्रणालिया, बिजली, स्वास्थ्य-व्यवस्था इत्यादि जारी की है। आखिर यह बीसवा सदी है। फिर भी मध्य-कालीन सदियो का वातावरण सम्भवत चौदहवी शताब्दी तक सुरक्षित रखा गया है और आगे बढने की गति को मन्दतम रखने की चेष्टा की जा रही है।

नये युग का आह्वान ही भारत के विद्रोह का कारण है।

यह कोई नही कहता कि स्वाधीनता से भारत की सब समस्याए हल हो जायगी। उससे तो नई समस्याए पैदा होगी। स्वतत्रता तो केवल समस्याओ के समाधान का द्वार खोल देती है।

स्वाधीनता के समय कैसी परिस्थितियाँ होगी इसकी जानकारी पराधीनता-कालान परिस्थितियो मे नही होती। मनुष्य में जो कुछ भी अच्छा है या हो सकता है वह पराधीनता और स्वाधीनता के अन्तर मे निहित है। स्वाधीनता की उपादेयता को स्वाधीन रहकर ही जाना जा सकता है।

: ११ :

भारत में अंग्रेजी राज्य

प्राय सभी भारतीयो की शिकायत थी कि वे हतोत्साह है। उधर अंग्रेजो का कहना था कि हिन्दुस्तानी उदार नही है। अंग्रेजो को यह दुःख है कि भारत मे उनके कार्यों को सराहा नही जाता। अनेक अंग्रेज अफसरो की यह दृढ धारणा है कि उन्होने भारत की विशेष सेवा की है। परन्तु वे यह भी जानते है कि भारतीयो का इसके बारे मे भिन्न मत है।

उन अंग्रेज परिवारो के सदस्यो ने, जिनके पूर्वज कई पीढियो से भारत सरकार की सेवा करते आये है, मुझे बताया कि अब भारत सरकार की नौकरी में न उन्हे कोई सतोष अथवा प्रसन्नता प्रतीत होती है और न इसका भविष्य ही उन्हे उज्ज्वल दिखाई देता है। भारत के प्रतिकूल जलवायु मे वर्षों कठोर श्रम करने के बाद जब अंग्रेज अफसर इग्लैड लौटता है तो वह स्वदेश मे अपने को परदेशी-सा पाता है। और इस कठोर सेवा का पारिश्रमिक उसे मिलता है, अपने प्रति भारतीयो का बढता हुआ द्वेष। भारत में अंग्रेज एक वैमनस्य के समुद्र के बीच अपने निजी छोटे से टापू में रह रहे है। उन्हे ऐश्वर्य और प्रभुता तो प्राप्त है, परन्तु वास्तविक सतोष एव प्रसन्नता उन्हे नही मिल सकी।

अंग्रेजो का भारतीयो के साथ व्यवहार समानता का नही है। भारत सरकार के एक उच्च-पदाधिकारी अंग्रेज ने मुझे अपने घर खाने पर बुलाया, जिस पर तीन मुस्लिम भी आमन्त्रित थे। वह रह-रहकर अपने भारतीय अतिथियो को कहता—"मि० फिशर को जरा बताइये कि भारत की क्या दुर्दशा होगी यदि अंग्रेज आज भारत छोड दे। तनिक इन्हे हिन्दू-मुस्लिम समस्या के बारे में तो बतायें"। तुरन्त मुझे घडा-घडाया उत्तर मिलता। भारत में प्रलय आजाएगी। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे का गला काट डालेगे। उसी दिन उनमें से एक सज्जन मुझे एकात में फिर मिले। उन्होने कहा—"मैं आपको दुबारा केवल यह बताने के लिए मिला हू कि जो कुछ भी मैने उस अंग्रेज अफसर के खाने

पर कहा था, उसमें मेरा स्वय विश्वास नही है। ऐसे हिन्दुस्तानी अग्रेज़ो का अपने ऊपर आधिपत्य तो स्वीकार करते है, परन्तु वे उन्हे अपने से श्रेष्ठतर मानने से इन्कार करते है। अग्रेज़ इसे खूब समझते है, इसीलिए उन्हे अब हिन्दुस्तान मे रहना नही भाता।"

गाधी की घास-फूस की कुटिया मे तीन हफ्ते रहकर मै हैदराबायद के रेज़ीडेट सर क्लाड गिडनी का मेहमान बना। एक सुन्दर पार्क मे स्थित एक प्रासाद के दो कमरो मे मै ठहराया गया। लशकती सफेद वरदी, रगीन पेटी और सुन्दर मूँठ वाली कटार से लैस, नगे पैर, गम्भीर दरबान मेरी सेवा मे सदा हाजिर रहता। वह इतना खामोश रहता कि मुझे उसकी मौजूदगी का भी कई बार पता न चलता। प्रात सवेरे, ज्योही मेरी आख खुलती, कहवा और फलो की छोटी हाजिरी वह मेरे सामने ला रखता। मेरे गुसल और कपडो की धुलाई का प्रबन्ध भी वही करता।

खाने के वक्त का काला सूट मै नई दिल्ली मे ही रख आया था। क्योकि मेरे विचार से भारत की गर्मियो मे उसकी आवश्यकता न थी। हा, एक टाई मै ज़रूर लाया था, परतु वह सूटकेस में पडी रहती। हैदराबाद में पहली ही शाम को रेजीडेट ने कॉकटेल और भोज का आयोजन किया। कॉकटेल पार्टी के बाद सर क्लाड रात के खाने की पोशाक पहनने के लिए मुझ से विदा हुए और मै तथा लेडी गिडनी अकेले रह गये। अतिथि के मनोरजनार्थ और बातचीत चलाने के लिए लेडी गिडनी ने अपनी बाबत मुझे सुनाना शुरू किया। वह सारे दिन सार्वजनिक कार्यो—विशेष कर ब्रिटिश सैनिको का सहायतार्थ कार्यो मे व्यस्त रहती थी। साथ ही उन्हे भारतीयो को भी भोज देने पडते थे। वे कहने लगी, भारतीयो को भी भोज देना जरा नाजुक मामला है। यदि कोई हिन्दुस्तानी किसी अग्रेज के लच (दिन का खाना) पर बुलाया जाय, तो अपने समुदाय में उसकी प्रतिष्ठा बढ जाती है। डिनर (रात का खाना) पर बुलाये जाने पर तो उसकी शान दुगुनी हो जाती है। अग्रेज मेहमानो को स्वागत मे दिये गए भोज मे शामिल होने से तो हिन्दुस्तानी महाशय की न केवल प्रतिष्ठा मे ही वृद्धि होती है, वरन् उसके निजी व्यापार में भी उन्नति की सम्भावना हो जाता है। हमे यह भी ध्यान रखना होता है कि अपने पुराने परिचित भारतीयो को समय-समय पर खाने पर बुलाते रहे। नही तो इसको हमारी अप्रसन्नता समझा जाता है, जिस के परिणाम-स्वरूप उस व्यक्ति की समाज में अवहेलना होती है।

जिस देश में महज़ खाने की दावत का इतना मूल्य पडता हो, वहा

सम्राट् अथवा वाइसराय पद, पदवी, नौकरी, जागीर, अथवा अन्य कृपाये करके अपने पिट्ठुओ तथा जी-हुजूरो का बहुत बडा वर्ग बहुत आसानी से तैयार कर सकते है। इतना ही नही, इस तरह अग्रेजो के कृपापात्र बनने की होड उनमे सघर्ष और फूट का बीज भी बो देती है। परतु राजनीतिक चेतना युक्त, स्वाभिमानी-भारतीयो मे इन जी-हजूरो के प्रति केवल घृणा ही उत्पन्न होती है और ब्रिटिश सरकार के प्रति उनका अविश्वास और भी गहरा हो जाता है।

एक दोपहर, रेजीडैट गिडनी के यहाँ नवाब कमालयार जग खाने पर बुलाये गए। नवाब साहब देखते ही बनते थे। भद-भद मोटा शरीर, चमकीला भूरा चेहरा, सफेद पोशाक और सिर पर बडी हैदराबादी पगडी। नवाब साहब कहने लगे—मेरी जागीर ३१७ वर्ग मील है और इसमे लगभग पौने दो करोड मनुष्य रहते है। हैदराबाद राज्य के लगभग ८० फीसदी निवासी राज्य से असतुष्ट है। भला, हमे अरक्षित छोडकर अग्रेज भारत से कैसे कूच कर सकते है ?

ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत मे अत्यत प्रतिक्रियागामी शक्तियो से अपना नाता जोड रखा है। मैने सर आर्चिबाल्ड (अब लार्ड और वाइसराय) वेवल से पूछा · पर्ल हार्बर के पश्चात, प्रशात क्षेत्र में अग्रेजी की हार-पर-हार का क्या कारण था। "उन प्रदेशो में रहकर, जहाँ सदियो से सिवाय टीन की खान तथा रबड के बागीचो की देख-रेख के कोई काम ही न था, हम सुस्त और निकम्मे हो गए थे," उन्होने उत्तर दिया।

वेवल सभ्य, सुसस्कृत एव सच्चे व्यक्ति है। उनसे मेरी पहली मुलाकात नई दिल्ली मे उन्ही के घर पर दिन के खाने के वक्त हुई थी। बहुत देर तक बातचीत के बाद, वह मुझे नाचे छोडने आये। सीढियो में मैने कहा—"आप बहुत थके जान पडते है।" तीनसाल से हार की लडाइया लडते-लडते मै थक गया हूँ" उन्होने स्वीकार किया। फिर कहा, "रोमेल बहुत बडा सेनानायक है। मैने उसका मुकाबला किया है। मे उसके गुणो को खूब जानता हूँ।" मै वेवल से चार बार मिला, और वह हर मुलाकात मे रोमेल का जिक्र छेड देते थे।

वेवल की चाल को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो मनुष्य की टागो के बल टेक चल रहा हो। उनका चेहरा सिकुडा हुआ-सा लगता है जिस पर गहरी रेखाओ की स्पष्ट छाप है। उनकी बाई आख मुदी हुई और ज्योतिविहीन है। उनके सिर के बाल घने और भूरे है। उनकी खाकी वरदी के बाई

ग्रोर छाता पर फौजी रिबन की पाच कतारें भला लगती है । तीस साल हुए जब वे भारत मे मामूली लेफ्टिनेंट की हैसियत से आये थे। १६४१ मे भारतीय प्रधान सेनापति बनकर वे भारत वापिस आये । इससे पहले, वे कई देशो मे घूम आये थे। वह रूस भी दो बार हो आये थे । पहली बार प्रथम युद्ध से पहले एक वर्ष वे वहा रहे थे और दूसरी बार उसी युद्ध के दौरान मे ६ मास तक वे रूस मे रहे थे। उन्होने मुझे बताया कि रूसी बलिष्ठ और वीर्यवान लोग है, और प्रथम विश्व युद्ध मे, जारशाही के मातहत भी लडकर, उन्होने राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया था। वेवल १६३६ मे श्वेत रूस मे लालफौज की गतिविधि के प्रदर्शन के समय आमन्त्रित थे और उन्होंने युद्ध-विभाग को अपनी रिपोर्ट मे बताया था कि मार्शल टुखाचेवस्की की कमान में लाल फौज शीघ्र ही पकड जायगी।

एक बार मै वेवल के साथ उनके भवन के बाग में टहल रहा था। वह आराम मे थे। सहसा उनकी पुरानी स्मृतिया जाग उठी और वे प्रथम युद्ध मे काकेशिया के अपने सस्मरण मुझे सुनाने लगे। उन्हे कई रूसी मुहावरे याद हो आये। उन्होने जार्जिया प्रदेश की एक वीर कविता के सहसा कुछ टप्पे गुनगुनाने शुरू कर दिये।

वेवल का आदर्श वीर जनरल एलनवाई है, जो प्रथम युद्ध मे उनके कमाडर थे। जिन दिनो मै हिन्दुस्तान मे था, वेवल एलनवाई की जीवन-कथा का दूसरा भाग समाप्त करने में जुटे हुए थे। उन्हे यह शिकायत थी कि उन दिनो उन्हे लिखने का अवकाश बहुत थोडा मिलता था । वे भी लेखको की कमजोरी का शिकार होगए। उनसे रहा न गया और झट से दराज मे से अपनी हस्त-लिपि निकाल उन्होने मुझ से पूछा—आप इसे पढना चाहेगे ? मै इस असमाप्त पुस्तक का प्रथम भाग पढने के लिए घर ले गया। मैने उसे चाव से पढा। उसमें एक पात्र बैनम ऐरिफ का चरित्र-चित्रण पढने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि जहाँ ब्रिटिश सेना को एक बडा सेनानी प्राप्त हुआ, वहा अग्रेजी साहित्य नें एक मजा हुआ लेखक खो दिया। उक्त पुस्तक में ऐलनवाई के सन् १६२२ मे ब्रिटिश सरकार के साथ हुए सघर्ष की बडी ही रोचक और निष्पक्ष टीका-टिप्पणी की गई है। उन दिनो ऐलनवाई मिस्र में हाई कमिश्नर थे। वे मिस्र पर से ब्रिटिश सरक्षण उठाने के पक्ष मे थे और ब्रिटिश सरकार मिस्र को आजाद करने में आनाकानी कर रही थी। एलनवाई अपने पक्ष की वकालत करने के लिए लदन गये। प्रधान मन्त्री लायड जार्ज, लार्ड मिलनर, लार्ड कर्जन, वस्तुत, सारा ही मन्त्रि-मडल एलनवाई का विरोध कर रहे थे । और वेवल

कहते है, सबसे अधिक और कटु विरोध उनका चर्चिल ने किया।

अन्त मे एलनबाई ने धमकी दी कि वे इस्तीफा देकर ब्रिटिश जनमत से इस प्रश्न का निर्णय करायेगे। उन दिनो एलनबाई की गुड्डी स्वदेश मे बहुत चढी हुई थी। फिलस्तीन और सीरिया मे उनकी शानदार जीतो ने वास्तव म प्रथम विश्व युद्ध मे शत्रु (तुर्कों) को प्रबल आघात पहुचाया था, जिसके कारण विजय बहुत निकट आ गई थी। ब्रिटिश सरकार ने, खुले आम मे जीत के डर से, चुपचाप एलनबाई की बात मान ली।

ब्रिटिश मन्त्रि-मडल के साथ हुए ऐलनबाई के इस सघर्ष का हाल पढते समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यदि कभी वेवल को भी ऐसी परिस्थिति का सामना करना पडा, तो वे निश्चय ही अपने हीरो एलनबाई का अनुकरण करेगे।

वह हस्तलिपि लौटाते समय मैंने वेवल को एक पत्र में कहा—"मेरे विचार मे चर्चिल, लायडजार्ज, कर्जन आदि ने मिस्र की स्वतन्त्रता का विरोध करते हुए ऐसी ही दलीले दी होगी, जैसी कि आजकल भारत की आजादी के विरोध मे मैंने सुनी है। परतु एलनबाई अपनी बात पर अडे रहे और अत में उनकी जीत हुई। आप ठीक कहते है, ऐलनबाई सच्चे थे और ब्रिटिश मन्त्रि मडल का पक्ष गलत था। प्राय सरकारे भूल मे होती ही है। समस्त यूरोप का १९१९-१९३९ तक का इतिहास गलत नीतियो का इतिहास है। ब्रिटिश मन्त्रि मडल की हाल की भारत सबन्धी कार्रवाइया उनकी बुद्धिमत्ता की सूचक नही है।"

वाद में जब वेवल को मै फिर मिला तो मैंने एलनबाई के सघर्ष का इतना अच्छा और रोचक वर्णन देने के लिए उन्हे बधाई दी। वेवल बोले–वास्तव में यह राजनीतिक जीत एलनबाई की सेनानी विजयो से कही अधिक महत्वपूर्ण थी।

दूसरे दिन दुपहर मै वेवल को फिर मिला और हम सूर्यास्त तक बात चीत करते रहे। हम एक ही डेस्क पर बैठे थे। मैने उनकी मेज के एक खाने मे छोटी काली जिल्द वाली बाइबल का एक प्रति देखी। वेवल ने मुझे मैथ्यू ऑरनेल्ड कवि की कविता भी सुनाई। उन्होने एक कविताओ का सग्रह स्वय भी प्रकाशित किया है। साथ ही वह ब्लाटिंग पर लाल पेंसिल से गोल चक्र बनाते रहे। फिर वह कहने लगे · "साम्राज्य ने हमें बोदा और सुस्त बना दिया है। इस युद्ध में ब्रिटेन को उपनिवेशो से बहुत कम सहायता मिली है, भारत में सैनिक या तो धन के लालच के भरती हो रहे है, या फिर अपनी प्राचीन परम्परा के कारण।"

वेवल में दार्शनिक, ऐतिहासिक एव कलाकार का विचित्र सामजस्य पाया जाता है। वे निश्चय ही फाइलो में दबे रहने वाले नौकरशाही के पुतले मात्र नही है। लिनलिथगो १९४२ मे रात मे देर तक बैठे भारत के प्रत्येक जिले की रिपोर्ट पढते रहते थे। वे भारत को दूरबीन की बजाय खुर्दबीन से देखकर सन्तोष कर लेते थे।

लार्ड लिनलिथगो ने ४ जुलाई को अमेरिकन स्वतत्रता दिवस के उपलक्ष मे वाइसराय-भवन मे एक भोज दिया। उस मे भारतीय स्वतत्रता के विरुद्ध अनेक दलीले मेरे सुनने मे आई। जनरल विंटरटन, जो बर्मा मे सर हेरेल्ड अलेक्जेंडर के नीचे चीफ-आव स्टाफ रह चुके थे, मुझ से बोले—परतु, स्वतत्र भारत अपनी रक्षा कैसे करेगा ?

"क्या स्वतत्र इग्लैण्ड अपनी रक्षा कर सकता है ?" मैने प्रत्युत्तर में कहा।

यदि केवल उन देशो को स्वतत्र होने का अधिकार है जो अकेले अपनी रक्षा करने में समर्थ है, तो शायद ही कोई देश स्वतत्रता का अधिकारी हो। स्वीडन, डेनमार्क, स्पेन, फ्राम आदि अनेक देश तो निश्चय ही स्वतत्रता के अनधिकारी रहेगे। वास्तव में इस समय हमको एक ऐसे शक्ति सपन्न अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की आवश्यकता है जो एक स्वतत्र भारत, आजाद इग्लेड, स्वाधीन रूस एव सब स्वतत्र राष्ट्रो की रक्षा करने मे समर्थ हो सके। अबल व्यक्ति और अबल राष्ट्र समाज के लिए कई बार अधिक लाभदायक प्रमाणित होते है और विजेता अथवा गुडे की बजाय वे सरक्षण के अधिक अधिकारी होते है।

उसी दिन शाम को लिनलिथगो की सुदर पत्नी ने मुझे बातचीत के लिए बुलाया। उन्होने मौसम का जिक्र छेड कर बातचीत आरभ की। उस शाम गरमी का तापमान ११० था और हमारे शरीरो से पसीना चू रहा था—पर थोडी ही देर मे हम राजनीति मे प्रवेश कर गए। वाइसरीन ने कहा—पर, क्या हिन्दुस्तानी वास्तव मे स्व-शासन के योग्य है ?

"आज तो आपका यह प्रश्न विचित्र-सा लग रहा है" मैने उत्तर दिया। "सन् १७७६ में ब्रिटिश टोरियो ने यही प्रश्न अमेरिका के १३ उपनिवेशो के सम्बन्ध में किया था।"

भारत में अग्रेज कह रहे है कि ब्रिटेन भारत छोड रहा है। वाइसराय की शासन परिषद् के गृह-सदस्य सर रेजीनॉल्ड मैक्सवल ने मुझे अपने घर खाने पर बुलाया। उन्होने कहा—ब्रिटेन भारत पर से अपना शासन हटा रहा है। मेरे विचार में युद्ध के दो साल बाद ब्रिटेन भारत छोड देगा। हमने निश्चित्

समय नही घोषित किया है। मेरे विचार में यही हमारी भूल है।

"आप अच्छी तरह समझते होगे," एक बार मैंने जनरल वेवल से कहा, "भारत का वर्त्तमान राज्य ५ या १० वर्ष से अधिक नही रह सकता।"

"बिलकुल ठीक" वेवल ने जोरदार समर्थन किया। जब मैं वाइसराय से पुन मिला तो वे मुझ से बोले "हम भारत मे अधिक देर न ठहरेंगे। कांग्रेस इस पर विश्वास नही करती है।" कांग्रेस और बहुत से हिन्दुस्तानियो के अविश्वास का कारण यह था कि यद्यपि अंग्रेज भारत छोडने की घोषणा तो करते है, लेकिन वे अपनी दलीले ठहरने के पक्ष मे ही देते है।

जहा तक मुझे स्मरण है शायद ही भारत में किसी अंग्रेज अफसर ने अथवा इंग्लैण्ड मे अनुदार दल के व्यक्ति ने भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन किया हो। बात इसके विपरीत ही हुई है। भारत से बाहर अमेरिका में अंग्रेजो ने लाखो रुपये भारतीय स्वतन्त्रता के विरुद्ध आदोलन करने में खर्च किये है। इसीलिए भारतीयो को अंग्रेजो के वचन पर विश्वास नही रहा।

भारतीय अंग्रेजो का परस्पर अविश्वास भारत की वर्त्तमान स्थिति का आधार-भूत सत्य है। सर रेजीनॉल्ड डॉरमन स्मिथ सन् १९४२ मे बर्मा के गर्वनर थे जब कि वह देश जापानियो के हाथ चला गया। "एशियाटिक रिव्यू क्वार्टरली" के जनवरी १९४४ के अंक में एक लेख द्वारा उन्होने पूर्वी एशिया में ब्रिटेन के पतन के कारणो पर प्रकाश डाला है। वे लिखते है– "पूर्वी एशिया में न हमारे वचन और न ही हमारी मशाओ पर अब किसी को विश्वास रहा है, यह मै निश्चय से कह सकता हू। इसका कारण स्पष्ट है। हमने बर्मा आदि देशो को राजनीतिक प्रस्तावो और वादो के सहारे इतना देर तक रखा है कि अब ये देश राजनीतिक सुझावो और गुरो के नाम से चिढ़ते है, और वे इन्हे हमारी आना-कानी का लक्षण मानते है। हमारे राजनीतिक गुर अथवा उनके हल हमारे शत्रु व मित्र दोनो को अचम्भे मे डालने वाले होते है, क्योकि उनका अर्थ लगाना मुश्किल नही है।

बर्मा को आजाद करने का हमने वचन दे दिया है। फिर भी सर हेरल्ड अलक्जेंडर ने, जो जापान के अधिकार में उतने समय तक बर्मा में ब्रिटिश सेनापति थे, ३१ मई सन् १९४२ को नई दिल्ली में एक सम्मेलन मे कहा–"हमे बर्मा वापिस लेना होगा। यह देश तो ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग है।"

बर्मा स्वतन्त्र होगा–बर्मा ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग रहेगा। इन दोनो में से हम किस बात को माने? सर रेजीनॉल्ड इन दोनो विकल्पो में उलझे हुए हैं, वे लिखते है– ब्रिटेन बर्मा को पूर्ण-स्वतंत्रता की ओर ले जाने के लिए

वचन-बद्ध हूं। अत हमारा ध्येय बर्मा मे ऐसी नीति बर्तना होना चाहिये, जिसके कारण बर्मा साम्राज्य से निकलना ही न चाहे।

'स्वतत्रता' शब्द की व्याख्या करके सर रेजीनॉल्ड लिखते है– हमे स्वतत्रता के वास्तविक अर्थ समझने चाहिए। मुझे भय है कि हम कही भूल न जाय कि विभिन्न लोग स्वतत्रता का तात्पर्य भिन्न समझते है। क्या ही अच्छा हो यदि हम भी बर्मियो को साफ साफ बतादे कि स्वतत्रता का अर्थ हम क्या लगाते है?

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के शब्द-कोष में स्वतत्रता का अर्थ साम्राज्यान्तर्गत रखना ही है।

सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत आये और चर्चिल सरकार की ओर से उन्होने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रस्ताव रखा। भारतीय उपनिवेश, यदि चाहे, ता उसका सबसे पहला काम अपने-आपको ब्रिटिश-साम्राज्य से बाहर निकालना हो सकता है, ऐसा उन्होने कहा। यह मार्च १९४२ की बात है। परन्तु नवम्बर १९४२ मे चर्चिल ने कहा "मै सम्राट् का प्रधान मत्री इस लिए नही हुआ हू कि मेरे अधिकार-काल मे ब्रिटिश-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाय।" प्रकट है, उनका सकेत भारत की ओर था। चुनाचि, जब अंग्रेज भारत से निकलने की बात करने लगे, तो भारतीयो का उनके प्रति सदेह स्वाभाविक था।

चीनियो की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है—वस्तुओ को उनके ठीक नाम से पुकारना बुद्धिमानी का प्रथम लक्षण है।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, न्यूजीलैंड और आयरलैंड ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहते हुए भी स्वतत्र है। यह द्वितीय विश्व-युद्ध ने प्रामाणित कर दिया है। आयरलैंड युद्ध में शामिल नही हुआ। दूसरे चार उपनिवेश स्वेच्छा से ब्रिटिश साम्राज्य के साथ कधे-से-कधा भिडाकर लडे, वीरता से शत्रु से भिडे। बीसवी सदी का यह एक राजनीतिक चमत्कार है।

परन्तु, भारत का इग्लैण्ड के प्रति दूसरा ही रुख है। अंग्रेजो के कारनामो के कारण भारतीयो को उनसे तनिक भा प्रेम नही है। अंग्रेज इसे अच्छी तरह समझते है। ब्रिटिश राज्य के इतिहास ने भारतीयो में इग्लैण्ड से पूर्णतया सम्बन्ध-विच्छेद करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न कर दी है।

इसके अतिरिक्त कुछ यह भी बात है कि बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में वर्ण-भेद का प्रश्न मुख्य सामाजिक प्रश्न बन जायगा। ससार में गोरो से अधिक रगदार जातिया है। और यह बहुमत, पीडित-वर्ग है। अब ये जातिया

श्वेताग महाप्रभुओ का भार उठाते उठाते थक गई है। वे गोरी जातियो के विज्ञान, शिल्प और भौतिक उन्नति के आगे सिर झुकाती है। परन्तु अग्रेज की राजनीति एव सार्वजनिक नैतिकता के लिए उनके दिल में तनिक भी श्रद्धा नही है। वे अग्रेजो का सैनिक योग्यता की कायल है, परन्तु उनका शाति स्थापन सम्बन्धी योग्यता मे उन्हे विश्वास नही है।

पश्चिम का आदमी अब एशिया मे केवल मित्र बनकर रह सकता है। वह अब एशिया मे शासन नही कर सकेगा। चीन और भारत, जो शायद ही पहले एक-दूसरे के परिचित रहे हो, अब घनिष्ठ पडोसी बन रहे है। आगामी ५० वर्षों में एशिया का सरदार चीन या भारत होगा। रगीन जातियो की सख्या अरबो से ऊपर है। "एशिया एशियावासियो के लिए" यह नारा साम्राज्यवादी जापान ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रचारित किया था। यदि एशियावासियो ने गोरे-साम्राज्यो का अत करने के लिए इस नारे का आश्रय लिया, तब तो स्थिति भयकर हो जायगी।

पूर्व का प्रेम पश्चिम के प्रति विपरीतानुपात से उतना ही कम है जितना पश्चिम ने पूर्व के साथ अधिक अत्याचार किया है।

गोरा अपने प्रभुत्व का इतना आदी होगया है कि उसे यह ख्याल ही नही होता कि उसका आधिपत्य दूसरो को अखरता है।

अग्रेज कहते है– भारतीय स्वराज्य के अयोग्य है। भारतीय कहते है– अग्रेज ससार पर शासन के अयोग्य है। तनिक दो विश्व-युद्धो और उनके परिणामो—अशाति, उच्छृखलता अव्यवस्था, दुख और तानाशाहो की ताण्डवता का मुलाहजा कीजिये।

भारतीयो का कहना है कि ब्रिटेन भारत पर शासन करने के अयोग्य है। इंग्लैण्ड भारत म डडे के बल से शाति तो कायम रख सकता है, परन्तु भारतवासियो के लिए भोजन, वस्त्र, मकान एव अन्य सुख-सुविधाओ की व्यवस्था करने मे असमर्थ है। बार-बार पडने वाले अकाल अग्रेजो की शासन-सम्बन्धी अयोग्यता के प्रमाण है। १९४३ के बगाल दुर्भिक्ष ने भारतीयो को विशेषत क्षुब्ध किया। उस अन्न सकट में कराब ३० लाख मनुष्य मौत के शिकार होगये। किसी का भी अदाज १०लाख मौतो से कम नही है। भारत में प्रति वर्ष १२।। करोड आदमी मलेरिया के शिकार होते है। अन्य कारणो से एक लाख मौते हो जाती है। ये अग्रेजो की शासन-सम्बन्धी योग्यता के प्रमाण नही है। १९४१ की जन-सख्या के अनुसार भारत मे कुल १२½ प्रतिशत साक्षर है, जब कि 'साक्षरता' से तात्पर्य केवल मामूली पढ़ लेने की योग्यतामात्र है। यह

भी सुशासन का प्रमाण नही है। औद्योगिक निश्चलता, अन्यायपूर्ण जमीदारी व्यवस्था और चिरकाल तक विदेशी सत्ता के अधिकार मे रहने के कारण नैतिक ह्रास (हम भारत मे विजता के रूप मे है, ऐसा मुझे लार्ड लिनलिथगो ने कहा था) से भारतीय अत्यधिक क्षुब्ध और अंग्रेजो के प्रति अत्यन्त असहिष्णु (कभी-कभी तो अकारण ही) होगये है। भारतीय स्थिति का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है।

भारत मे आज अनेक सफल, प्रतिभाशाली और अनुभवी शासक, औद्योगिक महाजन, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, न्यायविशारद, शिक्षक एव राजनीतिज्ञ मौजूद है। सर स्टैफर्ड क्रिप्स का कहना है कि वाइसराय का विश्वास है कि भारतीय अपने राज्य की बागडोर सभालने योग्य है। "न्याय और अधिकार के सिद्धान्त पर", सर स्टैफर्ड ने पार्लिमेंट मे अक्तूबर १९३९ को दिये भाषण मे कहा—"इस बात से कोई भी इकार न करेगा कि आज भारत स्वराज्य का पूर्ण रूप से अधिकारी है। जब वाइसराय स्वय इस बात को मानते तो, हैभारतीयो की स्वराज्य की माग को स्वीकार न करने का हमारे पास सिवा इसके क्या उत्तर है कि हमन्याय और औचित्य के अपने सिद्धान्तो को भूल कर और भारत पर अपना एकाधिकार कायम रखकर, उसका शोषण जारी रखना चाहते है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय अपने देश का शासन सभाल सकते है। अग्रजो की भारत मे आवश्यकता नही है। अंग्रेज इसे खूब जानते है।

यदि इग्लैड को आर्थिक कारणो से भारत की आवश्यकता है, तो ब्रिटिश प्रजाजन खुशी से स्वतन्त्र भारत के साथ व्यापार करे, वहा पूजी लगाये, वहा 'रोजगार-धधा' करे। इग्लैण्ड के लाभदायक आर्थिक सबध अर्जेन्टीना आदि कई देशो से है, जो कि साम्राज्य के अन्तर्गत नही है। परतु भारत पर राजनीतिक अधिकार होने के कारण अंग्रेजो को कोई असाधारण लाभ है, जो कि भारत तथा कई और देशो के हितो के प्रतिकूल है। व्यापारिक अथवा आर्थिक दृष्टि से भारत का द्वार दूसरे देशो के लिए बद है और इसद्वार की कुजी अंग्रेजो के पास है। कभी-कभी उन्हे प्रतिद्वन्द्वियो के लिए भी किवाड खोलने पडते है। किंतु इग्लैण्ड भारत का द्वार अपने लाभ के लिए ही खोलता है।

ससार मे प्रथम श्रेणी का राष्ट्र बना रहने के लिए क्या इग्लैड के लिए भारत पर सत्ता जमाये रखना आवश्यक है ? यदि आवश्यक है भी, तो इग्लैण्ड को महान् राष्ट्र बनाये रखने के लिए भारत क्यो गुलाम रहे ?

"प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के लिए इग्लैण्ड ने भारत मे से लाखो

जवानो की भरती की, जो बडी बहादुरी से लडे और विजय-प्राप्ति म विशेष सहायक हुए।" इस तर्क के अनुसार तो भारत को सदा ही गुलाम रहना चाहिए और इसी तरह जापान भी चीन पर अपना कब्जा न्यायपूर्ण बता सकता था। साथ ही टोकियो के लिए अपार जन शक्ति का भडार खुल जाता, बशर्तेकि समस्त चीन जापान द्वारा अधिकृत हो जाता।

"यदि भारत इग्लैड के अधीन न होता, तो चीन की तरह वह भी जापान का उपनिवेश बन जाता।" परन्तु इस तर्क का उत्तर यह है कि चान और भारत को सबल और सपन्न राष्ट्र बनाया जाय, ताकि ये दोनो देश आक्रमण को रोक सके। यदि इग्लैड के अधीन रहकर ही भारत की रक्षा हो सकती है, तो यह आवश्यक है कि फ्रास, स्पेन, इटली, बल्गेरिया आदि सब छोटे राष्ट्र दो या तीन बडी शक्तियो के अधीन कर दिये जाय। शायद कुछ काल बाद किसी को यह प्रतीत होने लगे कि इग्लैड भी अपनी रक्षा आप नही कर सकता और वह प्रस्ताव रख दे कि इग्लैड अमेरिका अथवा रूस के अधीन हो जाय। तो फिर किसी अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की क्या आवश्यकता है, जो निर्बल राष्ट्रो की रक्षा कर विश्व-शाति की व्यवस्था करे।

साम्राज्यवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद दोनो परस्पर विरोधी है। साम्राज्य का आधार पशु-बल है, अत यह अनैतिक है। इग्लैड को भारत पर राज्य करने का क्या अधिकार है ? साम्राज्यवाद प्रतिद्वन्द्वी क्षेत्रो को जन्म देता है।

प्रारम्भ में और किन्ही क्षेत्रो मे साम्राज्यशाही से वर्जित जातियो को कुछ लाभ पहुँचता है, परतु अत में इससे आर्थिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक क्षति ही पहुँचती है। पाश्चात्य आधिपत्य से जो लाभ हुए है, उन्ही के कारण एशियावासी उस आधिपत्य का अब अन्त करने पर उतारू है। और उधर साम्राज्यवादी राष्ट्र स्वार्थवश अभी एशिया से ही चिपटे हुए है। उपनिवेशो के हित उनके लिए गौण है।

"भारत के हाथ से निकल जाने पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ह्रास हो जायगा" १२ दिसम्बर १९३० को चर्चिल ने यह घोषणा की थी। मार्च १९३१ को चर्चिल ने ब्रिटिश दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए फिर कहा—"भारत का हमारे हाथ से निकल जाना हमारे लिए घातक सिद्ध होगा। यह उस प्रक्रिया का सूत्रपात करेगा जो हमें छोटी ताकत बनाकर रहेगी।"

"छोटी ताकत" यह १९ वी सदी की विचारधारा की उपज है। सरकार और मानवी-श्रम का ध्येय व्यक्तिगत सुख की वृद्धि करना है। आमतौर पर, शाति-काल में डेनमार्क, स्वीडन अथवा स्विट्जरलैंड का निवासी औसतन

एक सामान्य अंग्रेज से कही अधिक सुखी है। यदि वह एक छोटे राष्ट्र का सदस्य है, तो इससे क्या ? मै अब तक यह नही समझ सका हू कि धरती के किसी और टुकडे पर अधिकार प्राप्त करने का व्यक्ति के कल्याण से क्या सम्बन्ध है। अन्य देशो पर ऐसे अधिकार गत वर्षों मे युद्ध के ही कारण सिद्ध हुए है।

यह कहा जा सकता है कि बडे राष्ट्र के नागरिको को युद्ध-काल मे अधिक लाभ रहता है। यह भी सन्दिग्ध है। यह बात तो परिस्थितियो पर आश्रित है। फ्रास, इटली, जापान, जर्मनी, रूस, ब्रिटेन ने, जिन्हे १९३९ मे बडे राष्ट्रो मे गिना जाता था—गत युद्ध मे छोटे राष्ट्रो से अधिक ही क्षति उठाई है और यदि अब कही तीसरा विश्व-युद्ध हुआ, जिसमे समुद्र पार अणुबम फेंके गये तथा कही न रुकने वाले पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले विशाल वायु-यानो द्वारा बम-वर्षा की गई, तो क्या छोटे राष्ट्र, क्या बडे—सब देशो के नर-नारी और बच्चे नारकीय वेदना भोगेंगे।

भारतीय स्वतत्रता ब्रिटेन को २० वी सदी के अनुरूप आर्थिक एव राज-नीतिक परिवर्तन करने पर बाध्य करेगी। अमेरिकी उद्योग २०वी सदी के अनु-रूप है, इसलिए उसे उपनिवेशो की आवश्यकता नही। ससार को उन वस्तुओ की आवश्यकता है, जिनका निर्यात अमेरिका आसानी से कर सकता है। आज अमेरिका मे बने कल-कारखानो मे काम आने वाले मशीनो, पुरजो तथा सामूहिक उत्पादन की ससार को बडी आवश्यकता है, इग्लैड मे औद्यो-गिक विकास पहले आरम्भ हुआ था। यद्यपि इग्लैड उतने ही अच्छे और आधुनिक यत्र बना सकता है तथापि इग्लैड की औद्योगिक प्रणाली मे बहुत-सी दकियानूसी बाते है। जिस देश ने बड पैमाने पर औद्योगीकरण करने का निश्चय कर लिया हो, उसे इग्लैण्ड से थोडी बहुत मशीनरी तो प्राप्त हो सकती है, परतु उसे अधिक साजो-सामान तो अमेरिका से ही प्राप्त करना लाभदायक रहेगा। अत भारत के औद्योगीकरण में इग्लैण्ड की अपेक्षा अमेरिका अधिक दिलचस्पी लेगा। यदि इग्लैण्ड का उद्योग बिल्कुल आधुनिक होता तो बात और थी किंतु जब तक ब्रिटेन की आर्थिक व्यवस्था में १९वी सदी का पुट है, तब तक वह भारत के लिए बीसवी सदी के अनुकूल निर्माण-कार्य मे सहायक नही हो सकता।

औद्योगिक दृष्टि से बीसवी सदी मे पदार्पण किए हुए ब्रिटेन को चाहिये था कि वह कपडा तथा अन्य उपभोग की वस्तुओ की अपेक्षा कल-पुरजे बनाने पर जोर देता और तब वह भारत की स्वतन्त्रता और औद्योगीकरण का पक्ष लेता। इस प्रकार जब स्वतत्र भारत मे उद्योगोन्नति होगी, तब भारत से व्यापार करने

के लिए इग्लैण्ड को अमेरिका आदि अग्रगामी देशो से मुकाबला करना होगा। यदि ४० करोड भारतीय वर्तमान पशु-जीवन से तनिक ऊँचे उठ जाय और इनके जीवन-यापन का स्तर ऊँचा हो जाय, तो उपभोग की वस्तुओ की माग इतनी बढ जायगी कि उसे पूरा करने के लिए इग्लैण्ड, अमेरिका और कई अन्य देश भी उत्पादन-कार्य मे सलग्न हो जायगे। किसी ने एक बार विनोदार्थ कहा था—"यदि प्रत्येक चीनी पतलून पहनने लग जाय, तो अमेरिका मे ५ वर्ष के लिए प्रत्येक आदमी को काम मिल जायगा। यदि प्रत्येक चीनी, भारतीय, यूनानी एव पेरूवासो के लिए पर्याप्त भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा, तथा रोगोपचार की व्यवस्था की जाय, तो ससार की सामूहिक आय मे वृद्धि हो जायगी तथा बेरोजगारी घटेगी और विश्व मे सुख तथा शांति की वृद्धि होगी।

भारत और चीन, यूनान और पेरू अथवा ट्यूनेशिया अपने जीवन के स्तर को ऊँचा करने के लिए साधन कहा से जुटाएगे ? वे इस अश मे अमेरिका का अनुकरण करेगे। जल, भूमि, वायु और अपनी जन-शक्ति से वे सहायता लेगे।

भारत की स्वतत्रता नये इग्लैण्ड के प्रादुर्भाव पर निर्भर है। यह राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओ पर लागू होती है। मृत भूतकाल मे इग्लैण्ड को अपने विस्तृत साम्राज्य के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे महत्त्व मिलता रहा है। पर अब समय बदल रहा है, क्योकि वायुयान-युग मे नौसेना का महत्त्व घट गया है तथा रूस और अमेरिका का औद्योगिक बल एव राजनीतिक महत्व बढ रहा है।

शक्ति-मूलक राजनीति अनैतिक है और प्राय युद्धगामी है। जो राष्ट्र देश जीतने की आशा रखता हो, वह भले ही उक्त राजनीति का आश्रय ले परतु इग्लैण्ड क्यो यह खेल खेले, जब उसे विजय प्राप्त ही नही हो सकती ? इग्लैण्ड और रूस में तनातनी हो जाने पर, आशिक स्वतत्रता-प्राप्त क्रुद्ध-भारत निश्चय ही रूस का पक्ष लेगा। पूर्णतया स्वतत्र भारत इग्लैण्ड का पक्ष लेगा। क्योकि इग्लैण्ड के हार जाने पर रूसी आक्रमण का उसे भय रहेगा।

भारत पर आधिपत्य रखने की अपेक्षा अणु-शक्ति को उत्पन्न करने की क्षमता इग्लैण्ड को अधिक सामरिक शक्ति प्रदान करेगी। अणु-युग मे साम्राज्यवाद निरी मूर्खता है।

इग्लैड के सामने दो विकल्प है, या तो वह लडखडाते हुए साम्राज्य के ढाचे को पकडे बैठा रहे, या फिर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे राष्ट्रो की मैत्री प्राप्त

करे। दूसरे शब्दो मे उसे साम्राज्य-गत अरक्षा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सगठन द्वारा मुरक्षा—इनमे से एक का चुनाव करना होगा।

साम्राज्य विस्तार की होड मे इग्लैड फ्रास, स्पेन और पुर्तगाल से इस लिए जीत गया कि वह इन देशो से अधिक सगठित और प्रगतिशील था। साम्राज्यो के परस्पर भावी-सघर्ष मे इग्लैड हार जायगा, क्योकि अब वह निर्बल है।

ब्रिटिश-साम्राज्य तो अब केवल अमेरिका सहायता से ही कायम रह सकता है। पर क्या यह वाछनीय है? एक लडखडाते और पतनोन्मुख साम्राज्य को बचाने का अर्थ इग्लैड और भारत मे जीर्ण-शीर्ण-राजनीतिक एव आर्थिक व्यवस्था के कायम रखने मे सहायक होना होगा। इससे इग्लैड, भारत और अमेरिका तीनो देशो की प्रगति में अडचन पडेगी।

इग्लैड के लिए इस समय सबसे अच्छा रास्ता साम्राज्यवाद को त्याग कर अन्तर्राष्ट्रीयता को अपनाना है। यह काम अकेले इग्लैड के बस का नही है। इस ओर स्वय प्रयास करके वह ससार को अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर ले जाने में सहायक मात्र हो सकता है।

ब्रिटेन के आर्थिक एव राजनीतिक सगठन को २० वी सदी के अनुरूप पुनरावृत्ति करने का दायित्व इतिहास ने मजदूर सरकार को सौंपा है। अब यह प्रत्यक्ष है कि अग्रेजो ने दो मोर्चों पर लडाई लडी थी। उन्होने चर्चिल की सहायता से हिटलर को परास्त किया और फिर नये युग में पदार्पण करने के लिए उन्होने चर्चिल को भी हरा दिया। इस शुभ-कार्य मे इग्लैड की जो कुछ सहायता अमेरिका करेगा, उसकी ब्याज-समेत अदायगी विश्व-शान्ति और समृद्धि के रूप में उसे वापस मिलेगी।

भारत की स्वतन्त्रता का पक्ष मैंने इग्लैड के प्रति काई दुर्भावना से प्रेरित हाकर नही लिया है। शायद ब्रिटेन सबसे अधिक सभ्य, सजग एव लोक-तत्री राष्ट्र है। इग्लैड भारत एव विश्व के कल्याण से प्रेरित हुआ। मै भारत की स्वतन्त्रता के लिए आग्रह करता हू।

यद्यपि मै भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थक हूँ तथापि मै राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय पृथक्ता का विशेष पक्षपाती नही हू। अत्यधिक स्वदेश में ही केन्द्रित होने के कारण मैने भारतीयो की आलाचना की है। सकीर्ण राष्ट्रीयता एक राग है। राष्ट्रीयता प्राय पृथक्ता रखती है। अत यह विश्व-व्यापी अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग में रोडे अटकाती है।

कोई पूछ सकता है— यदि बाद में उसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन में शामिल

ही होना है तो फिर भारत को एक राष्ट्र का रूप क्यो दें ? इसका उत्तर यह है कि अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग मे लोकतत्री राष्ट्रो की अपेक्षा साम्राज्यवाद अधिक रोडे अटकाता है।

लोकतन्त्र विभिन्नता मे पनपता है। अपनी विभिन्नता के कारण भारत सभवत राष्ट्रीयता के खतरो से बच सके। अधिनायकवाद मतभेद सहन नही कर सकता और उन्हे समाप्त कर देता है। इसे एकरूपता चाहिए। लोक-तन्त्र-वाद उस इन्द्र-धनुष के समान है जिसके सात रग मिलकर प्रकाश पैदा करते है। स्वतन्त्र भारत शायद सच्चा लोकतन्त्री राष्ट्र बन सके, जो साम्राज्य-वादी एव शाति-प्रिय राष्ट्रो के साथ एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के निर्माण मे सहयोग देगा जो मनुष्य-मात्र को शान्ति एव सद्बुद्धि की ओर अग्रसर करेगा।

ससार के सब महाद्वीपो के करोडो मनुष्य भारतीय स्वतन्त्रता को उस आगामी नई दुनिया का प्रतीक मानते है, जिसका निर्माण इस ध्वस्त ससार की नीव पर होगा। आधुनिक बर्बरता ने १९३९ से १९४५ तक वर्तमान सभ्यता के भवन को तोडा-फोडा ही है।

: १२ :

फिलस्तीन में दस शांत दिन

मुझे यह खयाल भी न था कि मै कभी बिलोचिस्तान मे अपने को पाऊगा। यह प्रदेश मेरे लिए केवल एक नाम और नक्शे पर बिन्दुमात्र था। रवानगी के दिन हमारा हवाई जहाज वहा उतरा। उसके बाद मे अरब और ईराक पहुचा। मुझे न्यूयार्क जाने की जल्दी थी और आशा थी कि मार्ग मे कही अधिक ठहरना न पडेगा।

प्रोग्राम के मुताबिक हमे मध्यान्ह का भोजन कालिया मे करना था, जो कि 'डेड सी' (समुद्र) के किनारे है और पृथ्वी पर सबसे नीचा स्थान है। यहा पर रासायनिक कारखाने भी है। इसलिए बसरा से मैने यरूशलम के अग्रेजी भाषा के दैनिक "पैलिस्टाइन पोस्ट" के एडीटर मि० गरशन एग्रोस्की को तार देकर कालिया मे खाने पर आमंत्रित किया। हम दोनो का लडकपन एक साथ फिलेडल्फिया मे व्यतीत हुआ था। मैने उन्हे सुझाया कि वे अन्य मित्रो को भी अपने साथ खाने पर बुला सकते है।

गरशन यहूदियो के मिशन पर दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी स्त्री एथिल भी कालिया पहुच गई। उसके साथ उसका अभिन्न मित्र ईडाब्लूम डेविडोविज थी, जो कि मेरी जन्म-भूमि फिलेडल्फिया की रहने वाली थी।

उन्होने मेरा भावी कार्य क्रम पूछा। हरे पानी मे डोलते हुए समुद्री वायुयान की ओर इशारा करते हुए मैने कहा—अफसोस है, मुझे जल्दी अमेरिका लौटना है। आशा है पाच दिन मे मै न्यूयार्क पहुच जाऊगा। एथिल आग्रह करने लगी कि मै यरूशलम जरूर जाऊ। मैने कहा, यह असभव है। यदि जहाज पर मैने प्राथमिकता से लाभ न उठाया तो शायद मुझे कई सप्ताह तक यात्रा सम्बन्धी प्राथमिकता न मिल सके। आध घटे तक जहाज जायगा और मै चल दूगा।

मेरे मित्र तर्क और विनय से काम लेने लगे। पर मै टस-से-मस न हुआ। फिर न जाने कैसे एकदम मेरे विचारो ने पलटा खाया। और मैने

अपने मन मे कहा—"क्यो नही ठहर ही जाऊ ?" और एकदम लापरवाही से मैंने अपना सामान जहाज से उतार लिया और मोटर में बैठ कर यरूशलम चल दिया। यरूशलम ससार के नगरो मे बडा अद्भुत और सुदर शहर है। मार्ग मे हमने अग्रेजो को सुरग बनाते और बोरियो से मोर्चे बनाते देखा। नाजी जनरल रोमेल काहिरा से केवल ३ घटे के सफर की दूरी पर था और स्वेज नहर पर उसके आक्रमण का खतरा था। भय था कि यदि उसने मोर्चे तोड डाले तो थोडे ही दिनो में वह फिलस्तीन भी पहुच जायगा।

१९१९,२० और १९३४ की भाति मै फिर माउट स्कोपस पर चढ़ा, जैतून के कुज मे घूमा, वायोडोलोरोसा नदी की सैर की, भयङ्कर 'वेलिगवाल' के सामने खडा रहा और उमर की मसजिद की सराहना की। इनमे से कई दृश्यो का उल्लेख बाइबिल मे है। यरूशलम का प्रत्येक पुराना टूटा-फूटा पत्थर प्राचीन इतिहास का सूचक है। अब पुराने यरूशलम के साथ नया यरूशलम—साफ, स्वच्छ और आरामदेह—भी बन गया है। नया यरूशलम उन यहूदियो ने बनाया है जो गत ५० वर्षों से फिलस्तीन मे यहूदी राष्ट्रीय-धाम बनाने के हेतु आये है। यहूदियो को अपने निर्माण-कार्य पर गर्व है। उत्तर में गैलिली और इस्ड्रेलन की घाटी में दौरा करने का मुझे निमत्रण मिला। यहा पर इन यहूदियो ने बडे-बडे फार्म और कृषक-बस्तिया बसाई है।

पोलैंड के 'घेरो' मे से, रूस, रुमानिया और अन्य देशो से आये हुए तथा फिलस्तीन मे जन्मे-पले यहूदियो ने अपने पुरुषार्थ द्वारा बजर, पथरीले तथा कीचड से भरे मलेरिया प्रदेश को हरे-भरे फलो से लदे बागो में परिवर्तित कर दिया है। इन बागो में हजारो आदमी समान-आधार पर और सामूहिक ढग से खेती करते है।

इन प्रदेशो को मैंने नही देखा, क्योकि एक तो मुझे इनकी सफलता के बारे में पहले से ही बहुत-कुछ पता था, दूसरे मै भारत की यात्रा से थका हुआ और वहा के सस्मरणो से लदा हुआ था। इसके अलावा, मुझे फिलस्तीन की मुख्य राजनीतिक समस्या अरब-यहूदी-परस्पर-सबन्ध मे अधिक दिलचस्पी थी।

अरब उन दिनो अग्रेजो पर हुई रोमेल की विजय से प्रसन्न थे। अरबी गाव, झडे, और ध्वजाये फहराकर रोमेल के स्वागत की तैयारी में थे। नाजी और अरब मिलकर यहूदियो के विरुद्ध प्रबल मोर्चा बना सकते थे। जब मैने अपने कई अमेरिकन यहूदियो को, जिनके पास पासपोर्ट और जाने के लिए साधन भी थे, यह राय दी कि युद्ध की समाप्ति तक वे अमेरिका जाकर रहे, तो उन्होने मुझे पागल समझा। वे भागने को तैयार न थे। यदि रोमेल

फिलस्तीन मे आ घुसा और उससे उत्तेजना पाकर अरबो ने यहूदियो की मार-काट आरम्भ कर दी, तो वे फिलस्तीन के ५ लाख यहूदियो के साथ कन्धे से-कन्धा भिडाकर अरबो का मुकाबला करेगे। यहूदियो के अनेक अर्ध सैनिक और सशस्त्र सगठन अरबो से जूझने को तैयार थ। अनेक यहूदी नवयुवक ब्रिटिश फौज मे भरती होगये थे और मिस्र, लीबिया तथा इटली के मोर्चो पर भी लड चुके थे। अरब अग्रेज़ो के विरोधी थे और उन्होने धुरी-राष्ट्रो के विरुद्ध अग्रेज़ो को सहायता देने से इकार कर दिया था।

यहूदी दृढ सकल्प थे और किसी प्रकार भी उन्हे घबराया हुआ अथवा हतोत्साह नही कहा जा सकता था। टेलावीव मे, जो प्रशान्त समुद्र के तट पर एक नया यहूदी शहर बसा हुआ है, मै डेविडोविज़ परिवार मे ठहरा। हैरी एस० डेविडोविज, जो पहले फिलेडल्फिया और क्लीव लैंड मे कानूनी विशेषज्ञ था, अब नकली दात बनाने का व्यवसाय करता था। उसने शेक्स-पीयर का हिब्रू में अनुवाद किया था। उन्नीस वर्ष की उनकी बडी पुत्री सूजान डेविडोविज़ हुलाह झील के किनारे एक नये कृषि-फार्म पर काम करती थी। यह क्षेत्र मलेरिया का घर था। उसका परिवार धनी था और यह कार्य वह केवल यहूदी जाति की रचनात्मक निष्काम-सेवा के भाव से कर रही थी। उस अस्वास्थ्यकर और पिछडे प्रदेश के पुनरुद्धार कार्य में लगे हुए हजारो युवक और युवतियो का स्वास्थ्य सदा के लिए गिर चुका था।

सूजान वहा के अपने साथियो को छोडकर शायद ही कभी अपने घर का सुख भोगने के लिए टेलावीव जाती हो।

एक दिन दोपहर के भोजन के पश्चात् हैरी डेविडोविज़ और मैंने अरब-यहूदी समस्या पर विचार किया। सूजान पौन घटे तक हमारे पास बैठी हमारी बाते सुनती रही। अचानक, बिना किसी प्रसंग के वह बोल उठी ' हमारे फार्म में एक नई आलू छाटने की मशीन आई है।"

उसका यह असगत वाक्य मेरे लिए अरब-यहूदी समस्या पर यहूदियो के रुख का द्योतक था। अरबो की हिंसा और ध्वंसात्मक प्रणाली का उत्तर यहूदी रचनात्मक कार्यों द्वारा दे रहे थे। वे ईंट-पर-ईंट रखने, शहर और बस्तिया आबाद करने तथा नई आलू छाटने का मशीने मगाने मे व्यस्त थे।

यहूदी आन्दोलन का उद्देश्य एक यहूदी राष्ट्र अथवा राष्ट्रीय समूह कायम करना है। इसलिए फिलस्तीन मे यहूदी जाति को बहुसख्यक बनाना उनका लक्ष्य है। इस समय फिलस्तीन में लगभग ५ लाख यहूदी और १० लाख अरब आबाद है। विशेषज्ञो का मत है कि यदि इस देश में सिंचाई, बिजली

और उद्योग का विस्तार हो जाय तो यहा कई लाख मनुष्य सुख और समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सकते है।

एक यहूदी गीत के वाक्य है—"ऐ यरुशलम ! यदि मै तुझे भूल जाऊ तो मेरा दाहिना हाथ चतुराई भूल जाय, मेरी जीभ मेरे तालू स चिपक जाय।" सदियो से तितर-बितर किय जाने पर भी यहूदियो के दिलो मे फिलस्तीन के लिए एक हूक उठती है। धर्म-परायण यहूदी तो फिलस्तीन के साथ विशेष धार्मिक सम्बन्ध मानते है। कई अ-धार्मिक यहूदियो के लिए यरुशलम स्वय एक धार्मिक-आस्था का विषय है। यहूदी आदोलन के पीछे उनके पूर्वजो की स्मृति और प्यार छिपा है। यरुशलम उस जाति का मूल स्थान है जो सदियो से दूसरे देशो मे रहकर विदेशी वातावरण और रहन-सहन को अपनाने के लिए बाध्य रही है, किंतु अपनी राष्ट्रीय सरकार के नीचे रहकर अपना स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने मे असमर्थ रही है। ऐतिहासिक घटना-क्रम यहूदियो को फिलस्तीन के साथ प्रेम-सूत्र मे बाधे हुए है। लाखो यहूदी, जिन्होने फिलस्तीन कभी देखा नहा है और न कभी वहा की आशा ही रखते है, यहूदी राष्ट्रीय पुनरुत्थान का सुनहला स्वप्न देख रहे है।

यह एक आवेग है इसलिए इसकी व्याख्या करना अनावश्यक है। फिलेडल्फिया मे रहते हुए अपनी युवावस्था मे मै भी इस आवेग से ओत-प्रोत था। मैं ब्रिटिश सेना की यहूदी बटालियन मे भरती होकर १९१८ में फिलस्तीन गया और वहा १९२० तक रहा था। अब वह आवेग मेरे अन्दर नही है। यह आवेग फिलस्तीन मे ही मेरे अन्दर ठडा पड गया था। यूरोप मे १९२१ से १९३८ तक रहने के कारण यहूदी-आदोलन मे मेरी रुचि न रही। मेरा ध्यान अन्य महान् सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक समस्याओ मे लग गया। अपनी दुखप्रद स्थिति मे यहूदियो की अत्यधिक एकाग्रता का कारण मै खूब समझता हू। इस प्रश्न की अवहेलना नही की जा सकती, परन्तु निरे राष्ट्रीय आदोलन से मै अधिक प्रभावित नही होता हू जब तक कि उसका उद्देश्य भारतीय अथवा इडोनेशियन राष्ट्रीय आदोलन की तरह साम्राज्यवाद का अन्त करना न हो। यहूदी आदोलन एक ऐसा आदोलन है जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवाद से गठबधन है।

राष्ट्रीय प्रश्नो का हल अन्तत विश्व समस्याओ के हल पर ही निर्भर है एसी मुझे आशा है। मै जानता हू, यहूदी यही उत्तर देगे कि हम अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नही कर सकते। मै उनसे सहमत हू और इसलिए मै किसी भी प्रकार से, उनके आदोलन में दखल नही देता। उनके आदोलन मे सक्रिय भाग लेने के

लिए सैद्धान्तिक सहमति और साहस का आवश्यकता है और इन दोनो का मुझमे अभाव है।

मै १९३४ में एक मास फिलस्तीन मे रहा था और १०४२ मे १० दिन शाति से मैने वहा गुजारे थे, परन्तु फिलस्तीन के लिए मेरा पुराना प्रेम फिर न उमडा। इसके अलावा, मेरा विश्वास है कि कोई भी जाति निश्चय ही यहूदियो जैसी अल्प-जाति अपनी समस्याओ का हल अन्य जातिया एव राष्ट्रो से अलग रहकर नही ढूँढ सकती। कितने ही ऐसे राष्ट्र है जिनका पतन अपनी सामाओ के अन्दर हो गया ?

फिलस्तीन सुन्दर देश है और बहुत से यहूदी यहा लाभकारी और सतुष्ट जीवन व्यतात कर रहे है। उनके आत्म-सतोष का कारण है रचनात्मक कार्य करने और देश मे अपनी जडे मजबूत करने की अनुभूति। वे निर्माणकार्य मे जुटे हुए है। घर, फार्म, कारखाने, सडके, अस्पताल, स्कूल आदि बनाने में सलग्न है। इसके अतिरिक्त वे राष्ट्रीय ज्ञान निर्माण करने मे लगे हुए है। उनका त्याग भी महान् है। फिलस्तान यहूदियो के खून से सना और उनके आदर्शवाद में रगा हुआ है। उनमे भी स्वार्थी, शोषक और गैर-जिम्मेदार वर्ग है, परन्तु वह अल्पसख्या मे है। प्राय उच्च लक्ष्य मनुष्यो को महान् बना देता है। फिलस्तीन मे किसी भी देखन वाले को यह आभास होगा कि वहा की सामूहिक सफलता व्यक्तिगत सफलताओ के योग की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है। यह आधिक्य सम्भवत वहा चीज है जिसे हम सभ्यता कहते है— सभ्यता का अर्थ सामूहिक आधार पर रहना है।

अर्जेन्टाइना, यूक्रेन, क्रीमिया आदि देशो मे यहूदियो को बसाने के सगठित प्रयास न्यूनाधिक मात्रा मे सफल हुए है। फिलस्तीन मे यहूदियो का बसाना आर्थिक हानि से इसलिए अधिक सफल हुआ कि ससार भर के यहूदियो ने करोडो रुपये फिलस्तीन के नव-निर्माण मे लगा दिये। यहूदियो ने फिलस्तीन पर धन और प्रेम दोनो न्यौछावर किये। फिलस्तीन की आर्थिक नीव उस सम्पत्ति द्वारा खडी की गई है जो ससार भर के यहूदियो के दान द्वारा प्राप्त हुई है। अत. फिलस्तान के यहूदियो की आर्थिक व्यवस्था के महत्त्व की अभी परीक्षा होनी है।

यहूदा आदर्श के प्रति श्रद्धा के अतिरिक्त, यूरोप के यहूदी, यदि उन्हे मौका मिले तो, शायद वे अमेरिका मे जाकर बसना चाहे। सम्भव है कुछ फिलस्तीन के यहूदी भी अमेरिका मे जाकर बसना चाहे। अमेरिका ने, जिसके निवासी, थोडे से आदिम निवासियो (Red Indians) के सिवा,

प्रवासियो और शरणार्थियो की सतान है, मुट्ठी-भर नये आगन्तुको को छोडकर अपने द्वार सबके लिए बद कर रखे है। यद्यपि अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कैनेडा रूस, अर्जन्टाइना और ब्राजाल में आजादी कम है, फिर भी ये देश यहूदी-प्रवासियो को शरण देना नही चाहते। हा, उनके लिए रह गया छोटा-सा फिलस्तीन।

हिटलर द्वारा अधिकृत यूरोप मे यहूदियो की जो दुर्दशा हुई उसका पूरा विवरण देने के लिए शब्द अपर्याप्त है। द्वितीय युद्ध के दौरान मे यूरोप के ७० लाख यहूदी मौत के घाट उतार दिये गए। ये बमो से या लडाई मे नही मरे, यद्यपि इनके कारण भी बहुत से हताहत हुए, इनकी तो जान-बूझकर निर्मम हत्या की गई। "चलो! इनको गैस चेबर में फेंक दो। इनको बिजली की भट्टी में स्वाहा कर दो। इनको आधा-भूखा रखकर काम मे खूब जुटाओ और जब ये अशक्त हो जाय तो उन्हे भी भट्टी में स्वाहा करदो।" इस तरह ५० लाख यहूदी बहुत सफाई से मार डाले गये। नाजियो ने नाज़ी-जर्मन-विरोधियो को मारने में मध्यकालीन बर्बरता से काम लिया। यहूदियो को उन्होने आधुनिक रासायनिक अस्त्रो से मारा।

तो क्या आश्चर्य, यदि यहूदी लोग हिटलर द्वारा विभाजित-यूरोप मे रहने को राजी नही है। हिटलर से पहले भी यहूदियो को यूरोप के कई देशो म अपमान जनक भेद-भाव सहन करने पडते थे। एक भाग सोवियट रूस ही ऐसा देश था जहाँ सरकार की सामाजिक नीति के कारण जातीय अत्याचार अथवा यहूदियो का विरोध सरकारी अथवा गैर-सरकारी तौर पर बिलकुल बद था। यूरोप तथा ससार के देशो मे यहूदियो को सामाजिक समानता प्राप्त नही थी और उन्हे कई असुविधायें सहनी पडती थी।

अमेरिका मे यहूदियो को पूर्ण कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक एव आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त है। उनमें असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति भी है, सफल व्यापारी भी है, अपराधी भी है और असफल व्यक्ति भी है। कानूनन अमेरिका में यहूदी और गैर यहूदी का कोई भेद नही है। परंतु व्यक्तिगत रूप में अमेरिकावासी और अमेरिका के अन्य वर्ग यह भेद-भाव करते अवश्य है। अमेरिका मे लाखो ऐसे ईसाई है जो यहूदियो के साथ व्यक्तिगत सबध रखने मे सकोच करते है या सबध रखते है। वहा ऐसे होटल भी है जा केवल ईसाइयो ही के लिए है। यह ईसाई धर्म के अनुकूल नही है।

यहूदियो से सबध के सकोच का आधार रग, रूप, सभ्यता, शिक्षा, योग्यता, शिष्टता, धन, मिलनसारी आदि नही है। जीवन के प्रत्येक स्तर पर,

ईसाई यहूदियो को अपने समान पाएगे। तो क्या केवल धर्म-भेद ने ही यह खाई पैदा कर दी है? यहूदियो के प्रति घृणा इतनी बढ गई है कि ईसाई बाइबिल मे दिये हुए यहूदी नामो को भी पसद नही करते। आज कितने ईसाई है जिनके काम अब्राहम लिंकन की तरह है ? अथवा आइजक न्यूटन की तरह या जेकब ऐस्टर की तरह अथवा बैंजमिन फ्रेंकलिन की तरह है । ईसाई लोग अब बाइबिल के नामो को यहूदी समझकर घृणा करते है और यहूदी भी स्वय ऐंग्लो-सेक्सन और फ्रासीसी नाम पसन्द करने लगे है।

हमारी सभ्यता का सबसे बडा अभिशाप आधुनिक मनुष्य का अपने वास्तविक स्वरूप मे दूर हटने की प्रवृत्ति है। यह यहूदी-विरोधी भावना बहुत-से यहूदियो की इस प्रवृत्ति की पुष्टि करती है, और वे विकृत रूप से आत्म-चेतन हो जाते है।

वे ऐसा मानने लग गए है कि किसी यहूदी को न तो सर्वोच्च न्यायालय का जज और न उग्रवादी अथवा समाचार-पत्र प्रकाशक बनना चाहिए। ईसाई भद्र लोगो द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धो के परिणाम स्वरूप यहूदी स्वय अपने आपको कलंकित समझने लगे है।

बहुत से यहूदी इस बात की आवश्यकता अनुभव करने लग गये है कि ससार में एक ऐसा भी स्थान होना चाहिए जहा सच्चे मानो में यहूदी–यहूदी बन कर रह सक। कई यहूदियो का मत है कि यहूदीपन का एक मात्र आधार धर्म है। यह धारणा हास्यास्पद है। अमेरिका के बहुत से यहूदी धर्म-निष्ठ नही है। परन्तु फिर भी उनमे यहूदीपन की भावना मौजूद है। वे सामान्य रक्त तथा संस्कृति के सम्बन्ध को अनुभव करते है अथवा यहूदी-विरोध उनके यहूदी-पन को और भी कट्टर कर देता है।

वे यहूदी भी, जो यहूदी-राष्ट्र के पृथक् निर्माण का विरोध करते है, और यहूदी-आदोलन को केवल धार्मिक मानते है, त्रस्त यूरोपीय यहूदियो के लिए किसी-न किसी सुखद-आश्रय की आवश्यकता पर जोर देते है और अमेरिका के बाद फिलस्तीन को ही वे उपयुक्त देश मानते है। कुछ साल पहले, जो अपने-आपको यहूदी-विरोधी मानते थे, आज वे भी इस आदोलन के पक्ष में है। वह इस आदोलन के राजनीतिक पहलू का विरोध भले ही करते हो। बेघर त्रस्त यहूदियो द्वारा किसी नये देश में बसने की आवश्यकता को अस्वीकार नही कर सकते।

यदि हमारी दुनिया भली होती तो यहूदियो को फिलस्तीन जाने की कोई आवश्यकता न होती और शायद बहुत थोड़े ही वहा जाना पसन्द करते।

वे जर्मनी, पोलैंड, रूमानिया आदि किसी भी देश में रह सकते थे। इस समय तो यहूदियो की प्रबल इच्छा उस यूरोप को छोड देने की है जहा हिटलर की बर्बरता का ताडव होता रहा है। यूद्धोत्तर-काल मे भी राष्ट्रीय भावना प्रबल रहेगी, इसलिए यहूदी-विरोधी भावना भी घटने की आशा नही है। सशस्त्र हिटलर को परास्त करना आसान था परतु उस विष का शमन करना कठिन है जिससे उसने एक महाद्वीप को ही नही बल्कि उससे भी अधिक व्यापक क्षेत्र को विभक्त कर दिया था। यहूदी-आदोलन की यहूदियो और गैर-यहूदियो द्वारा स्वीकृति युद्धोत्तर ससार और विश्व-शाति की कडी आलोचना है।

यदि कोई नैतिक सोचे कि विज्ञान, कला-कौशल, शिक्षा एव राजनीति को यहूदियो की कितनी बडी देन है तो उसे आश्चर्य होगा कि क्यो बहुत से देश यहूदियो को आश्रय देने को तैयार नही है? क्या यह इसलिए है कि जो देश स्वय प्रतिद्वन्द्विता पर पनपे है, अब वे स्वय प्रतिस्पर्द्धा से घबरा उठे है! शायद हिटलर की पराजय का यही कारण था कि उसने जर्मन-यहूदी वैज्ञानिको को मरवा डाला, यातनाये दी अथवा निर्वासित कर दिया। ब्रिटेन और अमेरिका की सरकारो ने उन वैज्ञानिको को शरण देकर उनसे युद्ध-कार्य मे सहायता लेकर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। फिर भी शाति-काल मे इस प्रकार जनसख्या मे वृद्धि हो जाने से बेरोजगारी फैलने की आशका बढ जाती है। जब अमेरिकावासियो को अपने देश के भविष्य मे विश्वास था तो उनके देश के दरवाजे सबके लिए खुले थे। अमेरिका आज भी पूर्णतया उन्नत नही है। और असीम सम्भावनाओ का प्रदेश है।

अरब भी यहूदी-प्रवास का विरोध कर रहे है। जब मै यरूसलम में ठहरा हुआ था, मै नित्य प्रति डा० जूडा एल० मैगनस के साथ सैर के लिए जाता और बातचीत किया करता था। डा० मैगनस यहूदी-विश्व-विद्यालय के वाइस चासलर थे। पहले वह न्यूयार्क मे कानूनी विशेषज्ञ थे और २० वर्ष से अब फिलस्तीन मे निवास करते है। इनके द्वारा मै प्रमुख अरब राजनीतिज्ञो से मिला।

डा० मैगनस एक तरह के यहूदी गाधी है। गहरी धार्मिक भावना और सामाजिक दृष्टिकोण रखने वाले उक्त डाक्टर के निरतर चिन्तनीय विषय—भगवान् और जन साधारण है। उनमे हठीलेपन और परिपक्वता का विचित्र सम्मिश्रण है। उन्हे इस बात का विश्वास रहता है कि वे ठीक है। अधिकतर यहूदी सोचते है कि वे गलत है। वास्तव में वहा के कुछ यहूदी उन्हें नापसन्द भी करते है। क्योकि वे अवश्य ही अरबो के साथ सुलह-सफाई कर लेगे और उन्हे सीमित यहूदी प्रवास के लिए राजी करने की चेष्टा करेगे।

फिलस्तीन भर मे मैगनस ही सभवत एक मात्र ऐसा प्रमुख यहूदी है जिसका अरबो से मेल-जोल है। यहूदी और अरबो की दुनिया अलग-अलग है। उनमे परस्पर घृणा और द्वेष बहुत है। द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने से पहले १६३६से १९३९ तक फिलस्तीन गृह-युद्ध मे फसा था। अरब यहूदियो पर छिपकर छापा मारते थे और दोनो पक्षो के आदमी हताहत होते थे। मैगनस सहयोग और रियायतो द्वारा इस स्थिति मे सुधार करना चाहते है किंतु उनके विरोधी कहते है कि देश मे पहले वे यहूदी बहुमत पैदा कर ले और उसके बाद ही अरबो से बात-चीत चलायगे। उनका विचार था कि रियायते देना कमजोरी समझा जायगा और परिणाम कुछ न निकलेगा।

डा० मैगनस के साथ मै औनी अब्दुल हादी से मिला। यरूशलम के मुफ्ती हज-अमीन-अलहुसैनी के अग्रेजो की निगरानी से हिटलर को मिलने के लिए भाग जाने पर वह फिलस्तीन के सबसे प्रमुख अरब होगये। मै डा०खालिदी तथा अन्य अरब नेताओ से भी मिला। बाद मे इन सबसे मै पुन एक अरब सज्जन के घर पर भी मिला।

इन अरब राजनीतिज्ञो ने स्वीकार किया कि फिलस्तीन के गावो मे प्रवासी अरब रोमेल के स्वागत की प्रतीक्षा मे थे। उनका कहना था कि यहूदियो ने फिलस्तीन को किसी प्रकार भी समृद्ध नही बनाया, बल्कि उन्होने फिलस्तीन मे केवल अपने आपको ही अमीर बनाया। और वे सब प्रवास के लिए यहूदियो के यरूशलम मे आने का, उनके हाथ जमीन बेचने अथवा फिलस्तीन मे यहूदी राज्य की स्थापना का घोर विरोध कर रहे थे। उन्होने यह भी कहा कि यदि यहूदी अपना बहुमत बढाकर वहाँ अपना राज्य कायम करने का विचार छोड द, तो वे यहूदियो के फिलस्तीन मे प्रवास के लिए आने पर इतनी आपत्ति नही करेगे।

अरब अपने विरोध मे दृढ और अडिग है। फिलस्तीन के अरबो का यहूदी व्यवसाय से लाभ ही हुआ है। आप किसी अरब ग्राम मे जाय तो आपको पता लगेगा कि अपनी भूमि यहूदियो को अत्यधिक मूल्य पर बेचने के कारण अरब कितने समृद्धिशाली होगए है। यहूदियो के ससर्ग से अरबो का जीवन, स्वास्थ्य और शिक्षा का मान भी काफी ऊचा हो गया है। यदि अरबो को कोई उत्तेजित न करे तो, (यद्यपि वे इस समय यहूदियो के आने पर खीझते है) सभव है कुछ काल बाद वे अपना विरोध स्वय ही समाप्त कर दे। विरोध करने की प्रेरणा अरबो को फिलस्तीन के बाहर से मिलती है।

मध्य-पूर्व के अरबो में आज राष्ट्रीयता की लहर जोर पकड रही है।

राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद की उपज है । यहूदी आदोलन का ब्रिटिश साम्राज्य के साथ गठ-बन्धन होने के कारण अरबो मे राष्ट्रीय भावना और भी जोर पकड गई है । ईराक, सीरिया, लेबेनान, ट्रासजोर्डेनिया, साऊदा अरब, मिस्र, फिलस्तीन और उत्तरी अफ्रीका के अरब नेता अरब एकता का सुखद स्वप्न देख रहे है । उनकी हार्दिक इच्छा एक ऐसे सघ की स्थापना की है जो अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे शक्ति और प्रभाव रखता हो । यद्यपि अरब एक ही जाति के है, और अधिकतर उनमे इस्लाम धर्मानुयायी है (थोडे से अरब ईसाई भी है) फिर भी आज तक उनमे एकता का अभाव रहा है । उनमे एकता न होने के कई कारण है । अत वह परस्पर मेल-मिलाप के आधार की खोज मे है । यह आधार अब उन्हे यहूदी विरोधी आन्दोलन मे मिल गया है । हिटलर ने यहूदियो को आग में झोककर जर्मन राष्ट्रीयता की ज्वाला प्रज्वलित की। अब यहूदियो की महत्त्वाकाक्षाओ के खडहर पर अरब अपने साम्राज्य का निर्माण करना चाहते है ।

मध्य-पूर्व स्थित अग्रेज अधिकारी पहले नीति निर्धारित कर लेते है और बाद मे ब्रिटिश सरकार की अनुमति लेते है । कई बार इन दोनो की नीतियो मे परस्पर विरोध रहता है । उदाहरण के लिए फिलस्तीन मे अग्रेजी सरकार का एक विभाग अरबो की शस्त्रो से सहायता करता रहा और दूसरा विभाग यहूदियो के पक्ष मे था ।

साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि अग्रेजी सरकार अरबो की ही पीठ ठोकती रही है और उन्ही की सहायता से अरब लीग की स्थापना हुई है । शायद उसने ऐसा यह समझ कर किया हो कि अरबो का राष्ट्रीयता की ओर झुकाव अब रोके न रुकेगा । या फिर यह विचार रहा हो कि यदि अरबो की सहायता अग्रेजो ने न की तो रूस, अमेरिका अथवा फ्रास उनकी मदद करेंगे । इसके अलावा अरबो ने हिंसात्मक कार्यवाही की धमकी भी दी थी और अग्रेज शकित हो उठे थे। इग्लैड भारत के ९ करोड २० लाख मुसलमानो की भावनाओ का भी खयाल रखता है ।

अग्रेजो का सहानुभूति पूर्ण नही तो कम-से-कम अनिश्चित रुख देखकर तथा बाहर के अरबो से उत्तेजना पाकर पवित्र भूमि फिलस्तीन के अरबो की यहूदी-विरोधी आग भभक उठा । गृह-युद्ध का ज्वालामुखी फिलस्तीन की भूमि के नीचे सदा धधकता रहता है, और कई बार फूटकर ऊपर भी आ जाता है । यहूदी भी वीर लडाके है, और जुडया और जैलिली में उन्होने अरबो को कई बार लडाई मे हराया भी है । टेलहाई और क-फार गिलिडी के प्रदेश मे मैने स्वय यहूदी बस्तियो की रक्षा मे भाग लिया है। रात को पहरा देते हुए हम जोर्डन नदी

के बहने की आवाज सुन सकते थे, जो डान प्रदेश मे तीव्र गति के साथ बहती हुई आती है। तब से ज्यो-ज्यो यहूदियो का आतक और शस्त्रास्त्र बढे है,त्यो-त्यो फिलस्तीन मे झगडे भी बढे है।

जिन यहूदियो से मैने १९४२ मे बातचीत की, फिलस्तीन के सम्बन्ध मे उनकी राय थी कि अपने वचनो को कार्यान्वित करने के सिवा ब्रिटेन के पास कोई और चारा ही नही है। तब तक अपने मिशन मे अडिग रहने का उनका विचार था। यदि इन दोनो जातियों को ट्रेड यूनियनो, व्यापारी सघो द्वारा और निकट सपर्क मे लाने का प्रयत्न किया जाता या ये दोनो जातिया मिल कर साम्राज्यवाद ही का मुकाबला करतीतो १९२० मे भी उन दोनो के बीच सुलह-सफाई-कराई जा सकती थी। परन्तु यह नही होना था। जैसे मजदूर दल के यहूदी सदस्य और यहूदी एजेसी के अधिकारी मोशेशरतक ने यरूशलम में मुझे १९३४ मे बताया था—"हम पहले राष्ट्रवादी, और पीछे समाजवादी है।" यहूदी उतने हा उग्र राष्ट्रवादी थे जितने कि अरब। उनके बीच की खाई को पाटना मैगनस के लिए भी सभव न था। और अब तो इस कार्य मे अत्य-धिक विलब हो गया है।

फिलस्तीन मे मेरे शाति के १० दिन बडी अशाति से गुजरे। सभव है कि फिलस्तीन यहूदी-बहुमत का राष्ट्र बन जाने पर भी यहूदियो की समस्या का हल न निकाले। फिलस्तीन का कल्याण तो इसके यहूदी, ईसाई, और मुस्लिम सभी सप्रदायो का सम्मिलित राष्ट्र बन जाने मे है। यह लक्ष्य दुस्साध्यहै। इस आदर्श की प्राप्ति तो बडे और सपन्न राष्ट्रो को भी नही हुई है।

खैर! फिलस्तान १९४२ मे हमले से तो बच गया था। जब १९४२ मे मै फिलस्तीन से काहिरा पहुँचा, तो वहा का वातावरण बडा उत्तेजित था। जनरल रोमेल का आतक वहां अभी छाया हुआ था। समस्त मित्र राष्ट्र चौकन्ने थे और विजय अनिश्चित थी। अग्रेज, पोलैड निवासियो की सहायता से, शत्रु से जूझ रहे थे। परतु उन्हे और सहायता की आवश्यकता थी। "सन् १९४२ की गरमियो मे जब मार्शल रोमेल ने लीबिया के मोर्चे पर ब्रिटेन की टैक सेना को भारी क्षति पहुँचाई थी, तो जनरल मारशल (अमेरिकन चीफ-आव-स्टाफ) ने फौरन मध्यम श्रेणी के सब टैक शिक्षा-सबधी आवश्यकताओ की भी परवाह न कर के मिस्र के मोर्चे पर भिजवा दिये। इस आपत्ति का सामना करने का यही एकमात्र साधन था।

"हमारा एक सशस्त्र डिवीजन शिक्षा के लिए उत्तरी आयरलैड जाने को बदरगाह मे पडा हुआ था। इस डिवीजन के हथियार भी ले लिये

गए और उन्हे दूसरे टैंक न मिलने तक वही रोक लिया गया। सकट पूर्ण घडी टल गई। अब हमे पता लगा कि मार्शल का अनुमान कितना ठीक था। हिटलर का इरादा मिस्र पर अधिकार करके निकट पूर्व मे घुसने का था। यदि वह सफल होजाता तो युद्ध का चित्र ही बदल जाता।"

ये शब्द युद्ध-मत्री स्टिमसन ने अपने विदाई भाषण मे १९ सितबर १९४५ को कहे थे।

आल आलमीन और स्वेज नहर के बीच का छोटा-सा रेतीला प्रदेश रोमेल न जीत सका। फलस्वरूप फिलस्तीन शत्रु-अधिकृत प्रदेश बनने से बच गया और हिटलर की फौजे आगे बढकर हिंदुस्तान में जापानी फौजो से मेल करने से रोक दी गई। यदि ऐसा होजाता तो धुरी राष्ट्र या तो युद्ध मे अनिश्चितता उत्पन्न करने मे सफल होते या युद्ध को ७ साल तक घसीटकर ले जाते।

जिस दिन रोमेल ब्रिटिश टैंको को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा था, उस दिन मै काहिरा में ही था। उस शाम प्रेस सम्मेलन मे हर एक के चेहरे पर व्याकुलता झलक रही थी "कैसी भयकर स्थिति है," एक अग्रेज पत्रकार ने कहा, परतु मार्शल ने रोमेल को पीट ही दिया।

वायुयान द्वारा मै न्यूयार्क मे ५ अगस्त को पहुचा। मिस्र का युद्ध अभी जोरो पर था। भारत मे अशाति की लहर दौड रही थी। गाधी जी और नेहरू राष्ट्र-व्यापा सविनय अवज्ञा आदोलन का डका बजाने ही वाले थे। उन्होने ८ अगस्त को आदोलन शुरू कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हे तुरत कैद कर लिया। फलत ५ अगस्त के दिन प्रत्येक की आख भारत पर लगी थी। ला-गार्डिया हवाई अड्डे पर बहुत से सवाददाता मुझे मिले और भारतीय सकट के विषय मे मुझ से पूछने लगे। दूसरे रोज प्रात काल 'न्यूयार्क टाइम्ज' ने तीन कालमी लबा मेरा फोटो छापा जिसका शीर्षक था—"गाधी जी के साथ भोज।" उतना ही स्थान उसने आलोचना को दिया। तत्पश्चात् मेरा फोटो और मेरे वक्तव्य का साराश अमेरिका के अनेक अखबारो में छपा। यदि मै फिलस्तीन मे न रुक जाता और भारत की स्थिति बिगडने से पहले १० दिन आगे ही घर पहुँच जाता तो अमेरिका मे मेरी वापिसी की सूचना केवल इस प्रकार छपती—"हवाई जहाज से जो सज्जन उतरे, उनमें लुई फ़िशर भी था।"

भाग—२

युद्ध द्वारा शांति की ओर

: १३ :

रूजवेल्ट, गांधी और चांग काई-शेक

भारत की स्थिति मे चिंतित होकर जनरलिस्मो चाग काई-शेक ने २५ जुलाई १९४२ को प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट के पास १५०० शब्दो का एक गुप्त तार भेजा। यह तार रूजवेल्ट को २९ जुलाई को मिला और उन्होने उसका उत्तर लगभग ३५० शब्दो म ८ अगस्त को दिया। ११ अगस्त को चाग ने एक छोटा-सा सदेश फिर भेजा, जिसका उत्तर रूजवेल्ट ने अगले ही दिन दिया।

ये तार, जिनसे पता चलता है कि दो शासन-सस्थाओ के अध्यक्ष किस प्रकार एक-दूसरे से पत्र-व्यवहार करते है, न तो कभी छपे न अमेरिकन—चीनी सरकारो के कुछ उच्च अधिकारियो को छोडकर किसी को इनके सम्बन्ध मे कोई जानकारी ही हुई।

चाग ने लिखा था—"भारत का स्थिति बडी ही गम्भीर और सकटपूर्ण हो गई है। सच पूछिये तो यही वह सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके आधार पर सयुक्त राष्ट्रो के युद्ध—विशेषत पूरब के युद्ध—का परिणाम आका जा सकता है।" चाग चाहते थे कि रूजवेल्ट इस सम्बन्ध मे कुछ करे इसीलिए उन्होने लिखा—"इस युद्ध मे बल के विरुद्ध न्याय का जो सघर्ष हो रहा है उसका नेतृत्व आपके देश के हाथो मे है और आप द्वारा प्रकट किये गये मत पर ब्रिटेन मे सदा ही गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। इसके अलावा, भारतीय जनता इस बात की बहुत दिनो से आशा करती रही है कि आप भी इस युद्ध मे सक्रिय भाग लेंगे और न्याय तथा समानाधिकार का पक्ष ग्रहण करेंगे।"

चाग को भारत मे उत्पात की आशका थी। वह जानते थे कि गाधी और नेहरू सारे भारतवर्ष मे सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ करने वाले है। यही कारण था कि उन्होने प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट को लिखा कि "गाधी और नेहरू को अपना योजना पर पुन· विचार करने के लिए प्रेरित करने का एक मात्र उपाय

यह है कि सयुक्त राष्ट्र—विशेषत अमेरिका, जिसे वे श्लाघा की दृष्टि से देखते हैं—आगे बढकर बीच बचाव करे और उनके प्रति सहानुभूनि प्रकट करते हुए उन्हे सान्त्वना दे। इससे भारतीयो मे अपनी आनुपातिक महत्ता के प्रति पुन जागरूकता उत्पन्न हो जायगी और उन्हे इस बात का दृढतर विश्वास हो जायगा कि इस ससार से न्याय अभी मिटा नही है। स्थिति के एक बार सुधर जाने पर उसे स्थायी बनाना असम्भव नही होगा और भारतवासी, जो कि अमेरिका के प्रति उसके उपकारो के लिए कृतज्ञ होगे, स्वेच्छा से युद्ध मे भाग लेगे। यदि ऐसा नही हुआ तो सयुक्त राष्ट्र समूह के अन्य-देशो के प्रति भी निराश भारतीय जनता की वही भावना होगी जो ब्रिटेन के प्रति है और ऐसी स्थिति का उत्पन्न होना ससार के लिए सबसे बडी दु खान्तक दुर्घटना होगी, जिसमे अकेले ब्रिटेन का ही नही, बल्कि औरो का भी नुकसान होगा।"

"जहा तक ब्रिटेन का सवाल है," चाग ने लिखा, "वह एक महान् देश है और पिछले कुछ वर्षों से वह अपने उपनिवेशो मे प्रगतिशील नीति का अनुकरण करता रहा है। इधर, दूसरी ओर, भारत एक निर्बल देश है और आजकल जो अभूतपूर्व विस्तृत युद्ध हो रहा है उसके कारण स्वभावत किसी समस्या को साधारण युक्ति से हल करना सम्भव नही है।"

चाग काई-शेक ने प्रेजिडेट रूजवेल्ट को चेतावनी दी कि सकट का सामना करने की ब्रिटिश चेष्टाएँ दुधारी तलवार के समान होगी। "यदि इन युक्तियो द्वारा सत्याग्रह-आदोलन का दमन करने मे सफलता भी मिली तब भी", चाग ने लिखा, "सयुक्त राष्ट्रो को इतनी आत्मिक क्षति पहुँचेगी जितनी किसी युद्ध को हारने से भी नही पहुँच सकती। ऐसी स्थिति ब्रिटिश-हितो के लिए विशेष रूप से घातक सिद्ध होगी।"

"इसलिए, भारत को पूर्ण स्वाधीनता दे देना ही ब्रिटेन के लिए सबसे अधिक बुद्धिमानी और प्रगतिशीलता का रास्ता होगा," चाग काई-शेक ने सलाह देते हुए लिखा। उन्होने यह भी लिखा—"सयुक्त राष्ट्रो के युद्ध-उद्देश्यो और समान हितो का दृष्टि मे रखते हुए मेरा चुप बैठे रहना असम्भव है।" चीन की पुरानी कहावत है—'अच्छी दवा, चाहे वह कडवी ही क्यो न हो, रोग को दूर कर देती है'—सहृदयतापूर्ण सलाह, चाहे वह कटु ही क्यो न हो, हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। मुझे हार्दिक विश्वास है कि मेरी इस पक्षपात-रहित सलाह को, चाहे वह कितनी ही कडवी क्यो न हो, ब्रिटेन उदारतापूर्वक और दृढता के साथ स्वीकार करेगा।"

अन्त में चाग काई-शेक ने लिखा—"मै अपने इस विचार को बरा-

बर दुहराना पसद करूँगा। मेरी एकमात्र भावना यही है कि भारतीय स्थिति के सम्बन्ध मे शुद्ध नीति का अनुकरण करने मे और उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होने मे सयुक्त राष्ट्रो को विलम्ब नही करना चाहिए ताकि उसके कारण हमारी युद्ध स्थिति को कोई गम्भीर आघात न पहुँचे। मुझे पूर्ण आशा है कि इस सम्बध मे आप अपने स्वस्थ विचारो से अवगत करेंगे।"

रूजवेल्ट ने अपने उत्तर मे लिखा—"भारतीय स्थिति के सबध मे आपने जो सदेश भेजा है उस पर मै अधिक-से-अधिक गम्भीरता के साथ विचार करता रहा हूँ। मै आपके इस विचार से पूर्णत सहमत हूँ कि समान विजय के लिए भारतीय स्थिति को स्थिर बनाना चाहिए और सम्मिलित प्रयत्न मे भारत का भी सहयोग प्राप्त करना चाहिए।"

"किन्तु" प्रेज़िडेन्ट रूजवेल्ट ने अपनी कठिनाइयो का उल्लेख करते हुए लिखा—"मेरा खयाल है कि आप स्वय इस बात को समझते होगे कि इस सुझाव में, कि मै ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता दोनो ही को 'एक न्यायोचित और सतोषजनक हल' निकालने की सलाह दूँ, कितनी कठिनाइयाँ है। ब्रिटिश सरकार का विश्वास है कि क्रिप्स-योजना मे भारत के लिए जिन सुधारो की व्यवस्था की गई थी, वे उचित थी। साथ-ही-साथ, उनका यह भी खयाल है कि इस अवसर पर किसी दूसरे देश के सुझाव उपस्थित करने से भारत की वर्तमान एकमात्र शासन-सत्ता के अधिकार को आघात पहुँचेगा और उसके फलस्वरूप वही सकट आ उपस्थित होगा जिसके दूर होने की आपको और मुझे दोनो को अभी आशा है।"

अन्त में प्रेज़िडेन्ट रूजवेल्ट ने लिखा—"वर्त्तमान स्थिति में मै अपने और आपके लिए यही अच्छा समझता हूँ कि हम अभी उस काम को करें जिसे करने के लिए आपने मझसे कहा है।"

इस तार के वाशिंगटन से रवाना होने के अगले ही दिन गाधी, नेहरू, काग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आजाद और उनके हजारो अनुयायी भारत में गिरफ्तार किये जाकर जेलो मे डाल दिये गए। बाद मे भारत के अग्रेज प्रधान न्यायाधीश सर मारिस ग्वायर ने इस सम्बध में अपना निर्णय देते हुए कहा कि भारत के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओ को गैर-कानूनी ढग से एक तथ्यहीन कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया है। इस पर वाइसराय ने अगस्त १९४२ की गिरफ्तारियो को कानूनी ठहराने के लिए २८ सितम्बर १९४३ को एक नया आर्डिनैंस घोषित किया।

गिरफ्तारियो के कारण सारे भारतवर्ष में क्रोध की एक लहर-सा दौड़

गई और सविनय अवज्ञा आदोलन बडी तीव्र-गति से बढा। साथ-ही-साथ इस आदोलन ने फौरन ही हिसात्मक रूप भी ग्रहण कर लिया।

गिरफ्तारियो के दो दिन बाद चाग काई-शेक ने फिर प्रेजिडेट रूजवेल्ट को तार दिया। उन्होने लिखा—"मुझे विश्वास है कि मेरी तरह आपको भी भारतीय काग्रेस की कार्यकारिणा के सदस्यो की गिरफ्तारी के कारण—जिनमे गाधी और नेहरू भी शामिल है–चिन्ता उत्पन्न हुई होगी।" यद्यपि रूजवेल्ट भारत के मामले मे हस्तक्षेप करने से हिचक रहे थे, फिर भी चाग काई-शेक ने उन पर फिर एक बार इसी बात के लिए जोर डाला। उन्होने लिखा—'चाहे कुछ भी हो, सयुक्त राष्ट्रो को अपने कार्यो से सारे ससार के सामने यह बात सिद्ध कर देनी चाहिए कि वे सभी देशो को समान रूप से स्वतत्रता और न्याय दिलाने के अपने सिद्धान्तो का ईमानदारी से पालन करते है। मै आपसे हार्दिक अपील करता हू कि अटलाटिक अधिकार-पत्र के रचयिता की हैसियत से आप भारत और सारे ससार के सामने आई हुई समस्या को हल करने के लिए कुछ कारगर युक्तिया करे। आपकी नीति से हम सबका, जो आक्रमणकारियो के पाशविक बल का इतने दिनो से और साहस के साथ सामना करते आये है, पथ-प्रदर्शन होगा। आशा है आप शीघ्र ही उत्तर देगे।"

इसके बाद घटनाए बडे तीव्र वेग से घटी। चुगकिंग से सन्देश चलने के अगले ही दिन रूजवेल्ट ने चाग काई-शेक को निम्नलिखित उत्तर भेजा—"मुझे शायद यह बात दुहराने की आवश्यकता नही कि अपनी दीर्घकालीन नीति के अनुसार और विशेष रूप से अटलाटिक अधिकार-पत्र मे लिखी गई धाराओ के फलस्वरूप मेरी सरकार को उन सभी देशो की स्वतत्रता की चिन्ता है, जो स्वतत्र होने के अभिलाषी है। अमेरिकन सरकार के प्रवक्ता इस नीति का समर्थन बराबर करते आये है। फिलीपाइन जैसे देशो मे तो इस नीति को व्यावहारिक रूप दे दिया गया है।

"यह स्पष्ट है", प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने आगे चलकर लिखा—"कि इस समय ब्रिटिश सरकार और श्री गाधी तथा उनके अनुयायियो के बीच जो आतरिक झगडा चल रहा है, उसमे क्रियात्मक रूप से भाग न लेते हुए भी आपने और मैंने गम्भीर मतभेद प्रगट करने और झगडे को शान्ति पूर्वक तै कराने की जो चेष्टाए की है वे अब तक विफल रही है।"

"हमे इस मामले मे भारत की सहायता चाहिए", रूजवेल्ट ने लिखा, "और मैं चाहता हूं कि श्री गाधी इस तात्कालिक आवश्यकता को और भी स्पष्ट रूप से समझे और यह ध्यान मे रखे कि भारतवर्ष के लिए जो घटना सबसे

बुरी हो सकती है, वह है धुरी राष्ट्रो की विजय।"

"आज मैने 'प्रशान्त कौसिल' मे, जिसमे श्री सुग (चीन के विदेश-मन्त्री डाक्टर टी० वी० सुग) भी है, कहा था कि मुझे और आपको यह बात ब्रिटिश सरकार और श्री गाधी तथा उनके अनुयायियो को स्पष्ट रूप से बता देनी चाहिए कि हमे अभी अग्रेजो या भारतीय कांग्रेस दल पर दबाव डालने का कोई नैतिक अधिकार नही है, किन्तु हम दोनो के मित्र है और यदि वे हमारी सहायता चाहेगे तो हम सहर्ष देगे।"

प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने अपने सदेश के अन्त मे लिखा— "मै समझता हू कि वर्तमान स्थिति मे मेरे और आपके लिए भारत को सबसे अच्छी सहायता देने का एक मात्र तरीका यही है कि कोई खुली अपील या घोषणा न करके अभी हम उसे केवल इतना बता दे कि मित्र की हैसियत से हम सदा उसकी सहायता की अपील पर ध्यान देने को तैयार है, बशर्ते कि यह अपील दोनो पक्षो की ओर से आये।"

रूजवेल्ट इस बात को पहले से ही जानते थे कि ब्रिटिश सरकार अमेरिका या किसी दूसरे देश से सहायता की अपील कभी नही करेगी। इसलिए कहा जा सकता है कि रूजवेल्ट ने भारतीय मामले में हस्तक्षेप करने की चाग काई-शेक की आवश्यक अपील ठुकरा दी। वह जानते थे कि भारतीय समस्या के कारण विजय प्राप्त करने मे देर लगेगी। किन्तु उन्होने एक कूटनीतिज्ञ की भाँति अपने परम्परागत दिखावे का पालन किया और कहा कि मै हस्तक्षेप उसी समय करूँगा जब दोनो दल मुझसे ऐसा करने के लिए कहेगे। दूसरे शब्दो म यो कहिये कि उन्होने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया।

प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट अपने इस कार्य द्वारा उपनिवेशो पर साम्राज्यवादी देशो के प्राइवेट मालिकाना अधिकार का समर्थन कर रहे थे। एक उपनिवेश मे आग धधक रही थी और उससे बाहर वालो को भी खतरा था, किन्तु उपनिवेश के स्वामी ने आग बुझानेवाले को अन्दर आने की अनुमति नही दी, इसलिए वह चुपचाप वापस लौट गया।

जब साम्राज्यवादी स्वामी अपने हठ पर अड जाता है और सयुक्त राष्ट्र अपने को इस मामले से अलग रखते है तो स्वतत्रता की आकाक्षा रखने वाले उपनिवेश के सामने हिंसा के प्रयोग के अतिरिक्त और रास्ता ही कौन-सा रह जाता है? जुलाई-अगस्त १९४२ मे रूजवेल्ट और चाग काई-शेक मे जो पत्र-व्यवहार हुआ उसका भारत और एशिया की जनता को कुछ पता नही चला। फिर भी वे जानते थे कि कोई भी बडा राष्ट्र एशिया के स्वतत्रता चाहने वाले

देशो की सहायता करने को तैयार नही। यह बात उनके हृदय मे अच्छी तरह से बैठ गई थी।

जब राजनीति का सचालन वर्तमान की सुविधाओ को दृष्टि में रखकर किया जाता है तो प्रायः भविष्य के लिए आपदाएँ उठ खडी होती है। सन् १९४२ की समस्याओ के हल न होने से सन् १९४५ और ४६ की समस्याएँ और भी गम्भीर बन गईं।

समनर वेल्स ने, जो सन् १९४२ में विदेश-उपमत्री के पद पर होने के कारण प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट के विचारो से परिचित थे, "न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून" के ८ अगस्त १९४५ के अक में बताया–"प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट को इस बात का विश्वास था कि भारत को स्वतत्रता मिल जाने से दूर पूरब की नियत्रित उन्नति मे बडी सहायता मिल सकती है। उन्हे यह भी विश्वास था कि इसी प्रकार की स्वतन्त्र युक्तियो से और भूल करते हुए भी चेष्टा करते रहने की पूर्वीय कार्य प्रणाली द्वारा अन्त में भारतवासी अपने लिए उस स्वराज्य की स्थापना कर लेंगे जो उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओ और विचार-धारा के अनुकूल होगा। किंतु चर्चिल ने रूजवेल्ट के इस विचार का विरोध किया। यद्यपि प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट के मैत्री-पूर्ण सुझाव, युद्ध की बडी ही सकटपूर्ण स्थिति में उपस्थित किये गये थे, फिर भी वे न केवल निष्फल रहे बल्कि ब्रिटेन के प्रधान मत्री ने उनके प्रति बडा क्रोध भी प्रकट किया।"

चर्चिल के विचारो को बदलना आसान काम नही था। रूजवेल्ट ने उनके साथ कई बार भारत की समस्याओ पर विचार करना चाहा, किंतु वह इस बात को अधिक आगे नही बढ़ा सके। इसके विपरीत उनके ऐसा करने से चर्चिल के हृदय में रोष की भावना उत्पन्न हुई, जिसे चर्चिल ठीक से छिपा भी नही सके।

प्रधान मत्री नेविल चैम्बरलेन के तुष्टीकरण के समर्थक होने का मुख्य कारण यह था कि उन्हे इस बात का भय था कि युद्ध के फलस्वरूप जो अनि-वार्य सामाजिक परिवर्तन होगे उनसे धन, विशेषाधिकार और जाति की चिंता करने वाला ब्रिटेन नष्ट होजायगा। किंतु चर्चिल को विश्वास था कि इग्लैण्ड युद्ध कर सकता है, उसे जीत भी सकता है और फिर भी वही पुराना-का-पुराना इग्लैण्ड बना रह सकता है। चर्चिल के पुराने इग्लण्ड मे भारत भी शामिल था और उनसे भारत को छोड देने के लिए कहने का मतलब यह था कि उनसे उसी वस्तु को छोड देने के लिए कहा जाय जिसके लिए वह युद्ध कर रहे थे।

किंतु अमेरिका के लिए, जो सयुक्त राष्ट्रों में सबसे शक्तिशाली था, चर्चिल

की बात को स्वीकार करना या भारत सम्बधी कार्रवाई मे विलम्ब करना ऐसा ही था जैसे भारत पर फेंके गए एक देर से फटने वाले बम को अहानिकर बनाए बिना ही उसके विस्फोट को स्थगित कर देना । इसका मतलब यह था कि युद्धोत्तर साम्राज्यवाद की सम्पूर्ण दु खद समस्या युद्ध के बाद शान्ति के रचयिताओ के हाथो मे चली जाती । इस समस्या को लडाई के दिनो मे ही हल करना अधिक सुगम होता जब कि अमेरिका और दूसरे देशो का जाग्रत जनमन विजय को शीघ्र प्राप्त करने के प्रयत्न मे सहायता देता और साथ-ही साथ इस भूमण्डल को औपनिवेशिक शासन के रोग से मुक्त कर देता ।

एक अमेरिकन दूतावास के प्रधान अधिकारी ने १२ सितम्बर १९४२ के अपने एक हस्तलिखित पत्र मे ठीक इसके अनुकूल मत प्रकट किया । उन्होने सक्षेप मे मुझे लिखा—"मै यह स्वीकार करता हूँ कि मेरा मस्तिष्क केवल वर्तमान की ही बाते सोचता है और ये बातें मुख्यत इस सम्बध में है कि हम किस प्रकार अपने शत्रुओ को अधिक-से-अधिक सख्या मे मार सकते है और किस प्रकार कम-से-कम समय मे उनका अधिक-से-अधिक साजो-सामान नष्ट कर सकते है । यही कारण है कि मुझे अतीत या भविष्य पर विचार करने का समय नही मिलता और न मुझे उन लोगो को रोके रखने का ही धैर्य है जो हमारे लिए आगे चलकर तो बहुमूल्य और रचनात्मक सिद्ध हो सकते है, किंतु जिनसे इस समय युद्ध की प्रगति में बाधा पडने की आशका है । मेरा यह सीमित दृष्टि-कोण गाधी और उनके कार्यों पर लागू होता है या नही, यह तो मै नही जानता, किंतु इतना मै अवश्य जानता हूँ कि हम सारे काम नही कर सकते, इसीलिए मै चाहा करता हूँ कि हम अपना सारा ध्यान उस शक्ति के प्रयोग मे लगावें जिससे हमें शीघ्र-से-शीघ्र विजय मिल सकती है । अतीत की बुराइयो को दूर करने और भविष्य को उत्तम बनाने के काम में हम अपनी बुद्धि बाद में लगा सकते है । क्या मेरी यह बात आपको बुरी मालूम होती है ?

यह बात मुझे बुरी नही लगी, किंतु मै उससे स्तम्भित अवश्य हुआ; कारण, यह विचार-धारा वाशिंगटन के एक बडे दल की विचार-धारा थी, जिसके नेता हैरी हॉपकिंस थे । इस दल का मुख्य सिद्धान्त था—पहले लडाई को जीतो और शान्ति की चिन्ता न करो । किन्तु घबराहट की बात तो यह है कि शाति रुकी नही । शान्ति का निर्माण न करते हुए भी हमने उसका निर्माण कर दिया । हमारे न करने पर भी दूसरो ने उसका निर्माण कर दिया ।

आजकल की कठिनाइयो का कारण यह है कि युद्ध के समय, जब बल और प्रभाव पराकाष्ठा पर था, हमने स्थिति को अपने कब्जे में नही किया ।

३० अगस्त १९४४ को जब मेरी वेन्डेल विलकी से—उनके अस्पताल जाने मे ठीक एक सप्ताह पहले—मुलाकात हुई (बाद मे उसी अस्पताल मे उनकी मृत्यु हो गई) तो उन्होंने मुझसे कहा—"सन् १९४३ के वसन्त-काल में ही हमने शान्ति को खोना आरम्भ कर दिया था। जब मै सारे ससार का पर्यटन कर सन् १९४२ मे लौटा तो प्रेजिडन्ट रूजवेल्ट से मिला और उन पर हवाई जहाज से मास्को जाकर स्टालिन से मिलने के लिए जोर डाला। मैने उनसे कहा कि स्टालिन रूस से बाहर नही निकलेगे किंतु आप अमेरिका के प्रेजिडेन्ट होते हुए भी अगर उनसे मिलने जाय तो आपकी मर्यादा को कोई आघात नही पहुँचेगा क्योकि हम बलवान है और बलवानो को ऐसे काम करने का गुंजायश रहती है। वही समय था जबकि हम रूस के शक्तिशाली और शान्ति के लिए वहमी बनने से पहले स्थिति मे परिवर्तन कर लेते। बलवान अक्सर वहमी होते हैं।"

विलकी ने एक क्षण के लिए खिडकी से बाहर देखा। न्यूयार्क का बन्दरगाह, पूरा-पूरा दिखाई दे रहा था। फिर वह मेरी ओर घूमे और पिछली बात का सिलसिला पकडते हुए बोले—"मैने तो गार्डनर काउलिज से जो मेरे साथ पर्यटन पर गये थे और सरकार की ओर से कार्य कर रहे थे, एक स्मरण-पत्र भी बनवाया जिसमे प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट के स्टालिन से मिलने जाने के मुख्य उद्देश्य लिखे गये। मैने एक लिखित स्मरण-पत्र उपस्थित करना चाहा था क्योकि जब १९४१ मे मै इग्लैण्ड से लौटा था तब भी मैने प्रेजिडेन्ट से ऐसा ही प्रस्ताव किया था और कहा था कि आप जाकर चर्चिल से मिलिये और शांति की रूपरेखा निश्चित कीजिये। उस समय भी भारत, चीन और अनेक दूसरे देशो के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य किया जा सकता था। किंतु अब ।" कहते कहते विलकी एकाएक रुक गये। शान्ति हाथ से निकलती जा रही थी क्योकि हमने पहले के सुअवसरो को ठुकरा दिया था।

किसी भी राष्ट्र के लिए यह उचित नही कि वह अपनी शक्ति-वृद्धि के लिए अपने अधिकार की बन्दूक किसी दूसरे देश के कन्धे पर रखकर चलावे। अच्छाई इसी में है कि वह अपनी शक्ति को स्वतन्त्रता और भद्र मानवी आचार की नीव पर खडी की जाने वाली शान्ति की स्थापना में लगावे।

चूंकि समनर वेल्स के कथनानुसार प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट को इस बात का विश्वास था कि भारत के स्वतन्त्र हो जाने से दूर पूरब मे नियन्त्रित उन्नति में सहायता मिलेगी, इसलिए उन्हे चाहिए था कि वह भारतीय समस्या को हल करने पर जोर देते। यदि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्त को ही शान्ति-

स्थापना की पहली आधार-शिला मान लिया जाता तो रूसी साम्राज्यवाद की गति को रोकना और साथ-ही-साथ अमेरिकिन साम्राज्यवाद की ओर भी लोगो के झुकाव को रोकना अधिक सरल हो जाता।

चर्चिल से तीन फुट की दूरी पर बैठने से उनका क्रोध बडा कष्टदायक मालम होता था। भविष्य का रोष तो और भी अधिक कष्टकर होगा।

चर्चिल ने चाग काई शेक और रूज़वेल्ट दोनो को धता बताई। चाग काई-शेक ने सीधे ब्रिटिश सरकार से भारत के सम्बन्ध मे कुछ करने के लिए अपील का। इसके उत्तर मे चर्चिल की सरकार ने कहा कि अगर चीन भारत के मामले मे दखल देना बन्द नही करेगा तो चीन और ब्रिटन की पारस्परिक मैत्री मे सकट उत्पन्न हो जायगा। उसका उल्लेख करते हुए फिलीपाइन के अध्यक्ष मैन्युअल क्वीजॉन ने सितम्बर १९४२ मे वाशिगटन के शोरहम होटल मे मुझसे कहा—'अगर ऐमरी (भारत-मत्री लियोपोल्ड एस० ऐमरी) ने ऐसी बात मेरे दूत से कही होती और यदि मेरे देश मे डेढ करोड की बजाय चालीस करोड जनता होती तो मै कह देता कि अच्छी बात है, मेरी और आपकी मित्रता का कोई मूल्य नही रहा और फिर मै जापानियो से बातचीत शुरू कर देता।"

क्वीजॉन ने ज़ोर-ज़ोर से पढकर मुझे वे तार सुनाये जो उन्होने गाधी और नेहरू को ७ अगस्त को भेजे थे और जिन मे उन्होने प्रार्थना की थी कि वे ऐसा कोई भा कार्य न करे जिससे सयुक्त राष्ट्रो की विजय को धक्का पहुचने की सम्भावना हो। क्वीजॉन ने ये तार प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट को दिखा दिये थे और उन्होने इन तारो को पास भी कर दिया था। किंतु ये तार गाधी और नेहरू को नही दिये गये। १८ सितम्बर को क्वीजॉन को वाशिगटन-स्थित ब्रिटिश राजदूत लार्ड हैलीफैक्स का पत्र मिला कि भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगा ने तारो को गाधी और नेहरू के पास भेजने से इन्कार कर दिया है।

सितम्बर १९४२ मे व्हाईट हाल मे प्रशात कौंसिल की जब सभा हुई तो क्वीजॉन ने भारत की समस्या का प्रश्न उठाया और अमेरिका द्वारा हस्तक्षेप किये जाने की वाछनीयता के पक्ष मे अनेक तर्क भी दिये। प्रेज़िडेन्ट रूज़वेल्ट, जो कौसिल का सभापतित्व कर रहे थे, बोले कि भारत के सम्बन्ध मे मेरी जानकारी बहुत ही थोडी है, किंतु अधिकाश अमेरिकन भारत के स्वतत्र किये जाने के पक्ष मे है और ब्रिटेन तथा भारतवर्ष के लिए यह अपेक्षित है कि वे आपस मे बातचीत कर समझौता करे। उस सभा म लार्ड हैलीफैक्स भी उप-

स्थित थे। उन्होने कहा कि अब से पहले भारतवर्ष मे फिर से नियंत्रण स्थापित करने की आवश्यकता है और ब्रिटेन इसे स्थापित करेगा। इसके बाद क्वीजॉन ने चीनी राजदूत डाक्टर सुग की ओर घूमते हुए उनकी सम्मति पूछी। सुग ने उत्तर दिया कि "भारत, अमेरिका और इग्लैण्ड की ईमानदारी की कसौटी है।"

भारत मे ब्रिटेन की नीति केवल नियत्रण की पुन स्थापना करने की है, यह बात लार्ड हैलीफैक्स ने मुझसे २८ अगस्त को कही। वह बोले—"अगर मै भारत का वाइसराय होता—मुझे खुशी है कि मै नही हू—तो मै अब काग्रेस से कदापि समझौते की कोई बातचीत नही करता। भारत के लाखो निवासी अज्ञानी और अशिक्षित भेड के समान है और अगर आपको ऐसे आ"मियो पर शासन करना है तो आपको यह बात प्रमाणित करनी होगी कि आप शासन कर सकते है।"

यही मनोवृत्ति थी जिसके कारण चर्चिल और हैलीफैक्स से भारत के सम्बन्ध मे रूज़वेल्ट को मुह की खानी पडी और रूजवेल्ट ने मामले को आगे नही बढ़ाया।

महात्मा गाधी ने प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट को देने के लिए मुझे एक निजी पत्र दिया था। वह पत्र आवश्यक था और यदि रूजवेल्ट ने उसके अनुसार काय किया होता तो भारत की बहुत-कुछ परेशानियाँ कम हो गई होती। मै चाहता था कि वह पत्र प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट के पास जल्दी-से-जल्दी पहुचे, इसलिए मैने उसे भारत स्थित अमेरिकन हवाई बेडे के जनरल ग्रूबर को दे दिया, जो विशेष अनुमति से हवाई जहाज द्वारा सीधे वाशिंगटन जा रहे थे और जिन्होने मुझसे कहा कि—वह प्रेज़िडेन्ट रूजावेल्ट से मिलेगे। वह पत्र, जिसे महात्मा गाधी ने सेवाग्राम मे १ जुलाई को लिखा था, इस प्रकार था—

"प्रिय मित्र!

मै दो बार आपके महान् देश मे आता-आता रह गया। सौभाग्यवश मेरे वहा कितने ही मित्र है, कुछ परिचित कुछ अपरिचित। मेरे देश के कितने ही निवासी अमेरिका मे उच्च-शिक्षा प्राप्त कर चुके है और अब भी कर रहे है। मुझे यह मालूम है कि अनेक भारतवासियो ने वहाँ शरण भी ली है। थोरो और इमर्सन के लेखो से मैने बहुत लाभ उठाया है। ये सब बाते मै आपको इसलिए लिख रहा हू कि मेरा आपके देश से कितना सम्बन्ध है। ब्रिटेन के सम्बन्ध मे मुझे इससे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि मै ब्रिटिश शासन को सख्त नापसन्द करता हू तब भी इग्लैण्ड में मेरे अनेक मित्र है, जिनसे मै

अपने देशवासियो के समान ही प्रेम करता हूँ। मैने अपनी कानूनी शिक्षा वही पाई थी। इसलिए आपके देश और ग्रेट ब्रिटेन के प्रति मेरे हृदय मे सद्भावना-ही-सद्भावना है। अत आपको मेरे इस कथन पर विश्वास करना चाहिए कि मैने मैत्री पूर्ण भावनाओ से ही प्रेरित होकर यह प्रस्ताव किया है कि अग्रेज भारतवासियो की इच्छा की चिन्ता न करते हुए और बिना किसी सकोच के फौरन भारत पर से अपना शासन हटा ले। मै चाहता हू कि इस समय ब्रिटेन के प्रति भारत मे जो बुरी भावनाए फैली हुई है, उन्हे मै, चाहे उनके विरोध मे कुछ ही क्यो न कहा जाय, सद्भावना मे परिणत कर दूं और इस तरह लाखो भारतवासियो को वर्त्तमान युद्ध मे अपना यथोचित भाग लेने के लिए प्रेरित करू।

जहा तक मेरे व्यक्तिगत विचारो का प्रश्न है, वे बिलकुल स्पष्ट है। मै सभी प्रकार के युद्ध से घृणा करता हू। इसलिए अपने देशवासियो को प्रेरित कर सका तो निस्सदेह वे सम्मानपूर्ण शान्ति को प्राप्त करने मे बडी ही उपयोगी और निर्णायक सहायता देगे। किन्तु मै जानता हू कि हममे सभी लोगो को अहिंसा मे पूर्ण विश्वास नही है। विदेशी शासन मे रहते हुए हम इस युद्ध मे दासता के अतिरिक्त और कोई दूसरी उपयोगी सहायता नही कर सकते।

भारतीय काग्रेस की नीति, जो अधिकत मेरे ही निर्देश से कार्य करती है, ब्रिटेन को आघात न पहुचाने की ही रही है, किन्तु साथ-ही साथ वह अपने लिए, जो कि निस्सदेह भारत की सबसे बडी और पुरानी राजनीतिक सस्था है, सम्मान-पूर्वक कार्य करने की स्वतत्रता चाहती है। क्रिप्स-योजना द्वारा प्रकट की गई ब्रिटिश नीति ने, जिसे भारत के सभी दलो ने अस्वीकार कर दिया, हमारी आखे खोल दी है और उसी के कारण मुझे यह प्रस्ताव करना पडा है। मै समझता हू कि मेरे प्रस्ताव का पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाना ही एक-मात्र ऐसा उपाय है जिससे ब्रिटेन की रक्षा हो सकती है। मै यह कहने का साहस करता हू कि जब तक भारत और अफ्रीका का ब्रिटेन द्वारा शोषण होता है और स्वय अमेरिका मे हब्शियो की समस्या विराजमान है तब तक मित्रराष्ट्रो का यह कहना कि हम इस ससार को व्यक्तियो और जनतत्र की स्वतत्रता के लिए सुरक्षित बनाने जारहे है, खोखला मालूम देता है। मैने अपने प्रस्ताव मे कोई जटिलता न आने देने के विचार से अपने को भारत तक ही सीमित रखा है। यदि भारत स्वतत्र हो जाता है तो और देश भी, यदि साथ-ही-साथ नही तो उसके शीघ्र ही बाद, आज़ाद हो जायगे।

अपने प्रस्ताव को सर्वमान्य बनाने के अभिप्राय से मैने यह सुझाव रखा है कि अगर मित्रराष्ट्र जरूरी समझे तो वे अपने खर्च पर भारत मे फौज रख

सकते है। किंतु यह फौज भारत की आन्तरिक शान्ति की रक्षा के लिए नही, बल्कि जापानी आक्रमण को रोकने और चीन की रक्षा करने के लिए रखी जायगी। जहाँ तक भारतवर्ष का सवाल है, उसे उतना ही स्वतत्र हो जाना चाहिए जितने ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका है। युद्ध-काल में मित्र राष्ट्रीय-सेनाए स्वतत्र भारतीय सरकार के साथ समझौता करके भारत मे रहेगी। इस स्वतत्र सरकार का निर्माण भारत की जनता करेगी और उसके निर्माण मे कोई भी बाहरी देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप नही करेगा।

यह पत्र मै इस प्रस्ताव के प्रति आपकी सक्रिय सहानभूति प्राप्त करने के अभिप्राय से लिख रहा हूँ, मुझे आशा है कि प्रस्ताव आपको पसन्द आएगा।

यह पत्र आपके पास श्री लुई फिशर ले जा रहे है। यदि पत्र मे मै कोई बात स्पष्ट न कर पाया हू तो आप मुझे लिख भेजिये और मै फौरन उसका स्पष्टीकरण कर दूंगा।

अन्त मे मै यह आशा करता हूँ कि आप इस पत्र को एक बलात हस्त-क्षेप समझकर रुष्ट नही होगे, बल्कि इसे मित्रराष्ट्रो के एक मित्र और हितैषी की प्रार्थना समझेगे।

सस्नेह आपका,
(हस्ताक्षर) एम के गाधी।"

भारत से लौटते समय मियामी पहुँचने पर मैने प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट से तार द्वारा मिलने की अनुमति मागी। दो दिन बाद मुझे प्रजिडन्ट के सेक्रेटरी एम० एम० मैकिनटायर के हस्ताक्षर से एक तार मिला, जिसमे लिखा था कि काम की अधिकता के कारण हमने सेक्रेटरी हल से आपसे मिलने के लिए कहा है।

बाद मे मुझे प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट का ११ अगस्त १९४५ का पत्र मिला, जिसमें लिखा था—

"प्रिय श्री फिशर,

मै अपने को स्थिति के बहुत निकट सम्पर्क मे रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। कितने ही साधनो द्वारा मुझे प्रतिदिन ताजे से ताजे समाचार मिलते रहते है।

आपका सुहृद्
(हस्ताक्षर) फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट

मुझे प्रेजिडेन्ट से न मिल सकने का अफसोस रहा और मैने सोचा कि अगर मै पत्र को जनरल ग्रूबर के हाथ न भेजकर अपने साथ लाता तो प्रेजिडेन्ट

से मिलने की अधिक सम्भावना हो सकती थी।

१२ अगस्त को प्रेजिडेन्ट के घनिष्ठ सम्पर्क में रहने वाले एक व्यक्ति ने मुझे निमत्रित किया और कहा—"फ्रैंकलिन ने मुझसे कहा है कि मैं आपसे मिलूँ और आपकी बातें उन्हे जाकर बताऊँ।"

जब मैं भारत से न्यूयार्क लौटा तो श्रीमती क्लेयर बूथ ल्यूस ने टेलीफोन करके मुझे पूछा कि क्या मैंने वेन्डेल विलकी से मुलाकात की है। मैंने कहा कि नही और श्रीमती ल्यूस ने विलकी के साथ मेरी मुलाकात तै करा दी। उनसे मिलने के लिए मैं उनके दफ्तर १५ ब्राड स्ट्रीट, गया। मेरे प्रवेश करने पर वह उठे नही और अपने पैर उन्होने डेस्क पर रहने दिये। उन्होने बताया कि वह बहुत थक गये थे। अमेरिका की इडिया लीग के सभापति श्री जे० जे० सिंह ने बताया कि उनसे भी विलकी इसी ढग से मिले थे। यह बात मुझे पसन्द आई। मैं उनकी ईमानदारी से प्रभावित हुआ।

विलकी ने कहा कि वह मेरे भारत-सम्बन्धी विचारो से सहमत है। उनका खयाल था कि भारत के विषय मे उनके विचार उस भावी अवसर के लिए लिखकर रख लिये जाने चाहिए जब स्थिति बदल जायगी और हम अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यो का शान्ति-सम्बन्धी व्यावहारिक अस्त्र के रूप में प्रयोग करेगे। उन्होने मुझे बताया कि अपने भू-पर्यटन के समय उन्होने भारत जाना चाहा था और अपनी यह इच्छा प्रेजिडेन्ट रूज़वेल्ट के सामने प्रकट भी की थी किन्तु प्रेजिडेन्ट का मत था कि उन दिनो किसी अमेरिकन का भारत जाना ठीक नही, इसलिए विलकी को चाहिए कि वह अपनी यात्रा पूरब, रूस और चीन तक ही सीमित रखे।

प्रेजिडेन्ट के एक गैर-सरकारी सलाहकार ने, जिनसे मैं कभी-कभी वाशिगटन मे मिला करता था, मेरे भारत से लौटने पर एक मित्र द्वारा मेरे पास कहला भेजा कि प्रेजिडेन्ट मुझसे नही मिलना चाहते।

उस समय अमेरिका की नीति यह थी कि भारत के मामले मे ब्रिटेन को परेशान न किया जाय। यह एक सुविधाजनक नीति है। झगडे मे न पडना अक्सर सुविधाजनक होता है, किन्तु ऐसा करना महगा पड सकता है।

२७ अगस्त, १९४२ को दिन मे १२॥ बजे मैं विदेश-मन्त्री कार्डेल हल से मिला। उन्होने मुझसे भारत के सम्बन्ध मे पूछा और फिर टीका करते हुए कहा—"मुश्किल यह है कि जब दूसरा पक्ष टस-से-मस नही होता तो हम कैसे हस्तक्षेप कर सकते है? यह तो वही बात हुई कि कोई बाहरी देश हमे मुनरो सिद्धान्त को कार्यान्वित करने की रीति बताने की चेष्टा करे।"

मैंने कहा कि अगर इग्लैंड ने एक लैटिन अमेरिकन राष्ट्र की आक्रमण से रक्षा करने का कुछ भार अपने कन्धो पर ले रखा है और अगर उस राष्ट्र को सारा यूरोप मित्रराष्ट्रो की ईमानदारी की कसौटी समझता है तो उसके मामले में बोलने का इग्लैंड को अवश्य अधिकार होगा।

हल ने कहा कि उन्होने स्वतन्त्रता आन्दोलनो और नई सरकारो को नियमित स्वीकार करने के सम्बन्ध मे सदा अनुकूल दृष्टिकोण रखा है। उन्होने कहा—"जब मै नौजवान था तो मैने क्यूबा की आजादी के लिए लडाई लडन के वास्ते एक रेजिमेन्ट सगठित की थी। सन् १९३३ मे मैने अनेक बाधाओ की अवहेलना करते हुए सोवियत् रूस को नियमित मानने के लिए आवाज उठाई थी। लैटिन अमेरिका मे हमने अच्छे पडोसियो की तरह रहने की नीति ग्रहण कर रखी है। चीन के लिए मैने समान अधिकार का समर्थन किया है, किन्तु जहा तक भारत का प्रश्न है, यद्यपि प्रेजिडेन्ट किसी भी अवसर को हाथ से निकलने नही दे रहे है, फिर भी जब तक ब्रिटेन टस-से-मस न हो तब तक हम कुछ नही कर सकते। हो सकता है कि दूसरा आदमी जमीन मे अपनी एडी गडाकर खडा हो जाय और कहे कि मै तो यही खडा रहूगा चाहे बाकी सब चीजे टुकडे-टुकडे क्यो न हो जाय।" यह बात कार्डेल हल न कई तरह से दुहराई।

१२ बजकर ४० मिनट पर श्री हल के सेक्रेटरी ने भीतर आकर कहा "अब आप भोजन कर लीजिये।" शीघ्र ही वह एक ट्रे लाया जिसम भुना हुआ ठडा गो-मास, एक सलाद, एक गिलास टमाटर का रस, एक गिलास दूध, एक गिलास पानी और एक प्याला चाय थी। इन्हे खा-पीकर हल ने कहा—"अच्छा, अब मुझे जाना चाहिए। आज मै न्यूज़ीलैंड के प्रधान मत्री फ्रेज़र को खाने पर बुला रहा हू।"

एक समान शत्रु से लडाई लडने के लिए कई राष्ट्र सम्मिलित हो जाते है। वे अपनी सेनाओ, अपने अस्त्र-शस्त्रो और अपने साजो-समान को समन्वित कर लेते है। उनके लडके रणभूमि में साथ-साथ मौत के शिकार बनते है। किन्तु जब शान्ति-स्थापना का समय आता है तो वे अलग-अलग रास्ते पर चलने लगते है, अपनी जगह पर आकर खडे हो जाते है और किसी व्यक्ति को अपनी सार्वभौम सत्ता मे हस्तक्षेप नही करने देते। जब तक यह बात बन्द न होगी तब तक शान्ति के लिए किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की चर्चा करना निरर्थक है।

भारत में ब्रिटेन की सार्वभौम सत्ता है, क्योकि उसमे इसकी शक्ति है।

यदि भारतवासियो मे अगजो को निकाल बाहर करने की शक्ति आ जाय तो सार्व-भौम सत्ता उनकी हो जाय। रूस ने बाल्टिक देशो और पूर्वी पोलैंड को जीत लिया और उन्हे अपनी सार्वभौम सत्ता मे मिला लिया, क्योकि वह उनसे अधिक शक्तिशाली था और बाहरी हस्तक्षेप सहन नही करता था। यह अवैध बल है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृष्टिकोण से मानव-समाज अब भी मध्य-कालीन परिस्थिति मे है, जब कि सडको पर लुटेरो का राज रहता था और वे कमज़ोरो से कर लिया करते थे।

यदि शान्ति का नक्शा शक्तिशाली अराजकता द्वारा तैयार किया जाता है और जब उस पर अराजकता फैलाने वाली सरकारो का अधिकार होता है तो शान्ति के लिए स्थापित की गई अन्तर्राष्ट्रीय सस्था पगु बन जाती है।

उस फाशिज्म के साथ युद्ध करते समय, जिसे सिद्धान्त विहीन या अवैध बल कहा जाता है, सयुक्त राष्ट्रो ने किस प्रकार एक ऐसी शान्ति की स्थापना की जिसमे सिद्धान्त-विहीन और अवैध शक्ति निहित है ?

अमेरिका किधर जा रहा है ? ससार किधर जा रहा है ? क्या एक और युद्ध—एक परमाणु-युद्ध—का होना अनिवार्य है ?

: १४ :

सुरक्षा की खोज

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की रूप-रखा इस बात पर निर्भर होती है कि सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र और उससे दूसरे नम्बर पर आने वाले देश के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे है ? नैपोलियन के युग मे, यूरोप की राजनीति ब्रिटेन और फ्रान्स की शत्रुता के धुरे के चारो तरफ घूमती रही। बीसवी शताब्दी के पहले ४० वर्षो म—सन् १९१९ स १९३५ तक के उस काल को छोडकर जब जर्मनी कमजोर था—यूरोपीय राजनीति की कुजी ब्रिटेन और जर्मनी की शत्रुता थी। आज यूरोप का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र रूस है और इग्लैड उससे दूसरे नम्बर पर है। यही कारण है कि आजकल यूरोप क सारे मामले इन दो देशो के पारस्परिक सम्बन्ध पर आश्रित है।

कई शताब्दियो तक ससार की अधिकाश शक्ति यूरोप और उसके समुद्र पार साम्राज्य के हाथो मे थी। इसीलिए उन दिनो यूरोप के विदेशी मामले अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पर्यायवाची माने जाते थे।

शक्ति का मुख्य केन्द्र अब यूरोप मे नही रह गया। अमेरिका और रूस मे (जिसका एक बहुत बडा भाग यूरोप से बाहर है) शक्ति के बडे-बडे केन्द्र स्थापित होगए है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति म उस सम्बन्ध का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है जो इस समय ससार के सब से अधिक शक्तिशाली देश अमेरिका और उससे बाद के नम्बर पर आने वाले देश रूस क बीच है।

यूरोप के प्रागण मे रूस को ब्रिटेन की शक्ति का सामना करना है और ससार के क्षेत्र मे अमेरिका को शक्ति का। इस स्थिति के कारण अमेरिका और ब्रिटेन मे एक-दूसरे के प्रति दिलचस्पी पैदा हो गई है किन्तु समय-समय पर महत्त्व पूर्ण समस्याओ पर मतभेद होना असम्भव नही।

तीन बडे राष्ट्रो ने मिलकर लडाई जीती। आपस के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भेदो के होते हुए भी उन्होने एक-दूसरे की रक्षा मे सहायता की। भौगोलिक दृष्टि से रूस और अमेरिका एक-दूसरे से बहुत दूर है—

उनमे कोई व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता नही है। फिर संघर्ष और तनातनी क्यो ?

जर्मनी से इंग्लैण्ड को सकट था और यदि इंग्लैण्ड ने हाथ-पैर डाल दिये होते तो उससे अमेरिका को भी सकट उत्पन्न हो जाता। बाद मे जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। इससे तीनो देश मिल गए।

जर्मन-शक्ति नष्ट हो चुकी है। जापानी शक्ति का भी अंत हो चुका है। इटैलियन शक्ति भी स्वाहा हो चुकी है। ऐसी कौन-सी वस्तु रह गई है जो तीनो राष्ट्रो को एक मे बाधे रखे ?

क्या एक नये युद्ध का भय उन्हे एक-दूसरे से मिलाये नही रख सकता ? बडा युद्ध इन तीनो बडे राष्ट्रो द्वारा ही लडा जा सकता है इसलिए यदि वे मिलकर रहे तो युद्ध असम्भव हो जाय !

इस साधारण बुद्धि की बात का राष्ट्रो की स्वाभाविक कूटनीतिज्ञता से विरोध है। राष्ट्रो का एक-दूसरे से स्पर्धा करना प्राकृतिक होता है। परस्पर सहयोग के समय भी उनमे प्रतिद्वन्द्विता की भावना रहती है। द्वितीय महा-समर मे वे लगातार एक दूसरे से स्पर्धा करते रहे।

शान्ति उसी समय स्थापित हो सकती है जब राष्ट्र अपने आत्म-बल का प्रयोग कर पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता की जन्मजात भावना को बिलकुल मिटा दे और उसकी सहायता से भावी परमाणु युद्ध के नाश से बच। आत्म-हत्या और स्वरक्षा की परस्पर-विरोधी भावनाओ के सघर्ष स्वरूप राष्ट्रो का जो रूप निकलेगा उसी के द्वारा मानव-समाज के भाग्य का निणय होगा।

राष्ट्रो की प्रतिद्वन्द्विता किस प्रकार कम हो सकता है ? कुछ लोग इसे तीन या पाच बडे राष्ट्रो मे सधि या मित्रता करके और साथ ही-साथ सयुक्त राष्ट्रीय सघ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना द्वारा दूर करना चाहेगे। ऐसी स्थिति मे जब राष्ट्र एक-दूसरे से सहमत होना चाहेगे तब तो होगे, नही तो उन्हे एक दूसरे से मतभेद प्रकट करने और लडने की स्वतत्रता रहेगी।

चूंकि यह व्यवस्था सतोषजनक नही है, इसीलिए बहुत से लोग—जिनकी सख्या दिन-पर-दिन बढती जा रही है—कहते है कि राष्ट्रो की प्रति-द्वन्द्विता और लडाई उसी समय बद हो सकती है जब वे अपनी-अपनी सार्वभौम सत्ता को त्याग द और एक उच्च अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की अधीनता मे रहे जो उन्हे एक-दूसरे से सहमत रहने के लिए बाध्य करेगी।

अमेरिकन राष्ट्र एक दूसरे से युद्ध करने की बात कभी नही सोचते। वे एक-दूसरे से युद्ध नही कर सकते। सघीय सरकार उन्हे ऐसा करने से रोक देगी। अगर सारे ससार के लिए एक सघीय सरकार की स्थापना हो जाय तो

युद्ध हो ही नही सकता।

अमेरिकन राष्ट्रो को सार्वभौम सत्ता प्राप्त है, फिर भी कुछ अशो म उन्होने अपने को वाशिंगटन की अधीनता मे छोड रखा है और इसका उन्हे उचित बदला मिलता है। कुछ कानून तो वे अपने लिए स्वय बनाते है और कुछ अपने सहयोग से दूसरो द्वारा बनाये गए कानूनो को स्वीकार कर लेते है। विश्व की सघीय सरकार भी इसी रीति से कार्य कर सकती है। शान्ति का रास्ता यही है।

अन्तर्राष्ट्रीय सरकार बनगी अवश्य, प्रश्न केवल यह है कि उसकी स्थापना हम स्वय पहले से ही कर लेते है, मानव-समाज परमाणु-युद्ध करता है और उसके फलस्वरूप एक एसी विजयिनी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है जो सारे ससार की सत्ता अपने हाथो मे ले लेगी और सब राष्ट्रो की सरकार बन बैठेगी। यह विजयिनी शक्ति रूस के अतिरिक्त और कोई नही हो सकती।

मनुष्य स्वेच्छा से स्थापित की हुई अन्तर्राष्ट्रीय सरकार पसन्द करता है। हमारे पूर्वजो के समय मे शासन-सत्ता नगरो के अधिकार मे थी। बैल-गाडियो और घोडो के युग मे देश ने सरकार का रूप ग्रहण किया था। भाप और बिजली के युग मे यह स्थान राष्ट्र को मिला था और अब हवाई जहाज तथा परमाणु-शक्ति के युग मे शासन सत्ता एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के हाथो मे होगी।

फिर भी युद्ध-काल मे हमारे सामने ऐसे कितने ही प्रस्ताव आये जिनका उद्देश्य संसार का पुराने ढग की इकाइयो, साम्राज्यो, गुटबदियो आदि मे बॉट देने का था। इन सभी योजनाओ को उद्देश्य राष्ट्रीयता का प्रचार करना था।

सन् १९४३ मे गुटबदियो के प्रस्तावो की एक आधी-सी आई। न्यूयार्क के गवर्नर थामस डेवी ने और क्लेयर बूथ ल्यूस ने ब्रिटेन और अमेरिका की गुटबदी पर जोर डाला। अर्ल ब्राउडर ने, जो उन दिनो अमेरिकन कम्युनिस्टो के नेता थे, ब्रिटेन, अमेरिका और रूस की गुटबदी की सलाह दी। वाल्टर लिपमेन और दूसरे लोगो ने प्रस्ताव किया कि युद्ध के बाद शान्ति कायम रखने की एकमात्र युक्ति ब्रिटेन, रूस, अमेरिका और चीन की गुटबदी होगी।

एक लेख मे मैने लिखा—"ये सुझाव हानिप्रद है, क्योकि गुटबदी से ससार या अमेरिका को युद्ध से अलग रहने मे सहायता नही मिलेगी। फिर भी बडी-बडी ग्राहक-सख्या वाले पत्र समय की ही गति मे गति मिलाना पसन्द करते है, उन्हे आगे बढ़कर बात सोचने में हिचक होती है। आजकल गुटबदी को लोग लडखड़ाती हुई शान्ति का लक्षण समझते है। सन् १९४३ और १९४४ में

गुटबदियो की एक चलन-सी चल गई थी । इसीलिए उन दिनो जनता से न तो गुटबदियो के विरुद्ध कुछ कहा जा सकता था न अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए ही अपील की जा सकता थी । मेरा लेख अन्तत तिमाही 'वरजीनिया रिव्यू' के बसन्त, १९४४ के अक मे प्रकाशित हुआ ।

सयुक्त राष्ट्रीय अधिकार-पत्र के सम्बन्ध मे डमबरटन ओक के प्रस्तावो को पढते ही मैंने उनके अधूरेपन पर प्रकाश डालते हुए सितम्बर १९४४ मे 'नेशन' नामक-पत्र मे एक लेख लिखा। मैंने विशेष रूप से विशेष मताधिकार की उस धारा की निन्दा की जिसमे पाँच बडे राष्ट्रो मे से प्रत्येक को इस बात का अधिकार है कि वह सयुक्त राष्ट्रो को किसी आक्रमणकारी के विरुद्ध कार्य करने से रोक दे, चाहे वह स्वय ही आक्रमणकारी क्यो न हो । बाद मे मैंने सानफ्रासिस्को के अधिकार-पत्र मे उल्लिखित बडे राष्ट्रो के विशेष मताधिकार पर भी आपत्ति उठाई और कुछ सशोधन पेश किया । इस बात के लिए 'सन्डे रिव्यू ऑव लिटरेचर' के सम्पादक नारमैन कज़िन्स ने एक सम्पादकीय टिप्पणी मे मेरी आलोचना को और मुझे सम्पूर्णतावादी (परफेक्शनिस्ट) कहकर मेरे प्रति घृणा प्रगट की । बाद मे ससार पर परमाणु बम गिरा और नारमैन कजिन्स ने अपने पत्र मे सानफ्रासिस्को अधिकार पत्र की बुराइयो पर एक लम्बा वक्तव्य छापा । इस पर मेरे और नारमैन के बीच एक बडा मनोरजक पत्र व्यवहार हुआ ।

जो विचार समय से तीन या ६ महीने पहले व्यक्त किये जाते है वे अनेक अमेरिकन पत्रकारो को बाधक प्रतीत होते है । वे घटनाओ से आगे बढे रहना चाहते है, जिसका मतलब यह होता है कि वे घटनाओ से पीछे रह जाते है और बाद मे घटना घटने पर उनके पाठक आश्चर्य-चकित रह जाते है । विशेष रूप से युद्ध के दिनो मे यदि कोई व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के सम्बध मे बिना सेसर किया हुआ सत्य कहना चाहता है तो वह ऐसा केवल रगमचो पर या पुस्तको में कर सकता है । अन्य स्थानो पर तो पब्लिक को, जॉन फॉस्टर डूल्स के शब्दो मे "युद्ध का पाचनशील मीठा शर्बत" पीने को मिलता था ।

सन् १९४४ मे चार्ल्सटन (पश्चिमी वर्जीनिया) के एक छोटे-से भोज मे मेरी राय न्यूयार्क के एक ऐसे पत्रकार के सम्बध मे पूछी गई जो सभी विषयो पर लेख लिखा करता था । मैंने कहा—"उसे अधिक जानकारी नही है । वह मस्तिष्क को भोजन प्रदान करने के बदले उसमे केवल गुदगुदी पैदा करता है ।"

इस पर प्रश्नकर्ता ने कहा—"फिशर साहब, ऐसी बातें न कहिये,

उसे पढकर मुझे बडा आनन्द आता है।"

युद्ध-काल मे अधिकाश लोगो के लिखन और सम्पादन करने का उद्देश्य यही था। विजय के लिए जनता असीम त्याग कर रही थी और वह इस बात की सात्वना चाहती थी कि सब बात ठीक चल रही है। सत्य से मिलती जुलती कोई भी गम्भीर बात उसे अच्छी नही लगती थी। जिन लाखो अमेरिकनो के पेट 'पाचनशील माठे शर्बतो' के अभ्यस्त हो चुके है उनमे भी अधिक ठोस और स्वस्थकर भोजन पचाने की सामर्थ्य नही है।

शान्ति सम्बन्धी समस्याओ पर अमेरिका के युद्धकालीन साहित्य को फिर से पढ़ने मे बडा दु ख होता है। उसमे हमे यह शिक्षा मिलता है कि पत्र मे छपने वाली बातो का अक्सर उन घटनाओ से कोई सम्बन्ध नही होता जिनके द्वारा उस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की रूप रेखा साचे मे ढलती है। यह बात सन् १६४३ और, ४४ मे की गई गुटबन्दियो पर विशेष रूप से लागू होती है।

मैने गुटबन्दियो का विरोध इतिहास और समाचार पत्रो मे छपे हुए सत्य के आधार पर किया था। तिमाही "वरजीनिया" वाले अपने लेख मे मैने लिखा था—"धुरी राष्ट्र का विरोध करने वाले चार बडे देश अब ऐसे मोर्चे सभाल रहे है, जहा से वे युद्ध के बाद एक-दूसरे से सघर्ष कर सके। आने वाली शान्ति का यह काला रूप है। इससे सन् १६३६ से पहले वाली अराजकता के फैलने का भय है।

"इसके अलावा, देश अनिश्चित् है। पहले विश्व-युद्ध मे जर्मनी के मित्र इटली ने जर्मनी को धोखा दिया और वह हमारे पक्ष मे आ मिला। जापान भी हमारे ही पक्ष मे था। इस युद्ध मे इन दोनो देशो ने हमारा विरोध किया है।

"सन् १६०४-५ मे रूस और जापान मे लडाई हुई थी। सन् १६१४-१६१७ के युद्ध मे वे एक दूसरे के मित्र थे। सन् १६१८ और १६२२ के बीच उनमे फिर लडाई हुई। सन् १६३८-३६ मे उन्होने एक-दूसरे के साथ डटकर युद्ध किया। आज वे फिर मित्र बन गए है, यद्यपि उनके युद्ध-सहकारी एक-दूसरे के विरुद्ध है।

"सन् १६१४ १८ के बीच जर्मनो से लडते हुए ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास के सिपाहियो ने कितने ही रण-क्षेत्रो मे भाई-भाई की तरह खून बहाया था। कुछ ही वर्षों में ब्रिटेन की नीति जर्मनी से भी अधिक फ्रास विरोधी होगई।

"मित्रता पूर्ण सधियो को शक्ति की तुला में तोलकर देखा गया है और उनमें कमिया पाई गई है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक

शक्ति- सतुलन- गुट की स्थापना ने एक दूसरे शक्ति-सतुलन-गुट का उत्पत्ति के लिए प्रेरणा दी है और अन्त मे दोनो गुटो मे युद्ध होगया है । सन् १६१८ मे ब्रिटेन और फ्रास ने विजय प्राप्त की थी और जर्मनी के मानो प्राण निकल रहे थे । किन्तु यूरोप की पारस्परिक शत्रुताओ के कारण और हवाई जहाज के एक निर्णायक युद्ध -अस्त्र के रूप म प्रकट हो जाने से नाजी जर्मनी को फिर से युद्ध करने का अवसर मिला । इसी प्रकार नई वैज्ञानिक युक्ति या रासायनिक पदार्थ के आविष्कार से शक्ति-सतुलन-गुट मे फिर परिवर्तन आ सकता है और उस समय भय या आशा या द्वेष के कारण अजय दिखाई देने वाली गुटबन्दी नष्ट हो सकती है और इसकोनिबल बना सकती है ताकि उससे किसी दूसरे देश या राष्ट्र-समूह का युद्ध-मार्ग ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहन मिले ।

"इसलिए वर्तमान स्थिति को कायम रखने के लिए गुटबन्दी की आवश्यकता नही है, बल्कि युद्ध के कारणो को दूर करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की आवश्यकता है ।"

जो लोग अखबारो को पढना जानते थे उन्हे अखबारो के पृष्ठो मे तीन बडे राष्ट्रो के युद्धोत्तर सघष का अपशकुन स्पष्ट रूप से दिखाई दे सकता था, किन्तु इस ससार मे राजनीतिक मूर्ख भरे पडे है । युद्ध के नाद और काल्पनिक विचारो का भनभनाहट मे भावी विपदाओ की घरघराहट सुनाई नही दे पाई । दक्षिण अफ्रीका के प्रधान मन्त्री फील्डमार्शल जान क्रिश्चियन स्मट्स ने २५ नवम्बर १९४३ को ब्रिटिश लोकसभा मे एक ऐसा वक्तव्य दिया था जिसे उन्होने स्वय "विस्फोटक" कहकर पुकारा था । उनकी बात बिलकुल असगत थी, फिर भी वे इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि उन पर खूब चर्चा हुई, वे तोडी-मरोडी गई और ब्रिटिश सरकार ने उनके समस्त भाषण को प्रकाशित कर दिया ।

स्मट्स ने घोषणा की कि युद्ध के बाद इस ससार पर त्रिशक्ति का अधिकार होगा । इनमे से ब्रिटेन 'निर्धन और यूरोप मे पद्दलित" होगा, रूस यूरोप मे "सर्वशक्तिमान्" होगा और अमेरिका के पास तो "अपार धन, बल और साधन है ही ।" यह असमानता स्मट्स को खटकती थी । वह चाहते थे कि तीनो राष्ट्र हर दृष्टि से शक्ति और प्रभाव मे बराबर रहे । "मै असमान साझीदारी पसन्द नही करूँगा," उन्होने कहा था ।

स्मट्स की त्रिशक्ति के समान अधिकार की इच्छा एक प्रकार से शक्ति-सतुलन की इच्छा है । किंतु यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक राष्ट्र जो दूसरे दो राष्ट्रो से कमजोर और असमान है, उनके साथ समानता प्राप्त कर

ले ? स्पष्टत वह ऐसा या तो शेष दो राष्ट्रो को क्षति पहुँचा कर, कर सकता है—जो कि मुश्किल है—या छोटे-छोटे देशो और उपनिवेशो के कन्धो से बन्दूक चला कर। स्मट्स दूसरी बात चाहते थे। अपने भाषण मे उन्होने दो रास्ते बताये—पहला यह कि ग्रेट ब्रिटेन अपने साम्राज्य को अपने साथ और भी घनिष्ठता के साथ जकडे रखे और दूसरा यह कि वह पश्चिमी यूरोप के छोटे-छोटे देशो का एक महान् यूरोपियन राष्ट्र स्थापित करे।

अपने इस भाषण मे स्मट्स ने उन मूर्खो को उत्तर दिया है जो कहते है कि हाथी और गिलहरिया मिलकर शान्ति की स्थापना नही कर सकती, बडे और छोटे राष्ट्र एक साथ बैठकर शान्ति का मसविदा नही तैयार कर सकते, यह काम तो हाथियो पर ही छोड देना चाहिए। किंतु कठिनाई तो यह है कि सभी हाथी बराबर नही है। स्मट्स ने अपने भाषण द्वारा प्रकट किया कि एक हाथी इग्लैण्ड को इस बात का भय है कि वह कही गिलहरी न समझा जाय और इसलिए वह अपने को शेष दो हाथियो के बराबर शक्ति-शाली बना लेना चाहता है। दो हाथियो मे सामजस्य होना उतना ही भ्रामक है, जितना हाथी और गिलहरी मे सामजस्य होना। निस्सन्देह यदि हाथी गिलहरी पर अधिकार करने की चेष्टा करे तो न तो हाथी और गिलहरी मे प्रेम उत्पन्न होगा, और न हाथियो मे ही परस्पर सामजस्य स्थापित होगा।

इस सम्बन्ध मे ब्रिटेन की नीति विदेश-मत्री एन्थनी ईडेन द्वारा ब्रिटिश लोकसभा मे २८ सितम्बर १९४४ को स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई थी। उन्होने बिना किसी हिचक के कहा था—"यदि हम अपने साम्राज्य और पश्चिमी यूरोप के पडोसियो की ओर से भी बोले तो दूसरे बडे राष्ट्रो पर हमारी अधिक धाक जमेगी। मेरी समझ मे यही वह सिद्धान्त है जिसके आधार पर हमे भवन-निर्माण करने की चेष्टा करनी चाहिए और सच पूछिये तो यही वह कार्य है जिसमे हम लोग इस समय लगे हुए है।" ईडेन के इस वक्तव्य से रहस्य पर से परदा उठ जाता है। उन्होने यह कहकर कि इससे दूसरे राष्ट्रो पर हमारी अधिक धाक जमेगी स्वीकार कर लिया है कि तीनो राष्ट्रो मे पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता है।

एकता की शाब्दिक ओट मे शत्रुता चलती रही। किन्तु इस ओट के पीछे जाकर देखने के प्रयत्न को लोग निराशावाद कहकर उपेक्षित करते रहे। यह निराशावाद तो अवश्य था, किंतु था सत्य। दूसरे शब्दो मे यो कहिये कि वह रचनात्मक निराशावाद था। उसकी उपेक्षा करके समस्याएँ हल नही होती। सत्य को दबा देना या विकृत करना सर्व-सत्तावादियो के लिए तो एक सामान्य

बात है, किंतु जनतत्री देशो के लिए खतरे से खाली नही ।

दिसम्बर १९४३ के बाद जब कि मुझे न्यू याक के ब्रिटिश सूचना कार्यालय से मार्शल स्मट्स के भाषण का पूरा विवरण मिला, तो मैंने जितने भी भाषण दिये उनमे प्रत्येक मे मैने स्मट्स का भाषण विस्तार के साथ उद्धृत किया और बताया कि किस प्रकार रूसी प्रभाव के अन्तर्गत एक पूर्वी गुट की स्थापना हो रही है और साथ-ही-साथ ब्रिटिश प्रभाव के अन्तर्गत भी एक पश्चिमी गुट बनाने का प्रयोजन हो रहा है ।

मै इस प्रकार की गुटबदियो और प्रभाव-क्षेत्रो की स्थापना के विरुद्ध हूँ, क्योकि न तो वे व्यावहारिक होते है और न उनमे कोई नैतिक सिद्धान्त ही होता है । गुटबदियाँ दुर्बल राष्ट्रो को दास बना लेती है । उनसे युद्ध रुक नही सकता, वे सुरक्षा के लिए हमारी उग्र और आशाहीन खोज का एक अश मात्र है । राष्ट्रीय सुरक्षा नाम की कोई वस्तु नही । सुरक्षा या तो सबके लिए होनी है या किसी के लिए नही । यह बात ६ अगस्त, १९४५ से पहले, जब हिरोशिया पर परमाणु बम का अवतरण हुआ था, बिलकुल स्पष्ट हो गई थी और अब तो वह बिलकुल अखण्डनीय है ।

रूस को अपनी सुरक्षा के लिए पौलैण्ड या बालकान देशो या आर्थर बन्दरगाह की उतनी ही कम जरूरत है जितनी अमेरिका को फिलीपाइन या ओकीनावा या सैपान की, और ब्रिटेन को भारत और सिंगापुर की। हो सकता है कि ओकीनावा पर अमेरिकनो का अधिकार होने के कारण, कुछ परिस्थितियो मे फिर से सिर उठानेवाले सेनावादी जापान के कुछ काल के लिए आक्रमण रुक जायँ, किंतु आज से दस वर्ष बाद अमेरिका को अर्जेन्टाइना, तुर्की, स्पेन, रूस, फ्रास, सभी जगहो से परमाणु बम के आक्रमण का खतरा हो सकता है । ऐसे आक्रमणो से अमेरिका किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकता है ? यह तो सम्भव है कि अमेरिकन अधिकारी अमेरिका पर आघात कर सकने वाले सभी राष्ट्रो के पास के अड्डो पर अधिकार कर ले या उन्हे उधार पट्टे पर ले लें, किन्तु ससार भर के भिन्न-भिन्न स्थानो पर अधिकार कर वे स्वभावत विश्व के कोने-कोने मे अपने प्रति रोष और शत्रुता उत्पन्न कर देगे और उनकी सुरक्षा बढ नही पाएगी । आजकल के परमाणु बम के युग मे किसी समय भी और ससार के किसी कोने से भी आक्रमण हो सकता है । इस युग में अपने को सुरक्षित रखने के लिए अमेरिका को न केवल प्रशान्त के शत्रुओ पर, बल्कि सारे भूमण्डल के देशो पर अधिकार करना होगा । किंतु सब की इच्छा से स्थापित की गई अन्तर्राष्ट्रीय शासन-सस्था इससे अधिक अच्छी होगी ।

किसी आक्रमणकारी देश को जीतने या किसी शान्त देश पर शत्रुता जमाने के लिए थल, जल और नभ-सेनाए अब भी काम मे आ सकती है। किंतु शक्तिशाली से शक्तिशाली सेना भी बेतार के तारो द्वारा सचालित हवाई जहाजो को नही रोक सकती। परमाणु शक्ति से प्रेरित हो वे हजारो मीलो की दूरी पार कर बीगे की तरह हम पर आक्रमण कर सकते है।

प्रिन्सटन में भौतिक विज्ञान विभाग के चेयरमैन, प्रोफेसर हेनरी डिवुल्फ स्मिथ ने, जिन्होने परमाणु-बम के निर्माण का सरकारी इतिहास लिखा था, १३ मार्च, १९४६ को कहा—"वैज्ञानिको ने अब यह अनुमान लगाया है कि न्यूयार्क नगर पर एक परमाणु बम के गिरने से तीन लाख से लेकर दस लाख तक कुछ सेकन्डो के भीतर ही भीतर मृत्यु हो सकती है।"

प्रोफेसर जे० राबर्ट ओपेनहोर ने, जो लास अलामास (न्यू मेक्सिको) में, जहाँ पहले परमाण बम का परीक्षा रूप मे प्रयोग किया गया था, परमाणु बम कार्यालय के सचालक थे, सिनेट की एक कमेटी के सामने बताया कि परमाणु बम के प्रथम आक्रमण मे ४ करोड अमेरिकन मारे जा सकते है।

ब्रिगेडियर जनरल थामस एफ० फैरेल ने, जिन्होने लास अलामास (न्यूमेक्सिको) मे प्रयुक्त किये गये प्रथम परमाणु बम और जापान पर गिराये गय दो अन्य परमाण बमो के टकडो को एकत्र किया था और जिन्हे अब पता चल गया है कि ये छोटे-अपूण बम भी कितने विनाशक थे, १९ अक्तूबर, १९४५ को कहा—"यदि नियत्रण नही रखा गया तो परमाणु बम का इतना अधिक विकास हो सकता है कि उससे सारे ससार की जनता नष्ट हो जाय।"

अत सुरक्षा की बात केवल मूर्ख करते है।

जब पखदार बम और हवाई जहाज़ असाध्य गति से चलते हुए दूरी की बाधाएँ मिटा देते है तो ससार के किसी भी कोने मे सुरक्षा कहाँ ? रूस की सुरक्षा कहाँ ? अमेरिका की सुरक्षा कहाँ ?

द्वितीय विश्व-युद्ध का एक कारण यह था कि कुछ राष्ट्रो ने सारे ससार को युद्ध से अलग रखने की बजाय केवल अपने को अलग रखना चाहा। सन् १९४१ से पहले तुष्टीकरण में विश्वास करनेवाले प्रत्येक देश का लक्ष्य यही था कि वह युद्ध से दूर रहे और अपनी शान्ति तथा सुरक्षा की पहरेदारी करे, इससे युद्ध का रास्ता साफ हो गया और हिटलर, हिरोहितो तथा मुसोलिनी को यह विश्वास करने के लिए प्रोत्साहन मिला कि वे अपने शिकारो को एक-एक कर मार सकते है। उन्हे सफलता करीब-करीब मिल भी गई। कोई एक देश, चाहे वह कैसी भी व्यवस्था क्यो न करे, अपने को परमाणुबम के आक्रमण

से बचाने की सम्भावना को बढा नही सकता। वह केवल अपनी प्रत्या-क्रमण की शक्ति को बढा सकता है। जो देश सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली है उन्हे अपनी शक्ति से केवल एक लाभ होगा। वह यह कि स्वय नष्ट होते समय वे दूसरो को भी नष्ट कर देगे। किंतु कोई परमाणु-युद्ध को नही जीत सकता। क्या कोई सानफ्रान्सिस्को के भूचाल पर विजय पा सका?

परमाणुबम के इतने भयकर होने पर भी उससे युद्ध की सम्भावना के घटने की नही, बल्कि बढने की ही आशा है। आक्रमणकारियो के लिए परमाणु शास्त्र सबसे बडे प्रोत्साहन का काम करेगे। हिटलर को आशा थी कि वह अपने यात्रिक शस्त्रो और हवाई जहाजो मे शत्रु को हराने मे बडी शीघ्रता से सफलता प्राप्त कर लेगा। इसी तरह एक नया आक्रमणकारी अपने विरोधी देश से दुर्बल होते हुए भी इस बात का आयोजन करेगा कि वह परमाणु शस्त्रो को एकत्र कर एक बारगी ही अपने शत्रु पर बरसा दे और उसे जीत ले। यदि कभी परमाणु युद्ध होगा तो वह पर्ल बन्दरगाह की घटना से भी अधिक आकस्मिक होगा और उसका उद्देश्य केवल आधी जलसेना को डुबाना ही नही बल्कि आधे राष्ट्र को नष्ट कर देना होगा। परमाणु शक्ति से आक्रमण करने वाला देश अपने पहले आक्रमण में ही शत्रु को इतना पगु बना देना चाहेगा कि वह उलट कर सफलता पूर्वक प्रत्याक्रमण ही न कर सके। ऐसे सघर्ष मे जो देश पहले आक्रमण कर देगा उसका पल्ला बहुत ज्यादा भारी रहेगा।

"जिन परमाणुबमो ने जापान के दो नगरो को मटियामेट कर दिया वे उन बमो की तुलना में जो आगामी दस या बीस वर्ष मे तैयार होगे, केवल पटाखो के सदृश्य थे।" यह बात शीकागो विश्वविद्यालय के तीन परमाणु शास्त्रियो ने ६ नवम्बर, १९४५ को बताई। चूकि मनुष्य की कल्पना शक्ति सीमित है इसलिए हमलोग परमाणुबम के सम्बन्ध में जो अनुमान लगा रहे है, वह शायद सत्य से अधिक नही बल्कि कम है।

परमाणुबम ने एक ऐसा युग उपस्थित कर दिया है जिसमे सुरक्षा की कोई सम्भावना ही नही। अब तो मनुष्य को केवल दो बातो मे से एक को पसन्द करना है—विश्वव्यापी अरक्षा या विश्वव्यापी शाति।

तो फिर १९५६ या १९६० मे अमेरिका या रूस की राष्ट्रीय सुरक्षा का क्या शेष रह जायगा? पूर्वी या मध्य यूरोप मे रूस रक्षा का जो दुर्ग खडा करना चाहता है वह अमेरिका या ब्रिटेन के परमाणु शक्ति से चलने वाले हवाई जहाजो को आक्रमण करने से नही रोक सकेगा। यदि रूस यूरोप या एशिया मे विस्तार करेगा तो उसका एकमात्र परिणाम यह होगा कि दूसरे देश भयभीत

और शकित हो जायगे और रूस की अरक्षितता और भी बढ जायगी । इसी प्रकार अमेरिकन या ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार से रूस की घबराहट बढेगी और अन्य देशो मे भी तनातनी की वृद्धि होगी ।

यदि बडे देश अपनी रक्षा करना चाहते है तो उनके लिए अच्छा यही होगा कि वे छोटे-छोटे देशो और कमजोर उपनिवेशो पर से अपना हाथ हटा ले। रूस का इग्लैड या अमेरिका मे सम्बध कैसा है इसका अनुमान लगाने में हमे उनके पारस्परिक सम्बध से उतनी सहायता नही मिल सकती जितनी इस बात से कि उनका भूमण्डल के कमजोर देशो से कैसा सम्बध है ।

हिटलर ने १९३९ मे ग्रेट ब्रिटेन पर आक्रमण न करके पोलैड पर किया और उसमे द्वितीय विश्व-युद्ध का सूत्रपात हुआ । आक्रमण न करने वाले बडे देशो ने नाजियो के कुछ आक्रमणकारी कार्यों को सहन कर लिया और उनके कुछ कार्यों में सुविधा प्रदान की । किन्तु अन्त मे वह समय आया जब इग्लैड को कहना पडा—"बस, इतना ही, इससे आगे नही । अगर इस रेखा से आगे बढे तो लडाई हो जायगी ।" हिटलर उस रेखा को पार कर पोलैड मे घुस गया और इसके फलस्वरूप जर्मनी नष्ट हो गया ।

शान्ति के लिए सबसे बडा खतरा बडे राष्ट्रो का विस्तार है । उनमे से कोई एक राष्ट्र उस हद तक बढता चला जाता है जिसे दूसरा राष्ट्र अपनी रक्षा की सीमा समझता है ।

सन् १९४५ के अन्त में रूस का आधे यूरोप, मचूरिया और उत्तरी ईरान पर सफल नियन्त्रण था । फिर भी ७ फरवरी, १९४६ को मास्को की सर्वोच्च राजनीतिक सस्था के सदस्य लाजार कागनोविच ने कहा—"हमारे देश पर अब भी पू जी-पतियो का घेरा है इसलिए संतोष की कोई गु जाइश नही । हमे इस घेरे को ढीला करना चाहिए"—अत रूस ने तुर्की की माग की और तेह-रान मे ईराका सरकार पर आधिपत्य जमाने की चेष्टा की । नए प्रदेशो पर अधिकार करने के बाद बोलशेविको को प्राप्त नए प्रदेशो को सुरक्षित बनाने के लिए दूसरे नए प्रदेशो की आवश्यकता होगी और फिर उनकी रक्षा के लिए तीसरे नए प्रदेशो की । आखिर, इस कडी का कही अन्त भी होगा ? क्या इस प्रकार अपने लाभ केलिए दूसरे देशो को हडपने की चेष्टा करने से दूसरे देशो का शकित होना और प्रत्याक्रमण करना अनिवार्य नही है !

वर्त्तमान युग में राष्ट्रीय सुरक्षा की खोज करते-करते हम अरक्षा के पास पहुच जाते है और यदि वह खोज और आगे बढाई जाती है तो युद्ध हो जाता है ।

बडे राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को जितनी ही अधिक सख्या मे निगलते हैं उतने ही अधिक छोटे राष्ट्र एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं। अन्त मे वह भी समय आयगा जब उनकी सीमाएँ एक-दूसरे को छूने लगेंगी और उनके बीच कोई दीवार खडी नही रह जायगी। इसलिए किस आधार पर हम सोच सकते हैं कि जिस शत्रुता से प्रेरित होकर ये देश अपना-अपना अधिकार-क्षेत्र अलग स्थापित करते है, वही शत्रुता उनका उस सकीर्ण बाधा के सामने जाकर खडे होने पर समाप्त हो जायगी जो उनके पूर्ण और शकित क्षेत्रो को एक-दूसरे से अलग करती है ? ऐसा सोचने के लिए हमारे पास कोई आधार नही।

परमाणु-बम के वर्त्तमान युग मे शान्ति इस बात पर निर्भर है कि तीनो बडे राष्ट्र छोटे देशो का आदर करे और उपनिवेशो को आजाद कर दें। इसका परिणाम यह होगा कि न तो तीनो बडे राष्ट्रो के सामने लूटने-खसोटने के लिए कोई वस्तु होगी न वे एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करेंगे। उस समय हम परमाणु बम को गैर कानूनी घोषित कर सकेंगे। सारे ससार के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय शासन-सस्था स्थापित कर सकेंगे और शान्ति से रह सकेंगे। राष्ट्रीय सार्वभौम सत्ता की उसी हद तक महत्ता है जिस हद तक उससे किसी दूसरे देश की राष्ट्रीय सार्वभौम सत्ता का दमन करने का काम लिया जाय। किंतु यदि किसी राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता मे हस्तक्षेप ही नही किया जायगा तो उसे सार्वभौम सत्ता की जरूरत ही क्या रह जायगी ! सार्वभौम सत्ता के अन्त का अर्थ है राष्ट्रीय सरकार की स्थापना।

न्यूयार्क की रियासत कनेक्टिकट की सार्वभौम सत्ता मे हस्तक्षेप नही कर सकती, यही कारण है कि वे दोनो एक सघ के सदस्य बनने से इकार नही करते। हाँ सघीय सरकार अवश्य ही प्रत्येक रियासत की सार्वभौम सत्ता में हस्तक्षेप कर सकती है और इस दिशा में आवश्यक परिवर्तन दसियो वर्षों तक चलते रहते है। किन्तु इन परिवर्तनो के कारण अब कोई देश सघ से अलग होने की चेष्टा नही करता।

सार्वभौम सत्ता से अरक्षा उत्पन्न होती है।

३१ अक्तूबर १९४५ को अमेरिका के विदेश-मन्त्री बर्न्स ने "न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून" के कार्यालय मे कहा था—"रूस केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप के अपने पडोसियों के साथ अधिक घनिष्ठ सम्पर्क और मैत्री स्थापित करने का जो प्रयत्न कर रहा है उसके प्रति हमने विरोध नही बल्कि सहानुभूति प्रगट की है। हमें यह अच्छी तरह से मालूम है कि इन देशो मे उसे अपनी सुरक्षा की विशेष रूप से चिंता है।" इन शब्दो द्वारा बर्न्स ने स्वीकार किया है कि

आधे यूरोप पर रूस का प्रभाव है किन्तु यह एक निरर्थक बात है। रूस अपना रक्षा किससे करना चाहता है ? अमेरिका और इग्लैण्ड से ? तो क्या अमेरिका के विदेश-मत्री रूस पर इस बात का जोर डालते है कि वह अमेरिका से अपना रक्षा करे ? क्या दूसरे शब्दो में वह स्वीकार करते है कि रूस को अमेरिका से खतरा है ? या ब्रिटेन से खतरा है ? ब्रिटेन अमेरिका की सहायता के बिना रूस मे नही लडेगा। या, जर्मना से खतरा है ? जर्मनी अब रूस के लिए खतरा नही रह गया और यदि इग्लैण्ड और अमेरिका रूस की सुरक्षा चाहते है तो वह कभी भविष्य मे भी रूस के लिए खतरा नही बन पायगा। जर्मनी का पुनर्निर्माण ता उसी समय सम्भव है जब अमेरिका और ब्रिटेन उसका रूस के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए उसे सहायता दे। किंतु यदि श्री बर्न्स को रूस की रक्षा की इतनी चिंता है तो वह उक्त कार्य के लिए जर्मनी का पुनरुत्थान नही करेंगे।

अत श्री बर्न्स के शब्दो मे कोई विश्वास की भावना उत्पन्न नही हुई। बल्कि, उन्होने अपने भाषण के दूसरे अशो मे पूर्वी यूरोप में जनतत्र कायम करने की बात कही, जिसका अभिप्राय यह था कि अमेरिका और ब्रिटेन रूस-प्रभाविन क्षेत्रो पर से रूसी अकुश को ढीला करना चाहते है। कूटनीतिज्ञो की बातो का जो अर्थ ऊपर से होता है असली मतलब अक्सर उसका उलटा होता है।

जब कि पूर्वी यूरोप के देशो मे एक ऐसी सरकार का रहना आवश्यक है जिसका रूस से मित्रता-पूर्ण सम्बध हो, तो फिर वह देश स्वतत्र कैसे हो सकता है ? मान लीजिए कि इस देश के निवासी कोई ऐसी सरकार पसन्द करते है जिसे रूस अपने लिए मैत्रीपूण नही समझता। ऐसी दशा मे सम्भवत रूस उसे अपने विशेष मताधिकार से रद्द कर देगा और किसी दूसरी सरकार की सहायता के लिए जोर देगा। इसी तरह मान लीजिए कि इस देश का विदेश-मत्री ऐसा है जिसे रूसी मित्र नही मानते। मै समझता हूँ कि निश्चय ही उसे इस्तीफा देना पडेगा। और मान लीजिए कि वह देश कोई ऐसा कर या कानून बनाता है जो रूस को विरोधात्मक प्रतीत होता है तो अवश्य ही उस कर या कानून को रद्द करना पडेगा। तो फिर उस देश की स्वतत्रता ही क्या रही ? वह किस प्रकार जनतत्रवादी हो सकता है ? उसके मामले मे तो रूस दखल देता रहेगा और उसका दैनिक जीवन तक रूस के ही आदेशानुसार सचालित होगा। अनिवार्य मित्रता दासता का ही दूसरा नाम है। बलात मित्रता करने की बात आजकल के कूटनीतिज्ञो ने साम्राज्यवाद पर परदा डालने के लिए गढी है। जो लोग इसका समर्थन करते है वे बडे राष्ट्रों के अधिकारो के पक्षपाती हैं।

रक्षात्मक घेरे, प्रभाव-क्षेत्र और साम्राज्य की बातें परमाणु-बम से पहले के युग की बातें है। इसी प्रकार सुरक्षा की बात भी उसी काल की बात है। फिर भी मानवता इस अप्राप्य सुरक्षा की प्राप्ति के लिए सम्भवत सदा खरबो रुपए और लाखो प्राण निछावर करने को तैयार रहेगी। यदि ससार के सभी देश मिलकर एक सघ की स्थापना कर ले तो सुरक्षा की प्राप्ति मे धन भी अधिक न लगे और प्राणो की भी अधिक आहुति न चढानी पडे।

मै जानता हूँ कि इस प्रयत्न के फल-स्वरूप क्या-क्या समस्याएँ खडी हो सकती है। किंतु यदि हम ऐसा नही करगे तो हमें परमाणु युद्ध का सामना करना पडेगा, जिसमे २० करोड जीव स्वाहा हो सकते है।

रूस और ससार के शेष राष्ट्रो का पारस्परिक सम्बध क्या हो, यही अतर्राष्ट्रीय सस्था की केन्द्रीय समस्या है।

: १५ :

रूस क्या चाहता है ?

वैदेशिक नीति के शीशे मे घरेलू नीति और स्थिति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, किंतु रूस अधिकाश व्यक्तियो की बुद्धि की पहुँच से बाहर है। जसा कि चर्चिल ने सन् १६३९ में कहा था, वह "रहस्य की गोद मे छिपी हुई एक पहेली है।" इसीलिए जब रूसी वैदेशिक नीति की व्याख्या करने का प्रश्न उठता है तो बोलने और लिखने वाले आलोचक उस सत्य के बदले, जो उन्हे प्राप्त नही होता या जिसका वे सामना नही करना चाहते, 'तर्क' से काम लेते है। वे कहते है कि—"रूस एक विशाल देश है—इसलिए स्पष्टत उसे और साम्राज्य की आवश्यकता नही।" किंतु वे भूल जाते है कि बडा होते हुए भी रूस ने सन् १९३९ और १९४० मे बाल्टिक राज्यो और फिनलैण्ड, पोलैण्ड तथा बालकान के प्रदेशो को हथियाया, सन् १६४५ मे चेकोस्लावेकिया, जर्मनी और जापान के प्रदेशो पर हाथ मारा और सन् १९४६ में तुर्की तथा भूमध्य सागर के अड्डो की माग की। आलोचक कहते है कि रूस अब अपना सारा ध्यान युद्धोत्तर-निर्माण पर लगा रहा है और उसे विदेशो मे विस्तार की इच्छा नही। वे भूल जाते है कि ये विदेश रूसी पुनर्निर्माण के लिए सामान और यत्र के बडे उपयोगी साधन बन सकते है।

रूसी वैदेशिक नीति का प्रथम उद्देश्य है रूस और यूक्रेन की राष्ट्रीयता का स्थापना और स्लाव जाति की रक्षा। कभी पहले रूस में अतर्राष्ट्रीयता का बोल बाला था। बोलशविज्म ने बताया था कि व्यक्ति के जीवन में असली महत्त्व की बात उसकी आर्थिक और सामाजिक मर्यादा है न कि सिर का रूप, या चमडे का रग, या जन्म-स्थान। उदाहरणार्थ, सोवियत् पथ मे इस बात पर जोर दिया गया था कि यूक्रेन के मजदूर यूक्रेनियन पूजीवादियो की अपेक्षा इटैलियन या चीनी मजदूरो के अधिक निकट है। रूसी शिक्षा का उद्देश्य यूक्रेनी मजदूरो को राष्ट्रीय न बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय बनाना था। मै अपने में और अमेरिका के एक फासिस्टवादी में उतनी समानता नही पाता जितनी कि अपने मे और स्पेन

के एक फाशिस्ट-विरोधी या भारत के एक समाज-सुधारक में ।

जब रूस की घरेलू नीति अन्तर्राष्ट्रीयता की थी तो उसकी वैदेशिक नीति भी स्वभावतः ऐसी ही थी और रूस के भूतपूर्व विदेश मंत्री लिटविनाव सदा सामूहिक रक्षा के लिए अपील किया करते थे ।

सन् १९३५ तक रूसी विचार धारा मे जातीय या राष्ट्रीय श्रेष्ठता का कोई स्थान नही था । किन्तु उसके बाद एक नया प्रवाह—रूसी राष्ट्रीयता का-बहा । मैंने अपनी "मनुष्य और राजनीति" (मैन एन्ड पालिटिक्स) नामक पुस्तक मे, जो सन् १९४१ में प्रकाशित हुई थी, रूसी राष्ट्रवाद के विकास पर प्रकाश डाला था । उसके बाद से रूसी सरकार ने न केवल पूरे उत्साह और बल के साथ रूसी राष्ट्रवाद का ही भरण-पोषण किया है, बल्कि यूक्रेनी राष्ट्रवाद और स्लाव की जातीयता की भावना का भी समर्थन किया है । जातीयता की यह भावना साम्यवाद, समाजवाद, बोल्शेविज्म और सोवियत् रूस की पूर्वकालीन लेनिनवादी प्रवृत्तियों के बुनियादी तत्त्वों के बिलकुल विपरीत है । यह एक प्रतिगामी प्रवृत्ति है

२४ मई सन् १९४५ को स्टालिन ने क्रेमलिन के एक भोज मे कहा—"सबसे पहले मैं रूसी जनता के स्वास्थ्य के नाम पर शराब पीता हू क्योंकि सोवियत् संघ के अन्तर्गत वही सबसे श्रेष्ठ राष्ट्र है और इस युद्ध मे उसने सोवियत् संघ के सभी राष्ट्रो में प्रमुख कहलाने की ख्याति प्राप्त की है । पी० डब्ल्यू०एच० लॉरेन्स ने, जो मास्को मे "न्यूयार्क टाइम्स" के सम्वाददाता थे, अभी कुछ ही दिन हुए "टाइम्स" मे लिखा था कि इस वक्तव्य से यहूदियों में खलबली मच गई ।

आज से ८ या १० साल पहले भोजन के समय इस प्रकार के वक्तव्य असम्भव थे । उन दिनो किसी जाति को सोवियत् रूस का मुख्य राष्ट्र कहना बोलशविक सिद्धान्तो के प्रतिकूल माना जाता था । सभी राष्ट्र बराबर थे, न कोई प्रमुख था न कोई गौण । जब इनमे से एक प्रमुख बन जाता है तभी शेष गौण ।

"रूस" शब्द का प्रयोग तो सुविधा मात्र के लिए किया जाता है । "रूस" का अर्थ रूस से नही बल्कि सोवियत् संघ से है । रूसी तो सोवियत् संघ के केवल ५४ प्रतिशत अंग है । शेष व्यक्ति कालमक, बुरियात, तुर्कमान, जार्जियन आरमेनियन, ओस्सेटियन आदि लगभग १२० जातियों के है । बोलशेविक इस बात की डींग हांका करते थे कि वे इन जातियों मे भेद-भाव नही करते, जाति किसी को ऊंचा नही उठाती । किसी भी राष्ट्र का विशेष स्थान नही ।

किन्तु अब रूसी राष्ट्र सोवियत् संघ का प्रमुख राष्ट्र है ।

६ नवम्बर १९४५ को रूस के विदेश-मंत्री मोलोटोव ने कहा—"रूस

पर आक्रमण करके हिटलर ने केवल हमारी भूमि पर अधिकार करना नही चाहा था, बल्कि हिटलरवादियो ने घोषणा की कि उनका उद्देश्य रूसी जनता और साधारणत समस्त स्लाव जाति का अन्त कर देने का है।" यदि यही बात मोलोटोव को ऐसी ही परिस्थितियो मे दस वर्ष पहले कहनी होती तो वह कहते कि जर्मनी ने बोलशेविक क्राति और साम्यवाद को कुचलना चाहा था।

बोलशेविक क्राति मे यही सबसे बडा परिवर्तन है। उससे सोवियत् शासन-प्रणाली की सारी रूपरेखा ही बदल गई है। इस समय रूसी राष्ट्रवाद से स्लाव जातिवाद की ओर और स्लाव जातिवाद से साम्राज्यवाद का स्वाभाविक प्रवाह चल रहा है।

जब रूस मे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना थी तो बोलशेविक जाति को श्रेणी से उच्च समझने वाले उन नाजियो से बिलकुल भिन्न थे जो जातीयता को इसलिए प्रोत्साहन देते थे कि उससे राष्ट्रीयता का उन्माद पैदा हो जाय और श्रेणी-युद्ध समाप्त हो जाय। राष्ट्रीयता के उन्माद ने हिटलर के आक्रमण रूपी इजिन मे कोयले का काम किया। उसने कहना शुरू किया कि वरसाई की सधि मे जर्मनी का अग-भग कर दिया गया था। बाद मे उसने आस्ट्रियन और चेकोस्लोवाक प्रदेशो की माग की, जो असल में जर्मनी के नही थे, किंतु जिनके निवासी जर्मन थे। इनके बाद वह उन प्रदेशो को जीतने बढा जिनके निवासी भी जर्मन नही थे।

शक्तिमान् राष्ट्रवाद को भोजन की आवश्यकता होती है और वह भोजन है "भूमि"।

वह कौन-सी वस्तु थी जिसने स्टालिन को रूसी और यूक्रेनी राष्ट्रवाद तथा स्लाव जातिवाद का विकास करने के लिए प्रेरित किया? सोवियत् शासन-सत्ता ने सदा ही रूसी और यूक्रेनी राष्ट्रवाद के विरुद्ध युद्ध किया था। यूक्रेन के कितने ही राष्ट्रवादियो को निकाल बाहर करने में खून की नदियाँ बहाई गई थी। इनमे से कुछ कम्युनिस्ट भी थे। इस शताब्दी के दूसरे और तीसरे शतको के रूसी समाचारपत्रो मे इस घटना का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि २ करोड ८० लाख सोवियत् यूक्रेनियो में राष्ट्रीयता की कितनी प्रबल भावना थी। आर्थिक कठिनाइयो और यूक्रेन के १९३२-३३ के दुर्भिक्ष की नीव मास्को निवासियो के द्वार पर पडी थी और उससे राष्ट्रवाद की भावना को बडा पोषण मिला था। यूक्रेनी राष्ट्रवाद को कुचलने में सफल न हो सकने के कारण स्टालिन ने उसके प्रति मित्रता प्रकट की। वह यूक्रेनियन राष्ट्र मे एक सुनहरा युग लाना चाहते है। अब पोलैण्ड,

चेकोस्लोवेकिया और रूमानिया मे यूक्रेनी नही रहेगे। अब स्टालिन उन सबको सोवियत् झडे के नीचे एकता के सूत्र मे बॉध देगे। एक यही बात एसी है जिसे हम स्टालिन द्वारा चेकोस्लोवेकिया के कारपेंथो-रूस या कारपेंथो यूक्रेन के प्रदेशो पर अधिकार किये जाने का कारण मान सकते है। रूस के सरकारी सूत्रो का कहना है कि इन क्षेत्रो में ७ लाख २५ हजार व्यक्ति रहते है, जिनमे से ६५ प्रतिशत यूक्रेनी है। जार के समय मे ये क्षेत्र रूस के अन्तर्गत नही थे। चेकोस्लोवेकिया ने कभी सोवियत् रूस के विरुद्ध किसी प्रकार के वैर की भावना या आक्रमण की इच्छा नही रखी। इसके विपरीत उसने सदा ही रूस से मित्रता रखनी चाही। कोई भी देश कारपेथियन पहाडो को पार कर रूस पर आक्रमण नही कर सकता था। फिर भी सन् १९४३ मे मास्को ने कारपेंथो-रूस का प्रश्न उठाया। चेकोस्लोवेकिया के अध्यक्ष बेनेश जब वाशिगटन मे ब्लेयर भवन मे ठहरे हुए थे तो मै उनसे १७ मई १९४३ को मिला। उन्होने मुझे बताया कि वह रूसियो को कारपेथियनो के छोटे पिछडे हुए प्रदेश पर अधिकार न करने के लिए प्रेरित करने मे सफल हो गए है। बेनेश ने स्टालिन की महती आकाक्षाओ को पूर्ण रूप से समझने मे भूल की। २९ जून १९४५ को रूस ने कारपेंथो-रूस पर अधिकार कर लिया।

यूक्रनियो को स्टालिन ने कुछ हिस्सा पोलैण्ड का, कुछ चेकोस्लोवेकिया का और कुछ रूमानिया का दिया और इस प्रकार उनकी स्वामि-भक्ति प्राप्त करने की आशा की। महान् रूसियो को उन्होने बाल्टिक राज्य, फिनलैण्ड का कुछ भाग और शक्तिशाली रूस का विस्तृत भूखण्ड दिया। काकेशिया मे अजरबैजानियो को वह ईरान का निकटवर्ती प्रदेश अजरबैजान देना चाहते है। और आरमेनियनो के लिए वह पास का तुर्क प्रान्त मागना चाहते है।

रूस का विस्तार केवल स्लाव-प्रधान क्षेत्रो मे ही सीमित नही है। किन्तु रूस की नीति है कि यूरोप के स्लाव भागो का विशेष रूप मे ध्यान रखा जाय। जब सोवियत् सघ का दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था तो उसका नारा था—"सारे ससार के मजदूरो, एक मे मिल जाओ।" अब वह स्लावो को भी एकता के सूत्र मे बॉधना चाहता है। दूसरे विश्व युद्ध के दिनो मे मास्को मे कितना ही स्लाव काग्रेसो के अधिवेशन हुए, जिनमे अनेक देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। किंतु युद्ध-काल मे मजदूर काग्रेस या ट्रेड यूनियन काग्रेस की कोई भी बैठक मास्को मे नही हुई। स्लाव काग्रेसो मे इस बात पर जोर दिया गया कि रूस और पूर्वी यूरोप के स्लाव देशो का पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिए और इस प्रकार रूस की उस पूर्वी गुटबन्दी के निर्माण का

पूर्वाभास मिला जिसके कारण ग्रेट ब्रिटेन, फ्रास और अमेरिका के साथ रूस के सम्बन्ध मे गडबडी पैदा हो गई है। किंतु स्टालिन अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी मित्र या शत्रु को क्रुद्ध करने या आवश्यकता पडने पर, नष्ट तक कर देने मे हिचकिचाहट नही दिखाते।

रूसी अधिकारी उन राष्ट्रवादी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन दे रहे थे जो क्राति के बाद भी कुछ व्यक्तियो मे शेष रह गई थी। साथ-ही-साथ वे क्राति-काल में मृत-प्राय पडे हुए राष्ट्रीय भावो को जाग्रत कर सोवियत् सघ की नई पीढी के लोगो के मस्तिष्क और हृदय मे घुसने की चेष्टा कर रहे थे। सोवियत् सघ में अब अधिकत. इसी पीढी के लोग है जिन्हे पहले कभी राष्ट्रवाद का ज्ञान नही था और जो अन्तर्राष्ट्रीयता के ही वातावरण मे पाले-पोसे गए थे।

राष्ट्रवादी भावनाओ के कारण पदार्थिक आवश्यकताओ की अपूर्ति की ओर से ध्यान हट जाता है।

पचवर्षीय योजना के दिनो मे रूसियो ने कितने ही नए शहर और बडे-बडे औद्योगिक कारखाने बनाये, जिनके उत्पादन से नाज़ियो को हराने में सहायता मिला। वहा पर हथियार बनाने वाली मशीनो का एक उद्योग खडा कर दिया गया है, विद्युत्-शक्ति का एक जाल-सा फैला दिया गया है, लोहे और इस्पात के नए-नए कारखाने खोले गए है, अल्यूमुनियम का भी एक उद्योग आरम्भ हो गया है, यातायात के साधनो मे सुधार किया गया है, धातु और खनिज सम्बन्धी छुट-पुट साधनो के आविष्कार किये गये है और उनका प्रयोग भी किया जा रहा है और हज़ारो स्त्री-पुरुषो को विशेष यान्त्रिक शिक्षा दी जा रही है। इन बातो के फलस्वरूप भावी उन्नति के लिए एक व्यावसायिक अड्डा-सा स्थापित हो गया है। इनके अलावा कृषि-कार्य को सामूहिक रूप प्रदान किया गया है। जब से यूरोप के नौकरी पेशा करने वाले किसान बने। तब के बाद से यह कृषि-सम्बन्धी पहला सुधार है।

किन्तु इन महान् ऐतिहासिक परिवर्तनो से अभी रूस के व्यक्तिगत निवासियो को कोई ठोस लाभ नही हुआ है। वहाँ की जनता का जीवन-मान पूर्वीय यूरोपियन आदर्श की अपेक्षा अब भी नीचे गिरा हुआ है। सोवियत् नागरिको को अपनी मेहनत के अनुकूल मजदूरी नही मिलेगी। उनकी मेहनत और मजदूरी मे जो अन्तर है उससे हमे नये उद्योगो, शस्त्रो के निर्माण और सरकारी नौकरियो पर खर्च किये जाने वाले धन का आभास मिलता है। किसी-न-किसी को तो कीमत देनी ही पडती है। यह कीमत जनता देती है और जनता ही दुःख भी उठाती है।

रूसी प्रचारक इस स्थिति को स्वीकार करते है, किंतु उनका कहना है कि इससे राष्ट्र को लाभ हो रहा है, इमसे राष्ट्र के लोगो मे अभिमान की भावना जाग्रत हुई है। किन्तु रूसी सरकार यह नही समझता कि बोलशेविक क्रान्ति या सोवियत् शासन प्रणाली के प्रति अभिमान उत्पन्न होने से दिन-प्रति-दिन होने वाले खर्चो के औचित्य का समर्थन किया जा सकता है। यह सोच-कर कि क्रान्ति का उत्साह ठडा पड गया है, जनता को राष्ट्रवाद के रूप मे एक नई प्रेरणा दी गई। जब एक बार यह प्रेरणा दे दी गई तो उसका पोषण करना आवश्यक था। रूसी विस्तार का यह सबसे पहला लक्ष्य है।

अब जब कि युद्ध जीता जा चुका है, रूस के सामने अपने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने और अपने भग्न भवनो को फिर से बनाने का अभूतपूर्व कार्य है। रूस के अधिक-से-अधिक भीतरी भाग मे घुस चुकने पर जर्मन-सेना के अधिकार मे जितनी रूसी भूमि थी वह जर्मनी के वर्गक्षेत्र से तिगुनी बडी थी। वह भूमि सोवियत् सघ की सबसे अधिक धन-धान्यपूर्ण और उन्नत भूमि थी। लाखो जर्मन और रूसी सैनिको के पदाक्रमण के बाद भी जो वस्तुएँ नष्ट होकर धूल नही बन गई थीं, उन्हे नाजियो ने जान-बूझकर नष्ट कर डाला। जो वस्तु थोडे ही दिन पहले अत्यधिक व्यय से बनाई जाती है उसे फिर से बनाना एक कठिन कार्य है। आजकल एक बार फिर रूसी नागरिको को कम भोजन, कम कपडा और कम स्थान से सतुष्ट रहकर और अधिक मेहनत करके अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का मूल्य चुकाना पड रहा है।

सन् १९१६ के बाद से रूसी जितना श्रम करते आये है उसे बाहर-वाले बहुत ही कम समझ सकते है। पिछले ३० वर्षों से बहुत ही कम व्यक्तियो के जीवन में ऐसे क्षण आये होगे जिन्हे उन्होने साधारण सुख-चैन से बिताया हो। कुछ गिने-चुने लोगो को छोडकर शेष सभी लोगो का जीवन लगातार कार्य या त्याग से भरा रहा। लोगो को खाना कम मिला और अन्न के लिए लम्बी लाइनो में खडा रहना पडा। अब, जब कि वह क्रान्तिपूर्ण युग बीत चुका है और रक्तपातपूर्ण युद्ध भी समाप्त हो गया है, सोवियत् जनता को एक बार फिर बोझ उठाना है और आर्थिक दृष्टि से अपने देश को स्वावलम्बी बनाना है। स्वभावत सोवियत् सरकार पुन निर्माण की अवधि को छोटा करना चाहती है और जनता पर उसके मूल्य का भार कम-से-कम डालना चाहती है। कैसे ? केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप और मचूरिया की आर्थिक व्यवस्था को रूस की आर्थिक व्यवस्था मे मिलाकर, ताकि उनके औद्योगिक प्रबन्ध, कच्चे

माल और मानवी साधनो से रूसी आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सके। यही कारण है कि रूस आस्ट्रिया और रूमानिया के तेल पर नियत्रण प्राप्त करना चाहता है और साथ-ही साथ हगरी के व्यवसाय और कृषि, चेकोस्लोवेकिया की फैक्टरियो, यूगोस्लाविया की खानो और यूरोप के रूस प्रभावित क्षेत्रो मे रहने वाले १५ करोड प्राणियो के आर्थिक जीवन पर भी अधिकार प्राप्त करना चाहता है। सोवियत् वैदेशिक नीति का यह दूसरा उद्देश्य है।

तीसरा उद्देश्य अवसर है। जर्मनी और इटली के हार जाने से और फ्रास की दुर्बलता के कारण एशिया मे, विशेष रूप से चीन मे, शक्ति का एक बहुत बडा शून्य पैदा हो गया है। प्रकृति की भाति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी शून्य पसद नही करती। इसीलिए तीनो बडे राष्ट्रो मे से प्रत्येक या तो इस शून्य के अधिक-से-अधिक भाग पर अधिकार करना चाहता है या कम-से-कम शेष दो को इस पर अधिकार करने से रोकना चाहता है। यही तीनो बडे राष्ट्रो की लडाई की जड है। एक दूसरे के प्रति उलहना देने से यह लडाई रुक नही सकता। आज अन्तर्राष्ट्रीय मामलो के आगन मे एक ऐसा पुरस्कार पडा दिखाई दे रहा है जो पिछले दसियो सालो से राष्ट्रो को लुभानेवाले सभी पुरस्कारो से बहुमूल्य है। अत आश्चर्य ही क्या यदि प्रतिस्पर्द्धा अधिक हो।

तीनो पराजित महान् राष्ट्रो—जर्मनी, जापान और इटली—के समाप्त हो जाने से तीनो विजयी महान् राष्ट्रो—रूस, अमेरिका और ब्रिटेन- -को विस्तार का अद्वितीय मार्ग मिल गया है। दुर्बल राष्ट्रो की क्लान्ति और निस्सहायता के कारण हडपने और प्रभुता प्राप्त करने की प्रवृत्ति और भी बढ गई है।

रूसियो, उनके विदेशी साथियों और अनेक अमेरिकनो और अग्रेजो ने भी, जो शक्ति-सतुलन द्वारा शान्ति स्थापित करने मे विश्वास रखते है, मूलत आशा की थी कि द्वितीय विश्व-युद्ध मे लूटी गई सम्पत्ति तीनो बडे राष्ट्रो मे मित्रतापूर्वक बाँट दी जायगी, तीनो का प्रभाव क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित कर दिया जायगा और उनमे कोई झगडे की बात नही रह जायगी। उन्होंने यह भी आशा की थी कि लूटी हुई सम्पत्ति के इस विभाजन के आधार पर एक ऐसा युद्धोत्तर समझौता होगा जिसे अक्षुण्ण रखने मे तीनो बडे राष्ट्रो को दिलचस्पी होगी।

किंतु घटनाओ ने बिलकुल ही भिन्न रूप धारण किया। स्टालिन ने यूरोप में झाँककर देखा कि किसी में उसे रोकने की सामर्थ्य नही। इसलिए उसने अपने अक मे बहुत से छोटे छोटे देश बाँध लिये। अब ब्रिटेन, फ्रास और अमेरिका यह महसूस कर रहे है कि रूस ने यूरोपीय शून्य का अधिकाश भाग

हडप लिया है और उसे अपने बिच्छुओ से भर दिया है । इसी प्रकार रूस अनुभव कर रहा है कि अमेरिका ने एशियाई शून्य के अधिकारो पर अधिकार कर लिया है । फिर भी अमेरिका को रूस के चीन विषयक और प्रशान्त के थल और जल क्षेत्रो से सम्बन्ध रखने वाले आयोजनो पर शका है । शून्य मे समानता कायम रखना मुश्किल है, किंतु चूकि शक्ति का सतुलन असम्भव है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र अधिक-से अधिक शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है ।

निश्चय ही तीनो बडे राष्ट्र अपने-अपने मत-भदो को मिटाने और सहन करने की चेष्टा करते रहेगे । वे युद्ध नही चाहते । वे मोल-भाव करके समझौता कर लेगे । विश्व-शान्ति के लिए यह एक बडा ही सकटपूर्ण आधार है ।

इग्लैड, जो कि तीनो मे सबसे कमजोर है, अपने अधिकार अलग बनाये रखना चाहता है । उसे रूसी आक्रमण का भय है अमेरिका और रूस एशिया मे अधिकार प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे के साथ स्पर्द्धा कर रहे है ।

अवसर ने रूसी सरकार के दरवाजे को थपथपाया । यह अवसर रूसी शक्ति को बढाने का था, प्रलोभन रोका नही जा सकता था ।

रूस वही कर रहा है जो अतीत मे दूसरे राष्ट्रो ने किया था । अन्तर्राष्ट्रीयतावादी लेनिन ने सन् १९२१ मे पोलैण्ड को इतनी भूमि दे दी जितनी उसने मॉंगी नही थी । उन्होने सहर्ष फिनलैण्ड और तीन बाल्टिक राज्यो की स्वतत्रता स्वीकार कर ली । उन्होने अफगानिस्तान को भूमि के कुछ टुकडे दिये और चीन से अपने अधिकार और सम्पत्तिया हटा ली । जारो ने ईरान से जो तेल और दूसरी सुविधाएँ ली थी उन्हें लेनिन ने ईरान को वापस कर दिया । उन्होने तुर्की से मित्रता की । उन्हे स्लावो का कोई समूह बनाने मे दिलचस्पी नही थी । वह एक क्राति की रचना कर रहे थे, साम्राज्य का निर्माण नही । लेकिन अब लोग रूस मे लेनिन को भूलते जा रहे है ।

नापने के लिए एक निश्चित नाप का होना आवश्यक है । रेखा, क्षेत्र, वजन और गरमी-सरदी का मान वैज्ञानिको द्वारा निश्चित किया जाता है। अपना नैतिक और राजनीतिक मान प्रत्येक व्यक्ति स्वय निश्चित करता है । यह काम वह अपनी व्यक्तिगत, धार्मिक और आध्यात्मिक प्रकृतियो के अनुसार करता है । उच्चता का आदर्श वह या तो ईश्वर को मानता है या सिद्धान्तो को । किन्तु यदि उसका उच्चता का आदर्श कोई जिमीदार या सरकार होता है तो उसकी तोल गडबडा जाती है या दूसरे शब्दो मे यो कहिये कि घटनाओ और विचारो के सम्बन्ध मे उसका निर्णय विकृत बन जाता है, क्योकि सभी स्त्री-पुरुष अपने सिद्धान्तो और आध्यात्मिक विचारो से डिगते रहते है । कोई भी

राजनीतिक शास्त्र, कोई भी मनुष्य ऐसा नही, जिससे चूक न हो । अत जब एक कम्युनिस्ट यह कहता है कि सोवियत् सरकार कभी गलती नही करती, या स्टालिन सदा ही ठीक काम करता है और वह इसी मान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु को आँकता ह तो निश्चय ही वह सीधे ढग से देख या साच नही सकता, वह नाप नही सकता । सभी देश, सभी सरकारे, सभी नेता गम्भीर भूले करते है । इसका प्रमाण हमे हर सुबह समाचारपत्रो में मिलता है ।

सन् १९४५ मे अर्जन्टाइना सयुक्त राष्ट्रो मे सम्मिलित किया गया तो सोवियत् सरकार और उसके विदेशी समर्थको ने इस कार्य की निन्दा की। उन्होने कहा कि फाशिस्ट शासन-सस्थाओ से कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए । किंतु जब जून, १९४६ मे सोवियत् सरकार ने पेरन की तानाशाही को स्वीकार किया और उसके साथ कूटनीतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित किया तो किसी भी कम्युनिस्ट ने सोवियत् सरकार की बुराई नही की । उनके पास नापने-तोलने का कोई निश्चित मान नही है । यही अवसरवादिता कहलाती है । इसका मतलब यह है कि सोवियत् सरकार जो कुछ भी करती है, ठीक ही करती है, चाहे हिटलर के साथ गुटबन्दी हो, चाहे पेरन के साथ समझौता, चाहे सैनिक कार्रवाई हो, चाहे आतक-प्रसार । नाप-तोल के ऐसे मानो के रहते हुए निर्णयो के निरर्थक बन जाने की सम्भावना रहती है ।

: १६ :

क्रान्ति का क्या हुआ ?

क्रान्ति बीते कल की चिता नही करती। वह तो और वर्त्तमान कार्यों की उपेक्षा कर आगामी कल की ओर प्रभावित होती है। क्रान्ति एक 'नया आरम्भ' है। अतीत का विरोध ही उसका मूल-तत्व है। बोलशेविक क्रान्ति परम्परागत काली जारशाही पर आक्रमण थी। यही उसका औचित्य था, यही उसकी प्रेरणा थी और यही उसका कार्य था।

कार्ल मार्क्स और पीटर महान् के सिद्धान्तो के बीच जो सघर्ष चलता रहा है वही बोलशेविक क्रान्ति है। वह रूस के अतीत और कम्युनिस्टवादी भविष्य का पारस्परिक सग्राम है। इस सघर्ष में नये को पुराने के विरोध का सामना करना पडा। कभी मार्क्स की जीत रही तो फिर कभी पीटर की विजय हुई और मार्क्स उसका बदी बन गया। किंतु महत्त्वपूर्ण मामलो मे पीटर और मार्क्स दोनो एक दूसरे से सहमत थे, दोनो तानाशाही के समर्थक थे। इधर कुछ दिनो से तो वे उस राक्षस का आकार ग्रहण करते आ रहे है, जिसका शरीर एक होता है किन्तु जिसके कन्धे पर दो भिन्न-भिन्न सिर होते है। कुछ लोग मार्क्स को देखते है, कुछ पीटर को। इससे भ्रान्ति पैदा हो जाती है।

सोवियत् रूस न तो शुद्ध रूप से मार्क्सवादी है न शुद्ध रूप से पीटर का अनुगामी। दोनो के मिश्रण ने एक बिलकुल ही भिन्न वस्तु उत्पन्न कर दी है, जो अभूतपूर्व होती हुई भी बिलकुल स्पष्ट है।

सोवियत् रूस मे दुर्भाग्यवश लोकमत अक्सर घटनाओ से बहुत पिछडा हुआ है, यहा तक कि १० वर्ष तक पिछडा हुआ रहा है। सन् १९२९ के आस-पास मास्को के विदेशी सवाददाताओ ने, जिनमें एक मैं भी था, यह रिपोर्ट देनी आरम्भ की कि रूस उद्योगो का निर्माण कर रहा है और शक्तिशाली बन रहा है। इसे लोगो ने प्रचार कहकर टाल दिया। कभी कभी प्रचार वह सत्य होता है जो हमारे उसे ग्रहण करने के लिए तैयार होने से काफी पहले ही कह दिया जाता है। जब सम्वाददाताओ ने समय से दस साल पहले लिखा कि रूस बल-

वान बनता जा रहा है तो लोगो ने उसे प्रचार कहकर पुकारा। किंतु जब यही बात दस साल देर करने के बाद राजदूत जोसेफ ई०डेविस ने अपनी "मास्को यात्रा" (मिशन टू मास्को) नामक पुस्तक में लिखी तो उनकी पुस्तक हाथो-हाथ बिकने लगी।

आज भी हम उन महान् घटनाओ के समझ सकने मे ८ या १० वर्ष पीछे है जो इस समय सोवियत् रूस के भीतर घर कर रही है और जिनसे उसकी शासन-प्रणाली का रूप ही बदलता जा रहा है।

शासन-सस्थाए नेता और पार्टियाँ अक्सर बदलती रहती है। नैपोलियन ने अपना जीवन एक क्रान्तिकारी सैनिक-योद्धा के रूप मे आरम्भ किया बाद मे वह बादशाह बन गया। मुसोलिनी पहले-पहल एक वामपक्षी समाजवादी था। बाद मे वह राष्ट्रवादी बन गया और ऐसा कर उसने फाशिस्टवाद की ओर एक कदम उठाया। शासन सस्था रूपी हवाई जहाज के चालक अक्सर अपने सिद्धान्तो को उठाकर फेक देते है ताकि दूसरे बोझ के लिए स्थान खाली हो जाय। फिर भी वे अपने सिद्धान्तो का नाममात्र के लिए राग जरूर अलापते रहते है।

किसी देश की असलियत उसके सरकारी वक्तव्यो मे दिखाई नही देती। एक बार कार्ल मार्क्स ने कहा था कि जहाँ एक गृहस्थिनी दुकानदार की बातो में विश्वास न कर मुर्गी के बच्चो को स्वय परीक्षा करके देखती है, वहाँ इतिहासकार और पत्रकार सरकार की बाते सत्य मान लेते है। यदि मार्क्स को आधुनिक पत्रकारो को सलाह देनी होती तो वह कहते कि सरकार द्वारा दिये जाने वाले 'मुर्गी के बच्चो' को सोच-समझ कर लो।

रूस के नेताओ और उसका अधिकाश भूमि तक बाहर वालो की पहुँच नही होती। फिर भी उसमें हमें जो रहस्य दिखाई देता है उसका कारण अज्ञान नही बल्कि भविष्य को समझ सकने की असमर्थता है। यह नही कि हम नही जानते कि रूस क्या है बल्कि यह कि हमें पता नही कि रूस क्या करेगा। उसके रहस्यमय होने का यही कारण है। सभी तानाशाही देश रहस्यमय होते है क्योकि तानाशाहो को रोकने वाला कोई लोकमत नही होता और किसी स्वतंत्र समाचार पत्र मे उसकी पोल नही खोली जाती।

रूस कोई रहस्य नही है। यदि कोई व्यक्ति ईमानदारी के साथ उसकी नीति की व्याख्या करना चाहे तो उसे रूसी पुस्तको आदि में इसके लिए सब आवश्यक सामग्री मिल सकती है। इसके अलावा हम सोवियत् सरकार के भिन्न-भिन्न कार्यों से भी उसके सम्बध मे निष्कर्ष निकाल सकते है।

सोवियत् रूस के सम्बध में सभी बुनियादी बातें उपलब्ध है और आसानी

मे समझी जा सकती है।

रूस मे सारी पूंजी सरकार की होती है। सोवियत् का कोई भी निवासी न जमीन खरीद सकता, न बेच सकता, न रख ही सकता है। वहाँ सब जमीन सरकार की है। किसी रूसी किसान के पास न अपना घोडा होता है, न बैल, न हल, न ट्रैक्टर। ये उत्पादन के साधन पूंजी है, इसीलिए उन पर सरकार का अधिकार होता है। देश की सभी फैक्टरियो, रेल की सडको, तेल के खेतो, खानो, सार्वजनिक उपयोग के साधनो समाचारपत्रो, छापेखानो, फुटकर और थोक बिक्री की दुकानो, सौन्दर्य-सामग्री की दुकानो, नाइयो की दुकानो, होटलो, भोजनालयो, हवाईजहाजो और यातायात के साधनो पर सरकार का अधिकार है और वही इनका सचालन करती है। साराश यह कि वे सब रूसी पदार्थ, जिनसे धन कमाया जा सकता है, सरकारी नियत्रण मे है।

लोग व्यक्तिगत रूप से घडी, सूट, पुस्तकालय, घर, गरमी के दिनो के लिए बगला और मोटर भी रख सकते है। यद्यपि रूस इतना निर्धन है कि वहाँ शायद २०० से अधिक व्यक्तियो के पास निजी मोटरे नही है। किन्तु अगर कोई मोटर को टैक्सी की तरह इस्तेमाल करे यानी उससे रुपया कमाये तो वह पूंजी बन जाती है और रूसी जनता को पूंजी रखने को कानूनी अधिकार नही। वहाँ के नागरिक अपने या परिवार के लिए धन या व्यक्तिगत सम्पत्ति रख सकते है किन्तु उसका वे पूजी के रूप में उपयोग नही कर सकते।

रूस की सरकार रूस का एकमात्र पूजीपति है। आज रूस मे हमेशा से ज्यादा सामूहिकता है और उडती नजर डालने वाले प्रेक्षक चाहे कुछ भी कहे, रूस म पूंजी पर से सरकारी अधिकार के हटने की कोई प्रवृत्ति दिखाई नही देती।

प्राइवेट पूंजीवाद के विरोधी प्राइवेट पूंजीवाद में अनेक बुराइयाँ बताते हैं और उनका कहना ठीक भी है, लेकिन इसका यह मतलब नही है कि प्राइवेट पूंजीवाद के समाप्त हो जाने पर कोई नई बुराई पैदा ही नही हो सकती।

सोवियत् बुराइयो का एक कारण उसका कार्य-प्रलोभन है। बोलशेविक कितने ही निरर्थक प्रलोभन उत्पन्न करते रहते है, जैसे राष्ट्र की सेवा और किसी हित के लिए मर मिटना। निस्सन्देह इन बातो का प्रभाव पडता है। इसके अलावा रूसी पदक, प्रचार और पुरस्कारो का प्रलोभन देकर नागरिको को कार्य करने के लिए उत्साहित करते है। किंतु रूस मे तीन प्रलोभन मुख्य है और वे सभी व्यावहारिक है। ये है—वेतन, विशेष अधिकार और शक्ति।

सोवियत् सरकार हमेशा भिन्न-भिन्न प्रकार के कामो के लिए भिन्न-

भिन्न पारिश्रमिक देता रहा है। यदि किसी व्यक्ति मे अधिक योग्यता होती है या वह काम को अधिक अच्छी तरह से सीखे हुए होता है या उसमे कोई विशेष प्रतिभा होती है तो उसे इसका विशेष पुरस्कार मिलता है। किंतु इधर कुछ सालो से सबसे अधिक और सबसे कम वेतन पानेवाले व्यक्तियो मे अंतर बढ गया है। १८ मार्च १९४६ को अमेरिकन समाचार पत्रो मे प्रकाशित एक रिपोर्ट में, जो रूस गये हुए एक प्रतिनिधि-मण्डल ने भी और जो पूरी तरह से रूस के पक्ष मे है, बताया गया है कि वहाँ के मजदूरो को एक प्रतिरूपक फैक्टरी मे तीन सौ से लेकर तीन हजार रूबल तक मिलते है।

आजकल रूस म रुपए के प्रलोभन पर अधिक-से-अधिक जोर दिया जा रहा है। कुछ नगण्य उदाहरणो को छोडकर, उद्योगो मे काम करने वाले मजदूरो और किसानो को काम के हिसाब से वेतन मिलता है। कारखानो के मैनेजर और खानो के डाइरेक्टर सरकारी कारोबार के उत्पादन मे जितनी वृद्धि करते है उसके लिए उन्हे उसी हिसाब से प्रतिशत बोनस मिलता है। युद्ध के दिनो में हवाई छतरी से उतरने वाले एक रूसी सैनिक को हर बार युद्ध के लिए कूदने पर एक महीने की अलग तनख्वाह मिलती थी। किसी उच्च-सैनिक अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर उसके परिवार को सरकार से बडा जबर्दस्त भत्ता मिलता है। उदाहरण के लिए २७ फरवरी १९४२ को मेजर जनरल लेवाशेव के परिवार को और १२ मार्च १९४२ को वाइस कमिश्नर कार्टूरोव के परिवार को बीस-बीस रूबलो की रकमे मजूर की गई और इसके अलावा मृत अफसर की पत्नी को पाँच सौ रूबल और उसके प्रत्येक बच्चे को तीन सौ रूबल की माहवारी पेंशन दी गई (यह स्मरण रखने योग्य बात है कि रूस के एक साधारण मजदूर को फी महीने पाँच सौ रूबल मिलते है।) यह दो फुटकर उदाहरण है जो रूस के दैनिक समाचार पत्रो से ले लिये गए है। "प्रवदा" के ११ अप्रैल सन् १९४२ के अक में छपे हुए समाचारो के अनुसार एक लाख से दो लाख रूबल तक के 'स्टालिन-पुरस्कार' कितने ही वैज्ञानिको को दिये गये। इसी प्रकार अगले दिन के "प्रवदा" मे यह समाचार छपा कि कितने ही कलाकार और लेखको को पचास हजार से लेकर एक लाख रूबलो के पुरस्कार दिये गए।

आर्थिक पुरस्कार की यह असमानता पारिश्रमिक रूप में दी जाने वाली अन्य विशेष सुविधाओ के कारण और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। इन विशेष सुविधाओ में अच्छे मकान, अच्छे कमरे, गरमी के दिनो के लिए विनोद-गृह, अच्छे अस्पतालो में पहुच, रेलगाड़ियो में मुफ्त यात्रा, मोटरो इत्यादि

का प्रयोग आदि शामिल है। एक देश मे जहा एश्वर्य के साधन दुर्लभ है, रहने के लिए कमरे का या चढने के लिए मोटर का मिलना या किसी अच्छे कम भीड-भाड वाले अस्पताल मे चिकित्सा पा सकना निस्सदेह विशेष महत्व की बात होती है।

अमीर और गरीब मे जितना भेद सोवियत् रूस मे है, उतना पूँजीवादी देशो मे भी नही। स्टालिन को साधारण वेतन मिलता है और वह शायद कभी रुपया छूते भी नही, फिर भी एक मनुष्य को जितने भी पदार्थो की आवश्यकता हो सकती है वे सब उन्हे उपलब्ध है। स्टालिन उतने ही सुख से रहते है जितने सुख से रूजवेल्ट रहते थे। इसके विपरीत एक रूसी मजदूर को एक अमेरिकन मजदूर की तुलना मे बहुत ही कम सासारिक सुविधाएँ प्राप्त है।

सोवियत् जनता के जीवन-मान की यह असमानता कोई आकस्मिक घटना नही है, यह पूर्व आयोजित है। १९ वी शताब्दी के दूसरे शतक के मध्य म रूसी लेखको ने समानता को बोरजुओ की सकीर्णता और जनतत्री मूर्खता कह कर हँसी उडानी आरम्भ की। उसके बाद से जीवन मान की असमानता का सरकार ने जान बूझ करके विकास किया है। इसका उद्देश्य केवल औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी उत्पादन को बढाना ही नही बल्कि रूस मे एक विशेष अधिकार--विशेष व्यक्तियो की श्रेणी स्थापित करना है। यह श्रेणी अब सोवियत् रूस मे विद्यमान है।

रूस मे जीवन मान के निम्न होने के कारण और उसे उठाने म कठिनाई देखकर स्टालिन ने जान-बूझ कर शिष्ट जनो की एक नई श्रेणी बनाई। जब सभी व्यक्ति सतुष्ट किये जा सकते है तो इस बात की आवश्यकता नही कि कोई किसी अल्पसख्यक उच्च श्रेणी के लिए विशेष रूप से कष्ट करें, किंतु जहाँ जनता को इतनी सुविधाएँ नही दी जा सकती कि वह सतुष्ट रह सके वहाँ तानाशाहो को अपने समर्थन के लिए एक उच्च वर्ग की आवश्यकता होती है। रूस में इस उच्च-वर्ग मे सैनिक अफसर, गुप्त पुलिस के प्रधान अधिकारी, औद्योगिक मैनेजर, (अपेक्षाकृत कम सख्या मे) चतुर और अधिक वेतन पाने वाले मजदूर, इजीनियर और वैज्ञानिक शामिल है। इनके अलावा इस वर्ग में उच्चतम सरकारी अफसर, कम्युनिस्ट दल के कार्यकर्त्ता और वे कलाकार और लेखक भी शामिल है जो सरकस और प्रचार का काम करते है। कुल मिलाकर इस वर्ग मे ४० लाख व्यक्ति और उनके अनगिनत आश्रित है। यूरोपियन जीवन मान की कसौटी पर कसे जाने पर भी उनका जीवन यापन सतोषजनक है और साधारण नागरिको से तो वे कई गुने अच्छे है ही।

एक राष्ट्र का जीवन-मान कितने ही तत्त्वो के जटिल मिश्रण से तैयार होता है। अन्न, कपडा, और घर इनमे मुख्य है। स्थायी नौकरी का होना भी जरूरी है। रूस के जो नागरिक स्वस्थ होते है, उनके मस्तिष्क मे कोई विकार नही होता और राजनीतिक दृष्टि से जो आज्ञाकारी होते है, उन्हे सरकार की ओर से यह आश्वासन प्राप्त होता है कि वे कभी बेकार नही रहेगे। यह एक बहुत बडे लाभ की बात है।

पहले मै सोचा करता था कि रूस मे बेकारी की अनुपस्थिति समाजवाद या लाभ न लेने की प्रवृत्ति के कारण है। किंतु आज मेरा ऐसा विश्वास नही। सन् १६२२ और १९२४ के बीच प्रजातत्री जर्मनी मे भी बेकारी बिलकुल नही थी। नाजियो के समय मे भी इस शताब्दी के तीसरे शतक में जर्मनी में बेकारी नही थी। इसी तरह लगभग समस्त युद्ध मे अमेरिका, इग्लैड और नाजी जर्मनी में बेकारी नही थी।

रूस, जर्मनी और दूसरे रण-रत राष्ट्रो में जितने दिनो बेकारी न रही उतने दिनो नीचे लिखी दो बाते उनमे समान-रूप से उपस्थित थी–(१) निर्यात या बडे उद्योगो के विस्तार या युद्ध के लिए अधिक उत्पादन और (२) उपभोक्ताओ के लिए सामान की कमी। इन दोनो बातो के परिणाम स्वरूप मूल्यो मे वृद्धि हो गई।

सन् १९२४ में जब मार्क का सिक्का स्थिर बना तो जर्मनी में बेकारी फिर दिखाई देने लगी। इसीलिए सन् १९२४ और १९२८ के बीच जब रूबल का सिक्का स्थायी रहा तो रूस मे भी बेकारी रही और सरकार ने नौकरी दिलाने वाली सस्थाएँ स्थापित की। किंतु सन् १६२८ में पचवर्षीय योजना के फलस्वरूप रूस में उत्साहपूर्ण औद्योगिक निर्माण का एक नया युग आरम्भ हुआ। रूबल का मूल्य घट गया और सन् १९३१ तक मूल्यो की वृद्धि पूरे जोर पर पहुँच गई। अन्न और उपभोक्ताओ के काम मे आने वाले दूसरे सामान बहुत दुर्लभ हो गए और बेकारी दूर हो गई।

मेरा कहने का यह अभिप्राय नही कि दुर्भिक्ष और मूल्यारोहण के समय ही बेकारी दूर हो सकती है। किन्तु अब तक ऐसा हुआ है कि जहा जहा भी उक्त परिस्थितिया प्रस्तुत रही है वही-वही बेकारी भी नही रही है।

जब पैदा की जाने वाली सभी वस्तुओ के खरीदार होते है तो स्वभावत बेकारी दूर हो जाती है। बेकारी का न होना और उत्पादित पदार्थों का पूर्ण वितरण साथ साथ चलता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से, समाजवादी देश मे पदार्थों का सदा ही पूर्ण वितरण होना चाहिए। किन्तु देखा यह गया है कि

पूर्ण वितरण उसी समय सम्भव हो सका जब वितरण के लिए पदार्थों की कमी थी, जैसे, प्रजातन्त्र-कालीन जर्मनी मे या सन् १९३१ के बाद के सोवियत् रूस मे या युद्ध-रत देशो मे। प्रश्न यह है--क्या बहुलता के युग मे भी पूर्ण वितरण सम्भव होगा ? रूस से इसका कोई उत्तर नही मिलता, क्योकि क्रान्ति के बाद से रूस मे कभी अन्न, कपडे या मकानो का बाहुल्य नही रहा। बोलशेविक क्रान्ति दुर्लभता के ही युग मे हुई।

तो फिर क्या कारण है कि युद्ध मे रूसी इतनी अच्छी तरह से लडे ? क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि वे सतुष्ट थे ?

विन्सटन चर्चिल के निर्देश म अग्रेज बडी बहादुरी के साथ लडे और उन्होने शत्रु का विरोध बडी कुशलता के साथ किया। किन्तु बाद मे उन्होने चर्चिल को पदच्युत कर दिया। रूसी जनता भी स्टालिन के लिए उतनी ही लडी जितनी ब्रिटिश जनता चर्चिल के लिए या अमेरिकन जनता रूजवेल्ट के लिए। युद्ध कोई राजनीतिक चुनाव नही है। भारतीय सेना ने युद्ध मे इतना जो यश कमाया वह इसलिए नही कि उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से प्रेम था।

जटिल, दार्शनिक, भावुकता-पूर्ण और व्यावहारिक प्रेरणाओ के कारण मनुष्य युद्ध करने और मरने को तयार हो जाता है। स्पेन के गृह-युद्ध मे अन्त-र्राष्ट्रीय ब्रिगेड के अलावा, जिसमे मैने भी नाम लिखवाया था, फ्रेको के मूर ही सबसे अच्छे सैनिक थे। राज-भक्तो की ओर मे लडने वाले रूसी टैंक-सचालक मुझ से कहा करते थे कि जब वे अपने गराजो में लौटते थे तो उन्हे अपने टैंको के दातेदार पहियो मे उन मोरक्कन सिपाहियो का मास लिपटा मिलता था जो इतनी अभूतपूर्व और अतिशय शक्तिशाली यान्त्रिक शक्ति का सामना करते हुए भी पैर पीछे हटाना नही जानते थे। फिर भी मूरो को यह पता नही था कि युद्ध क्यो हो रहा है ? यह एक बडा ही दुर्लभ दृष्टान्त है जिसमें हमें वीरता और निमित्त मे कोई तारतम्य नही मिलता। बात यह है कि सिपाहियो के युद्ध मे वीरता दिखाने से यह न समझ लेना चाहिए कि वे युद्ध पसन्द करते है या उन लोगो का समर्थन करते है जिन्होने उन्हे लडने के लिए भेजा है।

जितने अच्छे सेना के अफसर होते है उतनी ही अच्छी वह सेना होती है। रूसी सेना के अफसर अच्छे थे। इसके अलावा, रूसी सदा ही अपनें आक्र-मणकारियो के साथ वीरतापूर्वक लडे है। वे नेपोलियन से लडे और उन्होंने उसे आगे बढने से रोक दिया। रूसी सेना मे उस समय भी आजकल की तरह अधि-काश लोग किसान थे और १९ वी शताब्दी के दूसरे शतक के किसान दास थे। फिर भी उन्होने अपने को एक क्रूर जार के युद्ध में मरने दिया। प्रथम विश्व युद्ध

मे भी रूसियो ने खूब अच्छी तरह लडाई लडी। यद्यपि उस समय उनके पास साजो-सामान की बहुत कमी थी। अक्सर एक रूसी सिपाही को इस बात की प्रतीक्षा करनी पडती थी कि उसका साथी मरे तो उसे उसकी राईफल मिले। फिर भी रूसियो ने कैसर के पूर्वी मोर्चे को मास्को, पीट्रोग्राड, वोलगा और काकेशिया से बहुत दूर रखा।

रूसी सिपाहियो को पता था कि सन् १९१८, १९१९ और १९२० मे जब उन पर विदेशियो का प्रभुत्व था तो उन पर क्या बीती थी। उनमे से बहुतो ने जनता, कस्बो और गाँवो पर क्रूर नाजियो के अत्याचार होते देखे थे। रूसी जनता किसी विदेशी विजेता द्वारा शासित होना नही चाहती थी। बहुत से लोगो, विशेषत अफसरो को क्राति से लाभ पहुँचा था। शिक्षा और नौकरी सम्बन्धी अधिक विस्तृत सुविधाओ, देशव्यापी स्वास्थ्य-योजनाओ, पेन्शनो, वार्षिक छुट्टियो और दूसरी सामाजिक सुविधाओ के कारण रूसी जनता की अपनी सरकार के प्रति राजभक्ति दृढतर हो गई थी। जातीय भेदभाव न होने के कारण और अल्पसख्यको को भी सास्कृतिक स्वतन्त्रता मिलने के कारण सरकार के प्रति व्यक्ति की आस्था बढ गई थी। अत्याचार, अत्यधिक श्रम और बलिदान के बावजूद भी अधिकाश जनता ने युद्ध के समय अपने देश का समर्थन किया।

रूसी सेना के कुछ सिपाही फौज को छोडकर चले गये और उन्होने अपना शेष जीवन विदेशो मे बिताना ज्यादा अच्छा समझा। रूस के कुछ सेनापतियो तक ने सेना को छोड दिया और वे नाजियो की ओर से लडे। जहाँ तक मै जानता हूँ, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रास या यूरोप के किसी भी अन्य देश मे आपको ऐसे एक भी जनरल या उच्च सेनाधिकारी का उदाहरण नही मिलेगा जो अपने ही देश के विरुद्ध लडने को तैयार हो गया हो। किन्तु मेजर जनरल ऐन्ड्री ए व्लासोव, जिन्होने सन् १९४१ में मास्को की रक्षा में इतना यश कमाया था, जिन्हे २ जनवरी १९४२ को रूस का उच्च सैनिक सम्मान मिला था, जिन्हे मास्को के 'प्रवदा' पत्र ने अपने ६ जनवरी १९४२ के अक में "एक विशिष्ट रूसी जनरल" कह कर पुकारा था और जिन्हे सन् १९४२ में नाजियो ने गिरफ्तार कर लिया था, हिटलर के हाथ के खिलौने बन गये और उन्होने रूसियो से लडने के लिए जर्मनी-स्थित रूसी कैदियो की एक सेना तैयार की। किन्तु व्लासोव और उनके ही जैसे कुछ अन्य लोग नियम के अपवाद माने जा सकते है, साधारणत रूसी सेना अपने देश के लिए बड़ी आज्ञाकारिता और योग्यता के साथ लड़ी। रूस के नागरिक

भी अधिकतर देशभक्त थे।

तानाशाही देश जनता से बलात् आज्ञा-पालन कराने के लिए गुप्त पुलिस और आतंक उत्पन्न करने वाले अन्य शस्त्रों का प्रयोग करते हैं। इसके अलावा जनता की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए वे प्रचार और शिक्षा के अपने एकाधिकार का प्रयोग करते हैं और उन्हें प्राय सफलता भी मिली है। जनतंत्री देशों तक में, जहाँ जनता न्याय की माँग कर सकती है और किसी मामले के दोनों पक्ष के वादविवाद सुन सकती है, सरकार के सामने व्यक्ति लाचार ही बना रहता है। तानाशाही देशों में कुछ इने गिने साहसी व्यक्ति ही अपनी विचार-स्वतंत्रता या विचार-क्षमता पर किये गए सरकारी प्रहार का विरोध कर सकते हैं। ऐसे देशों में जनता अपने मालिकों का जो समर्थन करती है, उसके आधार पर बड़े-बड़े निष्कर्ष निकाल कर जनतंत्री प्रेक्षक अक्सर अपने को धोखा देते हैं। स्वयं तानाशाह कभी ऐसे समर्थन से छले नहीं जाते। यदि वे छले जा सकते तो वे गुप्त पुलिस, कान्सेण्ट्रेशन कैम्पों, इकतरफा चुनावों आदि की व्यवस्था तोड़ देते, देश में कही, गाई, रंगी, लिखी और चित्रित की जाने वाली सभी बातों पर से सेन्सर उठा लेते, विरोधियों का सफाया न करते, जनता के मस्तिष्क को जीतने या पंगु बनाने के अभिप्राय से निरन्तर किया जाने वाला कर्कश सरकारी आंदोलन बंद कर देते, नेताओं से जनता को अलग रखने वाली गोपनीयता की दीवार तोड़ देते और निजी सुरक्षा के लिए इतने विस्तृत प्रबन्ध न करते।

यह अक्सर कहा जाता है कि रूसी सरकार विदेशियों से सशंक रहती है। यह बात केवल अंशत सत्य है। असलीयत यह है कि रूसी सरकार स्वयं अपने नागरिकों से, यहाँ तक कि अपने उच्च-से-उच्च अफसरों की ओर से भी शंकित रहती है। यदि यह बात न होती तो वह विदेशी पत्रों को अपने देश में आने से क्यों रोकती ? इस शताब्दी के दूसरे शतक में जर्मनी और ब्रिटेन के पूँजीवादी समाचारपत्र मास्को के स्टोरों और सारे रूस में अनेक स्थानों पर बिकते थे। बोरजुओं के दैनिक पत्र 'बर्लिन टैगेब्लैट' को मैं यूक्रेन और काकेशश में हमेशा रेलवे स्टेशनों से खरीदा करता था। लेकिन कई साल हुए विदेशी अखबारों का इस तरह बिकना बंद कर दिया गया। अब तो केवल विशेष पुस्तकालयों में, जहाँ विदेशी पत्र मँगाये जाते हैं, कुछ चुने हुए लोग ही इन अखबारों को देख सकते हैं। किसी भी व्यक्ति को ट्राट्स्की, बुखारीन या किसी ऐसे दूसरे व्यक्ति की पुस्तक खरीदने या उधार मांगने का अधिकार नहीं, जिसने कभी स्टालिन का विरोध किया हो। क्या कारण है कि रूस के लेखकों, वैज्ञा-

निको और औद्योगिको को सरकारी काम के अलावा और किसी काम से विदेश जाने की इतनी कम अनुमति मिलती है और वह भी विशेष सावधानी करने के बाद ? क्या कारण है कि रूसी सरकार रूसियो को देश से बाहर जाने से रोकती है और शरणार्थियो को देश के भीतर नही आने देती ? क्या कारण है कि कुछ थोडे-से चुने हुए लोगो को ही रूस मे विदेशियो से मिलने की अनुमति मिलती है ? क्या रूसी सरकार को इस बात का भय है कि विदेशी लोग रूसी जनता को बिगाड देगे ? क्या उसे विदेशियो मे इतना कम विश्वास है ? वह क्यो नही आशा रखती कि उसकी जनता विदेशियो का मत-परिवर्तन कर लेगी ?

६ जून १९४५ को ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्य कमाडर किग-हाल ने ब्रिटिश सरकार से पूछा कि रूस के कितने रेडियो-ब्राडकास्ट प्रति सप्ताह अग्रेज़ी मे रूस से ब्रिटेन आते है और ब्रिटेन के कितने ब्राडकास्ट रूसी भाषा मे ब्रिटेन से रूस भेजे जाते है । श्री लायड ने सरकारी सूचना विभाग की ओर से उत्तर देते हुए ब्रिटिश लोक-सभा मे बताया—"रूस से प्रति सप्ताह ५३ रेडियो ब्राडकास्ट अग्रेजी मे ब्रिटेन आते है किन्तु ब्रिटिश रेडियो-स्टेशन बी०बी०सी० से एक भी ब्राडकास्ट रूसी भाषा मे रूस नही भेजा जाता ।"

बी० बी० सी० से सभी भाषाओ मे सभी देशो के लिए ब्राडकास्ट किये जाते है । किंतु रूस के लिए काई ब्राडकास्ट इसलिए नही किया गया कि रूसी सरकार अपनी जनता को विदेशी रेडियो सुनने देना नही चाहती थी । कुछ उच्च सैनिक और राजनीतिक नेताओ को छोडकर रूस मे किसी व्यक्ति को ऐसे रेडियो रखने की अनुमति नही थी जिससे रूस से बाहर के स्टेशनो के प्रोग्राम सुने जा सके । इसके अलावा रूस के रेडियो स्टेशन बी० बी० सी० के ब्राडकास्टो को अपने यहा से पुन ब्राडकास्ट करने को तैयार नही थे । ब्रिटिश जनता तो प्रति सप्ताह रूस के ५३ ब्राडकास्ट सुन सकती है किंतु स्टालिन को अपनी जनता पर इतना भी विश्वास नही कि वह उसे एक भी ब्रिटिश ब्राडकास्ट सुनने दे ।

रूसी सरकार अपने यहा इस मान्यता को यथासाध्य बहुत ही कम प्रचलित हाने देना चाहती है कि विदेशी सरकारो मे सोवियत् सघ के प्रति मित्रता की भावना है । रूस मे, अमेरिका और ब्रिटेन की युद्धकालीन उधारपट्टा व्यवस्था की विशेष चर्चा न किये जाने का एक कारण यह भी है, क्योकि पूछा जा सकता है कि यदि विदेशी सरकारे रूस से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखती है तो क्या कारण है कि उनसे सम्पर्क नही बढाया जाता । रूस में यह तनातनी

या शका की भावना क्यो ?

तानाशाही एक दुर्बल ढग की शासन-व्यवस्था है। यह जानते हुए भी कि वर्तमान शासन सस्थाएँ इतनी शक्तिशाली होती है कि साधारण शाति-काल मे जन-क्राति उन्हे भग नही कर सकती तानाशाही शासको में एक घबराहट-सी रहती है। तानाशाहो को जनता से उस समय तक किसी प्रकार का भय नही होता जब तक कि उन्हे पद-च्युत करन की इच्छा रखने वाले कोई दूसरे विरोधी नेता न हो। यही कारण है कि स्टालिन को सब से अधिक परेशानी नेतृत्व की समस्या के कारण रहती है। विरोधियो का अन्त करने के बाद ही उन्हे वर्तमान एकाधिकार का पद प्राप्त हुआ है और वह ऐसे प्रतिद्वन्द्वियो को जिनसे उन्हे अपने हराये जाने या काम मे बाधा पडने का भय है, लगातार सफाया करते जा रहे है। साथ-ही-साथ वह अपने नीचे काम करने वाले व्यक्तियो की आज्ञाकारिता और स्वामि-भक्ति प्राप्त करने की युक्तियो को भी अधिक-से-अधिक पूर्ण बनाने की चेष्टा करते रहे है।

रूस जैसे देश मे, जहाँ शतको से जनता को कठोर जीवन का सामना करना पड रहा है और अभी कई वर्षो तक ऐसी ही परिस्थिति रहने की सम्भावना है, वहाँ यदि विशेष सुविधाओ और भावी प्रलोभनो मे फँसाकर उच्च वर्ग के मैनेजरो, फौज, गुप्त पुलिस और दास वृत्ति वाले विद्वानो को सरकारी बधन मे बाँधा और सतुष्ट रखा जा सके तो उससे आत्म-विश्वास-विहीन सर्व सत्ताधारी शासक को बडी सान्त्वना और सहायता मिल सकती है।

सार्वजनिक कठिनाइयो से प्रभावित न होने का सबसे अच्छा तरीका है उनकी पहुँच से बाहर रहना। रूस की उच्चवर्गीय जाति को जो विशेषाधिकार और ऐश्वर्य के साधन उपलब्ध है उनसे दो मन्तव्य पूरे होते है—एक यह कि वह साधारण जनता से दूर रहती है और दूसरे यह कि वह सामाजिक व्यवस्था मे जकड दी जाती है।

जीवन का मान उच्च रहने से जनतत्र को प्रोत्साहन मिलता है। उसके निम्न रहने से अल्पजनीय शासन, उच्च वर्गों की राजसत्ता और तानाशाही को प्रोत्साहन मिलता रहा है। लैटिन अमेरिका, एशिया और यूरोप आज ऐसे उदाहरणो से भरे पडे है। रूस भी इसका एक उदाहरण है।

रूस मे उच्च-वर्गों की नई राजसत्ता का जन्म कैसे हुआ, यह बात वहाँ की सैनिक जाति के प्रादुर्भाव से जानी जा सकती है। प्रत्येक सेना मे अफसरो का होना अनिवार्य है और रूसी सेना में भी सदा अफसर रहे है। सन् १९३५ तक रूसी सेना के अधिकारियो और अन्य कार्यकर्ताओ में जितना कम भेदभाव

था उतना शायद किसी भी अन्य देश की सेना म नही था। किंतु उसके बाद एक बड़ा ही व्यापक परिवर्तन आरम्भ हुआ।

पहले रूस के सेनाधिकारियो की श्रेणी का पता उनके काम से लगता था और वे बैंटेलियन कमाडर या रेजिमेंट के कमाडर आदि कहलाते थे। किंतु सितम्बर १९३५ मे रूसी सेनाधिकारियो को पदवियाँ प्रदान कर दी गईं, जैसे लेफ्टिनेण्ट, कप्तान, मेजर, और कर्नल। ध्यान रहे कि उन्हे जनरल की उपाधि नही दी गई। देखने मे यह बात सीधी-सादी मालूम देती है। जिस दिन इस नई प्रणाली की घोषणा की गई उसी दिन मेरी रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक सर्जे ट्रेटियाकोव से लम्बी चौडी बहस हुई। ट्रेटियाकोव ने इस परिवर्तन का समर्थन तो अवश्य किया किंतु वह उसकी व्याख्या नही कर पाये। इस सम्बध मे जो सरकारी घोषणा की गई वह बिलकुल अपर्याप्त थी, उसमे परिवर्तन का कोई कारण नही बताया गया था। एक आज्ञाकारी नागरिक की भाँति ट्रेटियाकोव ने एक ऐसी बात यत्रवत् स्वीकार कर ली जिसे वह समझते भी नही थे। (ध्यान रहे कि बाद मे विरोधियो के सफाये के सिलसिले मे वह गोली से उडा दिये गये।) उपाधि-दान का जो सबसे अच्छा कारण वह बता सके वह यह था कि अन्य देशो मे ऐसा ही होता है।

"किंतु अन्य देशो मे तो यह बात सन् १९१८ के बाद से ही है! आपके देश में एकाएक पूजीवादी देशो की नकल करने की जरूरत क्यो आ पडी ?" मैंने मास्को मे होटेल मीट्रोपोल के चौडे चबूतरे पर इधर-उधर घूमते हुए कहा।

मैंने यह बात स्वीकार की कि अफसरों की उपाधियो, विशेषत. कर्नल की उपाधि, का रूस मे एक विशेष अर्थ था। उनसे जारशाही यानी पुराने राजतत्री रूस का बोध होता था जब कि सैनिक अधिकारियो को साधारण सिपाही का स्वामी बनने का अधिकार था।

"वर्तमान रूस की सेना मे यह बात कदापि नही हो पायगी", ट्रेटियाकोव ने जोर देते हुए कहा।

उन्हे यह बात नही मालूम थी कि कोई बात छोटे से रूप मे आरम्भ होकर किस प्रकार बडी-से-बडी सीमा तक बढ़ सकती है।

७ मई १९४० को सोवियत् अधिकारियो ने जनरल और एडमिरल की पदवियाँ आरम्भ की। स्टालिन किसी काम को थोडा-थोडा करके करने मे बडे निपुण है। वह अपनी नीति को टुकड़े-टुकडे करके कार्यान्वित करते है। सन् १९३५ में कर्नल की श्रेणी तक की उपाधियाँ दी गईं। इसके बाद जनता की

अरुचि को नष्ट करने का अवसर दिया गया और फिर सन १९४० मे जनरल और कर्नल की उपाधिया प्रदान की गई ।

२१ जुलाई १९४० को एक नये आदेश के अनुसार जनरलो द्वारा युद्ध-क्षेत्र मे प्रयोग किये जाने के लिए एक भडकीली वरदी निश्चित करदी गई, जिसमे सोने के बटनो, गगाजमुनी लैस और कन्धो के फीतो की व्यवस्था की गई ।

१० अगस्त १९४० को नौ-सेना के कमिश्नर निकोलाई कुजनेटसाव ने, जिनसे स्पेन मे सन् १९३६ मे मेरा खूब अच्छी तरह परिचय था और जिन्हे मै एक सीधा-सादा गैर-रस्मी ढग का जनतत्रवादी समझता था, आदेश दिया कि भविष्य म नाविक अपनी सेना के उच्च अफसरो से सीधे बातचीत न करे बल्कि अपने ऊपर के निम्न श्रेणी के अफसर से ही सम्बन्ध रखे । उस दिन से परम्परागत सहकारिता और समानता की भावना रूसी सेना से निकल गई । ड्यूटी के समय या परेड के बाद भी अफसरो और नाविको के बीच एक नई कठोरता दिखाई देने लगी । स्वेच्छिक जनतत्री अनुशासन की भावना जाती रही ।

१२ अक्टूबर १९४० को रक्षा-कमिश्नर टिमोशेको ने अनुशासन सबधी एक नये कानून की घोषणा की । यह एक दिलचस्प बात है कि मास्को के प्रमुख दैनिक पत्रो 'प्रवदा' या 'इजवेस्टिया' ने इस कानून को नही छापा । किन्तु चार दिन बाद लेफ्टिनेण्ट जनरल कुरद्यूमोव ने 'प्रवदा' मे इस पर टीका-टिप्पणी की । उन्होने लिखा—"इस कानून के अनुसार निम्न श्रेणी के कर्मचारियो को अपने कमाडरो का निर्विरोध आज्ञा-पालन करना होगा । कमाडरो का आदेश ही उनके लिए कानून होगा । चाहे कोई भी कठिनाई, परेशानी और दुर्भाग्य की बात क्यो न हो, उसके कारण कमाडर के आदेश की अवज्ञा नही की जा सकेगी । जान-बूझकर अनुशासन भग करने वालो के प्रति कमाडरो को कठोर-से कठोर कार्य करने मे, यहा तक कि शस्त्रो का प्रयोग करने मे भी हिचकना नही चाहिए । ऐसे कार्यों के परिणाम का उत्तरदायित्व कमाडर पर नही होगा ।" अनुशासन को कार्यान्वित कराने के लिए रूसी सेना के कमाडर शारीरिक दण्ड दे सकते है और अपराधी को गोली तक से उडा सकते है ।

१६ अक्तूबर १९४० के 'प्रवदा' मे जनरल कुरद्यूमोव ने लिखा—"कमाडर को उदार बनने या सैनिक नियमो की अवज्ञा की दयालुतापूर्वक उपेक्षा करने का कोई अधिकार नही । अधीनस्थ कर्मचारियो के सम्बन्ध में

अशुद्ध जनतन्त्रवाद की भावना को पूरे उत्साह के साथ उखाड़ फेंकना होगा।"

इस अशुद्ध जनतन्त्र को ही लोग सदा शुद्ध जनतन्त्र समझते आये थे। बोलशेविको और उनके प्रशसको ने, जिनमे मै भी शामिल था, इसे बोलशेविक क्रान्ति की एक सबसे अद्भुत सफलता कहकर डीग हाँकी थी। वस्तुत वह थी भी ऐसी ही, किंतु क्रान्ति ने जारशाही अनीत के सामने सिर झुका दिया।

७ जनवरी १९४३ को सोने और चाँदी के तारो से कढा हुआ कन्धाभरण भी रूसी अफसरो की वरदी का एक अग बना दिया गया। इस सम्बन्ध मे रूसी सेना के दैनिक पत्र 'रेड स्टार' ने लिखा—"हम लोग, जो रूस की सैनिक कीर्ति के सच्चे उत्तराधिकारी है, अपने पूर्वजो के शस्त्रागार से उन सभी उत्तमोत्तम पदार्थों को ग्रहण करते है जिनसे सैनिक भावना मे वृद्धि हुई थी और अनुशासन शक्तिशाली बना था।"

फरवरी १९३१ मे स्टालिन ने अपने एक भाषण मे रूस की सैनिक कीर्ति की खिल्ली उडाई। उन्होने कहा कि पुराने रूस के इतिहास से पता चलता है कि हमारा देश अपने पिछडेपन के कारण सदा ही पराजित होता रहा है। हमे मगोल खानो ने हराया, तुर्क गवर्नरो ने हराया, स्वीडिश किसानो ने हराया, पोलिश और लिथुएनियन जमीदारो ने हराया, अग्रेज और फ्रासीसी पूँजीपतियो ने हराया और जापानी अमीरो ने भी हराया।"

फिर भी १२ साल बाद जारशाही रूस की 'पराजय' और 'विवशता' कीर्ति बन गई। तानाशाहो के हाथ में इतिहास एक खिलौना होता है।

६ जून १९४३ को साइरस शल्जबर्गर ने मास्को से 'न्यूयार्क टाइम्स' में निम्नलिखित सदेश भेजा—"अफसरो से अब यह आशा नही की जाती कि वे रेलवे स्टेशनो के निकटवर्ती स्थानो को छोडकर और कही पार्सल या असबाब लेकर चलेगे। उनसे अधिक-से-अधिक अपने बाये हाथ मे एक छोटा-सा साफ-सुथरा बडल लेकर चलने की आशा रखी जाती है।" किपलिंग के भारत में भी अफसर बडल लेकर चलने से बचते थे।

शल्जबर्गर ने यह भी लिखा—"गाडियो आदि मे बडे अफसरो के खडे रहते हुए छोटे अफसरो को बैठने की अनुमति नही। बैठने के लिए उन्हे अपने बडे अफसरो से अनुमति लेनी चाहिए। प्लैटून कमाडर की श्रेणी से ऊपर वाले सभी अफसरो के लिए अरदलियो की व्यवस्था की गई है। यह बात सरकारी रूप से बताई गई है कि सबसे पहले पीटर महान् ने अरदलियो की आवश्यकता का अनुभव किया था। इन अरदलियो का मुख्य कार्य अफसरो के निजी मामलो—भोजन, वस्त्र आदि—का ध्यान रखना था।"

इसके बाद इस नीति के कुफल दिखाई दिये। २४ जुलाई १९४३ को एक सरकारी आज्ञा मे बताया गया कि अफसरो को तरक्की देने के लिए युद्ध-क्षेत्र मे वीरता दिखाना अनिवार्य गुण नही माना जायगा। अब के बाद से तरक्कियाँ सैनिक स्कूलो के विशारदो को ही दी जायगी।

सन् १९४३ मे सोवियत् सरकार ने काउट सुवोरोव के नाम पर सुवोराव स्कूल खोले, जिनमे भरती होकर लडके सैनिक नेता का जीवन आरम्भ कर सकते थे। काउट सुवोरोव एक जारकालीन फील्ड-मार्शल थे। उनका जन्म सन् १७२९ मे हुआ था और मृत्यु सन् १८०० मे हुई। ७ नवम्बर १९४३ के 'न्यूयार्क टाइम्स' मे राल्फ पार्कर ने लिखा—"ये स्कूल जारकालीन सैनिक शिक्षालयो, स्कूलो की प्रणाली पर स्थापित किये गये है। इनमे मुख्यत युद्ध में काम आये अफसरो के लडके ही पढेगे।" ध्यान रहे मृत अफसरो के लडके, मृत सिपाहियो के लडके नही। जातीय भेद-भाव का प्रचार ऐसी ही बातो से होता है। ७ नवम्बर १९४५ को सोवियत् इतिहास मे पहली बार सुवोरोव स्कूल के लडके जिनकी औसत आयु १२ वर्ष की थी, सेना के साथ परेड करते हुए लाल चौराहे से गुजरे।

मॉरिस हिन्डस ने, कालनीन नगर के पास एक सुवोरोव स्कूल का निरीक्षण करने के बाद "हैरल्ड ट्रिब्यून" के १६ मई १९४३ के अक मे लिखा—"इस स्कूल मे नागरिक और ग्रामीण नृत्य को भी उतनी ही प्रधानता दी जाती है जितनी खेल-कूद को।" इसी तरह रैल्फ पार्कर ने भी अपने लेख मे बताया, "रूसी सेना के दैनिक 'रेड प्लीट' ने अभी हाल ही मे यह सलाह दी थी कि रूसी जल-सेना के भावी अफसर नृत्य की भी शिक्षा गृहण करे। भविष्य मे वे रूसी शिक्षित वर्ग के सर्वोत्तम व्यक्तियो के प्रतिनिधि बनेगे। इसलिए उन्हे समाज का आचार-व्यवहार सीखना चाहिए। किन्तु कैसा समाज ?"

रैल्फ पार्कर ने अपने लेख मे आगे बताया—"जैसा कि 'रेड स्टार' ने हाल मे ही लिखा था, सोवियत् अफसरो को पुरानी परम्पराओ मे बहुत-सी ऐसी बाते दिखाई देती है जिनसे उन्हे रूसी सैनिक-बल के उद्गम और विकास का स्पष्ट ज्ञान होता जा रहा है। रूसियो को अब यह बात याद आ रही है कि पीटर के जमाने मे अफसरो मे अपने सच्चे सम्मान की भावना जाग्रत हो गई थी। वर्त्तमान रूस पर जितना प्रभाव पीटर का है उतना लेनिन को छोडकर किसी भी दूसरे पूर्वकालीन रूसी का नही।" तो इसका अभिप्राय यह है कि कम्युनिस्ट रूस सत्य सम्मान की भावना पीटर महान् से ग्रहण कर रहा है, जिन्होने रूस पर सन् १६९४ से सन् १७७५ तक राज्य किया और अपने

नगरो और महलो को बनवाने मे लाखो कृषक दासो को मार डाला।

१६ सितम्बर, १९४५ को ब्रुक्स ऐटकिन्सन ने मास्को से 'न्यूयार्क टाइम्स' को निम्न लिखित तार दिया—"रूसी सेना के क्लब अब केवल अफसरो के प्रयोग मे आ सकेगे। पहले सेना के सभी लोगो को इन क्लबो को प्रयोग मे लाने का अधिकार था।" ये क्लब, जिनमे से अधिकाश बडे ही सुन्दर बने हुए है और ठाठदार मेज कुरसी आदि मे सुशोभित है, रूस के अनेक नगरो मे स्थित है और पहले इनमे अफसरो के अलावा दूसरे कर्मचारी भी जा सकते थे। किंतु सेना के साधारण कर्मचारी, जिन्हे अच्छा अन्न वस्त्र नसीब नही होता, निम्न कोटि के "मजदूर" समझे जाते है और उन्हे अब क्लबो मे जाने का अधिकार नही।

'रेड स्टार' का कहना है—"कम्युनिस्ट पार्टी और रूसी सरकार जनरलो और दूसरे अफसरो के जीवन-मान को उच्च बनाने की लगातार चेष्टा कर रही है।"

उस गोल कमरे का विवरण देते हुए जिसमे अमेरिका और रूस में शतरज का मैच हो रहा था, 'इजवेस्तिया' ने अपने २ जून १९४५ के अक म लिखा—"दर्शको मे वहुत-से अफसर भी थे।' इजवेस्तिया ने प्राइवेट व्यक्तियो का कोई उल्लेख नही किया। दस साल पहले किसी रूसी पत्र मे इस प्रकार की बातो के छपने की कल्पना भी नही की जा सकती थी। यह बात एकदम बोलशेविक-विरोधी मानी जाती। यह है भी बोलशेविक-विरोधी।

मेजर-जनरल जॉन आर डीन ने, जो युद्ध-काल मे दो वर्ष तक मास्को में अमरिकन सैनिक मिशन के प्रधान की हैसियत से रहे, नवम्बर १९४५ मे मास्को से लौटने से कुछ ही दिन बाद न्यूयार्क की एक सभा मे कहा—"अफसरो और दूसरे सैनिक कर्मचारियो मे जितना अन्तर रूसी सेना मे है उतना ससार के किसी भी दूसरे देश की सेना मे नही।"

रूस के इजीनियरो, कम्युनिस्टो, दली नेताओ, उच्च सरकारी अफसरो, और मिल मालिको का आर्थिक जीवन-मान साधारण जनता के आर्थिक जीवन-मान से बहुत ज्यादा ऊचा है। 'लाइफ' (जीवन) नामक पत्र मे जान हेरसी ने निकालाई पुजीरेव से अपनी मुलाकात का वृत्तान्त छापा है। पुजीरेव लेनिनग्राड की पुटीलोव इस्पात कारखाने के मैनेजर थे और एक चार कमरे वाले मकान मे रहते थे। उनका मकान एक घनी आबादी वाले शहर मे था, जहा चार-चार प्राणियो के कितने ही परिवार एक एक कमरे मे गुजारा कर रहे थे। उनके पास निजी इस्तेमाल के लिए एक मोटर, एक शोफर, एक हवाई जहाज, एक

जल-विहार नौका, एक ग्रामीण घर, दो नौकर, और बहुत मात्रा मे भोजन और शराब थी। थियेटरो मे उनके लिए सबसे अच्छी सीटे रिजर्व हुआ करती थी।

सन् १९३२ मे मै पुटीलोव कारखाने मे एक सप्ताह रहा और सन् १९-३६ तक अक्सर गर्मियो के दिनो मे वहा चला जाया करता था, ताकि वहा के होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन कर सकू। मै उसके डाइरेक्टरो, इजीनियरो, दलीय अफसरो और मजदूरो से परिचित था। सन् १९४४ मे जब रूसियो और नाजियो मे भयकर युद्ध हो रहा था, श्री पुजीरेव जिस ऐश्वर्य के साथ रह रहे थे उसका सादृश्य शाति-काल मे भी नही मिलता।

पूजीवाद के कारण निर्धनता के पार्श्व मे ही अतिव्ययता का जन्म होता है। रूस मे तो उच्च और निम्न वर्गो का बढा हुआ महान अन्तर और भी अधिक असगत है क्योकि वहा उच्च वर्गो से आशा की जाती है कि वे निम्न वर्गों के सहकारी और सेवक की हैसियत से काम करेगे। समानता असम्भव या अवाछनीय हो सकती है किन्तु जब बोलशेविज्म से उत्पन्न शासन सस्था धनी और गरीब मे बढते हुए अन्तर को प्रोत्साहन देती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो क्राति-तत्व का आधार ही जाता रहा।

फिर भी सोवियत् सघ मे सर्वोच्च और निम्नतम आर्थिक स्तर मे जो महान् अन्तर है वह उस खाई की तुलना मे कुछ भी नही जो वहा के राज-नीतिक शक्ति-सम्पन्न तानाशाही को राजनीतिक शक्तिविहीन व्यक्ति से अलग करती है। सोवियत् सघ में शासन का अधिकार जितना अधिक केन्द्रित है उतना ससार के किसी भी अन्य देश मे नही।

निरकुश शासन परोपकारी बन सकता है। वह जनता के लिए और जनता का हो सकता है किंतु जनता द्वारा चलाया नही जा सकता। जनतन्त्र ही एक ऐसा शासन है जिसका सचालन जनता कर सकती है। वह समाजवाद निरर्थक है जिसके अधीन रहकर जनता शासन निर्देश मे सक्रिय भाग न ले सके। लेनिन ने कहा था—"प्रत्येक रसोइये मे शासन-सस्था को सचालित करने की योग्यता होनी चाहिए।"

प्रत्येक रसोइये, प्रत्येक खान-मजदूर, प्रत्येक गाडीवान और प्रत्येक किसान को बोलशेविक क्रान्ति के फलस्वरूप एक उच्चता की भावना का अनुभव हुआ, क्योकि उसने समझा कि बोलशेविक सरकार उसकी अपनी सर-कार है और वह उसके प्रबन्ध मे सहायता दे सकता है। शासनिक कार्य का अधिकार रखने वाली रूसी म्यूनिसिपल्टियो या कौसिलो की कल्पना इस

आधार पर की गई थी कि इनके द्वारा शासन-सस्था मे जनता का व्यापक प्रवेश कराया जा सकेगा। क्राति के लिए जितना व्यापक उत्साह इन कौन्सिलो द्वारा उत्पन्न हुआ उतना जमीदारी प्रथा नष्ट करने से नही। स्वभावत जनता को यह बात मालूम थी कि उस सबसे बडा लाभ उन पदार्थों का नही है जो सरकार उसे देती है बल्कि इस बात का कि उसका सरकार के ऊपर नियत्रण है और इसलिए सरकार उससे अपने उपहारो को वापिस नही ले सकती।

सन् १९२३ मे मै मास्को के पास एक छोटे से कस्बे मे गया। वहा मै कुछ समय के लिए एक बूढे स्थानीय जज के घर ठहरा। मैने उनकी पत्नी से, जिन्हे बोल्शेविको से सहानुभूति नही थी, पूछा कि बोल्शेविक क्राति के कारण ससार मे क्या परिवर्तन हुआ है।

"लोग बाते अधिक करने लगे है", उन्होने घृणा के भाव से कहा।

यह क्रान्ति की प्रधान सफलता थी। लोग अपनी समस्याओ के सम्बन्ध मे बातचीत करते थे, क्योकि उन्हे ख्याल था कि उनके विचारो का भी कुछ मूल्य है।

भावनाओ का एकीकरण क्राति का मूल आयोजन था। अतीत का नाश उनका कारण बना। आशा ने उसे शक्तिशाली बनाया। मै समझता हूँ कि उसकी उत्पत्ति मुख्यत. व्यक्ति के समाज मे समा जाने की अनुभूति के कारण हुई। जिसके फलस्वरूप वह समाज का एक अग बना और अपने से ऊपर उठ गया।

फिर भी सन् १९१७ के बाद कुछ ही दिनो के भीतर-भीतर रूस की कौंसिल आदि अपने यहा उन कम्युनिस्टो की अधीनता मे पूर्ण रूप से आगई जो मास्को और प्रान्तीय राजधानियो के आदेशानुसार कार्य कर रहे थे। आज ये सस्थाए क्रेमलिन (रूसी शासन-सस्था) की रबड की मुहर मात्र है और अब मनुष्य के जीवन में उनकी वास्तविकता नही रह गई। उनके चुनाव बडे ही व्यस्त ढग से होते है जिसमे कम्युनिस्टो का कभी विरोध नही किया जाता।

जो दशा इन सस्थाओ की हुई वही कुछ दिनो बाद कम्युनिस्टो की भी हुई। क्राति के प्रारम्भिक काल मे कम्युनिस्ट दल मे कम्युनिस्टो को व्यापक आजादी प्राप्त थी। सन् १९१८ के आरम्भ मे जब कैसरीय जर्मनी और नई बोलशेविक सरकार में ब्रेस्ट-लिटोवस्क में बातचीत आरम्भ हुई तो सोवियत् सरकार बडी कमजोर थी। खतरा भीतर से भी था और बाहर से तो जर्मनी रूस पर आक्रमण करने को तैयार बैठा ही हुआ था। फिर भी, उस जीवन और मरण के सघर्ष में कम्युनिस्ट नेताओ के एक दल ने, जिनमे रैडेक,

कोलोनवाई और ओर्मिग्की भी थे, मास्को मे 'कम्युनिस्ट' नामक दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र का उद्देश्य लेनिन द्वारा साम्राज्यवादी जर्मनी के प्रति दिखाई जाने वाली शान्ति-नीति को पराजित करना था।

बाद मे कम्युनिस्ट-कान्फ्रेसो मे लेनिन का बुखारीन और दूसरे कम्युनिस्टो से भीषण वाक्-युद्ध होने लगा। किंतु सैद्धान्तिक रूप से बुखारीन को पराजित करने के बाद भी लेनिन उनके गले मे प्यार से अपनी बाहे डाल लेते थे और उन्हे बुखाइका कहकर पुकारते थे। क्रान्ति से पहले सैद्धान्तिक मामलो पर लेनिन और ट्राट्स्की की भी कई बार लडाई हुई, किंतु क्राति के बाद उन दोनो ने बडे घनिष्ठ सहयोग के साथ काम किया।

लेनिन ने कम्युनिस्ट-विरोधियो से बहस-मुबाहसा किया और उन्हे हरा दिया। लेनिन मे कुछ ऐसे निजी गुण थे जिनके कारण वह अपने से कुछ बातो में मतभेद रखने वाले लोगो के साथ भी काम कर सकते थे। स्टालिन वादविवाद मे ट्राट्स्की या जिनोवीव को हरा नही सकते थे। किन्तु वह उन्हें गिरफ्तार कर सकते थे।

सन् १९१७ से लेकर १९२७ तक रूस की गुप्त पुलिस का मुख्य काम क्राति के विरोधियो का अन्त करना था। सन् १९२० मे रूसी गुप्त पुलिस ने स्टालिन के आदेशानुसार एक ऐसा कार्य आरम्भ किया जो बोलशेविक इतिहास मे अभूतपूर्व था। उसने कम्युनिस्टो का अन्त करना आरम्भ किया। जब जनवरी १९२८ मे पुलिस गुप्तचर ट्राट्स्की को उसके मास्को-स्थित घर से उठाकर सीढी से नीचे ले गये तो उस पर किसी ने स्टालिन द्वारा शासित कम्युनिस्ट दल के साथ राजनीतिक और सैद्धान्तिक मतभेद प्रकट करने के अलावा और कोई अपराध नही लगाया। सरकारी दबाव के साधन द्वारा इस प्रकार किसी दलीय झगडे मे हस्तक्षेप करने का यह पहला ही उदाहरण था। लेकिन उसके बाद यह एक साधारण प्रथा बन गई है। अब कम्युनिस्ट दल में वाद-विवाद निरर्थक समझा जाने लगा है। स्टालिन के रूस मे पुलिस गुप्तचर का रिवाल्वर ही सिद्धान्त सम्बन्धी निर्णायक तर्क है।

किसी समय, ट्राट्स्की, कैमेनेव और जिनोवीव जैसे कम्युनिस्ट विरोधियो को अपना मत सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने की अनुमति थी। सोवियत् नेताओ और नीतियो के विरोध मे वे पुस्तके या लेख लिख सकते थे। कम्युनिस्ट दल की काग्रेसो और कान्फरेसो के अवसरो पर कम्युनिस्ट दल के मुखपत्र 'प्रवदा' मे "वाद विवाद" का एक विशेष पृष्ठ छपता था, जिसमें विरोधी दल वाले अपना मत प्रकट कर सकते थे। अब तो कम्युनिस्ट दल के किसी भी

सदस्य को इतना साहस नही कि वह अपने को विरोधी घोषित करे और सरकारी नीति की आलोचना करने का अधिकार माँगे।

कम्युनिस्ट दल मे लाखो सदस्य है। इनकी सख्या और भी बढ सकती है किन्तु दल की सदस्यता सीमित है। पद और श्रेणी तो इस दल रूपी बडी मशीन मे पहियो के निष्क्रिय दातो के समान है। स्टालिन अपनी पार्टी को कुछ बताना या उससे सलाह लेना भी पसन्द नही करते। सन् १६१८ से १६२५ तक युद्ध और उपद्रव के बावजूद भी पार्टी की कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष मे एक बार अवश्य होता था। उसके बाद स्टालिन तानाशाह बने। पार्टी कांग्रेस का अधिवेशन सन् १९२६ मे दो साल के विश्राम के बाद हुआ। १६ वा अधिवेशन १९३० में, १७ वॉ १९३४ मे और १८ वॉ १६३९ मे हुआ।

सफायो के कारण सोवियत् कम्युनिस्ट दल की प्रेरणा और मर्यादा मारी गई। लोगो ने सोचा कि जब श्रेष्ठतम कम्युनिस्ट भी "फाशिस्ट" और "विदेशी शक्तियो के एजेण्ट" बन सकते थे तो यह बात कैसे कही जा सकती है कि जिन लोगो का सफाया नही किया गया उनमें भी उतनी ही गदगी नही है? सच पूछिये तो जिन लोगो ने सफाया किया था उनमे से कितनो पर एक साल बाद ही मुकद्दमा चलाया गया और उन्हे मौत की सजा दी गई।

कम्युनिस्ट दल अब तानाशाह का आपसे-आप चलनेवाला हथियार बन गया है।

पहले सोवियत् मजदूर सघो मे भी स्वतन्त्रता पूर्वक वाद विवाद हुआ करते थे। हर साल भिन्न-भिन्न उद्योगो मे काम करने वाले मजदूरो के सघो की सभाएँ हुआ करती थी और उनका बडा प्रचार किया जाता था। किन्तु सोवियत् मजदूर सघ की बैठक हुए अब पन्द्रह साल हो गए।

हर साल जनवरी के महीने मे कारखानो और दफ्तरो के मजदूर-सघो के सदस्य प्रबधको से बातचीत करते थे और मोलभाव के एक सामूहिक समझौते पर खुल्लम-खुल्ला विचार करते थे। यह समझौता अगली जनवरी तक चालू रहता था, जब कि उस पर फिर से विचार होता था। सन् १९३१ मे मजदूरो को नौकरी देने का अधिकार केवल प्रबधको के हाथ मे रह गया। जनवरी १९३३ मे बहुत ही कम समझौतो पर पुन: हस्ताक्षर किये गये। जनवरी १९३४ में इनकी सख्या और भी घट गई और घटते-घटते जनवरी १९३६ मे बिलकुल शून्य रह गई। सन् १९३६ के आरम्भ मे अब तक सोवियत् रूस मे एक बार भी सामूहिक मोलभाव नही हुआ। नौकरशाही मजदूर सघ सरकार का काम चलाते रहते है। यह नौकरशाही विदेशी मजदूर-सघो के आन्दोलनो

मे भी काम कर सकती है।

कम्युनिस्टो, मजदूर सघो और सोवियत् सरकार के मित्रो की स्वतत्रता के दमन का विदेशी खतरे से कोई सम्बन्ध नही। सन् १९१८ म जब कि रूसी सरकार शक्ति-हीन थी, लोगो को जितनी आजादी थी, उतनी अब उसके एक महान् राष्ट्र बन जाने पर नही रह गई है।

रूसी शासन के अज्ञानी समर्थको को यह कहने की आदत पड गई है कि सन् १९३५ से १९३८ के सफायो और मकदमो मे स्टालिन ने 'घर के भेदियो' का अन्त कर दिया। कहा जाता है कि इन्ही सफायो के कारण युद्ध के दिनो मे रूस के प्रयत्नो मे कोई बाधा नही पडी। मै पूछता हू कि जब शासन-सस्था के शत्रु देश से निर्मूल कर दिये गए है तो फिर क्या कारण है कि जनता को अब भी नागरिक अधिकार नही दिये जाते ? क्यो नही सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् गुप्त पुलिस अपना खेल समाप्त करती ?

मै समझता हू कि रूस की स्थानीय कौसिलो, कम्युनिस्ट पार्टी, मज़-दूर-सघो की स्वतत्रता का कुचला जाना तानाशाही का परिणाम है।(यही बात फाशिस्ट इटली और नाजी जर्मनी मे भी हुई।)

रूस की राजनीतिक प्रणाली पहले चौडे आधार वाली स्तूप-समूह के समान थी। सबसे चौडी और सबसे नीचे की सतह पर छोटी-छोटा सभाएँ थी, उनके ऊपर मजदूर-सघ, उनके ऊपर कुछ अधिक सकीर्ण कम्युनिस्ट पार्टी, उनके ऊपर पार्टी का नेता और सबसे ऊपर देश का नेता था। धीरे-धीरे स्टालिन ने इस स्तूप-समूह को उलट दिया और उसे उसकी नोक पर खडा कर दिया। अधिक चौडी सतहो मे पहले जितने भी राजनीतिक अधिकार थे वे नीचे लुढक पडे और बहकर शिखर यानी तानाशाह के साथ जा मिले। जब स्थानीय सस्थाओ, मजदूर-सघो, कम्यूनिस्ट पार्टी, और पार्टी-नेता के अधिकार ही जाते रहे तो उनकी शक्ति, उनकी प्रेरणा, और उनका विश्वास भी नष्ट हो गया। वे एक भयभीत यात्रिक मनुष्य की भाँति काम करने लगे।

यह एक बडे मार्के की बात है कि स्टालिन के रूस मे कोई महान् वक्ता नही हुआ। कम्युनिस्ट दल में कितने ही प्रसिद्ध वक्ता थे, किंतु अब वे मर चुके है और रूस को नये वक्ताओ की आवश्यकता नही। अब रूस में राजनीतिक-वादविवाद नही होते। सभी राजनीतिक मामले कम्युनिस्ट दल की रसोई मे किराये के बार्बचियो द्वारा पका लिये जाते है और वक्ताओ को दे दिये जाते है। कोई भी इनसे इधर-उधर नही जा सकता, क्योकि ऐसा करना खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

जिन रूसी नागरिको मे बौद्धिक और राजनीतिक सामर्थ्य होती है वे अपने कन्धो पर "सामाजिक बोझ" भी उठा लेते है। वे निरक्षरता को दूर करते है, एशियाई स्त्रियो से पर्दा छोडने के लिए कहते है, लडके-लडकियो को स्वयसेवक और स्वयसेविका दल मे भरती करने के लिए प्रेरित करते है, कारखानो और सभाओ में भिन्न-भिन्न विषयो पर बातचीत करते है, ऐतिहासिक और पुरातत्त्व सबधी स्थानो की यात्रा करते है आदि,आदि। किंतु कम्युनिस्टो ने यह बात मेरे सामने चुपके से स्वीकार की है कि सोवियत् रूस में राजनीतिक हलचल नहीं के बराबर है, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति को यह महसूस होता रहता है कि वह तो केवल दूसरो के इशारो पर नाच रहा है और 'प्रवदा' मे प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियो को बिना अपना मत या व्यक्तित्व प्रगट किये ज्यो-का-त्यो दुहरा रहा है।

सोवियत् जनता के जीवन मे कुछ और रोमाच की बातें भी है—जैसे, स्टालिनग्राड की विजय का रोमाच, लेनिनग्राड निवासियो के वीरतापूर्ण सग्राम का रोमाच, हिटलर पर विजय पाने का रोमाच आदि। ये उनकी सामाजिक ध्येय और राजनीतिक उद्देश्य सबधी दिलचस्पिया नही है, ये उनकी शारीरिक अनुभूतिया है, उनकी भूमि, नदी और नगर सम्बन्धी दिलचस्पियाँ है। इनसे हमें पता चलता है कि बोलशेविक क्राति का क्या हुआ। यह क्राति राष्ट्रीय इसलिए बनी कि इसे राजनीतिक नही रहने दिया गया। राजनीति जनता के लिए नही थी। उसका प्रभाव हमारी आदि भावनाओ पर अधिक पडने लगा और नये समाज के आदर्श पर कम। जारो और जारशाही जनरलो ने सुधारकों, क्रातिकारियो और समाज-शास्त्रियो को पकडकर परदे के पीछे डाल दिया। पीटर महान् कार्लमार्क्स पर छा गए। स्टालिन ने देखा कि रूसियो में अपनी पितृभूमि के लिए पीट्रियन भावनाएँ जाग्रत करना जितना सरल है उतना एक नई अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक प्रणाली के लिए मार्क्सियन भावना जाग्रत करना नही।

चूँकि स्टालिन सोवियत् जनता को काफी अन्न, वस्त्र और शरण देने में असमर्थ थे और वह उसे सरकारी मामलो में कुछ कहने-सुनने का अधिकार नही देना चाहते थे, इसलिए उन्होने उसे राष्ट्रीयता दी। जो धर्म चाहते थे उन्हें स्टालिन ने धर्म भी दिया। कुछ अल्पसख्यको को, जिनकी स्वामि-भक्ति वह खरीदना चाहते थे, उन्होने पदार्थिक ऐश्वर्य और सामाजिक सुविधाओ की अफीम खिलाई।

फिर भी अभी रूस में राष्ट्रीय धन पर सरकार का ही अधिकार है।

वहां अनिवार्यता भी अक्षुण्ण है। यह अनिवार्यता व्यक्ति की अपनी नही, बल्कि उससे ऊपर की है। रूस का साधारण जन एक हेतु का साधन मात्र है। वह हेतु रूस की शक्तिशाली राज-सत्ता है।

शरीर समाजवाद का है, किंतु उसमे अब जीव नही रहा, क्योकि उसमे अब आजादी और अन्तर्राष्ट्रीयता नही रही।

जनतत्र-विहीन समाजवाद तो राज-अधिनायकता है। किसी एक राष्ट्र का समाजवाद, जिसमे अन्तर्राष्ट्रीयता नही होती, राष्ट्रीय समाजवाद है। वह हिटलरवाद नही है। प्रत्येक देश का राष्ट्रीय समाजवाद अपने-अपने ढग का है।

रूस राष्ट्रीय समाजवाद के प्रतिवादो के पक मे फँस गया है। स्टालिन ने अपने को इसी द्विविधा से बचाये रखने का प्रयत्न किया है। सन् १९३६ के विधान का निर्माण कर उन्होने जनतत्र की स्थापना करनी चाही, किंतु वह सफल नही हो सके। क्योकि वह अधिनायकत्व की भावना को दबाने और गुप्त पुलिस को हटाने को तैयार नही थे। स्टालिन के तानाशाह बनने के बाद से रूस में हर साल जनतत्र कम होता जा रहा है। सम्भवत स्टालिन सोचते है कि रूस की सीमाओ को बढाकर या रूसी प्रभाव-क्षेत्र में अधिकाधिक देशो को मिलाकर वह अन्तर्राष्ट्रीयता स्थापित कर रहे है। किंतु छोटे-छोटे देशो को दास बनाना, सयुक्त राष्ट्रीय सघ मे विशेष मताधिकार पर बल देना और तीन बडे राष्ट्रो द्वारा आधिपत्य को नीति का अनुकरण किया जाना अन्तर्राष्ट्रीयता नही है, वह अन्तर्राष्ट्रीयता से भी बढ-चढ़कर है—वह साम्राज्यवाद है।

राष्ट्रीय तानाशाही की अधीनता मे अन्तर्राष्ट्रीयता और जनतत्र नही फल-फूल सकते। अत स्टालिन की अधीनता मे समाजवाद नही पनप सकता। रूसी समाजवाद का तो नाम-ही-नाम है। वह निर्जीव है। प्राण उसमें से निकल चुके है। इसका कारण यह है कि वह अपने उन शिकारो के बोझ से दब गया जो या तो गोली से उडा दिये गए थे या अब भी कन्सेनट्रेशन कैम्पो (बदीगृहो) में पड़े सड रहे है।

: १७ :

लास्की-शास्त्र

ब्रिटेन मे मजदूरदली नेता और प्रकाशक हेरॉल्ड जे० लास्की मार्क्स के भौतिकवाद की दलदल में फँस गए है। इसलिए वह रूस को समझने मे असमर्थ है। लास्की के विचार से, व्यक्तिगत व्यवसायी और व्यक्तिगत खपत बाजार के उन्मूलन से ही समाजवादी सतयुग आजाता है। यह भयकर भूल है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बिना समाजवाद सम्भव नही है। पूँजीवादी शोषण को मिटा देने के बाद भी आर्थिक दासता और राज्य के राजनीतिक शासन की गुजाइश रह जाती है।

लास्की का ख्याल है कि उत्पत्ति के साधनो पर राज्य का स्वामित्व हो जाने से और राज्य द्वारा आर्थिक याजना बनाने और कार्यान्वित करने से रूस बुराई से मुक्त हो गया है। लेकिन यदि राज्य का स्वामित्व आतकपूर्ण हो तो वह अच्छा नही रहता।

लास्की मनुष्य को भूल जाते है। सोवियत् मशीनो के सगठन की प्रशसा करने की धुन में वह सोवियत्-सघ के मनुष्यो के सगठन की उपेक्षा कर देते है।

पूँजीवाद को न मानने वाले शिक्षित लोगो मे पूँजीवाद का नाश करने वाली प्रत्येक चीज को अपनाने के लिए तैयार रहते है, लास्की सबसे कुशाग्र बुद्धि है। ३ दिसम्बर १९४५ को न्यूयार्क मे "नेशन" पत्र द्वारा आयोजित एक भोज में लास्की ने कहा था—"यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल रूस की नई दुनिया मे व्यवसायी आदमी का महत्त्व नही रहा है।" यह सत्य है, लेकिन बात इतनी ही नही है। कितने ही दूसरे लोगो का भी वहाँ कोई महत्त्व नही रहा है, क्योकि वहाँ केवल एक आदमी, एक तानाशाह ही सब बातो में महत्त्वपूर्ण होता है।

दुबले-पतले और तीखी जुबान वाले लास्की अपने-आपको 'निर्दोष विद्वान्' कहते है। उनकी लेखनी प्रस्तर है, जिससे लेखको के हृदयो मे ईर्ष्या उत्पन्न होती है। वे उसका अनुकरण करने में केवल अपनी कमियाँ प्रकट करके रह

जाते है। वह सुखपूर्वक कार्यक्रम तैयार करते है और सुगमता पूर्वक अपने विरोधियो को नष्ट कर देते है। मैंने लास्की को फेबियन सोसायटी मे एक बहुत ही अच्छी तरह मे तैयार किया हुआ पाडित्यपूर्ण व्याख्यान देते हुए सुना है और मैंने मजदूरो की चुनाव सम्बधी एक सभा मे उन्हे अपनी मनोरजक बातो द्वारा अपने श्रोताओ को हँसाते हुए भी देखा है। लेकिन हेरॉल्ड जे० लास्की के कम-से-कम दो रूप है और उन दोनो मे आपस मे कोई मेल नही बैठता। लास्की का दृष्टा रूप वस्तु को यथार्थ रूप मे देखता है; किन्तु उसका विश्वास-कर्ता रूप प्रतिभापूर्ण तर्क करता हुआ लास्की के दृष्टा रूप से कहता है कि जो कुछ वह देखता है वह यथार्थ नही है।

सन् १९४३ मे लास्की ने 'हमारे जमाने की क्रान्तियो पर विचार' नाम की एक जोरदार पुस्तक लिखी थी। इसमे सोवियत् रूस की तानाशाही की भयकरताओ और स्टालिन के आतक की पर्यालोचना कई पृष्ठो मे की गई है। सन् १९४४ मे उन्होने 'धर्म, तर्क और सभ्यता' नाम की एक दूसरी पुस्तक लिखी जिसमे उन्होने 'रूसी विचारो को ससार का रक्षक धर्म' बताया जो कभी ईसाइयत का स्थान ग्रहण कर लेगा।

मैंने 'धर्म, तर्क और सभ्यता' की आलोचना अगस्त १९४४ के 'कॉमन सेन्स' पत्र मे की थी। आलोचना का शीर्षक था—'लास्की को इससे अधिक जानना चाहिए।' सम्पादक ने उसकी एक प्रति डाक से लास्की के पास इग्लैण्ड भेज दी और उनसे उसका प्रत्युत्तर माँगा था। लास्की ने उत्तर मे लिखा—"इस सम्बध मे लुई फिशर ने मेरे ऊपर जो चोट की है, उसे मै उनके साथ अपनी मित्रता के नाते बिना किसी आपत्ति के नम्रता पूर्वक स्वीकार किये लेता हूँ।"

मै हेरॉल्ड लास्की के साथ अपनी मित्रता को बहुमूल्य समझता हूँ और मझे विश्वास है कि उस पर इस आलोचना का कोई प्रभाव नही पडगा।

मैंने पुस्तक की आलोचना मे लिखा था—"प्रोफसर लास्की ने एक समाजवादी विचारक के रूप मे अपने जीवन की सबसे बडी बुनियादी गलती की है। उन्होने ससार से अनुरोध किया है कि वह रूस के नए विचारो को स्वीकार कर ले, जब कि स्वय रूस इन विचारो को छोड रहा है और पूँजीवादी जगत् के पुराने विचारो को अधिकाधिक स्वीकार करता जा रहा है।"

लास्की ने अपनी नई पुस्तक मे कहा है—"नास्तिकता पर ईसाइयत की विजय प्राप्त होने से मनुष्य के विचारो को नई शक्ति मिली है। मै नही समझता कि यदि कोई आदमी सावधानी से हमारे युग की स्थिति की जाँच करे, तो उसे लगातार यह खयाल न हो कि मनुष्य के विचारो को फिर नई

शक्ति देने के लिए फिर किसी धर्म की जरूरत है।" मै इसे स्वीकार करता हूँ। लेकिन चूँकि नया धर्म इतना महत्त्वपूर्ण है, इसलिए प्रत्येक आदमी को सावधानी से चुनाव करना चाहिए। लास्की ने स्वय चेतावनी दी है कि नए धर्म का आधार राष्ट्रवाद नही होना चाहिए। वह घोषित करते है—"राष्ट्र-वाद के लिए नया उत्साह हमे सुगमता से उस मार्ग पर ले जा सकता है जिसके अत मे व्यापक सकट आता है। "नए रूसी विचारो के विरुद्ध, मेरी आपत्ति यही है कि उनकी गाडी को राजनीतिक तानाशाही आर्थिक राज्यसत्तावाद और रूसी राष्ट्रवाद के तीन घोडे खीचते है।

लास्की ने साम्यवाद की कल्पना की तुलना ईसाई जगत् की वास्त-विकताओ से की है। इसमे साम्यवाद की कल्पना श्रेष्ठ ठहरती है। उनको साम्य-वाद की तुलना रूसी जगत् को वास्तविकताओ से भी करनी चाहिए थी।

मैने लिखा था—"लास्की कहते है कि हमे नए धर्म की खोज मे सोवियत् रूस जाना चाहिए, लेकिन स्टालिन ने, जिनकी जानकारी हमारे अग्रेज मजदूरदली मित्र से अधिक है, कई वर्ष पहले यह दृढ निश्चय कर लिया था कि वह अपना नया धर्म मध्ययुगीन रूस और जारकालीन अतीत से प्राप्त करेंगे। इसीलिए सोवियत्-सघ के नए नायक मध्यकालीन रूसी सरदार और पुजारी अलेक्जेन्डर नेवस्की, अठारहवी सदी के लुटेरे जनरल सूवोरोव, जार-कालीन सरदार कुट्जोव, जिन्होने नैपोलियन को हराकर रूस मे फ्रासीसी क्राति को घुसने नही दिया और एक शताब्दी तक रूस की उन्नति का मार्ग बन्द कर दिया और ऐसे ही दूसरे अत्यन्त प्राचीन और सडे-गले व्यक्ति है जिनको लेनिन और दूसरे बोलशेविक गालियाँ दिया करते थे और उनका विरोध किया करते थे।

रूस का अतीत क्रान्तियो से पूर्ण है। लेकिन स्टालिन प्रतिगामी अतीत से ही प्रेरणा ग्रहण करते है। सोवियत्-सघ मे सबसे ऊचे सैनिक सम्मान का चिह्न 'सूवोरोव पदक' है। उसके बाद दूसरा स्थान 'कुट्जोव पदक' का है। तीसरा पदक 'बोडमाल खमेलनित्जकी पदक' है, जो अक्तूबर १९४३ से वितरित किया जाने लगा है। खमेलनित्जकी एक यूक्रेनी नेता थे जिनका शिक्षण-गैलीशिया के जेसुइट स्कूल मे हुआ था। वह सत्रहवी शताब्दी मे उत्पन्न हुए थे। वह पौलैण्ड निवासियो से लडे थे और उन्होने यहूदियो की हत्या की थी। इसीलिए सोवियत् पत्रो ने उस पर जोर दिया। वह स्वतत्र यूक्रेन को जारशाही सरकार से सयुक्त करने के हिमायती थे।

लास्की की पुस्तक का विश्लेषण करते हुए मैने आगे लिखा था—"रूस मे इस समय जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसमे स्लाव लोगो के एकी-

करण और राष्ट्रवाद की हिमायत की गई है। स्टालिन का नया धर्म यही है। इसके अतिरिक्त लास्की की दृष्टि इन हवाई किलो के बावजूद इतनी आगे बढ गई है कि उन्हे यह भी दिखाई नही देता कि सोवियत् राज्य की अधीनता मे रूस मे गिरजो को जो फिर स्वतत्रता दी गई है, वह बालकान राज्यो के यूनानी कट्टर ईसाइयो का समर्थन प्राप्त करने या सोवियत् रूस के धार्मिक दलो को सतुष्ट करने की दृष्टि से ही नही दी गई है। यह इस बात की ओर सकेत है कि रूस मे गम्भीर धार्मिक सकट पैदा हो गया है। स्टालिन की देख-रेख मे क्रान्ति की ज्वाला इतनी ठडी पड गई है कि उससे रूसी लोगो के हृदयो मे कोई उत्साह पैदा नही होता।"

वास्तविक बात यह है कि ससार-व्यापी धर्म-सकट के इस समय मे रूस मे और भी बडा धर्म सकट[1] आ उपस्थित हुआ है। लास्की चाहें तो रूसी विचारो को ईसाइयत का स्थान ग्रहण करने वाली नई 'कपोल-कल्पना' या 'नए विचार' कुछ भी कह सकते है, क्योकि उनकी पुस्तक के अधिकाश पाठक इसके सम्बन्ध मे अनभिज्ञ है। और जो अज्ञात है उसे धार्मिक रूप देना सुगम होता है। लेकिन रूस के लोग अपने देश को जानते है, इसलिए वे जान जाते है कि स्टालिन गदले अतीत मे से उनके लिए एक 'कृत्रिम धर्म' बना रहे है।

मैने 'कॉमन सेन्स' मे की गई आलोचना मे शिकायत की थी—"लास्की ने कभी एक बार भी यह नही कहा कि स्टालिन 'नए रूसी विचार' की जगह नए धर्म की तलाश मे है।" मैने लिखा था—"लास्की ने जो कुछ कहा है उसके विरुद्ध वह एक ही दलील स्वीकार करते है और वह उनके कथन के विरुद्ध जाती है। वह स्वीकार करते है कि स्टालिन की सरकार ने 'उन्मादपूर्ण निर्दयता के कार्य किये है।' लेकिन उनका विश्वास है कि हत्याये, नजरबन्द-शिविर, विद्रोही तत्त्वो का उन्मूलन और मुकदमे क्रान्ति की विजय को सुदृढ करने के लिए आवश्यक थे। यही उनकी सबसे बडी भूल है। मुझे कहना चाहिए कि मुझे इसमे सदेह है कि लास्की सोवियत् इतिहास को भी समझते है या नही। क्राति को सुदृढ करन के लिए आरम्भ में जो आतक-जनक कार्य किये गए, मुझे उनसे कोई विरोध नही। मेरा विरोध तो स्टालिन के आतककारी कार्यों से है जो उन्होने रूस की वर्तमान क्रान्ति-विरोधी क्रान्ति की जडे मजबूत करने के लिए किये। विद्रोही तत्त्वो के उन्मूलन का रहस्य अब तक प्रकट हो जाना चाहिए था। स्टालिन ने क्रान्ति को समाप्त करने के लिए क्रान्तिकारियो को ही समाप्त कर दिया।"

लास्की ने युद्ध-काल मे और स्टालिनग्राड की महान् विजय के मनोवैज्ञानिक भावावेश मे लिखा था—"हिटलरवाद के विरुद्ध गत दो वर्ष की लडाई मे रूसियो ने जो वीरता दिखाई है, उससे समस्त समार के आम लोगो को यह विश्वास हो गया है कि सन् १९१७ की क्राति मे कोई जादू है जो उनकी अपनी समस्याओ पर भी लागू हो सकता है।" लेकिन 'धर्म, तर्क और सभ्यता' में दूसरी जगह लास्की अपना दोष आप बताते है। वह कहते है "हमे उन आदमियो से वडा खतरा है जो साहस को 'विचार' समझ लेते है।"

क्या स्टालिनग्राड मे दिखाया गया साहस ? हाँ, अगाध साहस। उतना ही साहस जितना डन्कर्क में, अल-आमीन मे, तरावा मे, इवोजिमा मे, वारसा मे, और लदन एव कन्वेन्टरी की सडको पर दिखाया गया। नाजी और जापानी भी उन्माद पूर्वक लडे। इसलिए मै नाज़ी जीवन या जापानी धर्म को स्वाकार नही करता। आधुनिक मानव यदि अपने विचार युद्ध-भूमि मे से ग्रहण करेगा तो वह नष्ट हो जायगा। किस युद्ध-भूमि मे से ? ब्रिटेन और अमेरिका भी तो लडाई मे विजयी हुए है।

स्टालिनग्राड मे रूसियो की जीत इसलिए हुई कि एक ऐसे स्थान मे जहाँ जर्मनी को सबसे अधिक दूर चलकर सामान ले जाना पडता था किंतु रूसियो की रक्षित जन-शक्ति जिसके निकटतम थी, स्टालिन उस स्थान की रक्षा के लिए सैनिको का बलिदान करने के लिए तैयार होगए। यह लडाई शायद द्वितीय विश्व-युद्ध की निर्णायक लडाई थी। स्टालिन के दृढ निश्चय और लाल सेना की वीरता की जितनी प्रशसा कवि और इतिहासकार करे, उतने के वह अधिकारी है। लेकिन स्टालिनग्राड मे तो शक्ति का चमत्कार दिखाया गया था। इससे रूसी विचारो की उत्कृष्टता उससे अधिक सिद्ध नही होती जितनी ब्रिटेन और अमेरिका के उडाको, पनडुब्बी-चालको, छाता-सैनिको, आम स्टाफ के अफसरो, वैज्ञानिको, और कारखानो के गौरवपूर्ण कार्यों से अग्रेजो और अमेरिकनो के विचारो की उत्कृष्टता सिद्ध होती है। तोपो की गूज और बमो के विस्फोट की अपेक्षा एक शातिपूर्ण और छोटी आवाज मे विचार के मिलने की अधिक सम्भावना होती है।

स्टालिनग्राड और कई दूसरे स्थानो मे लडाई मे जो बहुत और आश्चर्यजनक वीरता दिखाई गई वह केवल यह बताती है कि मानव-पशु जीवन-कला की अपेक्षा मरण-कला मे अधिक निपुण है। उस सभ्यता मे कोई-न-कोई दोष है जिसका अच्छा-से-अच्छा स्वरूप इस प्रकार की जाने वाली नर-हत्या है।

लास्की के विविध विषयो के विचार पृथक्-पृथक् कोष्ठो मे बन्द मालूम होते है, जिससे उनमे पारस्परिक सम्पर्क न पैदा हो जाय। उनका सबसे बडी कठिनाई यही है। लास्की ने ईसाइयो के इतिहास का उल्लेख करते हुए लिखा है—"मेरे विचार से अत्याचारो के परिणाम-स्वरूप अत्याचारी मे निर्दयता और अभिमान उत्पन्न होता है और अत्याचार-पीडित मे मक्कारी और दास-भावना।" यह रूस की स्थिति का यथार्थ-चित्रण है, लेकिन लास्की इसे स्वीकार ही नही करते।

लास्की ने रूसी जीवन को समझने मे इसलिए भूल की कि रूस मे क्रान्ति के परिणाम-स्वरूप नया राज्य और नया मनुष्य उत्पन्न हो गया है।

अगस्त १९४४ मे लास्की की पुस्तक के सम्बन्ध मे विचार करते हुए मैंने लिखा था—"रूसी राज्य उसी प्रकार शक्ति-सतुलन की राजनीति मे रत है जिस प्रकार कई राज्य पहले इस प्रयत्न मे रत रहे है और इस समय भी रत है। मुझे रूस की वैदेशिक नीति मे ऐसा कुछ भी दिखाई नही देता जिसे हम 'रूस के विचारो की उत्पत्ति' कह सके। उसका मूल मन्तव्य अपने राष्ट्र का लाभ है। रूसी सरकार ने फाशिस्टो, तानाशाही राज्यो, राज्य-सत्तावादियो प्रतिगामियो, परिवर्तनवादियो और जनतत्रवादियो सभी से मित्रतापूर्ण शर्तों के साथ सहयोग किया है।" रूस मे यद्यपि आर्थिक साधनो पर राज्य का अधिकार है, तथापि इससे साम्राज्यवाद के प्रसार मे कोई बाधा नही आई है।

इसी प्रकार रूस मे आर्थिक साधनो पर राज्य का अधिकार होने पर भी वहाँ कोई समाजवादी व्यक्ति नही पैदा हुआ है और न कोई नई समाजवादी नैतिकता ही बनी है। लास्की का विश्वास है कि "सोवियतो की छत्र-छाया मे वह व्यक्तिगत पूर्णता की भावना पैदा होती है जो किसी दूसरी प्रणाली मे रहते हुए नही पैदा होती।" वह कहते है कि रूस मे क्रान्ति के बाद "मनुष्य के सहज गौरव" पर जोर दिया गया है। बोलशेविको के रूस मे ससार मे अन्य देशो की अपेक्षा "अधिक नर और नारियो को आत्म-विकास का अधिक अवसर प्राप्त है।"

मै लास्की से पूछता हूँ कि जहाँ भय है वहाँ गौरव कैसा? स्वतत्रता के बिना व्यक्तिगत पूर्णता कैसे सम्भव है? रूस मे धन्धो मे व्यस्त लोगो को आत्मोन्नति का खूब अवसर प्राप्त है। कथित "निम्न-वर्गो" मे लोगो, अल्प-सख्यक जातियो के सदस्यो को (जो कभी पीडित थे) और स्त्रियो को क्रान्ति के कारण नए और बहुत अवसर प्राप्त हुए है। रूस की विकासोन्मुख अर्थ-योजना के कारण लोगो को धधा पाने और शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति करने की सम्भा-

वनाए बहुत बढ गई है । इसमे अन्ततोगत्वा रूसी लोगो के रहन-महन का वर्त-मान नीचा दर्जा भी ऊँचा होगा ही ।

इन स्थितियो से जो रूसी नागरिक और विदेशी लोग बहक जाते है, उन्हे मै समझता हूँ, क्योकि स्वय मै भी कई वर्ष तक इसी प्रकार भ्रम का शिकार रहा हूँ । रूस की बढती हुई उत्पत्ति के आँकडो और रूसी उद्योगो के विकास को देखकर मुझमे उत्साह पैदा हो जाता था । शिक्षा-सम्बन्धी सुवि-धाओ की वृद्धि और पुस्तको एव समाचार-पत्रो के प्रचार की मै प्रशसा करता था । अल्पसख्यक जातियो, स्त्रियो, औपनिवेशिक देशो, साम्राज्यवाद, सामूहिक सुरक्षा और कुत्सित आन्दोलन के रूप मे आरम्भ होने पर फाशिज्म के बारे मे रूस की जो नीति थी उसने मुझे सोवियत्-सघ का कट्टर समर्थक बना दिया था । सोवियत्-शासन के मित्र के रूप में मैने बहुत समय तक बहुत कुछ किया है ।

मैने सोवियत्-सघ के प्रति अपना रुख क्यो बदला ?

मैने सोवियत् रूस के प्रति अपने रुख मे इसलिए परिवर्त्तन किया कि रूस खुद बदल गया था । मेरे विरोध का कोई व्यक्तिगत, गोपनीय या मेरे धन्धे से सम्बधित कारण न था । स्टालिन के रूस की नई नीतियो और नई अवस्थाओ की मेरे ऊपर प्रतिक्रिया हुई थी । रूसी राष्ट्रवाद, अमानुषिक शुद्धीकरण, बढती हुई असमानता, नई अमीरी हुकूमतें, मानवीय स्वभाव के प्रति बढती हुई घृणा (जिसका एक फल सोवियत् नाजी सधि के रूप में सामने आया था) और अपनी सब बुराइयो सहित वैयक्तिक तानाशाही—इन सबकी प्रतिक्रिया मुझमे प्रकट हो रही थी ।

मै रूस की राष्ट्रवादी, साम्राज्यवादी और अप्रजातत्री नीतियो के कारण सोवियत् सरकार का विरोधी बना । खास तौर से रूस के नए राष्ट्रवाद की मै उच्च-स्वर से निन्दा करता हू । रूस की अन्तर्राष्ट्रीयता मेरे लिए सबसे बडा आकर्षण थी । मै चौदह वर्ष तक सोवियत्-सघ मे रहा । इन दिनो मुझे उस देश की भूमि, नदियो, पत्थरो और वृक्षो मे कभी दिलचस्पी नही हुई । रूस मे जो भारी परिवर्त्तन हो रहे थे,वे उस देश के लिए और अन्य देशो के लिए लाभप्रद हो सकते थे, इसलिए मुझे रूस मे दिलचस्पी थी । सबसे बडी बात यह है कि जो रूस में अन्तर्राष्ट्रीय भावना बढ रही थी उसमे मुझे बहुत दिलचस्पी थी, क्योकि मेरे खयाल मे राष्ट्रवाद सबसे बडी बुराई है । वह मानव जाति के लिए भारी अभिशाप और लडाइयो का मुख्य कारण सिद्ध हुआ है । रूस ने राष्ट्रवाद को फिर स्वीकार कर लिया, यह मेरे जीवन की सबसे दु खपूर्ण घटना है । मै

सोवियत्-सघ से उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद के विरोध, और जनतत्री उद्देश्यो के कारण बडी आशाये बाधे बैठा था ।

जब मै इन बातो को अस्वीकार करता हू तो क्या मै चुप बैठा रहूँ ? तानाशाही की एक बडी कमजोरी यह है कि वह आलोचना को सहन नही कर सकती । आलोचना ही जनतत्रीयता है । जो जनतत्रवादी यह आग्रह करते है कि सोवियत्-सरकार को आलोचना से मुक्त कर दिया जाय वे तानाशाही के हित साधन मे लगे हुए है । ऐसे युग मे जब सरकारे सर्वत्र ही भूले करती है और मनुष्यो के लिए विपदाए खडी कर देती है, किसी सरकार को आलोचना से बरी कर देना हानिकर है । जो लोग यह कहते है, क्या वे सोवियत्-सरकार के अतिरिक्त किसी दूसरी सरकार पर अपने आक्रमण बन्द कर देगे । कुछ लोगो की दृष्टि मे बेकिन, ट्रूमैन, डिगाल, पोप और चाग-काई-शेक की आलोचना पूर्णत उचित है । स्टालिन की आलोचना साम्यवादियो के लिए हितकर है । रूस मे स्टालिन की आलोचना बिलकुल नही होती । तानाशाही के विदेशी समर्थक, जो यह बात पसद करते है, रूस के बाहर भी स्टालिन की आलोचना को निषिद्ध करना चाहते है । आलोचना से बचने का सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि उन अवस्थाओ को हटाया जाय या उनमे सुधार किया जाय जिनके कारण यह आलोचना करना उचित है । आलोचना को दबाना इसका इलाज नही है ।

मैने 'नेशन' के लेखदाता-सपादक का कार्य इसलिए छोड दिया था, कि यह पत्र रूस के सम्बध मे कुछ कहता ही न था, जब तक कि उसके सामने कुछ बात उसके अनुकूल कहने के लिए न हो । इसके परिणाम-स्वरूप ससार के सबसे बडे चुनौती देने वाले देश की कितनी ही घटनाओ के सम्बध में उसका मुँह बन्द रहता था ।

राष्ट्रो की मित्रता वास्तविक तथ्य को दबाने से कायम नही रहती । असत्यो के बदले खरीदी हुई मित्रता नाजुक होती है और वह थोडा-सा जोर पडते ही टूट जाती है ।

मै यह आशा नही करता कि मेरी सरकार पूर्ण ही होगी । प्रत्येक व्यक्ति किसी सामाजिक सगठन या सरकार से जो सम्बन्ध रखता है वह अच्छाई और बुराई के अनुपात से निश्चित होता है । यदि उसमे अच्छाई बुराई से अधिक है, या अधिक होने की सम्भावना होती है, तो वह उसके पक्ष में हो जाता है । यदि बुराई अच्छाई से बहुत अधिक हो जाती है और वह अच्छाई की भी हत्या करने पर उतारू हो जाती है, तो वह उसके विपक्ष मे हो जाता है ।

जो लोग जनतत्री देशो मे रहते है उनके सामने जब सोवियत् रूस की अवस्थाए प्रस्तुत की जाती है तो इसमे सबसे बडी कठिनाई यह सामने आती है कि वे प्राय यह अनुभव नही कर पाते कि तानाशाही किस हद तक बुरी हो सकती है। उदाहरण के लिए कुछ प्रतिगामी अमेरिकन यह आक्षेप करते है कि फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट तानाशाह थे, और उद्योगो की नई व्यवस्था (न्यू-डील) के सम्बध मे उन्होने मनमानी से काम लिया था। जो आदमी किसी तानाशाही शासन मे रहा है, उसको इससे हँसी आयगी। इसका अर्थ तो यह है कि इस प्रकार का दोष लगाने वाले यही नही जानते कि तानाशाही कैसी होती है। इसी प्रकार यह कहा गया है कि चाग-काई-शेक तानाशाह है। मैंने स्वय उनकी प्रतिगामी नीतियो के कारण उनकी आलोचना की है। लेकिन कुछ समय पूर्व कुनमिग के कुछ अध्यापको ने चाग-काई-शेक को एक पत्र भेजा था। एक अध्यापक ने इस पत्र को १८ दिसम्बर १९४५ के 'न्यूयार्क हेरॉल्ड ट्रिब्यून' मे छपवा दिया। पत्र में कहा गया था—"एक दलीय तानाशाही का अत करना आवश्यक है।" इसके अतिरिक्त उन्होने लिखा था—"एक व्यक्ति के हाथो मे सत्ता का केन्द्रीकरण अब समाप्त हो जाना चाहिए।" जो भी रूस की स्थितियो से परिचित है वह यह जानता है कि रूस मे यह बात अकल्पनीय है। कोई भी प्रोफेसर या दूसरा आदमी जब तक आत्म-हत्या न करना चाहे, तब तक ऐसे शब्द किसी कागज़ के टुकडे पर नही लिख सकता, उनको स्टालिन के पास भेजने का खयाल नही कर सकता और न किसी दूसरे देश के लिए डाक मे छोडने का साहस कर सकता है।

रूस की गुप्त पुलिस के आतक से मै सदा ही घृणा करता था, लेकिन पहले मुझे आशा थी कि यह कम हो जायगा।

दूसरे मे इसकी तुलना उसकी सामाजिक और आर्थिक सफलताओ से करता था। कुछ समय बाद मैने देखा कि यह आतक प्रतिवर्ष अधिकाधिक निर्दयतापूर्ण होता जाता है। क्राति ने अपने शत्रुओ को चौपट करने के बाद अपने निर्माताओ और अपनी सन्तानो को ही खाना शुरू कर दिया था। मुझे यह भी दिखाई देने लगा कि व्यक्ति की स्वतत्रता के अभाव मे बोलशेविज्म के कितने ही लाभो का वास्तविक मूल्य जाता रहा था।

उदाहरण के लिए अल्पसख्यक जातियो को दी गई स्वतत्रता को ले लें। शाब्दिक दृष्टि से देखने से जार्जिया, यूक्रेन और सोवियत्-सघ मे सम्मिलित दूसरे छोटे राष्ट्रो को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि वे चाहे तो सोवियत्-सघ से अलग हो सकते है। लेकिन वस्तुत उन्हे ऐसा नही करने दिया

जाता। शाब्दिक दृष्टि से उनको राजनीतिक और आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त है, लेकिन वास्तविक रूप मे उनके साम्यवादी, जिनका उन पर प्रभुत्व है, रूसी सरकार की आज्ञाओ से सचालित होते है। वास्तव मे सन १९४१ से रूसी सरकार ने कई जातीय जनतत्रो को दबाया है और उनकी खुदमुख्तारी छीन ली हैं। इसके लिए कोई सरकारी घोषणा नही की गई। यह तभी मालूम हुआ जब मत-दाता-क्षेत्रो की सूची प्रकाशित की गई। यह सोवियत्-विधान को भग करके किया गया। लेकिन सास्कृतिक मामलो मे रूसी सरकार अल्पसख्यक जातियो को अपनी रुचियो और इच्छाओ के अनुसार चलने देती है, सिवा इसके कि इन लोगो को अभी रूसी इतिहास और रूसी भाषा सिखाने पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है और अभी हाल के वर्षो मे प्रकाशित रूसी पुस्तको के अनुसार रूसी सरकार ने कुछ अल्पसख्यक जातियो, जैसे तातारो और स्लाव नस्ल से भिन्न नस्लो के लोगो मे, बढते हुए राष्ट्रवाद को कुचलने का प्रयत्न भी किया है।

अल्पसख्यक जातियो के साथ जातीय पक्षपात करना सभ्यता और शिष्टता के विरुद्ध है। फिर भी बोली बोलने वाले दलो को सास्कृतिक स्वतत्रता मिली हुई है, चाहे व्यक्तियो को भले ही रत्ती भर भी स्वतत्रता न हो। सोवियत्-सघ के अन्तर्गत आर्मेनियम जाति को स्वतत्रता प्राप्त है, लेकिन वहाँ के किसी भी निवासी को व्यक्तिगत स्वतत्रता प्राप्त नही है। उजबक, यूक्रेनी और ताजिक भी व्यक्तिगत स्वतत्रता से वचित है। इस सम्बन्ध मे सबकी एक-सी दशा है।

उजबक, यूक्रेनियो या रूसियो के अत्याचार से पीडित नहीं है। लेकिन गुप्त पुलिस उसको किसी भी क्षण बिना कुछ पूछ-ताछ किये गिरफ्तार कर सकती है और मुकदमा चलाये बिना निर्वासित कर सकती है। वह साम्यवाद-विरोधी को इसी प्रकार मत नही दे सकता, जिस प्रकार एक अमेरिकन पूँजीवाद के विरोधी को मत दे सकता है। वह सरकार या उसके नेताओ की राजनीति की आलोचना नही कर सकता। यदि करना है तो उसे निजी रूप से गम्भीर परिणाम भुगतने पडते है। उसको सहमत होना और आज्ञा पालन करना होता है, यदि वह असहमत भी हो तो भी वह कहेगा यही, कि वह सहमत है। वह इसी में बुद्धिमानी समझता है।

जहा तक सब जातियो का सवाल है सोवियत् शासन सभ्य है लेकिन जहा सब लोगो का सवाल है, वहा वह असभ्य है। विज्ञान के प्रति सोवियत् सरकार का नया ही रुख है। वह वैज्ञानिक अनुसधान के लिए बहुत-सी सहा-

यता और कई ठोस सुविधाए देती है। किन्तु विज्ञान के स्वतत्र होने पर भी वैज्ञानिक वहा स्वतत्र नही है। वैज्ञानिको पर सोवियत्-सघ के उच्च-वर्गों का शासन है। रूसी वैज्ञानिक विदेशी वैज्ञानिको से स्वतत्रतापूर्वक पत्र-व्यवहार नही कर सकते। इस बात की व्यवस्था गुप्त पुलिस की मार्फत होनी आवश्यक है। रूसी वैज्ञानिक अतर्राष्ट्रीय काग्रेसो मे नही जाते। यदि उन्हे विदेश जाने की जरूरत हो तो भी वे विदेश नही जा सकते। सोवियत्-सघ का भौतिक विज्ञान-शास्त्री, वनस्पति-शास्त्री, गणित-शास्त्री, तत्त्व-वेत्ता और इतिहासकार अवश्य ही सावधान रहता है कि उसका निष्कर्ष मार्क्सवाद और भौतिकवाद के वर्त्तमान अर्थों से विपरीत न हो। क्योकि वह जानता है कि उसके कितने ही साथियो की निन्दा की जा चुकी है और कितने ही साथी क्राति-विरोधी कहकर दडित किये जा चुके है, क्योकि उन्होने विरोधी विचार प्रकट किये थे। कितने ही रूसी वैज्ञानिक सफाये के शिकार हो चुके है।

प्रो० लास्की के मित्र प्रमुख अग्रेज वैज्ञानिक जूलियन हक्सले सन् १९-४५ में रूस गये थे। 'नेचर' पत्र मे उन्होने लिखा था— "रूसी विज्ञान की कुछ शाखाओ मे वैज्ञानिक राष्ट्रवाद की कुछ भावना दिखाई देती है जो लोग विरोध करते है वे बरखास्त कर दिये जाते है।"

प्रो० पीटर कपीत्सा एक महान् भौतिक विज्ञान-वेत्ता है। सन् १९२२ म जब रूस के कुछ लोग बाहर जा सकते थे,कपीत्सा रूस से इग्लैण्ड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयो मे चले आये। सन् १९२६ मे प्रसिद्ध अग्रेज वैज्ञानिक लार्ड रदरफोर्ड ने कैम्ब्रिज मे खास तौर से एक रसायनशाला बनाई जहाँ कपीत्सा चुम्बकीय सुरगो और इससे मिलते-जुलते विषयो पर खोज कर सकें। सन् १९-३५ मे वह रूस गये। सोवियत् सरकार ने उनको उनकी इच्छा के विपरीत वही रोक लिया और उसने ब्रिटिश सरकार, लार्ड रदरफोर्ड और दूसरे लोगो के विरोध-प्रकाश की कोई परवाह नही की। इस पर लन्दन-स्थित रूसी राजदूत ने एक वक्तव्य दिया, जिसमे कहा गया था कि सोवियत्-सघ में विज्ञान का साधारण विकास हो रहा है और वैज्ञानिको की बहुत अधिक कमी है। उसको ध्यान मे रखते हुए रूस के लिए विदेशो में काम करने वाले अपने वैज्ञानिको का उपयोग करना आवश्यक कहा गया है। उसमें यह भी कहा गया था कि प्रो० कपीत्सा अच्छी जगह रखे गए है और उनको अच्छा वेतन दिया जारहा है। यह निस्सदेह सत्य है, लेकिन कपीत्सा, जो सम्भवत. अणु का रहस्य खोल सकते है, स्वतत्र नही हैं।

इन्ही महीनो मे अमेरिका और इग्लैण्ड के घाघ रूसी बहानेबाजो ने

जनता को यह समझाने का प्रयत्न किया है कि जनतंत्री, पाश्चात्य देशीय और रूसी कल्पनाओ मे गहरा अन्तर है। उन्होने यह भी कहा कि सोवियत्-सघ के नागरिक स्वतत्र है, यद्यपि उनकी स्वतत्रता भिन्न प्रकार की है। इस बकवास पर बहुत कम रूसी नागरिक चुप रह सकेंगे। रूसी नागरिक दो तरह के है, एक वे जो जानते है कि वे स्वतत्र नही है और इससे उनको दुख भी होता है, दूसरे वे जो जानते तो है, लेकिन परवाह नही करते। क्योंकि उनकी स्वतत्रता की आवश्यकता और उसके लिए उनकी रुचि बदल गई है।

जिनकी आयु सन् १९२७ मे सोलह वर्ष से अधिक थी, उन्हे इस बारे मे साम्यवादी दल मे जो खुला विचार हुआ था, उसका स्मरण होगा। कितनें ही कार्यकर्ताओ को स्मरण है कि वे पहले सामूहिक बातचीत कर सकते थे, लेकिन अब नही कर सकते। पारिवारिक घर मे रहने वाला प्रत्येक आदमी जानता है कि ३ बजे प्रातःकाल ही रूसी गुप्त पुलिस आती है और परिवार के एक दो सदस्यो को ले जाती है। जब दिन मे निश्चित समय पर अरबत स्ट्रीट से सब लोगो को हटा दिया जाता है तो पैदल चलने वाले जान जाते है कि स्टालिन की मोटर यहाँ होकर गुजरने वाली है। वे आश्चर्य के साथ सोचते है कि यदि वे मार्ग के एक ओर खडे हो जाय और उसे देखते रहे तो इससे क्या नुकसान हो जायगा? जब रूसी खुफिया पुलिस के आदमी उस मार्ग के दोनो ओर, जिस पर स्टालिन अपनी पत्नी के शव के पीछे-पीछे जानें वाले थे, घरो को देखने गए तो लोगो ने यह अनुभव किया कि उनका विश्वास नही किया गया।

यदि रूसी नागरिको का यह खयाल हो कि वे स्वतत्र है तो वे इतनी कानाफूसी न करें। वे अपनी गर्दनो को पीछे की ओर मोड-मोड कर यह न देखें कि कहीं उनकी बात कोई सुन तो नही रहा है। वे अपने एक पुराने मित्र से केवल इसीलिए सम्बन्ध न तोड लें, कि उसका एक सम्बन्धी गिरफ्तार कर लिया गया है। सोवियत्-सघ के लोग इस पुलिस-राज के अभ्यस्त हो गए हैं और कुछ समय बाद वे यह सब कार्य इतना यत्रवत् करने लगते है कि उसको करते समय उन्हे उसका भान ही नही होता।

सोवियत् पत्रो मे जनतत्री देशो की हडतालो की खबरें छपती हैं। सोवियत् मजदूर जानते है कि वे हडताल नही कर सकते, यद्यपि कभी-कभी करना भी चाहते है। इसका प्रमाण यह है कि जब सन् १९३५ में स्टारवनोव ने उत्पादन-वृद्धि का आन्दोलन उठाया और मजदूरो या खनको के कार्य की मात्रा बढ़ा दी, तो इस आन्दोलन मे कुछ मजदूर मार दिये गए या पीटे गए।

रूसी अखबारो ने इन घटनाओ और सज़ाओ की खबरे भी छापी ।

सोवियत्-सघ के नागरिक जानते है कि एकदलीय चुनाव मे उनके मतो का कोई महत्त्व नही है । जो लोग भोले-भाले है––जैसी मेरी नौकरानी–वे पूछ बैठते है कि केवल एक उम्मीदवार के सूचक मत-पत्र को भरने का क्या प्रयोजन है । रूस मे अब अधिकाश लोग कोई पूछ-ताछ ही नही करते । वे जो कुछ उनसे करने की आशा की जाती है वही करते चले जाते है ।

सोवियत्-सघ के निवासी अशक्त होने पर भी मूर्ख नही है । वे जानते है कि वे तानाशाही हुकूमत मे रहते है ।

रूसी गुप्त पुलिस द्वारा की जाने वाली गिरफ्तारियो के प्रति रूस की जनता जो भावना दिखाती है, वह सोवियत् जीवन की सबसे आश्चर्यजनक बातो मे से एक है । किसी के बदी बनाये जाने पर रूसी जनता मे साधारणत यह प्रतिक्रिया नही होती कि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति अपराधी है, बल्कि यह कि वह अभागा है । अधिकाश सोवियत् नागरिक गुप्त रूसी पुलिस के जाल मे फँसने वाले व्यक्तियो के इतने निकट सम्पर्क मे रहते है कि उन्हे यह बात आसानी से मालूम हो जाती है कि उनकी गिरफ्तारी सफाये के उद्देश्य से की जाती है और उसका उनके निजी दुराचरण से कोई सम्बन्ध नही होता । इन गिरफ्तारियो के कुछ और भी कारण होते है, जैसे निजी द्वेष की पूर्ति के लिए दोषी ठहराना या किसी राजद्रोही के साथ जीवन पर्यन्त मैत्री करना आदि ।

अलेक्जेडर अफीनोगेनाव रूस के एक बडे ही सफल नवयुवक नाटककार थे । उनके खेल मास्को के कला-भवन और दूसरे उम्दा थियेटरो मे खेले गए थे । अन्य कलाकारो और लेखको की भाति वह भी रूसी गुप्त पुलिस के प्रधान अधिकारी, जेनरिख यगोडा के यहाँ जाया करते थे । जेनरिख अपने को कलाओ का सरक्षक समझा करते थे । असल में अफीनोगेनाव-परिवार यगोडा को बहुत ही प्रिय था और उसे मास्को के उस सुन्दर मकान का हिस्सा मिला हुआ था जिसमे गुप्त पुलिस के अफसर रहा करते थे । किंतु यगोडा गिरफ्तार कर लिये गए और उन पर यह मुकदमा चलाया गया कि रूसी नेताओ को राज-द्रोह के अपराध मे पकडते और गोली से उडाते समय उन्होने राज-द्रोहात्मक कार्य किये थे । यगोडा पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें मौत की सज़ा दी गई । यगोडा के गिरफ्तार कर लिये जाने पर अफ़ीनोगेनाव से कमरा छीन लिया गया और वह कम्यूनिस्ट दल से निकाल बाहर किये गए । इसके बाद सभी छोटे आलोचक अफीनोगेनाव पर टूट पडे और कहने लगे कि उनके नाटक कभी भी अच्छे नही हुए । थियेटरो ने इन्हे खेलना बद कर

दिया। साहित्य-सभाओ मे अफीनोगेनाव पर "क्रान्ति विरोधी प्रवृत्तियो" और बोलशेविक विरोधी विचारो का दोषारोपण किया जाने लगा। ऐसा मालूम हुआ कि सदा की भाति गिरफ्तारी के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जा रही है किंतु एकाएक अफीनोगेनाव को फिर पूर्व-सम्मान प्राप्त होगया और जिन छोटे आलोचको ने उस पर थूका था वे ही फिर से उसकी प्रशसा करने लगे। अधिकाश लोगो ने सोचा कि यह बात स्टालिन के निजी हस्तक्षेप के कारण हुई है। बात यह थी कि वर्तमान शताब्दी के द्वितीय शतक मे अफीनोगेनाव ने रूसी जीवन के पाखण्ड पर एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम उन्होने "झूठ" (दी लाई) रखा था। एक दिन उनके पास स्टालिन के दफ्तर से बुलावा आया। पुस्तक की प्रतिलिपि स्टालिन के पास पढने के लिए भेजी गई थी। स्टालिन ने अफीनोगेनाव से कहा कि नाटक है तो अच्छा किंतु यह रग मच पर खेला नही जाना चाहिए। स्टालिन ने अफीनोगेनाव पर नाटक को रगमच से हटा लेने के लिए जोर दिया और अफीनोगेनाव ने ऐसा ही किया।

राजनीतिक सम्मान पुन प्राप्त करने के बाद एक दिन अफीनोगेनाव मुझे और मेरी पत्नी मारकूशा को अपनी फोर्ड मोटर गाडी मे बैठाकर अपने गाव वाले बगले मे ले गये। मै उनके पास आगे की सीट पर बैठा और बातचीत के दौरान मे बोला—"शूरा, तुम जानते हो कि तुम पर जितने भी दोषारोपण किये गए थे वे सब असत्य थे। क्या इसका यह मतलब नही हुआ कि अगर तुम दूसरे पर भी ऐसे ही दोषारोपण की बाते सुनोगे तो तुम्हे यह खयाल होगा कि वे झूठ है।"

मेरी ओर घूमकर अफीनोगेनाव मुसकराये। वह मुझसे सहमत थे। युद्ध के दिनो में जर्मनी ने मास्को पर बम-वर्षा की तो अफीनोगेनाव भी उनकी भेट हुए।

लास्की ने क्या कहा था ? दण्ड देने से "दण्डित व्यक्ति के हृदय मे पाखड और दासता की भावना उत्पन्न हो जाती है।" साथ-ही-साथ, इससे दण्डित व्यक्तियो और दण्ड का समाचार सुनने वालो में चिडचिडापन भी उत्पन्न हो जाता है। रूसी नागरिक दण्ड को अपराध से सबधित नही समझते। वे उसे दण्ड देने वाले के किसी राजनीतिक आयोजन का अग मानते हैं। बोलशविक क्रान्ति के परिणामस्वरूप लोगो मे कानून के प्रति भय तो अवश्य बढ गया है किंतु उसके प्रति सम्मान नही बढा है। कानून के प्रति सम्मान न होने का कारण यह है कि सोवियत्-सघ में वस्तुत कोई कानून है ही नही। तानाशाही खुद कानून है। पहले कानूनो की रत्ती भर भी चिंता न कर वह

कानून बनाती-बिगाडती और उनमे परिवर्त्तन भी करती है, जिससे प्रमाणित होता है कि वह स्वय कानून का आदर नही करती। रूस मे कानून से भय मानने का अर्थ है कि उन लोगो का भय मानना जो स्वय कानून है, कानून तो उसी समय रह सकता है जब सरकार उसका पालन करे और उसी दशा मे जनता से भी उसके पालन किये जाने की आशा की जा सकती है।

सन् १६३६ के स्टालिन-विधान की दफा १२१ मे लिखा हुआ है—"सोवियत् यूनियन के निवासियो को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। इस अधिकार की रक्षा के लिए प्रारम्भिक शिक्षा व्यापक और अनिवार्य बना दी गई है, प्राइमरी और उच्च दोनो ही प्रकार की शिक्षाएँ नि शुल्क कर दी गई है और विश्वविद्यालयो के अधिकाश विद्यार्थियो के लिए सरकारी वजीफो की व्यवस्था कर दी गई है ।"

बडी सुन्दर घोषणा है यह! किंतु २ अक्तूबर १९४० को रूसी सरकार ने एक नया आदेश घोषित कर उच्च श्रेणी के हाई स्कूलो, कालेजो, विश्व-विद्यालयो और उच्च यात्रिक स्कूलो मे नि शुल्क शिक्षा बद कर दी। साथ-ही-साथ, वजीफे और छात्र-वृत्तिया आदि भी खत्म कर दी गईं।

विधान में कोई परिवर्त्तन नही किया गया। जनता से सलाह नही ली गई। सरकार ने विधान की नितान्त उपेक्षा की और उसके विपरीत कार्य किया। किसी ने विरोध का एक शब्द भी मुँह से नही निकाला। ऐसा करने का किसे साहस होता? उस विरोध को छापता कौन? सरकारी प्रेस?

रूसी सरकार के इस अवैधानिक कार्य से मजदूरो और किसानो के लडको के लिए हाई स्कूलो और कालेजो मे पढना अधिक कठिन हो गया और इसके फलस्वरूप धनियो के लडके-लडकियो के लिए जगहे खाली हो गईं। स्टालिन उच्च-वर्ग के व्यक्तियो की एक पीढी तैयार कर रहे थे।

विधान की धारा १२१ के रद्द किये जाने के अगले ही दिन रूसी सर-कार ने कारखानो और रेलो के आस-पास हाई-स्कूलो को उच्च श्रेणी के टेकनीकल स्कूलो के बनाये जाने की आज्ञा दी। ताकि उनमे वे ६ हजार विद्यार्थी भरती किये जा सकें जो फीस सम्बधी आदेश के कारण हाई-स्कूलो और कालेजो में पढने का खर्च बरदाश्त नही कर सकते थे।

इस प्रकार उच्च-वर्ग के लडके-लडकियो को उनके भावी जीवन—इन्जी-नियर, प्रोफेसर, व्यवसायी, वैज्ञानिक आदि बनने—के मार्ग पर डाल दिया गया। इसके विपरीत मजदूरो और किसानो के लडके-लडकियो को मिस्त्री, कारीगर, ट्रैक्ट-चालक और रेलवेमैन आदि की शिक्षा प्राप्त करने में लगा दिया गया।

फरवरी १९४४ मे जब कि विधान की इस प्रकार बलात उपेक्षा करने के फलस्वरूप उच्चवर्गीय नवयुवको-नवयुवतियो का विश्वविद्यालयो मे प्रवेश हो गया और निम्न कोटि के नवयुवको-नवयुवतियो को उद्योगो और कृषि की द्वितीय श्रेणी की नौकरियो मे अपना भविष्य सीमित दिखाई देने लगा तो तानाशाह सरकार ने एकाएक और बिना कोई कारण बताये ही धारा १२१ को पुन लागू कर दिया। और इसके साथ-ही-साथ उसने कालेजो की शिक्षा को नि शुल्क घोषित कर दिया और छात्रवृत्तियाँ भी पुन आरम्भ कर दी।

इस घटना से पता चलता है कि सरकार सर्वोच्च कानून का किस प्रकार पालन करती है, तानाशाही राज्य व्यवस्था मे शिक्षा का कितना आदर किया जाता है और नेता जनता के साथ कैसा व्यवहार करते है। नेता वहमी होते है, जनता भी वहम और उदासीनता का कवच पहनना सीख जाती है। इस-लिए यदि घटना-चक्र पर अपना कोई प्रभाव नही तो आप व्यर्थ ही क्यो चिन्ता करते है ?

मेक्सिको नगर मे एक स्वागत-सभा मे भाषण देते हुए रूसी राजदूत कान्सटैन्टाइन ओमास्की ने, जो मास्को के मेरे पुराने मित्र थे और जिनकी एक बिमान-दुर्घटना मे मृत्यु हो गई, रूस की शिक्षा-सम्बधी सुविधाओ के विस्तार पर बातचीत की।

"क्या मै पूछ सकती हूँ कि इस आश्चर्यजनक शिक्षा से लाभ क्या, जब आपके देश मे लोगो को मत-प्रकाश की भी आजादी नही ?" एक महिला ने पूछा।

"श्रीमती जी, मै इस प्रश्न को एक प्रतिगामी प्रश्न समझता हूँ और इसका उत्तर देने से इकार करता हूँ", ओमास्की ने उत्तर दिया। यह बात एमिली बैरेट ब्लैनचर्ड ने 'सटर्डे ईवनिग पोस्ट' के २३ दिसम्बर १९४४ के अक मे एक लेख मे बताई। ओमास्की का उत्तर उन्होने स्वय अपने कानो से सुना था।

आजकल हम जिसे पसन्द नही करते, वही हमारे लिए "प्रतिगामी" हो जाता है। असल मे हम उसे "फाशिस्ट" कह बैठते है। किन्तु महिला के प्रश्न करने पर भी कूटनीतिज्ञ ओमास्की का उत्तर न देना एक विचारणीय बात है। निस्सन्देह साक्षरता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। किन्तु विचार-शक्ति और कला की उत्पत्ति मे "स्वतत्रता" का उतना योग नही जितना "साक्षरता" का। सन् १९३६ के विधान में लिखे होने के बावजूद रूसी नागरिको को मत-प्रकाश या सभा-समाज करने की आजादी नही है, सिवा उस आजादी के जो सरकार उन्हे किसी विशेष उद्देश्य से देना चाहती है।

६ दिसम्बर १९३६ को रूस के ३० नेताओ ने क्रेमलिन मे बैठकर गम्भीरतापूर्वक नये विधान पर हस्ताक्षर किये। इनमे स्टालिन, मोलोटोव, वोरोशिलाव और लिटविनाव भी थे। सन् १९३९ तक हस्ताक्षर करने वालो मे से १५ व्यक्तियो का बिना किसी मुकदमे के सफाया कर दिया गया। इनमे दूर पूरब की रूसी सेना के कमाडर मार्शल ब्लूशर, सर्वोच्च राजनीतिक सस्था के सदस्य कोस्सियोर, उस सस्था के डिप्टी मेम्बर रड्जूटाक, यूक्रेन के कम्युनिस्ट दल के नेता पोस्टीशेव, गुप्त पुलिस के प्रधान अधिकारी येजोव, जो यगोडा के उत्तराधिकारी बने थे, और पश्चिमी साइबेरिया के कम्युनिस्ट दल के प्रधान ईशे भी थे। यही वह व्यवहार था जो स्टालिन ने रूस के सस्थापको के साथ किया। इस बात की कोई घोषणा नही की गई कि इन लोगो का सफाया कर दिया गया है, न उनके सफाये का कोई कारण ही बताया गया। बस, वह अदृश्य भर हो गए और उसके बाद दिखाई नही दिये।

चिरस्थायी, कठोर और व्यापक तानाशाही विवेक-शक्ति को प्रोत्साहन नही देती क्योकि उसे वह खतरनाक समझती है। साथ-ही-साथ वह राजनीतिक साहस को भी मृत्यु का सकेत समझकर प्रोत्साहन नही देती और लोगो की चिन्तन-प्रवृत्ति को दबाती है क्योकि उसके विचारानुसार इसकी आवश्यकता उच्च-वर्ग के कुछ इने-गिन व्यक्तियो को ही होती है। अन्य सब लोग तो उनके ही विचारो को दुहराते है। रूसी शिक्षा का उद्देश्य कार्य है, चिन्तन नही।

बोलशेविज्म के सस्थापको को यह भय पहले से ही था कि समाजवाद के अन्तर्गत राज्य-सत्ता नष्ट हो जायगी। किंतु उनकी आशा के बिलकुल विपरीत, रूस से समाजवाद ही उड गया है। वहाँ के लोगो मे अब राजनीति के प्रति दिलचस्पी न रह गई, न न्याय, नैतिकता और चिन्तन की ही कोई चिन्ता रह गई।

यही वह रूस है, जिसके प्रति लास्की हमसे नया विश्वास उत्पन्न करने को कहते है।

हैरॉल्ड जे० लास्की को और उनके साथ-ही-साथ उनके रूस सम्बन्धी विचार से सहमत होने वाले व्यक्तियो को इस समस्या का सामना करना ही पडेगा। रूस की नई पीढी के अधिकाश व्यक्ति, जिनमे तीस वर्ष तक की आयु वाले सभी लोग शामिल है, पूर्णत भौतिकवादी है। चूँकि उनके पूर्वज सूअरो के बाडो के पास रहते थे और अशिक्षित थे और वे स्वय शिक्षक, सैनिक-अफसर आदि बन सकते है और उन्हे अपने बच्चो की शिक्षा का विश्वास है, इसलिए वे रूसी शासन को अच्छा समझते है। और आज़ादी? "आज़ादी किसे

कहते है ?" वे उत्तर देते है—"क्या पूजीवादी देशो मे आजादी है ? अगले साल हमे खेती के लिए एक और ट्रैक्टर और जूतो के लिए कुछ और चमडा मिल जायगा ?" इस तरह की बाते रूस मे कई आदमियो से हुई।

व्ही० कावेरीन के सन् १९३१ के "अज्ञात कलाकार" नामक एक रूसी उपन्यास मे एक नायक ने कहा है—"सच्चरित्रता ! मुझे तो इस शब्द के सम्बन्ध मे सोचने तक की फुर्सत नही। मै काम मे लगा हुआ हू। मै समाजवाद का निर्माण कर रहा हू। किन्तु यदि मुझसे कोई पूछे कि तुम सच्चरित्रता को अधिक पसन्द करते हो या पतलून को तो मै उत्तर दूँगा—पतलून को।' इस कलाकार को रूस की भावी प्रवृत्ति का काफी पहले से ही आभास हो गया था। कावेरीन से बहुत पीछे मै भी यह समझा कि तानाशाही राज्य-सत्ता आदर्शवाद की हत्या कर देती है।

रूस की वर्तमान जीवन प्रणाली मे भौतिक पदार्थों पर ही ध्यान केन्द्रित होता है। ये पदार्थ अधिकाश रूसियो के लिए आज भी दुर्लभ है और सदा ही दुर्लभ रहे है। इन्हे प्राप्त करना और पेशेवर उन्नति की अधिकाधिक सम्भावनाओ से भरे हुए आरामदेह जीवन की आशा ही मनुष्य के समस्त प्रयासो का लक्ष्य होता है। यदि तानाशाही राज्य-व्यवस्था से इस उद्देश्य की पूर्ति की आशा हो सकती है तो वह अनिन्द्य है, चाहे उसकी कार्य-प्रणाली कितनी ही अनैतिक, अजनतन्त्री और सास्कृतिक तथा चरित्र सम्बन्धी विचारो के लिए विनाशकारी क्यो न हो।

यही आजकल रूस की प्रधान भावना है।

कहा जा सकता है कि रूसियो के जीवन-मान में काफी उन्नति करने से स्थिति मे परिवर्त्तन आजायगा। किंतु वह उन्नति अभी सालो दूर है। तब तक नागरिक अधिकारो का दमन, व्यापक हत्या-काण्ड, बडे-बडे कान्सेन्ट्रेशन कैम्प, सर्वसत्तावादी नीरस प्रचार और ऐसी ही दूसरी तानाशाही युक्तियो को, जो कि जनता के लिए अधिक भण्डारो, स्कूलो, पुस्तको, बच्चो और शस्त्रो की व्यवस्था करने के बहाने से प्रचलित है—एक ऐसी महान् दार्शनिकता का रूप दिया गया है कि जिसके प्रलोभन को पश्चिमी देशो के उदार दल वाले और समाज-शास्त्री भी नही रोक सकते। इसके अलावा, तानाशाहो द्वारा स्वय जनता को इस बात का विश्वास दिलाया जारहा है कि उन्हे सब प्रकार की स्वतन्त्रताए प्राप्त है। ये स्वतन्त्रताए भावी भौतिक लाभो की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण हैं और पूजीवादी देशो में भी किसी को स्वतन्त्रता प्राप्त नही है। जिस तरह आजादी भोगकर ही आजादी के प्रयोग की योग्यता सीखी जाती है उसी प्रकार

आजादी के अधिक दिनो तक प्रयोग मे न आने से उसे भोगने की इच्छा कुठित हो जाती है। सन् १९१७ के महीनो को छोडकर रूस म कभी नागरिक स्वतन्त्रता नही रही, इसलिए अधिकाश रूसी नागरिको को यह पता ही नही कि यह स्वतन्त्रता कितनी सुखकर होती है।

रूस के अनेक नागरिको मे वह मानसिक क्षमता ही नही जिसकी सहायता से वे स्वतन्त्रता को समझ सके। पर्लबक के 'माशा स्कॉट से रूस के सम्बन्ध मे बातचीत' नामक लेख मे श्रीमती स्कॉट, जो पहले रूस के एक कारखाने मे काम करती थी और जिनका अमेरिकन लेखक जान स्कॉट से विवाह होगया है, पर्लबक से कहती है—"मै आपको यह बता देना चाहती हू कि आप जनता को शिक्षित बनाने का जो ढग प्रयोग मे लाते है उसे मै अच्छा नही मानती। उदाहरण के लिए हमारे देश रूस मे आप यह बात कही नही पा सकते कि दो भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रो के दो भिन्न-भिन्न मत हो। अर्थात् ऐसा कभी नही होता कि किसी बात को एक आदमी तो ठीक बताये और दूसरा उसी को गलत कहे। जनता कैसे जान सकती है कि इनमे से सत्य कौन-सा है ?"

माशा स्कॉट और उसकी पीढी के लोगो ने, जो कि रूस की नई पीढी है, सत्य बताने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति पर ही निर्भर रहना सीखा है। यह काम उनके लिए रूसी सरकार करती है।

मेरा बडा लडका जार्ज २१ वर्ष की उम्र मे अमेरिकन सेना मे कप्तान था। युद्ध के दिनो मे वह एक साल तक सोवियत्-यूक्रेन-पोलरावा के अमेरिकन हवाई अड्डे पर तैनात रहा। उन दिनो मै रूस मे विदेशी सवाददाता की हैसियत से काम करता था। उसे वहा बडा सम्मान प्राप्त हुआ और वह रूसी भाषा बहुत अच्छी तरह बोलता है। सन् १९४४ के शरत् काल मे पोलटावा के अड्डे पर काम करने वाले अमेरिकनो ने राष्ट्रपति के चुनाव मे अपने मत दिये। ऐसा करने से पहले उनमें उम्मीदवारो की वैयक्तिक योग्यता के सम्बन्ध मे स्वभावत बडा वाद-विवाद हुआ। उनके साथ काम करने वाले रूसियो ने इस असाधारण राजनीतिक हलचल को देखा और पूछा कि बात क्या है।

जार्ज ने कहा—"हर चौथे साल हम अपने राष्ट्रपति का चुनाव करते है। इस साल जनतत्र की ओर से रूजवेल्ट खडे है और वही इस समय राष्ट्रपति भी है, रिपबलिकन दल की ओर से डेवे खडे है और हमे इन दोनो में से किसी एक को मत देना है।"

"मै कुछ नही समझा" रूसी सेना के एक लेफ्टीनेन्ट ने कहा, "आपका

कहने का मतलब यह है कि रूजवेल्ट जनतन्त्रवादी है और वह कई वर्षा से राष्ट्रपति है और फिर भी अमेरिकन सेना मे रिपबलिकन है ?"

यदि रूज़वेल्ट की जगह पर स्टालिन होते तो वह निस्सदेह इन रिपबलिकनो का अन्त कर देते।

क्या लास्की ने रूस के नूतन निवासी की मानसिक प्रवृत्ति का निकटवर्ती रूप देखा है ? तानाशाही का अर्थ केवल बन्दीगृहो और फासियो से नही है। तानाशाही शरीर का बध करने से भी अधिक भयकर काम करती है। वह जीवित बचे हुए व्यक्तियो के मस्तिष्क और सकल्प को भी मार देती है।

स्वेच्छाचारी तानाशाही का इस आधार पर समर्थन करना कि उससे सबको नौकरी मिल जाती है और जनता को उत्तमतर जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होता है, केवल रूस मे ही सीमित नही रह गया है। अब यह एक विश्व-व्यापी समस्या बन गई है, आधुनिक पुरुष के सामने शायद यह सबसे बडी समस्या है। यदि तानाशाही राज्य-व्यवस्था द्वारा हम बहुलता और सुरक्षा की ओर बढ सकते है तो एशिया, यूरोप, अफ्रीका, और लैटिन अमेरिका के डेढ खरब निवासी, जो शतको से दरिद्रता की यत्रणा भोगते आये है—रूसी जीवन प्रणाली और साम्राज्य-विस्तार के समर्थक बनाये जा सकते है। किन्तु रूस के अनुभव से यह बात सिद्ध नही हुई है। इसी तरह यदि रूस शाति की गारण्टी है— जैसा कि सीधे-सादे, अज्ञानी और कुटिल कवि कहते है, किन्तु जिसे रूस के आक्रमणकारी कार्य द्वारा प्रमाणित नही करते—तो क्यो न जनतत्र मिटा दिया जाय और सभी जगह स्टालिनवाद स्वीकार कर लिया जाय।

आगामी दस वर्षों मे एशिया क एक खरब निवासियो और सम्भवत यूरोप के भी करोडो व्यक्तियो को रूसी या अमेरिकन जीवन-प्रणाली मे से किसी एक को चुनना होगा। कुछ अमेरिकन विद्वान् उन्हे रूसी जीवन-प्रणाली स्वीकार करने को कह रहे है। लास्की ने उन्ही के सुर-मे-सुर मिलाया है।

लास्कीवादियो पर बडी जबरदस्त जिम्मेदारी है। जनतत्र द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद भी मरा नही, किन्तु जब तक सोवियत् रूस की सारी बातें पूरी तरह से खोलकर नही कह दी जायगी तब तक इस बात की सम्भावना नही कि जनतत्र उस बौद्धिक गृह-युद्ध मे जीवित बच सकेगा जो इन सभ्य जनतत्री देशो मे होता है। झगडे की सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि उदारदल वाले जहाँ एक ओर भिन्न-भिन्न देशो के अत्याचारो के विरुद्ध एक आन्दोलन-सा उठा रहे है वहाँ वे उस रूसी शासन-प्रणाली का भी समर्थन कर रहे है जहाँ क्रूरतापूर्ण मृत्यु-दण्ड, देश-निकाला, निजी स्वतत्रता और कलाकारो, लेखको आदि

की आजादी का दमन एक दैनिक घटना है। उन बातो का एक कारण यह भी है कि लोगो को आशा है कि रूसी जीवन-प्रणाली आधुनिक ससार को आर्थिक समस्याओ को हल कर देगी।

अब तक यह बात सबको मालूम होजानी चाहिए थी कि प्राइवेट व्यवसायियो और व्यवसायो का अन्त करने से रूस मे सतयुग नही आ पाया है। पूजीपति का गद्दी से उतारकर उसके स्थान पर एक ऐसे अत्याचारी को बैठाने से जिसके हाथो मे सर्वसत्ताधारी राज्य और साथ-ही-साथ समस्त पूंजीपतियो की शक्ति भी है, हम शिष्टता, बहुलता या शाति की ओर अग्रसर नही हो सकते। निश्चय ही इनका मार्ग कोई और है।

: १८ :

जोसेफ स्टालिन

एक दिन मारकूशा ने आकर मुझे अचम्भे में डाल दिया। यद्यपि १९४४ में "माई लाइव्स इन रशा" लिखने के बाद अब वह रूस के सम्बन्ध में एक उपन्यास लिख रही है फिर भी उसे मेरे छान-बीन के काम में हाथ बटाने की फुर्सत मिल जाती है। अचानक पुस्तकालय में उसकी नज़र मेरे एक लेख पर पड़ गई, जो मैंने १९२५ में "करेंट हिस्ट्री" के जून वाले अंक में लिखा था। मैंने इस लेख को उतनी ही दिलचस्पी के साथ पढ़ा, जितनी से किसी ऐसे पुराने पत्र अथवा डायरी को पढ़ा जाता है, जिसमें किसी व्यक्ति के बीते हुए जीवन की भूली हुई बातों पर प्रकाश पड़ता हो।

लेख में स्टालिन के सम्बन्ध में निम्न वाक्य थे—"जिनोवीन से अधिक योग्य तथा शक्तिशाली स्टालिन है, जो कम्युनिस्ट पार्टी का सेक्रेटरी है। १९२४ में लेनिन की मृत्यु के बाद रूस के शासन की बागडोर जिनोवीव, कामेनीव और स्टालिन की जिस त्रिमूर्ति के हाथों में आई, उसमें सबसे शक्तिशाली स्टालिन ही है। उसका जन्म जुगोशिविली में हुआ और पादरी बनने की शिक्षा पाई। फिर क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के कारण वह पांच बार गिरफ्तार हुआ और पांचों बार साइबेरिया भेज दिया गया और पांचों ही बार वहां से भाग निकला। ऐसा स्टालिन, स्वभाव से चुप रहने वाला और शक्की मिज़ाज का व्यक्ति है। वही बोलशेविक सत्ता के भीतर छिपी रहस्यपूर्ण शक्ति है। वह एक अच्छा संगठन-कर्त्ता तथा विवाद-पटु व्यक्ति है। बदला लेने में वह बड़ा निर्दय तथा घृणित है। वह न तो किसी को माफ करना ही जानता है और न उसकी दृष्टि में सरल व्यवहार का कोई मूल्य है। वह एक प्रकार से बोलशेविक क्रान्ति का मूर्तिमान प्रतीक है—भावना-हीन, लौह-संकल्पी, कठोर, अपने उद्देश्य के मार्ग में किसी बाधा को सहन न करने वाला और अंतःकरण जैसी किसी वस्तु से रहित। जो थोड़े शब्द उसके होठों से निकलते हैं उनसे मानों शक्ति चूती रहती है। उसका दफ्तर, जहां वह रात-दिन बैठा रहता है, शक्ति का महान्

स्रोत है। जिस प्रकार पावर-हाउस से बिजली की लहर निकलती है उसी तरह उसके दफ्तर से निकली हुई विद्युन् लहर से पार्टी का कार्य निरतर चलता है। वह पार्टी का सेक्रेटरी और इसीलिए प्रधान व्यवस्थापक है।

"लेनिन स्टालिन पर विश्वास करता है, पर स्टालिन किसी पर विश्वास नही करता" ये शब्द है, जो रूस मे स्टालिन के सम्बन्ध मे लोग कहते है। यह बात सच हो या नही, पर इससे पता चलता है कि स्टालिन के सम्बन्ध मे लोगो का क्या मन है। इसका चित्र अपनी कहानी अलग कहता है। स्टालिन की आखो के चारो तरफ पडी हुई सिकुडने तथा झुर्रिया उसकी चतुराई तथा चालाकी को प्रकट करती है।"

अब दुनिया स्टालिन के बारे मे पहले से बहुत अधिक जान गई है, क्योकि अब वह ससार का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति हो चुका है। उसके इतना प्रभावशाली होने का कारण यह नही है कि उसका देश ससार मे सबसे शक्तिशाली है, बल्कि यह कि वह उसकी शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग करता है।

स्टालिन शक्तिशालो व्यक्ति है । वह शक्ति प्राप्त करने और उसे बनाये रखने के तरीको को खूब जानता है। देश के भीतर उसे शक्ति की जरूरत थी और वह उसने प्राप्त कर ली। विदेश मे शक्ति प्राप्त करने की उसकी इच्छा हुई और उसे पाने के उपाय करते उसे देर न लगी।

स्टालिन का असली नाम जोसेफ विसारयोनोविच जुगोशिविली है। उस का जन्म १८७९ मे एक मोची के घर हुआ, जिसे शराब पीने का शौक था। माता कुछ धार्मिक प्रवृत्ति की थी और उसने उसे पाठशाला भेजा, पर वह शाला से निकाल दिया गया।

"स्टालिन" का अर्थ है इसपात। इसपात की शलाखे या तो सीधी और मजबूत होती है और या उन्हे नाजुक स्प्रिग अथवा घुमावदार स्क्रयू का रूप दिया जा सकता है। स्टालिन का व्यक्तित्व जिस इसपात से बना है, वह जहा एक तरफ सख्त और कडा है वहा दूसरी तरफ नर्म और लचीला भी है। बदूक या रिवाल्वर का घोडा दबाने मे उसे ज़रा भी देर नही लगती, किन्तु वह अनन्त काल तक अवसर की प्रतीक्षा भी कर सकता है। अन्य लोग जल्दबाज़ी में असफल कार्य करने की गलती कर सकते है, किन्तु स्टालिन धैर्यपूर्वक मौका देखते रहना पसद करता है। वह पक्का काम करने वाला, मेहनती और रूखा है। अपने आगे आत्म-समर्पण करने वाले को वह भरपूर इनाम देता है, किन्तु विरोध करने वाले को कभी माफ नही करता। उसे कभी कोई बात नही भूलती।

सोवियत्-नेता अपने सस्मरण नही लिखते। हम स्टालिन के सम्बन्ध मे

उसके भाषणो और लेखो के आधार पर तो मत बनाते ही है, किन्तु उसके व्यक्तित्व तथा विशेषताओ का सबसे अधिक ज्ञान आज के रूस को देखने से होता है, क्योकि १९२६ से अब तक स्टालिन सोवियत् रूस को अपनी ही प्रतिमूर्ति बनाने की चेष्टा करता रहा है। सोवियत् रूस के सम्बन्ध मे कुछ जानने से स्टालिन के सम्बन्ध मे जानकारी अपने-आप हो जाती है और स्टालिन के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने से सोवियत् रूस के सम्बन्ध मे हमे अनायास ही बहुत कुछ मालूम हो जाता है।

यूरोप मे मित्रराष्ट्रो की विजय के कुछ ही दिन बाद जनरल ड्वाइट आइजनहोवर ने लाल सेना के सुप्रसिद्ध सेनापति, मास्को के वीर और बर्लिन के विजेता, मार्शल जुकोव को फ्राकफर्ट मे दावत दी थी। दोनो सेनापतियो मे जो वार्ता हुई उसे नीचे दिया जाता है। यह वार्ता "न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून" के १८ जून १९४५ वाले अक मे और फिर अमरीकी सेना के सरकारी विवरणो में प्रकाशित हुई थी।

जुकोव—"हमारे अधिकार मे रासायनिक तेल की कुछ ऐसी मशीने है, जो हमें अपने कब्जे में आये क्षेत्र मे मिली है। हमने उनकी मरम्मत कर ली है, पर चला नही पाये है। शायद अपने अपने क्षेत्र में कुछ ऐसी ही मशीनो को चलाना शुरू कर दिया है। क्या मै अपने कुछ कारीगरो को भेजू, जो देख लें कि आपकी मशीने कैसे चल रही है?"

आइजनहोवर—"जरूर, भेज दीजिए। हम उन्हे मशीने चलाना सिखा देगे।"

जुकोव—(चकित होकर) "तो क्या आपको अपनी सरकार से अनुमति लेनी पडेगी?"

आइजनहोवर—"नही, बिलकुल नही। आप भेज दीजिये।"

जुकोव को आश्चर्य इसलिए हुआ था कि गुप्तचर पुलिस अथवा स्टालिन से पूछे बिना वह स्वय ऐसा कभी न कर पाता। बडे-से-बडे सोवियत् अफसर को किसी विषय मे निर्णय करने का अधिकार नही होता—उसे तो केवल आदेश का पालन करना होता है। यही सोवियत् शासन-प्रणाली है, जिसका स्टालिन ने निर्माण किया है।

यह एक ऐसी बात है, जो हम रूस और स्टालिन के सम्बन्ध मे जानते है।

अक्तूबर १९४४ के "रीडर्स डाइजेस्ट" मे अमरीकी चेम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष एरिक ए० जॉन्सन का "जोसेफ स्टालिन से मेरी वार्ता"

शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। जॉन्सन मुझे बता चुके है कि लेख मे जो बात-चीत दी हुई है, वह स्टालिन के कार्यालय द्वारा दिये गए विवरण से ज्यो-की-त्यो ली गई है।

एरिक जॉन्सन साइबेरिया के भ्रमण को निकला था। उसने स्टालिन से कहा —"मै अपने साथ चार अमरीकी पत्र-प्रतिनिधि यूराल ले जाने की अनुमति चाहता हू।"

"जरूर, क्यो नही ?" स्टालिन ने कहा।

"तो इसका मतलब है कि मै ले जाऊ ?"

"अवश्य, ही।"

"धन्यवाद, मार्शल स्टालिन" जॉन्सन बोला—"पर क्या मोलोटोव स्वीकार करेगे ? देखिये, अभी तक उसके कार्यालय (विदेश विभाग) ने मेरा अनुरोध स्वीकार नही किया है।"

"इस समय मोलोटोव मेरी ओर देख रहा था"—जॉन्सन लिखता है—एकाएक उसने स्टालिन की ओर दृष्टि फेरी और जल्दी से बोल उठा, "मै मार्शल स्टालिन के फैसलो को हमेशा स्वीकार करता हू ?"

मार्शल ने अपना सिर एक तरफ को फेरा और खीसें निकाल दी—"मि० जॉन्सन, सचमुच आपका यह खयाल नही हो सकता कि मोलोटोव का मुझसे मतभेद होगा।"

यह है स्टालिन का व्यक्तित्व, स्टालिन की तानाशाही और आज का रूस।

सोवियत् रूस के रक्षा-मन्त्री मार्शल वोरोशिलोव से मैने तथा यूनाइटेड प्रेस के प्रतिनिधि फ्रेडरिक कुट्ट ने भेट की थी। भेट का जो विवरण श्री कुट्ट ने तैयार किया उसका विदेश भेजे जाने से पहले सेसर किया जाना जरूरी था। वोरोशिलोव में उसका सेसर खुद करने की हिम्मत न थी। इसलिए वह उसे स्टालिन के पास ले गया।

पहले तो तानाशाह स्टालिन अपने सहकारियो को काई महत्त्वपूर्ण निश्चय करने से रोक देता है। कुछ दिन यह परिस्थिति रहने के बाद वे खुद ही कोई निश्चय करना नही चाहते। इसी मे रक्षा है और यही आसान है। सोवियत् अफसरो की विशेषता अपनी जिम्मेदारी ऊपर वाले अधिकारी के सिर टाल देना है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे सोवियत् प्रतिनिधि जो देरी किया करते हैं उसकी वजह भी यही है कि वोट देने या प्रश्न का उत्तर देने से पहले उन्हे क्रेमलिन (रूसी सरकार का कार्यालय) से पूछ-ताछ करनी पडती है। जिस

प्रकार एरिक जॉन्सन के सामने स्टालिन द्वारा अपमानित किये जाने पर मोलो-टोव ने अपने को "शक्तिहीन" अनुभव किया था उसी प्रकार सभी सोवियत् अधिकारी पहले अपने को "शक्तिहीन" अनुभव करते है और फिर वास्तव मे "शक्तिहीन" बन जाते है और इस स्थिति से स्टालिन खूब प्रसन्न होता है।

इसी नीति के परिणामस्वरूप सोवियत्-नाजी-सघर्ष के सम्बन्धमे प्रत्येक रूसी नागरिक स्टालिन को ही प्रधानता देता है । जब लाल सेना पीछे हट रही थी उस समय स्टालिन के नाम का सोवियत् पत्रो तथा रेडियो से प्राय लोप हो गया था। रूसी तानाशाह मनोविज्ञान का अच्छा पडित है। जिस समय रूसी जनता पराजय की आशका से चिन्तित थी उस समय स्टालिन नही चाहता था कि लोग उसके सम्बन्ध मे कुछ भी सोचे। परन्तु जब युद्ध का पासा लालसेना के पक्ष मे पलटने लगा तो स्टालिन का नाम फिर सुनाई देने लगा और विजयो का श्रेय भी उसी को दिया जाने लगा।

कुशल प्रचारको द्वारा स्टालिन के सम्बन्ध मे जिन जनश्रुतियो को जन्म दिया गया है उन्होने रूसी तानाशाह को ससार और इतिहास का सबसे महान् सेनापति बना दिया है। इसमे सत्य का अश कहा तक है, मै नही बता सकता और न स्टालिन के निकट-सम्पर्क मे रहने वाले चद आदमियो को छोडकर दूसरा ही कोई बता सकता है। मास्को वाशिगटन, लदन अथवा पेरिस नही है, जहा गुप्त-से-गुप्त बातभी जल्दी या देर में प्रकट हो जाती है। कौन कह सकता है कि स्टालिन ने रण-नीति की योजनाए स्वय तैयार की थी या किसी सेनापति अथवा सेनापतियो द्वारा तैयार योजनाओ पर केवल सही कर दी थी ?

चर्चिल के निजी चिकित्सक लार्ड मोरन का कहना है कि स्टालिन के मन की बात का पता लगाना सहल नही है। चर्चिल ने लार्ड मोरन से स्वय यह बात कही थी। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने, जिसे भूतपूर्व इग्लैड का सबसे प्रमुख वार्तालाप-प्रिय व्यक्ति कहा जा सकता है, लार्ड मोरन से कहा था कि मै भारी-भरकम रूजवेल्ट को तो अपनी बातो मे घसीट लेता हू किंतु काकेशियन पर्वत का वह स्व-निर्मित व्यक्ति, स्टालिन मौन ही बनाये रहता है।

स्टालिन ने स्वाभाविकता को शून्य तक घटा दिया है। उसके कार्य, शब्द, सकेत, मौन तथा अनुपस्थितिया सब राजधानी से तैयार की गई योजना के अग होते है। जब स्टालिन सोवियत्——माजो कानून पर हस्ताक्षर होते समय मुसकराया था तो उसमें हिटलर के लिए एक सदेश छिपा था।

स्टालिन नही चाहता था कि चर्चिल उसके मन की बात जाने।

१९३६ तक चोटी के बोलशेविक स्टालिन को "खोजयेन" या "प्रधान"

कहते थे। अचानक सकेत मिलने पर उन्होने उसे "स्टारिक" अथवा "वृद्ध पुरुष" कहना शुरू कर दिया, जिसे रूसी भाषा मे प्रेमपूर्ण सम्बोधन माना जाता है। तानाशाही शासन मे सब बाते—यहा तक कि प्यार के सम्बोधन भी—तय की जाती है और आदेशो द्वारा उनका प्रयोग कराया जाता है।

सोवियत् प्रचारको ने स्टालिन को जनता के दिल मे कील की तरह ठोक-ठोक कर घुसा देने में कुछ भी उठा नही रखा है।

१९४५ मे स्टालिन को श्वेत रूस के २५, ४७, ३६० निवासियो के हस्ताक्षरो से एक अभिनन्दन-पत्र भेट किया गया था। १८ नवम्बर १९४५ के दिन जोसेफ बार्नीस ने मास्को से "न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून" को कजाक सोवियत् प्रजातत्र का २५ वा वार्षिकोत्सव मनाये जाने के सम्बन्ध मे एक समाचार भेजा था। इस समाचार मे २५,००,००० कजाक नागरिको के हस्ताक्षर से स्टालिन के नाम एक पत्र प्रकाशित करने का उल्लेख था। कजाक प्रजातत्र मध्य एशिया में थोडी आबादी वाला प्रदेश है, जिसकी औसत जनसख्या प्रति-वर्ग किलोमीटर ४ व्यक्ति है। युद्ध से थके देश के ऐसे भाग मे कर्मचारियो को इन पत्रो के लिए हस्ताक्षर प्राप्त करने मे कितना परेशान होना पडा होगा और इसके लिए कितनी शक्ति, समय और धन की बर्बादी हुई होगी—यह क्या स्टालिन से छिपा होगा ? फिर भी ऐसे पत्रो की सख्या रूस में बढ़ती ही जाती है।

६ अप्रैल १९४६ को जनरल फ्राको के आगे ७,००,००० हस्ताक्षरो की ५० जिल्दे यह प्रमाणित करने के लिए पेश की गई थी कि स्पेनवासी अभी तक उसकी अधीनता स्वीकार करते है। मजदूर-विभाग के मत्री गिरोन ने जिल्दें पेश करते हुए कहा था—"केवल आप ही एक ऐसे स्पेनियार्ड है, जिनका अनुसरण करने के लिए हम हर एक का और हर तरह के विरोध का सामना करने को तैयार हैं।"

जनता से यत्नपूर्वक जो प्रशसा प्राप्त की जाती है, वह ऐसा करने वालो की आखो मे चकाचौंध नही पैदा कर सकती। इसका उद्देश्य केवल जनसाधारण तथा विदेशियो को मूर्ख बनाने का होता है। ऐसे कार्य अनेक बार होने का, असाधारण प्रभाव पडता है।

"हमारा प्यारा पिता, मित्र और शिक्षक, हमारा गौरव, हमारा अभिमान महान् स्टालिन"—ये शब्द मास्को के एक दैनिक पत्र "ट्रुड" ने १९३९ में अपने २६ जनवरी वाले अक में लिखे थे। ऐसे ही शब्द सोवियत् रूस के अन्य किसी भी प्रकाशन में मिल सकते हैं। मास्को की "बोलशेविक" पत्रिका

मे १९४५ मे अपने जुलाई वाले अक मे सोवियत् इतिहास, दर्शन तथा न्याय-शास्त्र सम्बन्धी एक गम्भीर लेख प्रकाशित हुआ था, जिसम स्टालिन को "युग का सबसे महान् वैज्ञानिक" कहा गया था। स्टालिन की प्रतिमा बहुमुखी है और उसी की कृपा से अनेक देने प्राप्त हुई है—इस आशय के एक-से एक बढकर तारीफ के पुल बाधे जाते है और सोवियत् पत्रो तथा पत्रिकाओ मे इसके लिए होड-सी लगी रहती है।

एकतत्रीय तानाशाही का "फ्यूहरर" वाला सिद्धात बोलशेविको ने हिटलर से कही पहले ही स्वीकार कर लिया था। अब से कितने ही साल पहले जब वह प्रकट हुआ था तभी से मै उससे घृणा करने लगा था। यद्यपि सोवियत् विदेश विभाग मास्को मे रहने वाले पत्रकारो द्वारा स्टालिन की कटु आलोचना पसद नही करता, फिर भी मैने १९३० मे "नेशन" के अगस्त वाले अक मे इस बात की निंदा की थी कि स्टालिन की निजी तारीफे इस अस-भावित ढग से क्यो प्रकाशित होने दी जाती है। मैने लिखा था—"स्टालिन चिकनी-चुपडी बातो, थोथी चापलूसी तथा अरुचिकर प्रशसा का लक्ष्य बन गया है लेनिन ने कभी भी ऐसी बाते अपने समय मे न होने दी थी और वह जितना लोकप्रिय था उतना होने की स्टालिन कभी आशा नही कर सकता ऐसा करना न तो बोलशेविको को ही शोभा देता है और न इसमे राजनीतिक बुद्धिमत्ता ही है। यदि स्टालिन इस सबके लिए जिम्मेदार नही है तो वह कम-से-कम उसे सहन तो करता है। वह सकेत मात्र से इसका खात्मा कर सकता है।"

सच तो यह है कि स्टालिन को यह सब पसद था और अब भी है। उसने इसे प्रोत्साहन भी दिया है। जैसे जैसे साल गुजरते गये है यह प्रचार अधिकाधिक अरुचिकर और भद्दा रूप ग्रहण करता गया है। स्टालिन के नाम पर आठ शहरों का नामकरण किया गया है—स्टालिनग्राड, स्टालिनो गौर्स्क, स्टालिनाबाद, स्टालिन, स्टालिनो, स्टालिनिर, स्टालिनिसी, और स्टालिनोल। इनके अतिरिक्त, असख्य गावो, कारखानो, सामूहिक खेतो तथा विद्यालयो के नाम भी स्टालिन पर रखे गए है। पूर्वी देशो की भाँति देवताओं की तरह पूजे जाने से स्टालिन की "पिता" बनने की भूख शान्त होती है। साथ ही यह एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा एक डिक्टेटर जनता का प्रेम प्राप्त करता है और उसे अपनी आज्ञा मानने के लिए बाध्य करता है। शायद स्टालिन सोचता है कि सोवियत् रूस जैसा कष्ट पीडित राष्ट्र, जो धर्म की सुविधा से वचित है, अपने कष्टो की जड़ इस सरकार का केवल उसी हालत में अधिक समर्थक

हो सकता है जब कि सरकार का प्रधान उसका "पिता' हो। सावियत नागरिको द्वारा क्रेमलिन मे बन्द "पिता" के प्रति प्रेम का कोई सबूत मुझे अभी तक नही मिला है। लेनिन को देशवासी प्रेम पूर्वक "इलिच" कहते थे। भूतपूर्व रक्षा-मत्री मार्शल वोरोशिलोव से जिन साधारण लोगो तथा बालको का प्रेम था वे उसे "क्लिम" कहते थे। वोरोशिलावस्क नामक जो नगर उसके नाम पर बसाया गया था, उसका नाम हाल ही मे स्टेवरोपोल कर दिया गया है। परन्तु स्टालिन, प्रत्येक प्रयत्न के बावजूद, स्टालिन--इसपात ही बना हुआ है। लोग उसके काम करने के प्रभावपूर्ण ढग पर मुग्ध है। परन्तु वह ऐसा व्यक्ति नही है, जिसे कोई भी प्रेम करेगा। उसमे स्पन्दन का अभाव है। उसका चेहरा देखने से पता चलता है कि बाहर से जो कुछ आता है उसमें समा ही जाता है, कुछ भीतर से बाहर नही जाता। हिटलर ने लाखो प्राणियो को अपने भावावेश से आकर्षित कर लिया था। चर्चिल ने इग्लैण्ड को तथा उसकी सीमा के बाहर के भी कितने ही लोगो को मोह लिया था। रूजवेल्ट की मधुर आवाज तथा व्यवहार की मृदुता तथा सरलता ने उसके मित्रो की सख्या बढाई और उसे सफल बनाया। परन्तु स्टालिन मे आकर्षण, सम्मोहन-शक्ति और व्यवहार की मृदुता अथवा सरलता का पूर्ण अभाव है। एक बार मुझे मुलाकात के समय उसके पास सवा छ घटे बैठने का मौका मिला। सब कुछ मिलाने पर मुझे उसमे शान्त शक्ति, दृढ सकल्प, चेतना युक्त निर्देशन तथा एक लक्ष्य के पीछे समस्त प्रयत्नो को केन्द्रीय करने के गुण ही दिखाई दिये। दुनिया मे अन्य नेताओ ने जो अधिकार सार्वजनिक आकर्षण के बल पर प्राप्त किया वही स्टालिन ने ऊपर बताई विशेषताओ के साथ राजनीतिक कौशल तथा उच्चकोटि की सगठन-शक्ति द्वारा पाया है। और इस अधिकार तथा शक्ति को पिछले बीस वर्षो से जो वह बनाये हुए है, यह भी कुछ कम बडी मौलिक अथवा राजनीतिक सफलता नहीं है। ऐसा करने मे स्टालिन को जहाँ एक तरफ उन असख्य समस्याओ का सामना करना पडा है, जो दूसरी सरकारो के सामने उठती है, वहाँ दूसरी तरफ उसे उन सस्थाओ को निर्बल करना पडा है और उन व्यक्तियो को नष्ट करना पडा है, जो तानाशाह के इरादो की आलोचना करते उसे चुनौती देते अथवा उसमे बाधा डालते।

स्टालिन के सगठन का सिद्धान्त रण-नीति से मिलता-जुलता है। वह जहा अपनी शक्ति बढाने की चेष्टा करता है वहा विरोधी की शक्ति को कुचल डालनें के लिए भी सचेष्ट रहता है। वह इस सिद्धान्त को सोवियत् रूस के घरेलू मामलो तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे समान रूप से काम मे लाता है। इन

दानो ही क्षेत्रो मे उसने विरोधियो मे फूट पैदा करने, उन्हे अस्त-व्यस्त कर देने, और उनकी शक्ति को प्रभावहीन कर देने की विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है।

स्टालिन ने सोवियत् प्रणाली का सगठन जिस ढग से किया है उसमे विरोध की सम्भावना नगण्य रह गई है। देश मे किसानो की ही सख्या अधिक है। ये सरकारी खेतो पर मिल-जुल कर काम करते है। भूमि, मशीनो तथा कृषि के औजारो पर सरकार का अधिकार है और वही फसल की खरीदार है। इन किसानो को वर्गों के रूप मे सगठित होने की स्वतन्त्रता नही है। इस प्रकार किसानो मे न तो राजनीतिक एकता है और न आर्थिक शक्ति ही। श्रमजीवियो की मालिक स्वय सरकार है और ये श्रमजीवी हडताल करने को स्वतत्र नही है। जिस प्रकार अन्य देशो मे मजदूर सभाए मालिको के सामने अपनी माग रख सकती है उस प्रकार रूसी मजदूर सभाए नही रख सकती। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि वहा मजदूर सभाए है ही नही। यही नही, सरकार के लाखो कर्मचारियो तथा सरकारी कारखानो के लाखो मैनेजरो के पास अपने डिक्टेटर की प्रभुता को रोकने अथवा उसका विरोध करने का भी कोई साधन नही है। यह ठीक है कि कर्मचारीवर्ग के सहयोग के बिना पत्ता भी नही हिल सकता। परन्तु रूस मे काम न करने वाले को भोजन नही मिलता और इस किसी बात पर आपत्ति करने वाले को गिरफ्तार कर लिया जाता है। उच्च अधिकारीवर्ग स्थिति को बनाये रखने में और भी सहायक है। किसी अफसर को कही भी भेजा जा सकता है और जेल का द्वार भी उसके लिए सदा खुला रहता है। मोलोटोव से लेकर छोटे-से-छोटा कर्मचारी अपील का अवसर दिये बिना सदा के लिए मार्ग मे हटाया जा सकता है। नौकरशाही कारखाने की एक आवश्यक कल है, किन्तु यह कल जिस बिजली से चलती है वह उसे तानाशाह से प्राप्त होती है। कम्युनिस्ट दल भी स्टालिन से स्वतत्र होकर उस के विरुद्ध कार्रवाई नही कर सकती। पहले यह दल ही राजनीतिक शक्ति का स्रोत मानी जाती थी, किन्तु उसके नेताओ का एक एक करके सफाया कर दिया गया और जो बच गए है वे इतने भयभीत है कि चू भी नही कर सकते। कम्युनिस्ट दल के बाहर राजनीतिक कार्य है हा नही और दल के भीतर स्मशानवत् शान्ति है। कोई भी व्यक्ति प्रतिवाद अथवा विरोध करने को स्वतत्र नही है, क्योकि मनुष्य स्वतन्त्र तभी रह सकता है जब कि गुप्तचर पुलिस से बचा रह सके। ऐसी स्वतन्त्रता भी क्या स्वतत्रता ह !

इसलिए कहा जा सकता है कि स्टालिन के रूस मे विरोध प्रकट करने

के साधन का अभाव है। समाचार पत्रो, पार्टी, मजदूर सभाओ, खेत-सभाओ तथा सरकारी दफ्तरो के हाथ मे जो शक्ति होनी चाहिए थी उस पर तानाशाह ने अधिकार कर लिया है। ऐसी स्थिति मे सार्वजनिक असतोष इन साधनो द्वारा प्रकट नही हो सकता। लोग दगा मचा सकते है अथवा भारत की तरह अहिसात्मक असहयोग कर सकते है, यह तभी सम्भव है जब पुलिस मे अव्यवस्था फैल जाय। किन्तु ऐसा हो नही सकता। आगपू ने सोवियत् जनता को आज्ञा-पालन खूब सिखा दिया है और उससे आत्म-विश्वास छीन लिया है।

काकेशस-स्थित जार्जिया जैसा कोई प्रजातत्र मास्को की तानाशाही के विरुद्ध विद्रोह करना चाहे तो केवल उसी अवस्था मे कर सकता है, जब इस प्रकार के विद्रोह को स्थानीय अधिकारियो का समर्थन प्राप्त हो सके। परन्तु सोवियत् प्रजातत्र सघ की सभी सरकारो मे ऐसे रूसी कर्मचारी तथा कम्युनिस्ट भरे पडे है, जिन्हे शीघ्र क्रेमलिन से आदेश प्राप्त होते है। इसलिए लालसेना की सहायता के बिना कोई विद्रोह सफल नही हो सकता।

इस तरह प्रकट हो चुका है कि लालसेना और गुप्तचर पुलिस ही दो ऐसी शक्तिया है, जो स्टालिन की शक्ति के विरुद्ध सिर उठा सकती है। स्टालिन दोनो ही से किस तरह पेश आता है इससे उनकी प्रतिभा तथा प्रभुत्व के कारणो पर प्रकाश पडता है।

सोवियत् रूस की गुप्तचर पुलिस का पूरा नाम "पीपल्स कमीसरियेट आफ इटर्नल अफेयर्स" है, किन्तु लोग उसे "आगपू" ही कहते है। इस सगठन के गुप्तचर प्रत्येक शहर, गावो, कारखानो और दफ्तरो मे फैले हुए है। रूस की सबसे भव्य कतिपय इमारतो मे इस सगठन के केन्द्र है, जिनके साथ ही जेल भी होते है। 'आगपू' अपनी शक्ति छिपाने का प्रयत्न नही करता। उसके कार्य अवश्य गुप्त रखे जाते है, किंतु उनका अस्तित्व गुप्त नही है।

आगपू कितने ही आर्थिक कार्य भी करता है। मैने दासो के श्रम द्वारा आगपू को नहरे अथवा रेल तैयार करते देखा है, इस कार्य के लिए उसकी बाकायदा प्रशसा हो चुकी है। आगपू के अपने सशस्त्र फौजी दस्ते है। वह सीमा पर अपने पहरेदार रखती है। उसके अपने यातायात साधन है और कुछ महत्त्वपूर्ण इमारतो पर उसका कब्जा है।

मै आगपू के अफसरों से मिल चुका हू। इनमे कुछ पुरुष थे और कुछ महिलाए। कुछ वरदी पहने थे और कुछ सादे वस्त्रो में थे। कुछ सोवियत् रूस में मिले थे और कुछ विदेशो के सोवियत् दूतावासो मे रहकर अपने तथा विदेशी कूटनीतिज्ञो के कार्यों पर नजर रखने के लिए नियुक्त थे। कुछ आदर्शवादी थे

और उनका विश्वास था कि उनका कार्य कुछ अप्रिय अवश्य है किन्तु साथ ही आवश्यक है। कुछ अधिकार तथा विलासितापूर्ण सुविधाओ के लिए अपने पदो पर काम कर रहे थे। परन्तु सभी मेहनती, गुप्त कार्य करने वाले तथा भय-त्रस्त थे। उनके भय-त्रस्त होने का कारण यह है कि आगपू का दण्ड जितना भयानक अपने अपराधी सदस्यो के प्रति होता है उतना अन्य किसी के प्रति नही। सभी मे मिलकर काम करने की भावना की प्रधानता रहती है। प्रत्येक सदस्य अपने कार्य का अभिमान करता है। सब मे अपने काम के लिए "कला कला के लिए" जैसी भावना रहती है। 'आगपू' एक ऐसे प्राचीन सगठन की तरह है, जिसके सदस्य मौन रखने के लिए शपथ लिये रहते है, जो अपने कार्य के लिए सर्वस्व निछावर करने को तैयार रहते है, जो सभी विशेष पद तथा सुविधाओ का उपभोग करते है और जो सब-के-सब असफलता को बुरा मानते है।

आगपू स्टालिन का आध्यात्मिक शिशु है।

कुछ वर्ष तक आगपू वाले अपनी शक्ति, अपनी सख्या, अपने महत्त्वपूर्ण कार्य तथा तानाशाह के लिए अपने असाधारण महत्त्व को देखकर अनुभव करने लगे थे कि भीतरी मामलो मे वे बिल्कुल स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त, आगपू को उन सभी उपायो की भी जानकारी होती है, जिनके द्वारा तानाशाह अपनी शक्ति बढाता है और अपने विरोधियो का अन्त करता है। इस विशेष स्थिति के कारण यह भ्रम होना स्वाभाविक था कि रूस की शासन-व्यवस्था मे उसका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१९३१ में आगपू ने स्टालिन को चुनौती दी। उस समय मैने "नेशन" में इसका विवरण प्रकाशित कराया था और फिर १९३३ में तत्सम्बन्धी बाद की घटनाओ पर प्रकाश डाला था। दोनो ही लेख मास्को से लिखे गए थे।

मैने १९३३ मे "नेशन" मे लिखा था—"दो वर्ष पूर्व आकुलोव आगपू का उपप्रधान नियुक्त किया गया था। उस समय सगठन का कार्य-वाहक प्रधान यागोदा था, जिसके दावो की नई नियुक्ति द्वारा उपेक्षा की गई थी। सगठन के स्थायी अफसरो तथा आकुलोव में सघर्ष हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप आकुलोव को डोनेज के कोयला-क्षेत्र मे एक छोटे से पद पर बदल दिया गया।"

यागोदा कितने ही वर्ष तक आगपू का प्रधान था और उसने आकुलाव के साथ काम करने से इकार कर दिया। तब स्टालिन को विवश होकर आकुलोव को हटा कर प्रधान के पद पर यागोदा को नियुक्त करना पडा। इस प्रकार पहले सघर्ष मे स्टालिन को आगपू के विरुद्ध मुह की खानी पडी।

पर स्टालिन सहज में हार खाने वाला व्यक्ति नही है। अपने स्वभाव के अनुसार कुछ दिन ठहरकर उसने दूसरा प्रयत्न किया। दूसरी बार उसने आकुलोव को आगपू के भीतर न रखकर उसके ऊपर नियुक्त किया।

मैने "नेशन" मे लिखा था—"आकुलोव एक पुराना बोलशेविक तथा लेनिन के साथियो मे से था। स्टालिन ने उसे सोवियत्-सघ का अटार्नी-जनरल नियुक्त कर दिया। यह एक नया पद है इस पद का सबसे आश्चर्यपूर्ण कार्य आगपू के कार्यो पर दृष्टि रखना भी है। अटार्नी-जनरल के कार्यों मे एक इस बात की देख-रेख करना भी है कि आगपू के कार्य कहा तक कानूनन जायज होते है।

इससे बोलशेविक आतक में कुछ कमी हुई। कई सोवियत् नागरिको को, जिन्हे यागोदा ने गिरफ्तार किया था, आकुलोव ने छोड दिया। आकुलोव मरो को कब्र से निकालकर जिला तो नही सकता था, परन्तु जिन लोगो को गलत जुर्म लगाकर जेल में डाल दिया गया था उन्हे उसने छुडा दिया। १९३३ के उत्तरार्द्ध में तथा १९३४ के सम्पूर्ण वर्ष में वातावरण की गम्भीरता कम हुई। सोवियत् इतिहास में पहली बार वह स्थिति आई कि गुप्तचर पुलिस उच्च अधिकारियो से परामर्श लिये बिना किसी बडे इजीनियर अथवा लाल सेना के अफसर को गिरफ्तार नही कर सकती थी।

जनवरी १९३४ मे आगपू के कुछ न्याय सम्बन्धी अधिकार सोवियत् अदालतो के सुपुर्द कर दिये गए और आगपू का नाम "कमिसरियेट आफ इटर्नल अफेयर्स" रखा गया। परन्तु सात महीने तक कमिसरियेट के प्रधान कमिसार का पद खाली रहा, जो एक असाधारण बात थी। स्टालिन यागोदा की नियुक्ति का विरोध कर रहा था। अन्त में जुलाई १९३४ मे यागोदा कमिसार बन ही गया। यद्यपि यागोदा के अधिकार कुछ कम कर दिये गए फिर भी विजय उसी की हुई।

दिसम्बर १९३४ में सेर्जी किरोव की हत्या होने पर, जो एक प्रमुख बोलशेविक नेता होने के अतिरिक्त लेनिनग्राड का राजनीतिक प्रधान भी था, प्राण-दड तथा निर्वासनो का ताता लग गया। किन्तु इधर कुछ समय से शासन में उदारता का जो पुट आने लगा था उसमे इन सजाओ से कोई बाधा न पडी। १९३६ में नवीन विधान जारी करने की घोषणा कर दी गई।

जहा एक तरफ विधान तैयार किया जा रहा था वहा मास्को मे मुकदमों तथा विरोधियों के दमन द्वारा उस विधान की भावना का गला घोटा जाने लगा। हजारो उच्च सोवियत् अफसरो को, जिनमें से सकड़ो के नाम मै अपनी पुस्तक

"मैन एड पालिटिक्स" मे गिना चुका हू, गोली मार दी गई अथवा देश-निकाला दे दिया गया।

सोवियत्-विधान को जितना माना गया है उससे कही अधिक उसकी अवज्ञा हुई है। कुछ लोग कागज पर लिखे को ही यथार्थ मानते है। परन्तु स्टालिन की अधीनता मे तैयार किये गए विधान मे दी गई नागरिक स्वतत्रता का सोवियत् रूस के वास्तविक जीवन मे कही भी स्थान नही है। लोगो ने सोचा कि उन्हे नागरिक स्वतत्रता मिलने जा रही है और वे बडे खुश हुए। उनकी खुशी से प्रकट होता था कि लोग स्वतत्रता पाने के लिए लालायित है और उसके अभाव का अनुभव करते है। सम्भवत इसीलिए सोवियत् रूस के नेताओ ने विधान की उपेक्षा की है। जनता ने नेताओ की आशा से कही अधिक गम्भीरता पूर्वक विधान को ग्रहण किया। पागपू ने गुप्त रिपोर्टे पेश करके स्टालिन को राष्ट्र की भावना से अवगत कराकर यह विश्वास दिलाया कि स्वतत्रता उसकी तानाशाही को खतरे में डाल देगी। सच तो यह है कि मुकदमो तथा दमन ने जिस आतक की सृष्टि कर दी थी उसने विधान की यथार्थता को नष्ट कर दिया था। १९३४ मे आतक घटने, १९३५ मे विधान के निर्माण और १९३६ मे उसकी घोषणा के उपरान्त फिर मुकदमे चलाये जाने से मै स्तब्ध रह गया। इन मुकदमो के बीच केवल कुछ प्रमुख व्यक्तियो को ही प्राण-दड नही दिया गया, बल्कि स्वय लोकतत्रवाद का गला घोट दिया गया।

१९३६ और १९३७ मे न्याय का नाटक गुप्तचर पुलिस के प्रधान जेनरिच यागोदा द्वारा खेला गया था। परन्तु २ मार्च १९३८ को यागोदा स्वय अपराधी से कटहरे मे खडा हुआ और १३ मार्च को अदालत ने इस नाटे, दुबले तथा हिटलरी मूछ वाले व्यक्ति को प्राणदड का आदेश सुना दिया। इस तरह स्टालिन ने उस व्यक्ति का अत किया, जिसने उसकी अवज्ञा की थी।

यागोदा का उत्तराधिकारी येजोव पाच फुट लम्बा था। उसने दमन-चक्र तेजी से घुमाया, किन्तु स्टालिन ने उसी का दमन कर दिया। येजोव का उत्तराधिकारी लेवरेंरी बेरिया स्टालिन की तरह जार्जियन था। वह नाटा तथा क्रूर था। मै उससे १९२४ मे टिफलिस में मिला था, जब वह जार्जिया की गुप्तचर पुलिस का प्रधान था। उसने जार्जिया के मेंशेविको का दमन किया था। उसकी उन्नति मुख्यत स्टालिन के कारण हुई। बेरिया की अधीनता मे आगपू तानाशाह का आज्ञाकारी अनुचर बन गया। अटार्नी-जनरल को इन दिनो बिलकुल भुला दिया गया।

१४ जनवरी १९४६ के दिन कर्नल-जनरल सेर्ज़ी एन० क्रुग्लयोव ने बेरिया का स्थान ग्रहण किया। गुप्तचर पुलिस का प्रधान सोवियत् रूस मे स्टालिन के बाद सबसे शक्तिशाली व्यक्ति होता है। स्टालिन सोचता है कि गुप्तचर पुलिस के प्रधान के पद पर अधिक दिन रहने वाला व्यक्ति स्वय महत्त्वाकाक्षी तथा खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसीलिए विचारो मे ज़रा-सी आज़ादी आते ही स्टालिन उसे अपने पद से हटा देता है। अस्तु, आगपू स्टालिन का विश्वासपात्र साधन है।

स्टालिन को लाल सेना का नियत्रण करने में भी काफी कठिनाइयो का सामना करना पडा है। सेनापति, सैन्य-विशेषज्ञ तथा सेनाए उन लोकतन्त्री शासन प्रणालियो की राजनीति मे भाग लेती रही है, जहा जनता के अधिकारो की रक्षा की बात प्रधान मानी जाती है और जहा सेना के प्रभुत्व से बचे रहने के आदर्श को माना जा चुका है। लोकतत्री देशो ने सेना के प्रभुत्व से बचने के लिए कतिपय उपाय कर रखे है—चुनावो मे किसी बाहरी प्रभाव को न पडने दिया जाय और उनमे किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती न हो, कितने ही अधिकारियो की चुनाव द्वारा नियुक्ति की जाय, सेना के लिए खर्च की मजूरी पार्लमेंट ही करे, और समाचार-पत्र विधान के प्रति अवज्ञा को प्रकट करने के लिए स्वतत्र रहे। परन्तु तानाशाही मे इन सुविधाओ का अभाव होता है। यदि तानाशाही बहुमत का निर्णय मानने को तैयार हो तो फिर उसे तानाशाही कौन कहेगा? जनता का समर्थन प्राप्त न होने के कारण ही तानाशाही को लोकतत्री सत्ता की अपेक्षा सेना पर अधिक निर्भर रहना पडता है। इससे सेना का महत्त्व बढ जाता है। युद्ध से पूर्व जापान में सेना का ही शासन था। हिटलर को अपने सेनापतियो पर सदा कडी दृष्टि रखनी पडती थी। सेनापति हिटलर का आदेश मानते थे। अन्य कितने ही विशेषज्ञो के निर्णय के विरुद्ध उन्होंने सेना को युद्ध मे फसा दिया था, किन्तु कितने ही सेनापतियो ने हिटलर का साथ नही दिया और अन्त मे उसे मार डालने का षड्यन्त्र भी किया। मुसोलिनी को भी सेना के साथ कठिनाइयो का सामना करना पडा था। स्पेन, आर्जेन्टाइना तथा अन्य देशो मे तानाशाहियो को सदा सेना से भयभीत होकर रहना पडता है।

फिर रूस मे तो लोकप्रिय होने के कारण सेना का और भी अधिक महत्त्व है। यह वास्तव में जनता की सेना है और जनता उसे चाहती भी है। सोवियत् तानाशाही तो एक भावनाहीन शस्त्र है और स्टालिन, मोलोटोव,

जेनोव, एड्रीयेव या मालेनकाव मे से कोई भी सोवियत् नेता जन-साधारण के सम्पर्क मे भी नही आ पाया है। इसके विपरीत, लाल सेना भावना पर आधारित है। उसके मार्शल तथा जनरल, तुखाचेवस्की, तिमोशेको, जुकोव तथा अन्य सेनापति अपने समय में जनता के बडे प्रेम-पात्र रहे है।

लाल सेना के सम्बन्ध मे स्टालिन की कठिनाई पर प्रकाश डालने के लिए दो सेनापतियो—जनरल बोरिस एम० शेपोशनिकोव और मार्शल माइकल एन० तुखाचेवस्की से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओ का उल्लेख कर देना असगत न होगा।

शेपोशनिकोव का जन्म १८८२ मे हुआ था और वह जार की सेना में एक कर्नल था। उसने सैनिक कार्य पेशे के रूप मे ग्रहण किया था और राजनीति मे उसे दिलचस्पी न थी। पहले वह कम्युनिस्ट दल मे शामिल नही हुआ था, किन्तु १९३० मे अपने उच्च-पद के कारण उसके लिए ऐसा करना आवश्यक होगया।

जारशाही के हजारो दूसरे अफसरो की तरह वह लालसेना में इसलिए भरती हुआ था कि एक देशभक्त के रूप में देश की रक्षा करते हुए शत्रु से लड सके।

तुखाचेवस्की का जन्म १८९३ मे हुआ था। वह नई पीढी का था। वह जार की सेना मे लेफ्टिनेंट था और १९१८ मे कम्युनिस्ट दल मे शामिल हो गया था। उन दिनो दल मे सम्मिलित होना बडी जिम्मेदारी और खतरे का काम था। २७ वर्ष की अवस्था मे तुखाचेवस्की ने पोलैंड के भीतर वारसा के द्वार तक लालसेना की विजय-यात्रा का नेतृत्व किया। यूरोप मे उसे "आधुनिक नेपोलियन" का नाम दिया गया। परन्तु तुखाचेवस्की पहले दर्जे का सेनापति होने के साथ-ही-साथ राजनीतिक दृष्टि से विचारशील भी था। लाल सेना के युवा कम्युनिस्ट-अफसर उसे अपना नेता मानते थे।

क्रमश लालसेना मे दो दल हो गए। एक में राजनीति मे दिलचस्पी न रखने वाले पुराने सैन्य विशेषज्ञ थे, जिनका नेता शेपोशनिकोव था। दूसरे दल में तुखाचेवस्की जैसे युवा कम्युनिस्ट अफसर थे। दोनो दलो मे प्रतिस्पर्धा बढी, जिसमे स्टालिन ने शेपोशनिकोव का पक्ष लिया।

१९३६ में शेपोशनिकोव को लालसेना का चीफ ऑफ स्टाफ नियुक्त किया गया। परन्तु तुखाचेवस्की के अनुयायी-अफसरो के विरोध करने पर उसे वोल्गा जिले मे एक छोटे पद पर बदल दिया गया। साथ ही तुखाचेवस्की को चीफ आफ स्टाफ बना दिया गया।

१९३७ मे तुखाचेवस्की को भी हटाकर वोल्गा जिले मे एक छोटे पद पर बदल दिया गया और उसके स्थान पर फिर शेपोशनिकोव को चीफ आफ स्टाफ नियुक्त किया गया।

उसी वर्ष १२ जून को तुखाचेवस्की तथा आठ सर्वोच्च जनरलो और मार्शलो को षड्यन्त्र करने के अभियोग मे, जो प्रमाणित न हो सका था, प्राण-दड दे दिया गया। ११ मई के जिस आदेश के द्वारा तुखाचेवस्की को वोल्गा जिले मे भेजा गया था उसी आदेश के द्वारा सेना के साथ राजनीतिक कमिसार रखने की प्रथा फिर जारी कर दी गई। कमिसार गैरसैनिक अफसर होते थे। सेना के अधिकार उनके तथा सैन्य अफसरो के बीच बटे थे—यहा तक कि कभी-कभी वे सेना के अफसरो के आदेशो को रद्द भी कर देते थे। 'प्रवदा' के शब्दो मे कमिसार "सेना मे कम्युनिस्ट दल की आखे और कान" थे। वास्तव में दल और आगपू का उद्देश्य तुखाचेवस्की के मृत्यु-दण्ड के बाद उसके अनुयायी-अफसरो पर कडी नजर रखने का था।

सेना के अफसर कमिसार रखे जाने के विरुद्ध थे और वे शेपोशनिकोव को भी नही चाहते थे। १० अगस्त १९४० को शेपोशनिकोव को चीफ आफ स्टाफ के पद से अलग कर दिया गया। १२ अगस्त को कमिसार नियुक्त करने की प्रथा भी तोड दी गई।

कमिसार शेपोशनिकोव के साथ आये थे और उसी के साथ गये।

जुलाई १९४१ मे जब कि लालसेना जर्मनो से मार खाकर पीछे हट रही थी और अफसरो का प्रभाव घट रहा था, कमिसारो को फिर रखा गया। १ नवम्बर १९४१ मे, जब जर्मन-सेना मास्को के द्वार पर पहुच गई थी, शेपोशनिकोव को फिर चीफ आफ स्टाफ बनाया गया।

स्टालिन की चालो मे कोई नवीन सूझ-बूझ नही दिखाई देती, किन्तु बार-बार दोहराये जाने के कारण उनका चमत्कार बढ जाता है। इसी तरह स्टालिन के युद्धकालीन भाषणो तथा युद्ध-आदेशो मे जो दृष्टिकोण ग्रहण किया गया था उसमे भी कोई विशेषता नही थी। अपनी युद्ध समीक्षाओ मे उसने एक विषय को सदा एक ही प्रकार उपस्थित किया है। यही कारण है कि वे हमे स्कूली बालको को पढाये जाने वाले सक्षिप्त विवरणो से अधिक और कुछ नही जान पडती। उन समीक्षाओ मे नवीन विचार-धारा अथवा साहसपूर्ण विश्लेषण का अभाव ही रहता है। इस पिष्टपेषण में ही उसकी शक्ति छिपी हुई है। स्टालिन मे बौद्धिक-ज्ञान अधिक न होने के कारण उसकी ध्वनि में अहम्मन्यता या घमड का लेश नही रहता। दूसरे व्यक्ति द्वारा यह कह सकने की सम्भावना

कि स्टालिन यह पहले कह अथवा कर चुका है, तानाशाह को कभी परेशान नही करती और न ऐसा खयाल ही कभी उसके मन मे उठता है। एक बात के बार-बार दुहराने से स्टालिन की इस कमजोरी पर प्रकाश भले ही पडता हो, किन्तु उसका शिकार जो भी कोई बनता है उस की सुध बुध जाती रहती है।

स्टालिन ने यागोदा को गुप्तचर पुलिस विभाग मे आगे बढने से दो बार रोका। सेना मे राजनीतिक विचार वाले अफसरो की रोक-थाम के लिए स्टालिन ने कमिसारो को तीन बार रखा। एक ही कार्य वह एक ही ढग से कितनी ही बार करता है।

१० अक्टूबर, १९४२ को स्टालिन ने कमिसारो को एक बार फिर हटाया और सेना-नायको के हाथ मे पूरे अधिकार सौप दिये। इससे उनके अधिकारो पर तहरीरी छाप लग गई। स्टालिन ने सेना मे जिस विशेष वर्ग को जन्म दिया था उसके आगे युद्ध-परिस्थिति के कारण स्वय उसी को सिर झुकाना पडा। जर्मनी के साथ युद्ध के मध्य मे वह उसका दमन नही कर सकता था।

यद्यपि स्टालिन अफसरो के आगे झुक गया था फिर भी वह अन्य उपाय करने से चूका नही। वह सेनापतियो को अक्सर बदल दिया करता और छोटे अफसरो का समर्थन पाने की चेष्टा करने लगा। यह खयाल करके सैनिक अपने सेनापतियो के प्रभाव मे रहते ही है, स्टालिन ने गैर-सैनिक कम्युनिस्ट नेताओ को सेना मे उच्च-पद देना आरम्भ कर दिया। एड्री ए० ज़ेनाव को कर्नल-जनरल तथा यूक्रेन की कम्यनिस्ट दल के नेता एन० खुशचेव को लेफ्टीनेन्ट जनरल का पद दे दिया गया। उसने इस बात की विशेष सावधानी रखी कि कोई प्रथम श्रेणी का सेनापति सर्वोच्च पोलिटब्यूरो में न आने पाय। परन्तु आगपू का प्रधान उसमे उप-सदस्य के रूप मे रख लिया गया। यद्यपि वह एक भी मोर्चे पर नही लडा।था, फिर भी उसे मार्शल का पद देकर सर्वोच्च सेनापतियो के समकक्ष बना दिया गया। स्टालिन नही चाहता था कि लाल सेना आगपू से बढ जाय। स्टालिन ने स्वय अपने को प्रधान सेनापति के पद से विभूषित किया।

वाल्टर केर रूस के सम्बन्ध मे ऐसी छोटी-छोटी बातो का उल्लेख करने के लिए प्रसिद्ध है, जिनसे महत्त्वपूर्ण तथ्यो पर प्रकाश पडता है। १९४२ में उसने 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' के १८ नवम्बर वाले अक मे मास्को से भेजा हुआ अपना एक लेख प्रकाशित कराया था। इसमे उसने लिखा था कि सोवियत् पत्रो मे जहाँ सोवियत्-सघ के १४ गैर-सैनिक नेताओ के नामो का अक्सर

उल्लेख होता है, वहा सेना के सर्वाच्च सेनापतियो, जैसे जनरल जुकोव, मार्शल तिमोशेंको, मार्शल शेपोशनिकोव और मार्शल बुडेनी की कभी भी चर्चा नही रहती। बात यह है कि स्टालिन सेनापतियो को अधिक लोकप्रिय नही होने देना चाहता और न वह यही चाहता है कि उन्हे विजयो के लिए अधिक श्रेय मिले।

राजनीति का चतुर कलाकार स्टालिन अनेक कठिनाइयो के बावजूद युद्धकाल मे सेना पर अधिकार बनाये रख सका है। शान्ति से तो तानाशाह का कार्य और भी सरल हो जाता है।

परन्तु स्टालिन रूसी सैन्यवाद का विकास रोक नही सका है और न इसका कोई प्रमाण है कि वह उसे रोकना चाहता था। कितने ही रूसी कूटनीतिज्ञ हमे सैनिक वर्दियो मे दिखाई देते हैं। कितने ही एडमिरल और जनरल कूटनीतिक पदो पर काम कर रहे है। १९४० मे ३० अगस्त को 'प्रवदा' न लिखा था "सेनानायक का पेशा देश में सबसे सम्मानपूर्ण माना जाता है।" यवको को सेना मे जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सोवियत् स्कूलो मे सह-शिक्षा को जो बद कर दिया गया है उसका कारण यह है कि लडको की सैन्य-शिक्षा स्कूलो में आरम्भ हो जाती है और ऐसी परिस्थिति मे लडकियो के स्कूलो का अलग होना ही उचित है। जनरल जॉन आर० डीन का, जा मास्को में अमरीकी सेना के प्रतिनिधि थे, कहना है कि लालसेना की शान्तिकालीन सख्या ४०,००,००० निर्धारित की गई है, किन्तु देश की आर्थिक अवस्था देखते हुए यह सख्या अधिक है। इतनी विशाल स्थल-सेना बनाये रखने और नौ सेना का स्टालिन के आदेशो के अनुसार विस्तार करने का मतलब यह होगा कि विशेष सुविधाओ का उपभोग करने वाले तथा राजनीतिक आकाक्षाए रखने वाले अनेक अफसर देश भर में फैले रहेगे। इसका यह भी मतलब होगा कि सोवियत् प्रचारको को रूसी जनता से यह कहने का अवसर मिल जायगा कि देश को विदेशी शत्रुओ से खतरा है और इसलिए लोगो को चाहिए कि राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए कोई प्रयत्न बाकी न छोडें। इस प्रकार रूस मे घबराहट तथा थकान का वातावरण बना ही रहेगा।

१८१३ में रूस की एक जारशाही सेना ने पेरिस मे प्रवेश किया था। उस समय रूसी अफसरो तथा सैनिको ने यूरोप देखा था। उसे देखकर अपने देश की पिछडी हुई अवस्था निर्धनता तथा अत्याचारो के प्रति उनकी आखें खुल गईं। १८२५ मे फ्रास को क्राति से प्रेरणा पाकर कुछ रूसी अफसरो ने प्रसिद्ध डिसेम्ब्रिस्ट-क्रान्ति कर डाली। विद्रोह असफल रहा, किन्तु जनता के

मस्तिष्क से उसकी स्मृति कभी नही मिटी ।

अब एक दूसरी रूसी सेना यूरोप देख चुकी है । यद्यपि यह बम-वर्षा से ध्वस्त, भूखा, फटे हाल, सुस्त, सकट-ग्रस्त, दुखी तथा दुविधा मे पडा यूरोप था, फिर भी रूसी सैनिको तथा अफसरो को वह अपनी मातृभूमि से अधिक सुखद, अधिक प्रगतिशील तथा अधिक स्वाधीन लगा । रूसी अधिकारियो ने इसे देखा और वे कुछ चिन्तित हो उठे । सितम्बर १९४४ मे एक दिन "प्रवदा" ने एक छ कालम का लेख प्रकाशित किया, जो लालसेना के साथ बुखारेस्ट जाने वाले विशेष युद्ध-सवाददाता की कलम से लिखा गया था । इसमे रूसी सैनिक से अनुरोध किया गया था कि उसे इस "बेढगे प्रकाश" से चकाचौध मे न आना चाहिए । १९४५ के अक्तूबर मास मे रूसी उपन्यासकार सिमोनेव ने इस विषय को लालसेना के मुखपत्र "रेड स्टार" मे दुबारा उठाते हुए रूसी सैनिक से अनुरोध किया कि विलासितापूर्ण नागरिक जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा देश के लिए त्याग करना कही उत्तम है । इस अनुरोध का प्रभाव न पड़ने का अनुमान करके सिमोनोव ने यह भी आश्वासन दिया कि भविष्य मे सोवियत् नागरिको के लिए अधिक उत्तम सामग्री जुटाई जायगी ।

यूरोप की अवस्था देखने से लालसेना की जो आखें खुली है उसके परिणामस्वरूप अब वह जनता की आर्थिक अवस्था में सुधार के लिए जोर डालेगी । रूस की मौजूदा हालत ऐसी नही । ऐसी अवस्था मे जनता के रहन-सहन के दर्जे मे उसी हालत मे सुधार किया जा सकता है, जब कि लालसेना के लिए आवश्यक व्यवसायो तथा धनराशि की दिशा बदल दी जाय,यह स्टालिन के लिए सबसे ताजी समस्या है ।

कल्पना कीजिये कि स्टालिन की मृत्यु हो जाती है । इस प्रश्न पर समस्त लोकतत्रीय ससार मे विवाद हो चुका है । किसी एक व्यक्ति की सम्भावित मृत्यु के सम्बन्ध मे शायद ही कभी इतनी बहस छिडी हो—उससे शायद ही कभी इतनी आशाए की गई हो । क्या स्टालिन की मृत्यु के बाद लालसेना अधिकार ग्रहण कर लेगी ? क्या वह उसके उत्तराधिकारी का चुनाव करेगी , इन प्रश्नो का उत्तर "न" ही हो सकता है ।

किसी भी व्यक्ति के साथ उसके कार्यों का अत नही हो जाता । वह अपनी विरासत छोड जाता है और स्टालिन की विरासत तो सचमुच बहुत ही बडी है । उसके बीस वर्ष के शासन के परिणाम को तुरत मिटाया नही जा सकता । विशेषकर इस हालत मे और भी जब कि उसके कार्यों ने भौगोलिक, मानसिक तथा सस्थाओ का रूप-धारण कर लिया हो । स्टालिन ने मानचित्र ही

बदल दिया है। यह मानचित्र अभी बना हुआ है। उसने मस्तिष्को का पुन सस्कार किया है। यह भी आसानी से नही बदला जा सकता। उसने निजी पूजीवाद को नष्ट करके उसका स्थान राज्य को दिया। इस मौजूदा हालत मे तबदीली करने का शायद ही कोई नेता साहस करेगा।

स्टालिन के मरने पर सोवियत प्रणाली मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने की कोई आशा नही है। लेनिन के मरने पर रूस मे घमासान लडाइयाँ छिड गई। ये काफी अरसे तक चली और पहले दर्जे के सभी बोलशेविक नेताओ ने उसमें भाग लिया। परन्तु बोलशेविक सत्ता के लिए कभी भी खतरा नही उपस्थित हुआ। देश भर मे इस समस्या को लेकर बहस छिड गई। नेता तथा साधारण लोग खुलकर तर्क-वितर्क करने लगे। आज दल क्रेमलिन (सोवियत् सरकार) के कार्यो की साधन बन गई है। उसकी आत्मा मर चुकी है।

स्टालिन की मृत्यु पर उसके इर्द-गिर्द रहने वाले नेताओ की मडली के बाहर राजनीतिक सघर्ष होने की सम्भावना नही है। यदि स्टालिन ने अपना उत्तमराधिकारी चुना, जैसा कि मुझे आशा है वह करेगा, तो उसके फैसले को केवल आगपू ही बदल सकता है, सेना नही।

आगपू लालसेना की अपेक्षा छोटा है और इसमे सैनिक भी कम है। फिर भी राजनीतिक शक्ति उसके हाथ मे अधिक है। स्टालिन और उसका आगपू सदा लालसेना को मुह की खिला सकते हैं. जिस तरह हिटलर और हिमलर मिलकर राजनीतिक सघर्ष में जर्मन-सेना को परास्त कर सकते थे। यही कारण था कि स्टालिन तुखाचेवस्की तथा लालसेना के प्रमुख सेनापतियो को मृत्यु के घाट उतार सका था। इस सगीन घटना को सोवियत् इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना कह सकते है, किन्तु इसमे आवश्यकता केवल यही पडी कि आगपू के सैनिको ने सूची मे निशान लगे ६ जनरलो तथा मार्शलो के मकान घेर लिये। यदि जनरल षड्यन्त्र कर रहे थे तो उन्हे अपने सैनिको के बाच रहना चाहिए था और गिरफ्तार किये जाते समय लडना चाहिए था। परन्तु सम्भवत ये लोग सोते हुए मिले और आगपू के सैनिको ने उन्हें जगाया। सेनापतियो में से एक, जनरल गमार्निक बोलशेविक गृह-युद्ध मे बडी वीरता से लडा था और सेना मे राजनीतिक शिक्षा का डाइरेक्टर था। उसके सम्बन्ध मे प्रकाशित सरकारी समाचार मे कहा गया था कि गुप्तचर पुलिस के बुलाने पर उसने आत्म-हत्या कर ली। अन्य जनरल भी जानते थे कि उनके आगे दो ही मार्ग है, एक तो यह कि अपने रिवाल्वर से मुँह मे गोली मारकर मर जाय और दूसरा यह कि आगपू के रिवाल्वर से पीछे गर्दन मे गोली खाकर मरे।

इस ख्याल से कि मृत्यु जितनी देर के लिए टले, अच्छा है—इन लोगो ने आगपू के ही हाथो मरना उत्तम समझा ।

स्पष्ट है कि डिक्टेटर की स्थिति सेना की तुलना मे अधिक लाभपूर्ण है । सेना का कोई वर्ग सत्ता प्राप्त करने के लिए या तो गुप्त षड्यत्र कर सकता है और या तानाशाही पर दबाव डाल सकता है किन्तु दबाव डालने पर गुप्तचर पुलिस असतुष्ट व्यक्तियो का सफाया करके तानाशाह के रास्ते का काटा दूर कर सकती है ।

ऐसी अवस्था मे लालसेना के असतुष्ट व्यक्तियो के आगे दो ही रास्ते है—सशस्त्र विद्रोह अथवा मौन आज्ञा-पालन । चद अफसर स्टालिन या उसके उत्तराधिकारी के विरुद्ध विद्रोह कर सकते है या एक ही अफसर तानाशाह की हत्या की चेष्टा कर सकता है, परन्तु स्टालिन की खूब देख-रेख की जाती है। स्टालिन के सामने उपस्थित होने से पूर्व लाल सेना के जनरल तक को तलाशी देनी पडती है । सलिए किसी एक व्यक्ति द्वारा हत्या होने की सम्भावना कम है, यद्यपि उसे असमय नही कहा जा सकता । साथ ही यह भी मानी हुई बात है कि हत्यारो या षड्यत्र समिति के सदस्यो को अपने उद्देश्य में सफलता मिले या नही, किन्तु वे अपने-अपने परिवारो, मित्रो, सहयोगियो तथा जान-पहचान वालो तक के प्राणो को सकट में डाल देगे। विद्रोह के लिए अखिल राष्ट्रीय सगठन की आवश्यकता पडेगी । इतना ही नही, षड्यत्रकारियो को विभिन्न क्षेत्रो के सेनापतियो से सलाह लेनी पडेगी ।

लाल सेना का एक जनरल षड्यत्र की बात सेना के अपने किसी मित्र से कर सकता है । वे दोनो एक तीसरे व्यक्ति से बाते कर सकते है । परन्तु यदि वे तीनो किसी चौथे या पाचवें आदमी से बात करे तो उसके मन मे सहसा प्रश्न उठेगा—"क्या ये मेरी परीक्षा कर रहे है ? क्या ये आगपू के लिए पता लगाना चाहते है कि मै कितना राजभक्त हू । यदि मै उनकी शिकायत नहीं करता तो ये मेरी शिकायत कर देगे ।" इसलिए अपनी हिफाजत के खयाल से वह उनकी शिकायत पुलिस से कर देगा । इसके अतिरिक्त, प्रत्येक दफ्तर और रेजिमेंट मे गुप्तचर पुलिस के भेदिये रहते है, जो अधिकारियो के विरुद्ध होने वाले षड्यत्र का भडाफोड करने को उत्सुक रहते है । इस प्रकार रूस में शक्ति की कुजी आगपू के हाथ में है । सोवियत् सघ से सशस्त्र विद्रोह भी बडी भारी बाजी लगाने के समान है । उच्च आदर्शवादी या दुस्साहसी लोग ही ऐसा कर सकते है और यह प्राय निश्चित है कि वे असफल होगे ।

आगपू का लाल सेना के ऊपर जो अधिकार है उससे दोनो में दुर्भावना

बनी रहती है। कही-कही एक ही प्रकार के कार्य करने के कारण उनके मध्य शत्रुता बढ गई है। आगपू और लाल सेना दोनो के गुप्तचर विदेशो मे काम करते है। सोवियत् सीमा पर आगपू का पहरा है। इससे कुछ पीछे लाल सेना की चौकिया है। जिन सरकारो के विभाग अधिक से-अधिक सहयोग पूर्वक काम करते है उनमे भी कार्यक्षेत्र सम्बन्धी विवाद उठ खडे होते है। सेना मे आगपू के विरुद्ध जो असतोष है उसका एक कारण यह भी है कि वह सेना मे अपने गुप्तचर रखता है और सेना के अफसरो को गिरफ्तार कर सकता है।

यह भविष्यवाणी करना मूर्खता होगी कि स्टालिन से कम चतुर तानाशाह आगपू अथवा सेना पर नियत्रण रखने में समर्थ न हो सकेगा। गुप्तचर पुलिस तानाशाह के सामने षड्यत्र अथवा शत्रु का पता लगा कर अपना महत्व सिद्ध कर सकती है। सेना विदेश मे युद्ध छेड कर स्वदेश में अपनी राजनीतिक शक्ति बदल सकती है।

लालसेना के आगपू विरोधी होने के कारण कुछ लोगो ने आशा की है कि लाल सेना रूस को अधिक लोकतत्री बना सकेगी, क्योकि आगपू पर विजय वास्तव में उसके आतकवादी उपायो तथा व्यक्तिगत जीवन पर आक्रमण करने के असीम अधिकारो पर विजय प्राप्त करने के समान होगा। अब तक इसका कोई भी लक्षण प्रकट नही हुआ है कि लालसेना अथवा अन्य कोई सगठन सोवियत् रूस में लोकतत्र की वृद्धि करेगा। मै चाहता हू कि रूस के समाचार पत्र इस दिशा में कुछ करे। इस सम्बन्त्र मे कोई लक्षण देख कर मुझे बडी प्रसन्नता होगा। रूस मे लोकतत्र की स्थापना होने से सोवियत् राष्ट्र और हमारा यह ससार खतरे से अधिक खाली हो जायगा।

रूसी अधिकारियो ने जो यह नीति ग्रहण की है कि वहा पहले ही लोकतन्त्र है, इससे स्टालिन के बाद भी लोकतन्त्र स्थापित होने की आशा क्षीण हो गई है। बोलशेविक शासन के शुरू के दिनो मे लोकतत्र को ध्येय बताया जाता था, किंतु स्वतन्त्रता की मात्रा कम हो जाने के बावजूद अब सरकार कहती है कि रूस मे लोकतत्र पहले ही से मौजूद है। यदि स्वाधीनता के अभाव को सरकारी तौर पर स्वाधीनता बताया जा रहा है तो स्वाधीनता के लिए आन्दोलन को कैसे सहन किया जा सकेगा ? उसे तो स्वाधीनता पर हमला ही बताया जायगा।

मास्को के "न्यूटाइम्स" ने जनवरी, १९४६ में कहा था कि रूमानिया तथा बलगारिया की पश्चिमी लोकतत्र के निगूढ सिद्धान्तो से रक्षा होनी चाहिए। उस का यह भी कहना था कि आजकल ये देश ठोस रूसी लोकतन्त्र का उपभोग कर रहे है, किन्तु मि० बेविन उस पर पश्चिमी ढंग का लोकतंत्र

लादना चाहते है। पश्चिमी लोकतन्त्र के सिद्धान्त निगूढ हो सकते है, किन्तु वे निगूढ केवल उन्ही के लिए है, जो उनका उपभोग नही करते। उनमे जा भी कुछ अच्छा है, बहुत अच्छा है। परन्तु स्टालिन ने अब तक जिस प्रकार स्वतन्त्र चुनावो, स्वतन्त्र सभाओ, स्वतन्त्र मजदूर सभाओ, स्वतत्र अदालतो, स्वतत्र भाषणो और स्वतन्त्र समाचार पत्रो के अभिशाप से रूस को बचाया है उसी तरह इन बुराइयो से वह रूमानिया और बलगारिया की भी रक्षा करना चाहता है। स्टालिन राज्य के हाथ मे पूरा अधिकार देना चाहता है।

एक ऐसा राज्य, जो व्यक्ति को न तो राजनीतिक अधिकार देता है और न उसके सुख सुविधा के सामान ही जुटा पाता है, आखिर उसे क्या देता है ? उसने सावियत् नागरिक को राष्ट्रीयता दी है। उसने नागरिक की छाती पर पदक लगाये है, उसे मूर्ति दी है कि कही वह मूर्ति-भजक न बन जाय। राज्य ने अधिक सतान उत्पन्न करने तथा निर्धनो के लिए तलाक की सुविधाए उपलब्ध न करने के सदिग्ध तरीको द्वारा पारिवारिक बधनो को अधिक दृढ बनाने की चेष्टा की है। उसने सरकार की सामाजिक सफलताओ का डका पीटा है और पश्चिमा देशो के "पू जीवादी गुलामो" द्वारा सहन किये जाने वाले कष्टो से उनकी तुलना की है। उस राज्य ने अपने नागरिको को त्योहारो के रूप मे सर्कस, कार्नीवाल, हवाई तमाशे और साइबेरिया के आरपार होनेवाली उडानें दी है और समाचारपत्रो ने इनकी प्रशसा में धूम मचा दी है और अपने आधे कालम भर दिये है, जैसे अन्य किसी देश ने कभी ऐसी उडाने, ऐसी परेडे और ऐसे तमाशे कभी देखे ही न हो।

सभी देशो के तानाशाहो ने अपने यहा के लोगो का ध्यान बटाने के लिए तरह-तरह के तरीको से काम लिया है, किन्तु स्टालिन ने तो उसे ललित-कला का रूप दे दिया है।

कभी-कभी जनता का ध्यान उसके कठोर जीवन से हटानें के लिए कूटनीतिक तथा सैनिक विजयो का आसरा लिया जाता है। नाजियो, इटालियन फाशिस्टो और जापानी सेनावादियो को अपनी जनता पर नियन्त्रण रखने के लिए विदेशों मे विजय पाने की जरूरत हुई थी। उन्होने युद्ध का एक देन के रूप में स्वागत किया था। १९३४ में मुसोलिनी ने लिखा था—"केवल युद्ध ही मनुष्य की शक्ति का प्रदर्शन चरम सीमा पर पहुचाता है और जो राष्ट्र उसका सामना खुलकर करता है उस पर वह श्रेष्ठता की छाप लगा देता है।" स्टालिन ने ऐसी मूर्खतापूर्ण बात कभी नही कही है और न वालशेविको ने कभी उसका प्रचार ही किया है।

दार्शनिको ने कुछ राष्ट्रो की आक्रामक प्रवृत्तियो की जिम्मेदारी उनके दार्शनिको पर लादी है। मनोविज्ञान के पडितो ने इन प्रवृत्तियो का कारण राष्ट्रीय आघात, मानसिक अव्यवस्था या बर्बर अवस्था को बताया ह। मूल कारण जो भी हो, हाल के इतिहास से पता चलता है कि यदि अधिकार ताना-शाहियो के हाथ मे न हो तो इन प्रवृत्तियो के रहते हुए भी युद्ध नही छिडते। सोवियत् रूस ने दार्शनिक न रहने पर भी हमला किया है।

दूसरा महायुद्ध छेडने की जिम्मेदारी तानाशाहियो पर है और लोकतत्रो ने खुशामद करके तथा तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण करके उसमे ताना-शाहियो की सहायता की है। तुष्टीकरण का मतलब है शक्ति का परित्याग, और ह बुद्धि के परित्याग का परिणाम है। हिटलर के शुरू के दिनो से ही भौतिक शक्ति अधिक होने पर भी लोकतत्र तानाशाहियो के आक्रमण से भयभीत होकर पीछे ही हटते रहे है।

जहा तक हिटलर, मुसोलिनी और हिरोहितो का सम्बन्ध है, लोकतन्त्रो की पृष्ठगति भौतिक थी, वे बढे, हम पीछे हटे। इस तरह हमने तानाशाहो की शक्ति उनके देशो मे बढा दी। उनकी घृणा हमारे प्रति बढ गई। वे सोचने लगे कि वे दुनिया को जीत सकते है।

जहा तक स्टालिन का सम्बन्ध है, पश्चिमी महाशक्तियो की पृष्ठगति भौतिक ही नही, आध्यात्मिक भी है। हम उसके सामने झुकते ही नही, हम उसका मान भी बढाते है। यह हमारे युग की सबसे चकित करने वाली बात है।

रूस के इस पुत्र स्टालिन ने अपने महाद्वीप पर जादू कर रखा है और यूरोप पर भी प्रभाव जमा दिया है। रूस तथा साम्यवाद के मित्रो द्वारा उसका प्रभाव अमरीका के प्रत्येक कोने मे फैल गया है। अन्य किसी एक व्यक्ति का (पोप को छोडकर---और इसलिए उन दोनो की शत्रुता भी है) ससार के इतने अधिक व्यक्तियो के जीवनो पर ऐसा प्रभाव नही है।

स्टालिन का इतना अधिक अतर्राष्ट्रीय प्रभाव उसकी अपनी योग्यता, उसके देश की शक्ति तथा सफलताओ तथा पश्चिमी ससार के बौद्धिक दिवा-लियेपन और राजनीतिक अव्यवस्था के कारण है। पूजीवाद को स्वय अपने ही पर विश्वास नही है। अपनी कमियो के कारण वह अपने बुद्धिवादियो पर भी नियत्रण नही रख सकता। लोकतत्रवाद अनिश्चित् तथा अरक्षित है। स्टा-लिन पश्चिम की भीतरी नैतिक कमजोरी को जान गया है और इसी आधार पर वह अपनी विदेश-नीति की रूपरेखा निर्धारित करता है।

: १६ :

रूज़वेल्ट, चर्चिल और स्टालिन के शान्ति-प्रयत्न

आखिर युद्ध-नेता ही सुलह करने वाले बने। अभी लडाई चल ही रही थी कि उन्होने शाति के प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

जिन शाति सम्मेलनो को वास्तविक महत्व का कहा जा सकता है उनमे पहला तेहरान (दिसम्बर, १९४३) में, दूसरा क्रीमिया (फ़रवरी, १९४५) मे और तीसरा पोट्सडम (जुलाई-अगस्त १९४५) में हुआ था। युद्ध के दौरान में और उनके बाद रूज़वेल्ट, चर्चिल तथा स्टालिन की अन्य जितनी भी बैठके हुई, उनमें तेहरान और माल्टा वाली बातचीत मे तैयार की हुई योजना को ही आगे बढाया गया था।

साधारण तौर पर होता यह है कि पहले युद्ध में विजय प्राप्त कर ली जाती है और फिर कही शाँति की रूप-रेखा तैयार की जाती है। शायद रूज़-वेल्ट और चर्चिल भी यही करते। अमरीकी सरकार के प्रधान अधिकारी कार्डेल हल ने १८ नवम्बर, १९४३ के दिन काग्रेस को बतलाया था कि अमरीकी सर-कार युद्ध समाप्त होने से पूर्व सीमा सम्बन्धी कोई विवाद न उठाना चाहेगी। परन्तु इसमे रूस को कोई लाभ न था। शान्तिकालीन व्यवस्था का निर्माण वे देश नही किया करते, जिन्होने विजय प्राप्त करने में सबसे अधिक हाथ बटाया हो बल्कि वे देश करते है जिनमे युद्ध समाप्त होने के उपरान्त सबसे अधिक शक्ति बची रहती है। स्टालिन जानता था कि जन तथा धन के नाश के कारण रूस कमज़ोर हो जायगा। वह यह भी अनुभव करता था कि जब तक युद्ध के लिए रूस की सहायता का महत्व रहेगा तभी तक वह अन्य मित्रराष्ट्रो को अपनी बात मानने के लिए विवश कर सकता है, किन्तु युद्ध समाप्त होने पर उसे यह लाभ न रह जायगा।

मान लीजिये कि किसी काम में तीन व्यक्ति हिस्सेदार है, और वे तीनों मिल कर ही उस काम को कर सकते है। यदि ऐसी अवस्था मे उनमें से एक हिस्सेदार कोई माग उपस्थित करे तो अन्य दो हिस्सेदारों को उसकी वह माग

पूरी करनी पडेगी। तेहरान और माल्टा में स्टालिन की यही चाल थी।

परन्तु इग्लैंड और अमरीका भी तो युद्ध मे हिस्सेदार थे। वे रूस पर जोर क्यो न डाल सके ?

स्टालिन जानता था कि अमरीका और इग्लैंड हिटलर या जापान से सुलह नही कर सकते। परन्तु रूजवेल्ट और चर्चिल को स्टालिन के प्रति उतना विश्वास न था। शान्ति सम्बन्धी व्यवस्था का निर्माण करते समय स्टालिन को यह सबसे बडा लाभ प्राप्त था।

अगस्त, १९३९ की सोवियत् नाजी सन्धि ससार के कूटनीतिक क्षेत्र पर अपनी स्थायी छाप छोड गई थी। इस से प्रकट हो गया कि नाजियो का कट्टर विरोधी और मिलजुल कर आक्रमणकारी का सामना करने की नीति का पक्षपाती सोवियत् रूस भी जरूरत पडने पर नाजी जर्मनी के साथ मैत्री और तटस्थता की सधि कर सकता है। रूजवेल्ट और चर्चिल को यह आशका निरतर बनी हुई थी कि कही फिर रूस शत्रुओ से सधि न कर ले।

कासब्लाका (जनवरी, १९४३) में रूजवेल्ट और चर्चिल ने अपनी प्रसिद्ध घोषणा की थी, जिसमे शत्रु से बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण करने को कहा गया था। उस घोपणा मे ब्रिटेन और अमरीका ने मिलकर स्पष्ट कर दिया था कि शत्रु के पूर्ण पराजित होने तक वे सुलह न करेंगे। यह घोषणा नारमडी में मित्रराष्ट्रीय सेना उतरने से १८ महीने पूर्व की गई थी। उस समय तक अमरीकी सेना केवल उत्तरी अफ्रीका मे ही अपने पैर जमा पाई थी। इस घोषणा का हिटलर की नीति पर तो क्या प्रभाव पडता, बल्कि इससे हिटलर और जर्मनी के लडते रहने के सकल्प में वृद्धि होने की ही सम्भावना थी। इसलिए कहा जा सकता है कि यह घोषणा कम-से-कम जर्मनी के लिए नही थी। साथ हा वह अमराकनो का जोश बढाने के लिए भी नही थी, क्योकि जब उन्होने युद्ध में भाग लेने का निश्चय कर लिया था तो उसे समाप्त करते ही रूजवेल्ट और चर्चिल ने बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण करने के लिए शत्रु से जो कहा था उसका उद्देश्य यही था कि स्टालिन भी वैसी ही घोषणा करे। परन्तु स्टालिन के लिए ऐसा करना मूर्खता होती। रूजवेल्ट और चर्चिल ने कासब्लाका में जो कुछ किया उससे स्टालिन के इरादो के सम्बन्ध में उनके सदेह पर प्रकाश पड गया। यहा स्टालिन भी ताड गया और उसने स्थिति से लाभ उठाने का निश्चय कर लिया। स्टालिन ने शत्रु को आत्म-समर्पण के लिए कहने के स्थान पर उससे बिल्कुल उलटा ही कार्य किया। उसने १ मई, १९४२ को जर्मन सेना तथा जर्मन राष्ट्र के नाम एक अपील निकाली। उस अपाल में उसने कहा—"जर्मन सेना को

अपना तथ। अन्य राष्ट्रो का खून बहाने के लिए इसलिए नही कहा जाता कि इससे जर्मनी का कोई लाभ होगा, बल्कि इसलिए कि जर्मन महाजनो तथा धना-धीशो की तिजोरिया भर सके जर्मन राष्ट्र को यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा ह कि उसने अपने-आपको जिस स्थिति मे फसा लिया है उससे मुक्ति प्राप्त करने का उसके लिए एक ही उपाय है और वह यह कि हिटलर तथा गोइरिंग जसे लुटेरो के चगुल से जर्मनी को छुटकारा दिलावे हम दूसरे देशो की भूमि पर अधिकार नही करना चाहते और न अन्य राष्ट्रो पर विजय पाना ही हमारा उद्देश्य है। हमारा उद्देश्य स्पष्ट तथा सम्मानपूर्ण है। हम अपनी सोवियत भूमि को जर्मन फाशिस्ट-पशुओ से आजाद करना चाहते है।"

७ नवम्बर, १९४२ को स्टालिन ने अधिक स्पष्ट शब्दो में कहा—"हमारा उद्देश्य जर्मनी का नाश करना नही है, हमारा उद्देश्य जर्मनी की सेना को भी नष्ट करना नही है, क्योकि रूस की तरह जर्मनी की सेना का विनाश केवल असम्भव ही नही वरन् भविष्य को देखते हुए अवाछनीय भी है।"

दूसरे शब्दो म, स्टालिन ने कहा था, जर्मन सेनापतियो को हिटलर के हाथ से शक्ति छीन कर रूस से सधि कर लेनी चाहिए।

चर्चिल ने मास्को पहुच कर स्टालिन से कहा था कि अभी अग्रेजो के लिए पश्चिमी यूरोप मे फौजे उतार कर दूसरा मोर्चा खोलना सम्भव नही है। फिर भी दूसरे मोर्चे के लिए चिल्ल-पो मचती रही। रूसी तथा रूसियो के विदेशी हिमायती निरतर यही माग करते रहे। रूस के लिए ऐसा करना स्वाभाविक था। उस समय उसके आगे जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था। इसी अवस्था में नाजी सैनिको के दूसरे युद्धक्षेत्र मे भेजे जाने के रूप मे सहायता प्राप्त करने की रूस की माग बिल्कुल वाजिब थी परन्तु स्टालिन को दूसरे मोर्चे वाली योजना की सूचना दे दी गई थी। ऐसी अवस्था मे दूसरे मोर्चे के आन्दोलन से यही मतलब लगाया जा सकता था कि उस समय रूस अपने मित्रों से नाखुश था और उनसे अधिक सहायता चाहता था। इससे यह भी ध्वनि निकलती थी कि मित्र-देशों से सहायता न मिलने पर वह जर्मनी से अलग सधि करके भी अपने कष्टो का अन्त कर सकता था।

१९४३ की ग्रीष्म ऋतु में स्टालिन के इरादो के सम्बन्ध में लदन तथा वाशिंगटन के हलको की घबराहट अपनी चरम-सीमा पर पहुच गई। १२ जुलाई, १९४३ को सोवियत् तत्वावधान में स्वाधीन जर्मनी की राष्ट्रीय समिति स्थापित की गई। उसमें रूसमें रहने वाले कुछ जर्मन कम्युनिस्ट, तथा कुछ नाजी युद्धबदी थे। इन युद्धबदियो में कुछ जर्मन अफ़सर और कुछ जर्मन-सामत

भी थे, जिन्हे इस विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही जेल से मुक्त किया गया था। समिति ने १० जुलाई को एक घोषणा-पत्र तैयार किया था, जिसकी लाखो प्रतिया लालसेना के वायुयानो ने जर्मन मोर्चों पर बरसाई थी और फिर उसे मास्को के "प्रवदा" पत्र मे भी प्रकाशित किया गया।

घोषणा-पत्र में हिटलरी-सत्ता के स्थान पर एक "वास्तविक-जर्मन राष्ट्रीय सरकार" की स्थापना का अनुरोध किया गया था। उसमे आगे कहा गया था —"यह सरकार युद्ध-कार्य तुरत बन्द कर देगी, जर्मन सेना को जर्मन सीमा पर वापस बुला लेगी और जीते हुए स्थानो से अधिकार छोडकर सुलह की बात शुरू कर देगी। इस प्रकार यह शाति प्राप्त करेगी और एक बार फिर जर्मनी को अन्य राष्ट्रो के समकक्ष स्थान दिलायेगी।

"सुलह की बातें" "जर्मनी को अन्य राष्ट्रो के समकक्ष स्थान" यह बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण तो नही है।

इस सबको हम हिटलर तथा जर्मन-सेना के बीच फूट डालने के प्रयत्न कह सकते है। परन्तु इसका रूजवेल्ट और चर्चिल ने यह मतलब नही लगाया। ३१ अगस्त १९४३ को चर्चिल ने क्वीबेक मे एक भाषण दिया, जिसमें यद्यपि स्टालिन तथा रूस के प्रति सम्मान प्रकट किया गया था किन्तु साथ ही दूसरे मोर्चे की माग के सम्बन्ध मे कटु विचार प्रकट किये गए थे। चर्चिल ने कहा था—"एक समय था जब फ्रास मे हमारा बडा अच्छा मोर्चा बना हुआ था, किंतु हिटलर की सेना की केन्द्रित शक्ति के कारण उसकी धज्जिया उड गईं। अपना मोर्चा नष्ट करा देना आसान है, किंतु उसे फिर से बनाना कठिन है।" इस प्रकार चर्चिल ने परोक्ष रूप से सोवियत्-नाजी सधि के सम्बन्ध में स्टालिन की नीति की कडी आलोचना की थी और विचार प्रकट किया था कि यदि रूस अपनी पहली नीति पर कायम रहता तो फ्रास की रक्षा हो सकती थी। रूस के साथ समझौता होने के कारण ही जर्मनी फ्रास के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति युद्ध में झौंक सका था।

इन शब्दों में चर्चिल ने रूस के प्रति अपना असतोष प्रकट किया। इस से भी अधिक अचम्भे मे डालने वाला वक्तव्य उसी वर्ष हैरी हॉपकिन्स ने दिया। रूजवेल्ट के इस राजनीतिक सलाहकार ने "अमरीकन मैगजीन" में लिखा था—"यदि हम रूस से हाथ धो बैठे तो मेरा विश्वास है कि हम युद्ध हारेंगे नही।" उस समय लालसेना स्टालिनग्राड ले चुकी थी और एक दूसरे मोर्चे पर भी जर्मनो को पीछे हटा रही थी। अब हिटलर के आघातो से रूस की कमर टूट जाने का कोई सवाल न था। उन दिनो पश्चिमी राष्ट्रो की रूस

से हाथ धो बैठने की सम्भावना स्टालिन द्वारा जर्मनी से पृथक् सधि करने की अवस्था ही मे उठती थी।

१९ जनवरी, १९४४ को कार्डेल हल ने मुझे बताया था कि पिछले वर्ष वह विदेश मन्त्रियो के प्रथम सम्मेलन मे भाग लेने के लिए मास्को क्यो गया था। उसने कहा था—'वाशिंगटन, लदन और चुगकिंग मे रूस तथा जर्मनी के मध्य पृथक् सधि होने की जो अफवाहे उड रही थी, मै उनकी असलियत का पता लगाना चाहता था। इस सम्बन्ध मे हम बिल्कुल अधकार मे थे।"

अमरीकी तथा ब्रिटिश सरकारे इस बात के लिए चिन्तित थी कि कही स्टालिन हमारे गुट से अलग न हो जाय। दिसम्बर, १९४३ मे अमरीका तथा ब्रिटेन की नीतियो के भीतर तेहरान मे यही भावना काम कर रही थी। इससे स्टालिन को बडी अनुकूल परिस्थिति मिली। पोलिश भूमि और अन्य जिस भी रियायत की माग स्टालिन की तरफ से की गई उसके पीछे यह धमकी भी थी कि यदि इन मागो को अस्वीकार किया गया तो हिटलर के पतन के बाद रूस जर्मनी से सधि कर लेगा।

तेहरान सम्मेलन म स्टालिन की पूर्ण विजय हुई। यही कारण था कि विदेशी कम्युनिस्टो—विशेषकर बाउडर के नेतृत्व में अमरीकी कम्युनिस्ट दल ने तेहरान वाली शर्तों को अपना नारा बना लिया। परन्तु सोवियत् अधिकारियो ने अनुभव किया कि तेहरान सम्मेलन से रूस की भावी नीति स्पष्ट हो गई है, जो ठीक नही हुआ। स्टालिन दूसरे पर प्रकट नही होने देना चाहता था कि उसकी मशा क्या है। इसलिए १७ जनवरी, १९४४ को "प्रवदा" के काहिरा स्थित सवाददाता ने (बाद मे प्रकट हुआ कि काहिरा मे इस पत्र का तब कोई भी सवाददाता न था) यह विवरण प्रकाशित कराया कि दो "प्रमुख अग्रेज" नाजी विदेशमत्री रिबनट्राप से पृथक सधि की वार्ता चला रहे है। "प्रवदा" के इस "निज सवाददाता" ने लिखा था कि उसे यह खबर यूनानी तथा स्लाव सूत्रो से मिली है और रिबनट्राप से वार्ता "आइबीरियन प्रायद्वीप" पर चल रही है।

प्रत्येक लक्षण से प्रकट होता था कि बात बिल्कुल मनघडत है। साधारणतौर पर "प्रवदा" ऐसे मनघडत समाचार नही छापता, किंतु इस बार ऐसा विशेष उद्देश्य से किया गया था। अमरीकी तथा ब्रिटिश पत्रो ने इस सवाद को पहले पृष्ठ पर दिया था। महत्व इस अफवाह का नही था, बल्कि इस बात का था कि "प्रवदा" ने उसे प्रकाशित किया था।

"प्रवदा" का यह सनसनीपूर्ण समाचार जिस दिन अमरीका मे प्रकाशित हुआ उस दिन मै वाशिंगटन मे ही था। मुझे ब्रिटिश राजदूत लार्ड हैलीफ़ैक्स के साथ अकेले चाय पीने का भी अवसर मिला था। लार्ड हैलीफैक्स ने

मुझे देखते ही कहा—"ज़रा बताइये तो, रूसी चाहते क्या है ? वे ब्रिटिश सरकार पर जर्मनी के साथ पृथक् सधि करने का आरोप क्यो कर रहे है ?" उन दिनो मै सैक्रेटरी कार्डेल हल, अडर-सेक्रेटरी स्टेटिनस, असिस्टेट सेक्रेटरी एडाल्फ ए० बर्ले आदि जिस भी अमरीका या ब्रिटिश राजनीतिज्ञ से मिला, प्रत्येक ने मुझ से यही प्रश्न किया। वे सभी दुविधा मे पडे थे।

मेरे विचार मे "प्रवदा" मे प्रकाशित समाचार का उद्देश्य यही दुविधा उत्पन्न करना था। कटनातिज्ञ कहते थ—"अग्रेजो द्वारा जर्मनी से पृथक् सधि की वार्ता का समाचार छाप कर कही सोवियत् रूस जर्मनी के साथ ऐसी ही वार्ता का सूत्रपात करने का बहाना तो नही खोज रहा।" बस, तेहरान सम्मेलन के बाद रूस के प्रति विश्वास की जो भावना जमी थी, वह लोप हो गई। हमारे कूटनीतिज्ञ दात पीसने लगे। रूस को फिर मनाना पडेगा। उसका किसी प्रकार विरोध न होना चाहिए। ऐसे वातावरण मे रूज़वेल्ट और चर्चिल से प्राप्त रियायतो को हजम करके स्टालिन नई मॉगे पेश कर सकता था। इसी कारण उधार-पट्टा-प्रणाली के अन्तर्गत अमरीका से जितनी सामग्री की आशा स्टालिन को थी, उससे कुछ अधिकप्राप्त हुई।

१९४३ मे जब रूस ने लडाइया जीतना आरम्भ कर दी तो पृथक् सोवियत्-जर्मन सधि की आशका और भी बढ गई। परिणाम यह हुआ कि स्टालिन ने तेहरान मे इग्लैड और अमरीका से मनचाही शर्तें प्राप्त करली। बाद मे लालसेना पूर्वी और मध्य यूरोप मे आगे बढने लगी और रूस वहा के छोटे देशो पर हावी हो गया। इससे "तीन बड़ो" के सम्बन्धो मे एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। रूस की एकागी नीति तथा उसकी लोलुपता को कम करने के लिए अमरीका और ब्रिटेन को माल्टा मे सोवियत् सरकार की इच्छाओ के आगे और भी झुक जाना पडा।

युद्धकाल मे लोकतन्त्री सरकारो को जनता का उत्साह बनाये रखने की आवश्यकता जान पडती थी। जनता चाहती थी कि सब कुछ ठीक चलता रहे और राजनीतिक नेताओ ने उसे यही विश्वास दिलाने का प्रयत्न भी किया। इसीलिए मित्रराष्ट्रो के प्रत्येक सम्मेलन को विजय तथा "युद्धोत्तर स्वर्ग" की ओर ले जाने वाला एक महत्वपूर्ण कदम बताया जाता था। रूजवेल्ट और चर्चिल समझौते तथा प्रगति की जोरदार घोषणा किये बिना तेहरान या माल्टा से रवाना न होना चाहते थे। और स्टालिन प्रत्येक समझौते पर हस्ताक्षर करने से पूर्व उसकी कीमत वसूल कर लेता था।

परन्तु दूसरा मार्ग ही और क्या था ? क्या रूजवेल्ट और चर्चिल के लिए उचित था कि रूस को नाराज करके उसे जर्मनी से पृथक् संधि कर लेने

देते ? इसका मतलब यह होता कि युद्ध अधिक काल तक चलता और ब्रिटिश, अमरीका तथा अन्य देशो के सैनिको का मृत्यु सख्या कही अधिक बढ जाती। हैरी हॉपकिन्स के आशावाद के बावजूद, रूस का साथ छूटने पर पश्चिमी मित्रराष्ट्र शायद युद्ध मे हार जाते। स्टालिन ने पालैंड मे जो कुछ मागा था वह न दिये जाने पर वह शायद जर्मनी से समझौता करके प्राप्त कर लेता। १९३९ मे उसने ऐसा किया ही था और वह सम्भवत सोचता कि तब की अपेक्षा अब परिस्थिति कही उसके अनुकूल है।

सचमुच जिम्मेदारी महान् थी। मै जब कभी भी युद्ध के दिनो मे होने वाले शान्ति के प्रयत्नो के सम्बन्ध मे मित्र राष्ट्रीय अधिकारियो से बाते करता था तो वे सदा इसी प्रश्न को दुहरा देते थे—"और मान लीजिये कि रूस युद्ध से पृथक् हो जाय ?" एक बार मै पोलैंड तथा बाल्टिक राज्यो के सम्बन्ध मे रूस की चालो के विषय मे सेक्रेटरी हल से बाते कर रहा था। वह बोला—"यदि आप रूस से ये रियायते लेना चाहते है तो आपको अमरीकी सेना और जगी बेडा अपने साथ मास्को ले जाना पडेगा।" उसके इस कथन का तात्पर्य दूसरे शब्दो में यह था कि स्टालिन केवल ऐसे साधनो तथा उपायो के प्रयोग से ही बात मान सकता था, जो अमरीका और ब्रिटेन काम में नहीं लाना चाहते थे।

साधारण नागरिक अपनी सरकारो की आलोचना कर सकता है। परन्तु नागरिक जिस नीति का समर्थन करना चाहता है उसके अनुसार काम करने पर तो एक लाख युवको की जाने जाने की सम्भावना होती ? रूजवेल्ट, हॉपकिन्स और चर्चिल ने रियायत पर रियायत देकर स्टालिन की जो इतनी खुशामद की तो इसका कारण यह था कि युद्ध के परिणाम के सम्बन्ध में सन्देह उठ खडा हुआ था। परन्तु वास्तव मे ऐसा होना नही चाहिए था। जर्मनी से रूस की पृथक् सधि होने की कोई सम्भावना नही थी। सच तो यह है कि ऐसा होना बिलकुल असम्भव था। यह होता भी कैसे ? यदि जर्मनी सुलह का प्रस्ताव करता तो उससे प्रकट हो जाता कि अब जर्मनी मे खडे होने की शक्ति नहीं रह गई है और फिर उस अवस्था मे स्टालिन के लिए वह प्रस्ताव स्वीकार करना मूर्खता होती। इसी प्रकार रूस की तरफ से सुलह के प्रस्ताव को जर्मनी मे कमजोरी का लक्षण माना जाता और उस हालत मे जर्मनी रूस को कुचल डालने के लिए अपने प्रयत्नो में दुगनी गति लाना आरम्भ कर देता।

दूसरी ओर स्टालिन-हिटलर-सधि के मार्ग मे दुर्निवार्य बाधाए थी, और, जैसा कि १९४४ तथा १९४५ के जर्मनी के इतिहास को देखने से स्पष्ट

हो जाता है कि हिटलर को अपदस्थ नही किया जा सकता था। मास्को में स्वाधीन जर्मन समिति की स्थापना तथा जर्मन-सेना के लिए स्टालिन के सकेतो का कुछ भी महत्त्व न था, क्योकि आत्म-हत्या के दिन तक हिटलर अपने पद पर बना था।

इसके अतिरिक्त, युद्ध-काल मे जर्मनी और यूरोप की बहुत-सी भूमि हडप जाने के लिए रूसी अधिकारियो की लिप्सा बलवती हो उठी थी। यदि रूस की जर्मनी से पृथक् सधि हो जाती तो उसकी ये आकाक्षाए कभी पूरी न हो सकती थी। यह सुलह एक समझौता होती, जिससे रूसियो के इरादो का सीमित होना भी स्वाभाविक ही था। पृथक् सधि करने की अवस्था में रूस अपने विस्तार की जितनी आशा कर सकता था उससे कही अधिक विस्तृत साम्राज्य रूस का आजकल है। कम-से-कम इस इरादे के कारण रूस पृथक् सधि कभी न करता।

१९४३ से कुछ महीने पूर्व ही वह काल था जब हिटलर रूस को कुचल डालने की अपनी शक्ति के सम्बन्ध मे सन्देह कर सकता था। इसके बाद ही स्टालिन विश्वास करने लगा था कि वह जर्मनो को रूस के बाहर निकाल सकता है। यही काल था जिसमे रूस और जर्मनी के मध्य पृथक् सधि की बात सोची जा सकती थी। परन्तु हिटलर का हठ पहली बाधा थी और हिटलर के सम्बन्ध में स्टालिन का अनुभव दूसरी।

भविष्य कुहरे से भरे आकाश की तरह है। वायुयान के चालक के समान राजनीतिज्ञ अपने अनुमानो के आधार पर उडता है। वह भविष्य की ओर अपने यत्रो के द्वारा इगित दिशा मे बढता है और ये यत्र है राजनीतिज्ञ का अपना ज्ञान, निर्णय करने की उसकी योग्यता, उसकी सूझ-बूझ और शत्रु के सम्बन्ध में उसका अध्ययन। रूस-जर्मन-सधि होने की सम्भावना इतनी कम थी और ब्रिटेन तथा अमरीका के पास रूस को प्रभावित करने के साधन (उधार पट्टा सामग्री, बढती हुई सैन्य-शक्ति इत्यादि) इतने जोरदार थे कि यह तो कहा ही जा सकता है कि रूजवेल्ट और चर्चिल ने तेहरान और माल्टा मे जैसा पूर्ण आत्म-समर्पण स्टालिन के आगे किया था, कम से-कम वैसा तो न करना चाहिए था। अगस्त १९४५ में पोट्सडम सम्मेलन के समय तो उनके आत्म-समर्पण करने का और भी कम कारण था, क्योकि तब तक जर्मनी घुटने टेक चुका था और जापान पर भी परमाणु-बम डाले जाने वाले थे। सच तो यह है कि वार्ता के मध्य स्टालिन के मुकाबले मे ब्रिटिश तथा अमरीकी प्रतिनिधियो ने अपेक्षाकृत कम कौशल का परिचय दिया।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट, सेक्रेटरी हल और अडर-सेक्रेटरी सुमनरवेल्स ने बाल्टिक देशो पर रूस के अधिकृत होने का जोरदार विरोध किया। स्टालिन ने पोलैंड की समस्या का जो युद्धकालीन हल बताया, उस पर भी रूजवेल्ट और चर्चिल नें स्टालिन के आगे घुटने टेक दिये। ऐसा उन्होने विवश होने पर ही किया था। उन्हे स्टालिन के पृथक् सधि करने का भय त्रस्त किये हुए था।

परिणाम यह हुआ कि युद्धकालीन सम्मेलनो के निर्णय इस आधार पर नही किये गए कि न्यायपूर्ण क्या है अथवा युद्ध के बाद ससार को सुखी बनाने के लिए क्या होना चाहिए, बल्कि ये निर्णय तो जल्दबाज़ी मे और लेन-देन की भावना मे किये गए। लेन-देन मे पश्चिमी शक्तियो को जितना मिला उससे कही अधिक उन्होने दिया और रूस ने केवल लिया ही, दिया कुछ भी नही।

स्टालिन की योजना सदा के समान पुरानी नीति का पृष्ठ-पेषण मात्र थी ? पूर्वी पोलैंड पर अधिकार होने से रूस की सीमा चेकोस्लोवाकिया से मिल जायगी। बाल्टिक राज्यो और पूर्वी प्रशा पर कब्ज़ा होने से रूस का सीमा जर्मनी से मिल जायगी। कार्पेथो-रूस (रुथेनिया) पर अधिकार होने से रूस की सीमा हगरी से मिल जायगी। ईरानी अजरबेजान पर अधिकार होने या उसके चगुल मे फस जाने से रूस की सीमा तुर्की से मिल जायगी।

दूसरे महायुद्ध से पूर्व सोवियत्-सघ की सीमा चेकोस्लोवाकिया, या जर्मनी या हगरी, या नार्वे की सीमाओ से नही मिली हुई थी। अब उसकी सीमा इन देशो की सीमाओ से मिली हुई है और इसीलिए उन पर रूस का प्रभाव भी बढ गया है।

रूस द्वारा आधे जर्मनी, आस्ट्रिया, और हगरी पर कब्ज़ा जमानें से यूरोप भर मे उसकी शक्ति बढ जानी स्वाभाविक थी। रूमानिया और बलगा-रिया पर रूस का अधिकार होने तथा यूगोस्लाविया में मार्शल टिटो के हाथ मे शासन-सूत्र चले जाने से इटली, यूनान, तुर्की तथा भूमध्य सागर मे भी रूस का प्रभाव बढ गया।

स्टालिन ने चीन तथा अन्य एशियाई देशो पर भी अपना प्रभाव बढाया।

जिस तरह भारत मे ब्रिटेन की स्थिति का सम्बन्ध हिंद एशिया, फिलस्तीन यूनान तथा इटली की घटनाओ से है उसी प्रकार फिन्लैंड में रूस के उद्देश्यो का स्पष्टीकरण रूस द्वारा ईरान में किये गए कार्यों द्वारा होता है। कर्जन पक्ति का विस्तार वस्तुत बर्लिन तक है। रूमानिया पर अधिकार दर्रे दानियाल तक पहुँचने का एक साधन मात्र है।

स्टालिन का स्वप्न एक महान् रूसी साम्राज्य की स्थापना थी, जो जर्मन और जापानी शक्तियो के रिक्त-स्थान की पूर्ति कर सके। स्टालिन को अपने उद्देश्य की सिद्ध का भरोसा इसलिए और भी था कि उसके खयाल मे युद्ध के बाद इग्लैड और फ्रास की शक्ति मे कभी होगी।

स्टालिन के इस युग म आइवन भयानक, पीटर महान्, केथराइन महान्, तथा अन्य ऐसे सभी जारो और रूसी सेनापतियो की प्रशसा करके उन्हे आकाश पर चढा दिया गया है, जिन्होने अपने समय मे रूसी साम्राज्य का विस्तार किया था। ये सभी अपने समय मे प्रजा-पीडक शासक थे और रूसी प्रजा के प्रति उनके अत्याचारो की कोई सीमा न थी। अब स्टालिन भी रूसी शासको के पुराने आदर्शों पर चल रहा है।

इस प्रकार युद्ध-काल मे और उसके बाद सोवियत् रूस शान्ति-सस्थापन की दृष्टि से मुख्य समस्या बना रहा। अन्य दो समस्याए यह उठी कि ब्रिटेन ने अपना साम्राज्य समाप्त करने की प्रवृत्ति नही दिखाई और अमरीका भी साम्राज्य की इच्छा करने लगा।

युद्ध-काल मे सोवियत् अधिकारियो ने अपने साम्राज्य-विस्तार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ब्रिटिश तथा अमरीकी साम्राज्यवादो को स्वीकार कर लिया। रूस चाहता था कि लूट का माल ब्रिटेन, अमरीका और रूस मिलकर बाट ले और ये तीनो महाशक्तिया मिलकर दुनिया का बटवारा कर लें। इन परिस्थितियो मे विदेशी कम्युनिस्टो का साम्राज्यवाद के प्रति विरोध घट गया। तेहरान सम्मेलन के उपरान्त वे कहने लगे कि साम्राज्यवाद जैसी कोई चीज अब रही ही नही, परन्तु युद्ध के बाद रूसी साम्राज्यवाद ने इग्लैड और अमरीका के प्रति अधिक विरोधी रुख धारण कर लिया।

अपना कोई भी निर्णय कार्यान्वित करने से पूर्व तेहरान और माल्टा के सम्मेलनो मे यह निश्चय स्वीकार कर लिया गया कि तीन महाशक्तियो के प्रतिनिधि के रूप मे "तीन बडे" पोलैड जैसे कमज़ोर देशो के भाग्य का निर्णय उन की अनुपस्थिति मे भी कर सकते है। धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध बीस से अधिक देशो ने सग्राम मे भाग लिया था। परन्तु शान्ति की व्यवस्था का निर्णय तीन ही ने किया। मित्रराष्ट्रो के हिसाब का यह एक नमूना है। छोटे देशो की सरकारो ने कितना ही प्रयत्न और विद्रोह किया, परन्तु वे शान्ति का निर्माण करने के अधिकार की "तीन बडो" के चगुल से रक्षा न कर सकी।

विजय प्राप्त करने मे इन तीनो महाशक्तियो का हाथ सबसे अधिक था। परन्तु इसका यह मतलब तो नही है कि बुद्धि या विचारशीलता भी केवल

उन्ही के हिस्से मे आई है। परन्तु निर्णय करने का एकाधिकार जमा लेने के कारण उनकी स्वार्थ-परता तथा बदर-बाट करने की मनोवृत्ति को फलने-फूलने का खूब अवसर मिल गया है। शक्तिशाली व्यक्ति अथवा देश को किसी समस्या का पहले निर्णय करने का अधिकार देने पर न्याय अथवा लोकतत्रवाद का गला घुट जाता है। प्रत्येक प्रजातत्र राज्य मे इने-गिने व्यक्तियो की शक्ति का नियत्रण जन-साधारण की वोटो द्वारा और केन्द्रित आर्थिक शक्ति का नियत्रण निर्वाचको की राजनीतिक शक्ति द्वारा किया जाता है। परन्तु "तीन बडो" ने असख्य "छोटो" को "परामर्श" अथवा "विवाद" कर सकने से अधिक और कुछ भी अधिकार नही दिया। और 'तीन बडो' मे भी एक अन्य दो के निश्चयो को अस्वीकार कर सकता था। इस प्रकार एक ही महाशक्ति ससार भर की जनता पर अपनी इच्छा लाद सकती थी। यह राष्ट्रीयता का अतिम ध्येय और अन्तर्राष्ट्रीयता की न्यूनतम विशेषता है।

'तीन बडो' के प्रभुत्व से मुक्ति पाने का एक-मात्र उपाय ससार भर के लिए ऐसी शासन-व्यवस्था करना है, जिसे तीनो महाशक्तिया स्वीकार कर ले। इससे दुनिया को एक ही हुकूमत के अधीन करने की कठिनाइयो पर प्रकाश पडता है। परन्तु तेहरान, माल्टा अथवा पोट्सडम मे यह समस्या उठाई ही नही गई।

दूसरा महायुद्ध भूमि के बटवारे के प्रश्न को लेकर नही हुआ था। यह तो हमारी सभ्यता की व्याधि के परिणाम स्वरूप हुआ था। १९४३ में 'साम्राज्य' नामक एक पुस्तक मे मैने लिखा था—"यह युद्ध या तो एक नवीन ससार को जन्म देगा और या एक नये विश्व-युद्ध को।" जिन लोगो ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया था उन्हें सबसे पहले यह जानना चाहिए था कि व्याधि क्या है, और फिर उसके उपचार का प्रयत्न करना चाहिए था, परन्तु उन्हे इसके लिए समय ही न था। आधुनिक राजनीतिज्ञ इतनी तेजी से काम करते है कि उन्हे यह विचार करने के लिए ठहरने का भी समय नही मिलता कि वे जा कहा रहे है। रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन ससार के सबसे व्यस्त व्यक्ति थे और वे समस्त मानव-समाज के भाग्य का निबटारा करने के लिए पाँच दिन तक बात-चीत करते रहे। उनका पहला काम युद्ध में विजय प्राप्त करना था। इस विचार को ध्यान मे रखकर उन्होने सैनिक चाले चली और यही ध्यान मे रखकर उन्होने सुलह के प्रयत्न किये। तेहरान, माल्टा तथा पोट्सडम मे शक्ति की जिस व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय किया गया था उसका उद्देश्य तीसरे महायुद्ध से बचने के लिए शान्ति

स्थापित करना न होकर दूसरे महायुद्ध मे विजय प्राप्त करना था। युद्ध में भाग लेने वाले मित्रराष्ट्र खुश रहे—इसका यह एक प्रयत्न-मात्र था। उधार-पट्टा प्रणाली के अनुसार रूस को सामान देने या फ्रास पर हमले की योजना तैयार करने के ही समान यह भी एक सैनिक कार्रवाई थी।

१४ अगस्त १६४१ को रूजवेल्ट और चर्चिल ने अपना अटलाटिक घोषणा-पत्र निकाला था और १ जनवरी १९४२ को सोवियत् सरकार ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये थे। अधिकार पत्र मे कुछ कमिया थी, फिर भी उसे शान्ति-स्थापना करते समय आदर्श लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता था। यही अधिकार-पत्र तेहरान मे एक रद्दी कागज-जैसा हो गया। माल्टा मे उस कागज को जला दिया गया।

अटलाटिक अधिकार-पत्र की पहली शर्त यह है—"हमारे देशो का उद्देश्य भूमि प्राप्त करने या दूसरे किसी इरादे से हमला करने का नही है।" दूसरी शर्त में कहा गया है—"हम ऐसा कोई प्रादेशिक परिवतन नही होने देना चाहते जिसे करते समय उस प्रदेश की जनता का मत न जान लिया गया हो।"

रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन ने तेहरान और माल्टा मे पोलेड तथा जर्मनी के सम्बन्ध मे जो निर्णय किये थे, उनमे इन दोनो शर्तो को बुरी तरह भग किया गया था। अपने शब्दो की अवज्ञा करके उन्होने वास्तव में शान्ति की ही अवज्ञा की थी।

१९३९ मे सोवियत् सरकार द्वारा पूर्वी पोलेड पर अधिकार कर चुकने के बाद वहा "सर्वसाधारण" का मत लिया गया और ९० प्रतिशत मतदाताओ ने रूस के ही पक्ष में अपना निर्णय दिया था। परन्तु यहा यह ध्यान रखना चाहिए कि मत लिये जाने से पूर्व १०,००,००० से अधिक व्यक्तियो का निर्वासन साइबेरिया और तुर्किस्तान को किया जा चुका था। सोवियत् काग्रेस ने अपने उच्च आदर्शवाद के काल में १८ नवम्बर १६१८ को एक प्रस्ताव पास करके मत प्रकट किया था कि "यदि एक राष्ट्र पर दूसरे का अधिकार हो और यदि एक अधीन राष्ट्र को—ऐसी अवस्था में जब कि अधिकारी राष्ट्र की सेना हटा ली गई हो और कोई दबाव न डाला गया हो—अपनी शासन-प्रणाली का निर्णय करने का अधिकार नही दिया जाता तो यही कहा जायगा कि दूसरे राष्ट्र का सम्बन्ध उस पर कब्जा जमाना और वहा विदेशी शासन स्थापित करना है और इसे एक अपराध माना जायगा।"

इस प्रकार स्वय सोवियत् काग्रेस के ही शब्दो मे स्टालिन का पूर्वी पोलैंड पर अधिकार जमाना अपराध था।

कार्ल मार्क्स यूरोप की राजनीतिक समस्याओं पर अधिकार-पूर्वक विचार प्रकट किया करता था, १६ अगस्त १८८४ को उसने कहा था—"लोकतन्त्रवादी जर्मनी की स्थापना की पहली शर्त लोकतन्त्रवादी पोलेंड को जन्म देना है यह समस्या केवल कागज पर स्वतन्त्र पोलैंड कायम करने की नही है, बल्कि सुदृढ आधार पर एक राज्य स्थापित करने की है, जो अपना पृथक् और वास्तविक अस्तित्व बनाये रख सकें। पोलैंड को कम-से-कम वह भूमि तो अवश्य मिलनी चाहिए जो उसके पास १७७२ में थी।" निश्चय ही तब पोलैंड के पास १६३६ की तुलना मे कही अधिक भूमि थी। क्या क्रेमलिन मे मार्क्स का अध्ययन कोई नही करता ?

रूस ने हिटलर के साथ सितम्बर १९३९ में की गई सधि के अनुसार पूर्वी पोलैंड पर अधिकार कर लिया था। ३० जुलाई १९४१ को रूस ने पोलैंड के साथ लदन में एक सधि की, जिसके अनुसार निश्चय किया गया कि सितम्बर १६३९ वाली सधि द्वारा पोलैंड में जो प्रादेशिक परिवर्तन हुए थे, उन्हे रद्द समझा जाय। दूसरे शब्दो में हिटलर की सहायता से स्टालिन को पोलैंड मे जो भूमि प्राप्त हुई थी उस पर रूस का अधिकार नही रह गया। लालसेना की उपस्थिति मे पोलैंड मे सर्व-साधारण का जो मत लिया गया था, उसे भी अमान्य ठहरा दिया गया। इस तरह वह भूमि फिर पोलैंड को मिल गई।

इतना सब हो चुकने और रूस के अटलांटिक अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बावजूद और लालसेना द्वारा पूर्वी पोलैंड को जर्मनी से जीतने से पहले ही, रूजवेल्ट और चर्चिल ने वह रूस को दे दिया। यह एक जबर्दस्ती थी। यह सब उन्होने पोलैंड की जनता का मत जाने बिना ही किया। ऐसा करते समय उन्होंने सिर्फ स्टालिन से सलाह ली थी। स्वय पोलैंड के सम्बन्ध मे फैसला महत्वपूर्ण अवश्य है, किन्तु इस कारवाई का और भी अधिक महत्त्व है। इससे यह कुटिलतापूर्ण तथा घृणित सिद्धान्त कायम होगया कि जब "तीन बडो" मे बातचीत हो तो सिद्धान्तो का कुछ भी महत्त्व नहीं रहता।

इसके उपरान्त, जैसा कि स्वाभाविक ही था, सोवियत् सरकार और कम्युनिस्ट दल के प्रचारको तथा अन्य देशों के कम्युनिस्टो ने एक स्वर में शोर मचाना आरम्भ कर दिया कि रूस द्वारा पश्चिम में कर्जन पक्ति तक पोलैंड की भूमि पर अधिकार करना उचित ही है। यह हमारे युग की एक सबसे दुखद बात है कि लोकतन्त्री देशो के कितने ही लोग इस गुल-गपाड़े से प्रभावित होकर

सोचने लगे कि रूस का दावा न्यायपूर्ण है।

प्रचारको ने कहा कि कर्जन-पक्ति तक पोलैंड पर रूस का अधिकार था। यह असत्य है। जिस प्रदेश के सम्बन्ध मे दावा किया गया था, उसका एक बहुत बडा तथा समृद्धिशाली भाग पूर्वी गेलीशिया कभी भी जारशाही रूस के कब्ज़े मे न था।

इस प्रदेश का केवल एक भाग जारो के कब्जे मे था। यह भाग जारो को कैसे मिला ? बोलशेविक सत्ता का जन्मदाता लेनिन इस सम्बन्ध मे लिख चुका है। मई १९०७ मे प्रकाशित "युद्ध और क्रान्ति" नामक पुस्तक मे उसने पोलैंड तथा लटाविया के एक प्रात कोरलैंड के बटवारे का जिक्र किया है। यह बटवारा जारशाही रूस, जर्मनी तथा आस्ट्रो हगेरियन राज्य के बीच हुआ था। लेनिन लिखता है—"कोरलैंड तथा पोलैंड की बदर-बाट तीन ताजधारी लुटेरो के बीच हो चुकी है। वे लगभग १०० साल तक उनके टूकडे किये रहे और उनसे अपने पेट भरते रहे। सबसे बडा टुकडा रूसी लुटेरे के हाथ लगा, क्योकि तब वह सबसे बलवान था।"

बोलशेविक स्टालिन ने अपने दावे का आधार जार का इस लूट को बनाया है। जब स्टालिन ज़ारो से प्रेरणा लेने लगा है तो उससे और आशा ही क्या की जा सकती है ?

लेनिन द्वारा स्टालिन के कार्यों की निन्दा का एक और नमूना लीजिये। एक समय था जब अलेक्जेंडर पहला और नेपोलियन पोलैंड का सौदा किया करते थे। एक समय जारो ने भी पोलैंड का सौदा किया था। क्या हम जारो की यही चालें काम में लाते रहेगे। यह तो अतर्राष्ट्रीयता को तिलाजलि देना होगा। यह तो 'बहुत बुरे प्रकार की देशभक्ति है।" यह स्टालिन की साम्राज्यवादी देशभक्ति है।

यह सिद्धान्त कि किसी देश को वह प्रदेश मिलना चाहिए, जो कभी उसके अधिकार में था—कार्यान्वित नही हो सकता। यदि इस सिद्धान्त को माना जाय तो दुनिया एक पागलखाना बन जायगी। इस सिद्धान्त के अनुसार इग्लैंड वर्जीनिया, बोस्टन तथा फ्रास के एक भाग को ले लेगा, रोम लंदन पर अधिकार जमाएगा, न्यूयार्क डचो के कब्जे में चला जायगा, फ्रासीसी न्यूआर्लिंयन्स ले लेंगे, मिस्र, फिलस्तीन, सोवियत् यूक्रेन, बल्गारिया, और रूमानिया तुर्कों के हाथ में चले-जायगे, स्वीडन को रूस का एक बडा हिस्सा मिल जायगा, केलिफोर्निया स्पेन के पास चला जायगा, इटली हिंदचीन ले लेगा, ईरान भारत का एक हिस्सा ले लेगा, यूनान भी भारत के उसी हिस्से के लिए दावा उप-

स्थित करेगा और फिर यह व्यापार अनन्त काल तक अशान्ति का कारण बन जायगा।

प्रचारको की दलील है कि १९२० मे कमजोर होने के कारण रूस को यह प्रदेश पौलैंड को देने के लिए विवश होना पड़ा था, यह सच नही है। उस समय सोवियत् सत्ता का सूत्र लेनिन के हाथो मे था। वह अपने कार्यों का निरपेक्ष भाव से विश्लेषण करने के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसने २० नवम्बर १९२० को मास्को मे कहा था—"लाल सेना ने जो विजय प्राप्त की है उसका महत्त्व वारसा की क्षणिक हार के बावजूद भी असाधारण है क्योकि उसके कारण पोलैंड युद्ध जारी रखने मे असमर्थ हो गया था। पोलैंड की साधारण अवस्था ऐसी अस्थिर हो चुकी थी कि उसके द्वारा युद्ध जारी रखने का कोई प्रश्न उठता ही न था।" यह कथन ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश डालता है। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि शक्तिशाली पोलैंड ने अशक्त रूस से वह प्रदेश छीन लिया। सच तो यह है कि १९२१ की सधि-वार्ता के बाद पौलैंड ने जितनी भूमि मागी थी उससे कही अधिक लेनिन ने उसे स्वेच्छापूर्वक दे दी, क्योकि लेनिन कर्जन पश्चित-प्रदेश के निवासियो को सोवियत् रूस मे सम्मिलित नही करना चाहता था। उनमे से कितने ही रोमन कैथोलिक थे और लेनिन अपने यहा एक नई समस्या को नही उठाना चाहता था—वह रूस तथा पौलैंड के मध्य एक धार्मिक सीमा बनाना चाहता था। जो वह बना भी सका।

यदि रूस द्वारा कमज़ोरी की हालत मे पोलैंड को भूमि देने की बात सच भी हो, फिर भी उस प्रदेश का परित्याग न्यायानुकूल बात ही कही जायगी। यदि कमजोरी की हालत मे त्यागे गए प्रदेशो को ऐसा करने वाले देश शक्तिशाली होकर फिर प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे तो न्याय और स्थिरता कभी कायम न हो सकेगी। यदि जर्मनी, जापान और इटली भविष्य मे अपने छिने हुए प्रदेशो को प्राप्त करने की चेष्टा करे तो क्या होगा ?

प्रचारको की दूसरी दलील है कि कर्जन प्रदेश के अधिकाश निवासी रूसी, श्वेत रूसी या यूक्रेनियन है। आस्ट्रिया तथा सुडेटनलैंड के भी अधिकाश निवासी जर्मन थे। फिर हमने हिटलर द्वारा उन्हे हडप जाने का समर्थन क्यो नही किया ? जबरन कब्जा करने की सफाई मे कुछ भी नही कहा जा सकता। यदि वहा रूसियो का बहुमत था तो सोवियत् अधिकारियो ने लाल सेना तथा आगपू के हटने पर स्वतत्र चुनाव का निर्णय मानने से इकार क्यो कर दिया ?

प्रचारको की तीसरी दलील है कि पूर्वी पोलैंड पिछली पोलिश सरकार की अपेक्षा रूसी सरकार के शासन में अच्छा रहेगा। परन्तु यह किसे मालूम है ?

और अच्छा होने का फैसला कौन करेगा ? क्या वारसा मे नई और रूसी शासको के अनुकूल सरकार नही है और क्या उन्ही प्रचारको के मतानुसार उसका शासन पिछली सरकार से उत्तम नही है ? फिर उसे पूर्वी पोलैंड पर राज क्यो नही करने दिया जाता ?

यह बहाना कि पोलैंड, बाल्टिक देशो या बाल्कान राष्ट्रो को रूस के प्रभुत्व से अथवा उसमें मिलने मे लाभ पहुचेगा—वास्तव में साम्राज्यवादियों की अह-भावना है। यह तो ब्रिटेन तथा मुसोलिनी के तर्कों के समान है कि भारत में श्वेत जाति की विशेष जिम्मेदारी है, और इटली ने अबीसीनिया पर उसे गुलामी से छुडाने के लिए आक्रमण किया था । दक्षिण अमरीका के देशो पर सयुक्त राष्ट्र का अधिकार होने पर उनके रहन-सहन के मान, उनके स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, उनकी यातायात व्यवस्था और राजनीतिक स्थिति में उन्नति होगी । तो क्या सयुक्त राष्ट्र को उनपर कब्जा कर लेना चाहिए ?

फिन्लैंड, एस्थोनिया, लटविया, लिथुआनिया, पोलैंड, ईरान और तुर्की मे १९३९ से ही रूस के कार्यो के सम्बन्ध में सोवियत् सरकार और उसके हिमायती जो बहाना बनाया करते थे उनका उत्तर रूस के भूतपूर्व विदेश-मन्त्री लिटविनोव एक समझौते द्वारा पहले ही दे चुके है । इस समझौते पर सोवियत् रूस ने अफगानिस्तान, फिन्लैंड, एस्थोनिया, लटविया, लिथुआनिया, ईरान, पोलैंड, रूमानिया, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया और तुर्की के साथ १९३० में हस्ताक्षर किये थे । समझौते मे आक्रमण क्या होता है, इसकी व्याख्या की गई थी । समझौते मे कहा गया था—"राजनीतिक, सैनिक अथवा आर्थिक—किसी भी कारण को आक्रमण के लिए उचित ठहराने का हेतु नही कहा जा सकता ।" इसका कारण यह है कि यदि एक महाशक्ति आक्रमण करती है या अपने साम्राज्य के विस्तार की चेष्टा करती है तो दूसरी महाशक्तियो का सदेह बढता है और उनसे उसका झगडा बढता है। परिणाम यह होता है कि उन अन्य महाशक्तियो को बदले की कार्रवाई करनी पड़ती है । इसी प्रकार युद्ध छिड जाते है, दूसरा महायुद्ध भी इसी तरह छिडा था ।

परन्तु आश्चर्य की बात है कि हिटलर, मुसोलिनी और हिरोहितो के आक्रमण के परिणामस्वरूप होने वाले युद्ध के बीच में ही रूजवेल्ट और चर्चिल ने तेहरान और माल्टा मे रूस के नए आक्रमणो को स्वीकृति दे दी ।

२२ दिसम्बर, १९२० को लेनिन ने एक सम्मेलन में कहा—"आप जानते है कि पश्चिमी सीमा पर स्थित कितने ही ऐसे देशो से हमारी सधि हो गई है, जो पहले रूसी साम्राज्य के अग थे । सोवियत् सरकार की आधारभूत

नीति के अनुसार इन देशो की स्वतन्त्रता तथा स्वाधीन-सत्ता को बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लिया गया है।"

अब स्टालिन ने इन देशो की स्वाधीनता का अंत करके सोवियत्-नीति के "आधारभूत सिद्धातो" का गला घोट दिया है। मै सोवियत् रूस की विदेश-नीति के सम्बन्ध में १९३० में दो ग्रथ लिख चुका हू। मै कितने ही वर्ष तक सोवियत् रूस की विदेश-नीति के लिए उत्तरदायी राजनीतिज्ञो के निकट-सम्पर्क मे रह चुका हू। मै इस सम्बन्ध के सभी महत्वपूर्ण ग्रथो तथा अन्य सामग्री का अध्ययन कर चुका हू। १९२० से १९३९ तक किसो सोवियत् राजनीतिज्ञ अथवा ग्रथ द्वारा फिन्लैंड या पोलैंड को स्पर्श करने वाली रूस की सीमा की आलोचना नही की गई थी। और न बाल्टिक देशो की स्वाधीनता को ही अनुचित बताया गया था। सोवियत् सरकार इन सभी देशो की स्वाधीनता स्वीकार करती थी और उन सबसे उसके व्यावहारिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध कायम थे। यदि इन देशो की सीमाओ से सोवियत् अधिकारी असतुष्ट थे तो वे बेसराबिया प्रदेश की तरह उनकी स्थिति से भी असतोष प्रकट कर सकते थे। बेसराबिया प्रदेश रूमानिया ने १९१९ में हडप लिया था, किन्तु सोवियत् अधिकारियो ने सिद्धान्त रूप से बेसराबिया को सोवियत् रूस के ही अतर्गत माना था और नक्शो मे भी वे उसे रूस के अतर्गत दिखाया करते थे। परन्तु सोवियत् अधिकारियो ने पोलैंड के कर्जन पक्ति वाले प्रदेश, फिन्लैंड के किसी प्रदेश अथवा बाल्टिक राज्यो के सम्बन्ध मे कभी ऐसा नही किया था। उन्होने इनके लिए उसी समय दावा पेश किया, जब उन पर अधिकार करने की शक्ति सोवियत् सरकार मे आ गई। साथ ही उनके हिमायतियो ने भी लोकतत्रवादी देशो की जनता को भ्रम मे डालने के लिए शोर मचाना आरम्भ कर दिया। अब उन्हे सफलता भी मिल गई है। दुनिया मे जो इतनी बुराई फैली हुई है उसका दोष सिर्फ बुरा काम करने वालो पर ही नही है, बल्कि दोष उन अच्छे आदमियो का भी है, जो बुरे काम करने वालो की खुशामद करने और उन्हे खुश करने के लिए सदा तैयार रहते है।

सोवियत् रूस के राष्ट्रपति माइकेल केलिनिन ने नाजियो के आक्रमण की निन्दा करते हुए प्रशा के फ्रेडरिक द्वितीय के निम्न शब्दो का उद्धरण दिया था, जो स्वय सोवियत् आक्रमणो पर भी लागू होता है—"यदि आपको कोई विदेशी प्रदेश पसद है, और साथ ही आपके पास पर्याप्त सेना है तो उस पर तुरन्त अधिकार जमा लीजिए। जहा एक बार आपका कब्जा हो गया, आपको यह कहने वाले बहुत से मिल जायगे कि उस प्रदेश पर अधिकार करना आपके लिए उचित था।"

राजनीति के अधिकाश विद्यार्थी सोवियत् रूस की विदेश-नीति के सम्बन्ध मे ईरान और पोलैंड मे उसके रूप को देखकर अपने विचार स्थिर करते है। इसी प्रकार अमरीकी विदेशनीति को चीन में उसके रूप को देखकर समझा जाता है। किसी देश की विदेशनीति को समझने का अधिक उत्तम तराका उद्गम स्थान मे ही उसके अध्ययन करने का है। ऐसा करने पर ही हम जान सकते है कि किसी देश की विदेशनीति उसके भीतर कितने ही व्यक्तियो के पारस्परिक सघर्षो, आर्थिक दबावो, राजनीतिक स्वार्थो इत्यादि का परिणाम है। यदि देश प्रजातन्त्र है तो उसकी विदेश-नीति पर उस नीति की रूपरेखा तैयार करनेवाले राजनीतिक दलो के सघर्षो का भी प्रभाव पडेगा। यह बहुत कम लोगो को मालूम होगा कि अमरीका की सरकार ने राजतन्त्री स्पेन के लिए शस्त्रो के निर्यात पर जो रोक लगाई थी उसका कारण स्पेन की कोई तात्कालीन समस्या न थी। बात यह थी कि रूजवेल्ट की राजतन्त्रवादियो से सहानुभूति थी और वह जनरल फ्राको की विजय नही चाहता था। हथियारो के निर्यात पर रोक केथोलिको तथा ब्रिटेन के दबाव और तटस्थता नीति के हिमायतियो के भय से लगाई गई थी। ऐसे ही अन्य कितने ही निर्णयो को उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

पोलैंड के सम्बन्ध मे रूस के इरादो की छानबीन करते हुए हम उस स्थान पर पहुच जाते है, जहा सोवियत् विदेशनीति के सब रहस्यो को गुप्त रखा जाता है। पूर्वी पोलैंड मे लाखो यूक्रेनियन है। इसलिए पूर्वी पोलैंड पर अधिकार करके सोवियत् अधिकारियो का उद्देश्य सोवियत् यूक्रेन के निवासियो को खुश करना था। दूसरी तरफ इसका उद्देश्य रूस के उन राष्ट्रवादियो को खुश करना भी था, जो अपने देश की सीमा का विस्तार रूसी साम्राज्य का जारशाही सीमा तक या उनसे भी आगे करना चाहते थे। युद्ध के दिनो मे सोवियत् सरकार ने क्रान्ति की सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक सफलताओ पर जोर नही दिया, बल्कि इस बात पर कि क्रान्ति के कारण ही देश की रक्षा हो गई। २१ जनवरी, १९४४ को एक सोवियत् नेता मि० ए० एस० शेरवाकोव ने कहा कि—"जारशाही रूस ऐसे मार्ग पर अग्रसर हो रहा था, जिसका अंत अनिवार्य रूप से स्वाधीनता के नाश से होता। बोलशेविक दल ने देश को इस लाछना से बचा लिया।" राष्ट्रवादियो का समर्थन प्राप्त करने के लिए कम्युनिस्टों के पास इससे अच्छा तर्क और क्या हो सकता था। देश के बाहर के प्रदेश पर अधिकार करना राष्ट्रवादी को आश्वस्त करने के लिए सब से बडा तर्क है।

यूरोप में जर्मनी की केन्द्रीय स्थिति का ज्ञान बोलशेविको को बहुत दिनो से था। जर्मनी का भाग्य-सूत्र अपने हाथ मे लेने के लिए स्टालिन ने अपने कार्य-क्रम मे निम्न बातो को सम्मिलित किया था। पोलैंड के आधे पूर्वी भाग पर रूस का अधिकार, पोलैंड की इस हानि की पूर्ति के लिए अपर साइ-लेशिया, पेमीएनिया, और पूर्वी प्रशा मे कुछ बडे बडे जर्मन प्रदेशो को पोलैंड के सिपुर्द करना, पूर्वी प्रशा के एक बडे भाग पर, जिसमे कोनिग्सबर्ग का नगर भी सम्मिलित था, रूस का अधिकार, जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए दी जाने वाली रकम के बहुत बडे भाग के लिए रूस की तरफ से माँग उपस्थित करना, युद्ध के उपरान्त आधे जर्मनी पर लालसेना का अधिकार रहे और शेष आधे जर्मनी पर अमरीका, इग्लैड और फ्रास अधिकार करे और बर्लिन पर रूसी सेनाए ही अधिकार करे, जिससे उनकी धाक जम जाय।

रूजवेल्ट और चर्चिल ने स्टालिन की ये सभी बाते तेहरान और माल्टा मे स्वीकार कर ली थी।

कर्जन पक्ति से पूर्व के प्रदेश से हाथ धो बैठने के कारण पोलैड कमजोर हो गया। उधर जर्मनी के कितने ही उद्योग-प्रधान प्रदेश मिलने से पोलैंड के आगे अनेक टेकनिकल, आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक समस्याए उठ खडी हुई। इनके निबटारे के लिए वह रूस पर निर्भर हो गया। इन बातो तथा जर्मनी को पराजित करने के समय पोलैंड मे उपस्थित रहने वाली लालसेना के कारण नई पोलिश सरकार स्टालिन की कठपुतली हो गई। पोलैंड की सीमा बहुत दूर तक जर्मन सीमा से मिली हुई है। जर्मनी पर अधिकार रखने के लिए रूस को पोलैंड पर अधिकार रखना आवश्यक है। इसलिए स्टालिन ने पोलैंड के प्रति जो व्यवहार किया है वह जर्मनी के प्रति बरती जाने वाली रूसी नीति का अग है। इसी प्रकार स्टालिन की जर्मनी के प्रति बरती जाने वाली नीति उसकी यूरोपीय नीति की अग है। जिस महाशक्ति का जर्मनी पर नियत्रण होगा वही समस्त यूरोप पर नियत्रण करेगी।

एशिया में माल्टा सम्मेलन के द्वारा रूस को सखालिन द्वीप का दक्षिणी भाग, जापान के उत्तर मे क्यूराइल द्वीप, मचूरिया के दो बदरगाह और मचूरि-यन रेलवे का नियत्रण हुआ। स्टालिन ने ये शर्ते लिखा ली थी और उन पर रूजवेल्ट तथा चर्चिल के हस्ताक्षर करा लिये थे। यह सब उसे जापान के विरुद्ध युद्ध छोडने के बदले मे मिला था। यह है लोकतत्रवादी देशो के प्रति स्टालिन का सौदा।

युद्धकालीन शान्ति सम्मेलनो के मध्य अमरीका या ब्रिटेन मे से किसी

का भी यूरोप अथवा एशिया में एक भी प्रदेश नही मिला। यह कोई शिकायत नही है, बल्कि एक तथ्य का उल्लेख है। यह मान लिया गया था कि रूस तथा इग्लैंड के यूरोप मे अलग-अलग प्रभाव-क्षेत्र रहेगे। रूस तथा अमरीका के प्रभाव-क्षेत्र एशिया मे होगे। और इग्लैंड ने एशिया मे अपना साम्राज्य बनाये रखा।

"तीन बडो" द्वारा प्रदान की हुई शान्ति यही थी। पहले उन्होने दूसरे देशो के प्रदेशो पर अधिकार जमाने की स्वीकृति दे दी और फिर सिद्धान्तो का प्रश्न उठाया। पहले उन्होने प्रभाव क्षेत्र निर्धारित कर दिये और इसके उपरान्त डगमगाती हुई नीव पर सयुक्त राष्ट्र सघ का भवन खडा किया। यह भी एक ऐसा सघ था कि उससे अधिक अपूर्ण सघ की कल्पना नही की जा सकती।

राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने आशा की थी कि पहले महायुद्ध के बाद हुई सधि की बुराई को राष्ट्रसघ दूर कर देगा। राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने यही विश्वास सयुक्त राष्ट्र के सम्बन्ध मे किया।

१९४४ मे डम्बर्टन ओक्स नामक स्थान पर अमरीकी, ब्रिटिश, रूसी और चीनी प्रतिनिधियो ने उस मसविदे का अधिकाश भाग तैयार किया था, जिसे बाद मे सान-फ्रासिस्को अधिकारपत्र का नाम दिया गया था। परन्तु उन के बीच एक बडा भारी मतभेद "नकारात्मक मत" के सम्बन्ध मे रह गया था।

इसलिए इस प्रश्न को माल्टा मे "तीन बडो" द्वारा निबटारे के लिए छोड दिया गया था। अधिकार पत्र की सब से बडी विशेषता रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन का यह निर्णय ही है। सयक्त राष्ट्र का मुख्य कार्य आक्रमण रोकना तथा शान्ति बनाये रखना है, किन्तु इस निर्णय ने इस कार्य के लिए सयुक्तराष्ट्र को बिल्कुल प्रभावहीन कर दिया।

सयुक्तराष्ट्र की परिषद् में सभी सदस्य-राष्ट्रो का प्रतिनिधित्व प्राप्त है, किन्तु वह आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध कोई प्रभावपूर्ण कार्रवाई नही कर सकती। केवल ११ सदस्य-राष्ट्रो की सुरक्षा समिति हीसयुक्तराष्ट्र की तरफ से शान्ति-भग करने वाले राष्ट्र के विरुद्ध कोई निर्णय कर सकती है। और इस समिति मे, जैसा कि माल्टा के निर्णय और सानफ्रासिस्को अधिकार-पत्र द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है, "पाच बडो" यानी अमरीका, सोवियत् रूस, ब्रिटेन, फ्रास और चीन में से कोई एक आक्रमणकारी के विरुद्ध की जाने वाली कार्रवाई को रोक सकता है, चाहे आक्रमणकारी वह स्वय ही क्यो न हो। महाशक्तियो के "नकारात्मक मत" प्रदान करने के अधिकार का यही मतलब है।

ऐसी अवस्था मे सयुक्तराष्ट्र आक्रमण अथवा युद्ध को कैसे रोक सकता है।

स्टालिन ने माल्टा मे 'नकारात्मक मत' के लिए हठ किया था। सोवियत् राजनीतिज्ञ अभी तक इसकी सफाई मे आलोचको को उत्तर दिया करते है। स्वय रूजवेल्ट ने अनुभव किया था कि 'नकारात्मक मत' प्रदान करने के अधिकार के बिना राष्ट्रवादी सदस्य सानफ्रासिस्को अधिकार-पत्र को शायद अमरीकी सीनेट मे न पास होने देते। चीन ने खुलकर 'नकारात्मक मत' का विरोध किया था, ब्रिटेन ने इसके सम्बन्ध मे तटस्थता का रुख ग्रहण किया था।

न्यूजीलैंड के प्रधानमत्री पीटर फ्रेजर ने 'नकारात्मक मत' को "अधिकार-पत्र पर "एक धब्बा" कहा है। सचमुच ही यह बहुत बडा और काला धब्बा है।

इस नकारात्मक मत के द्वारा • एक ही देश सयुक्तराष्ट्र अधिकार-पत्र के सशोधन मे स्थायी अडगा लगा सकता है।

यही है युद्ध-काल में निर्मित शान्ति की व्यवस्था !

पहले महायुद्ध मे एक तो रूस पराजित हुआ था और दूसरे विजयी मित्रराष्ट्र बोलशेविको के विरुद्ध थे। इसलिए उसे (रूस को) शान्ति-सम्मेलन मे स्थान नही दिया गया। १९१९ में शान्ति की जिस व्यवस्था का निर्माण किया गया था उसमे जर्मनी, बल्गारिया, तुर्की और मुख्यत आस्ट्रो-हगेरियन साम्राज्य को अपराधी माना गया था। अब रूस ने केवल दूसरे महायुद्ध मे ही विजय नही प्राप्त की है प्रत्युत उसने पहला महायुद्ध भी जीता है, क्योंकि अब उसे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह पहले आस्ट्रो-हगेरियन साम्राज्य, बल्गारिया और आधा जर्मनी था। तुर्की अपवाद है।

ब्रिटेन ने सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से पहले महायुद्ध मे विजय पाई थी। उसका प्रतिस्पर्धी जर्मनी पराजित हो चुका था। रूस क्रान्ति मे व्यस्त था। तुर्की का साम्राज्य घटा दिया गया था। जापान तथा अमरीका ने अभी तक ब्रिटेन के प्रभुत्व को चुनौती नही दी थी और उसकी आर्थिक शक्ति खूब बढी-चढी थी। ब्रिटेन ने दूसरे महायुद्ध मे भी विजय पाई, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से नही। रूस उसे पीछे धकेल रहा है। ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति भी खराब है। उसके उद्योग-धन्धो तथा नगरो का पुनर्निर्माण आवश्यक है। उसके साम्राज्य मे असतोष फैला हुआ है। युद्ध की थकान ने उसे इतना शिथिल कर दिया है कि रूस और अमरीका के मुकाबले मे अपने प्रभुत्व की रक्षा करना उसके लिए असम्भव हो गया है।

अमरीका दोनो ही महायुद्धो मे विजयी हुआ। पहले महायुद्ध मे अमरीका इग्लैड और फ्रास पर जर्मनी की विजय न होने देने के लिए सम्मिलित हुआ था। इस उद्देश्य की सिद्धि होने पर अमरीका अपने घर वापस चला गया। उसे लाभ उठाने अथवा अतिरिक्त जिम्मेदारी लेने की इच्छा न थी। यूरोप की चिन्ता से मुक्त होकर वह अपने आमोद-प्रमोद में फिर से डूब जाना चाहता था। दूसरे महायुद्ध मे अमरीका इग्लैड और फ्रास पर जर्मनी की और सम्पूर्ण चीन पर जापान की विजय न होने देने के लिए सम्मिलित हुआ था। इस उद्देश्य की भी सिद्धि हो गई, पर अबकी बार अमरीका घर वापस नही गया।

भाग—३

दोहरी अस्वीकृति

: २० :

दोहरी अस्वीकृति

मै जब भारत मे अग्रेजो से बात करते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निन्दा करता था तो वे कहते थे—"और अमरीका वाले हब्शियो के प्रति जो व्यवहार करते है उसके सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ?"

मै उत्तर देता था—"मै ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जिस प्रकार निन्दा करता हूँ उसी प्रकार अमरीकी श्वेतागो द्वारा हब्शियो के विरुद्ध भेद-भाव की नीति की भी निन्दा करता हूँ।"

मै दोनो ही की निन्दा करने वाला हूँ।

मै पोलैड के जमीदारो और वहा की कठपुतली प्रजा—दोनो ही को नापसद करता हू। जर्मनो द्वारा किये गए अत्याचारो और उन पर होने वाले अत्याचारो दोनो ही का मै निंदक हू। मै तो अत्याचार-मात्र का निंदक हू।

यदि आप एक बुरी बात को अस्वीकार कर देते है और उसी के समान तथा वैसी ही एक अन्य बुराई को स्वीकार कर लेते है तो आप वस्तुत एक सिद्धान्त की हत्या करके अच्छी बात के लिए अपनी लडाई का परित्याग कर देते है। हो सकता है कि जिसे आप कम बडी बुराई मानते है वह अधिक बडी बुराई निकले। इससे अच्छा तो यह है कि आप दोनो मे से एक भी बुराई न स्वीकार करें और मानव-समाज का उपकार करने वाला एक तीसरा ही मार्ग खोज निकालें।

कम बडी बुराई का सिद्धान्त हमारी सस्कृति के लिए एक भारी खतरा है। इसका असर व्यावहारिक राजनीति पर भी पडता है।

चर्चिल रूस की विस्तार-नीति की निन्दा करता है, किन्तु ब्रिटेन और अमरीका की सधि की हिमायत करता है। स्टालिन चर्चिल का निंदक है। परन्तु नेहरू विश्व-व्यवस्था और उसके अतर्गत भारतीय स्वाधीनता का हामी है। चर्चिल और स्टालिन में से मै किसी का प्रशसक नही हू। नेहरू को पसन्द करता हूँ।

एक आदमी रूमानिया, पोलैंड और ईरान में रूस के कार्यों की निन्दा

करता है। दूसरा आदमी रूस का हिमायती है। वह कहता है—"ठीक है, किन्तु आप भारत तथा हिंद एशिया मे अग्रेजो के सम्बन्ध मे क्या कहते है ?"

मै रूस और ब्रिटेन दोनो ही के साम्राज्यवाद को अस्वीकार करता हूँ।

एक दूसरी बातचीत का नमूना लीजिए। एक साहब कहते है—"अगर रूस क्यूराइल द्वीप या पोर्ट आर्थर मागता है तो क्या बुरा करता है ? क्या अमरीकी ओकीनावा तथा प्रशान्त के अन्य टापू नही माग रहे ?"

दोनो ही बुरे है। दोनो ही मूर्ख है। द्वीप, अड्डे या प्रदेश प्राप्त कर लेने से ही रक्षा नही हो जाती।

साम्राज्यवाद अच्छा है या बुरा। यदि वह इग्लैड के लिए अच्छा है तो रूस, अमरीका, फास और हालैड के लिए भी अच्छा होगा। यदि साम्राज्यवाद बुरा है तो वह आपके राष्ट्र के लिए भी बुरा होगा। जिस देश से आपको नफरत है उसकी बुराई को आप बढाकर बताते है और जिस देश के प्रति आपका प्रेम है उसकी वैसी ही बुराई की आप प्रशसा करते है तो आप निश्चय ही एकागी देशभक्त है।

"न्यूयार्क पोस्ट" मे केडेल फोस ने बर्लिन मे एक बुढिया से अपनी मुलाकात का विवरण बताया है। बुढिया बोली—"रूसी आदमी नही राक्षस है। उन्हे मनुष्य के प्राणो और उसकी चीजो का कुछ भी ख्याल नही रहता। वे लोगो को सडक से पकड लेते है और फिर उनके बारे मे कभी कोई बात नही सुनाई देती। रूसी अधिकृत प्रदेश मे मेरी बहन के मकान के सामने रूसी पुलिस ने जेल खोला है। मेरी बहन अच्छे कपडे पहने हुए स्त्री पुरुषो को दरवाजे के भीतर घसीटे जाते देखती है और रात को उनका आर्त्तनाद सुनाई पडता है। इस तरह की एशियाई अव्यवस्था की रोक-थाम होनी चाहिए।"

श्री फोस ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि रूसी अधिकृत क्षेत्र मे जो कुछ हो रहा है उसके लिए पहले की परम्परा मौजूद है। परन्तु प्रश्न यह है कि यदि एक अत्याचार दूसरे अत्याचार की परम्परा के आधार पर किया जाय तो इस ससार का क्या होगा ?

सितम्बर १९४५ में "तीन बडों" का जो सम्मेलन लदन मे हुआ था उसमें अमरीका के प्रधान अधिकारी बर्न्स ने रूमानिया तथा बल्गारिया मे स्वतन्त्र चुनाव करने की माग की थी। तब कुछ आलोचकों ने कहा था—"मि० बर्न्स बालकान देशो मे स्वतन्त्र चुनाव की माग क्यो करते है, जब उनके अपने प्रान्त दक्षिणी कैरोलिना मे ही स्वतन्त्र चुनाव की सुविधा नही है।"

मुझे बर्न्स द्वारा रूमानिया और बल्गारिया में स्वतन्त्र चुनाव की माग

करने पर कुछ भी आपत्ति नही है। इससे दक्षिण केरोलिना मे स्वतन्त्र चुनाव की माग पेश करने का रास्ता साफ हो जाता है।

केथोलिक लोग स्टालिन की नित्य ही आलोचना करते है। परन्तु जब रूसी पोप की राजनीति की आलोचना करते है तो वे नाराज होते है। कम्युनिस्ट चीन में स्वतत्रता को कम करने के लिए चाग-काई-शेक की निन्दा करते है। परन्तु रूस मे सोवियत् सरकार ने स्वतन्त्रता का जो पूर्ण अपहरण कर लिया है, इससे उनके कान पर जूँ भी नही रेंगती।

सिद्धान्तो के परित्याग तथा कायरता के कारण हमारी सभ्यता सकट मे पड गई है, शायद निर्दोष सरकार तो कोई हुई ही नही, मेरा देश गलती कर सकता है, चाहे वह मेरा देश ही क्यो न हो। यदि मेरी सरकार तानाशाही होती तो मै उसे भी उलटने का प्रयत्न करता।

जिस प्रकार अन्य देश द्वारा किये किसी दुष्कर्म से मै घृणा करता हू उसी प्रकार अपने देश के कुकृत्य से भी मै घृणा करता हू। दोहरी अस्वीकृति के लिए मनुष्य को तटस्थ होकर विचार करना चाहिए और तटस्थ होकर ही अपना मत स्थिर करना चाहिए।

कुछ लोगो मे अपनी मातृभूमि के प्रति धार्मिक भावना होती है। कुछ लोगो का किसी विदेश के ति धार्मिक भाव रहता है। दुनिया की घटनाओ के प्रति उनके दृष्टिकोण पर जब इस धार्मिक भावना का प्रभाव पडता है तभी वे सत्य की बलि चढा देते है। वे अपने को भ्रम मे डालते है। वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करते है और उसी दृष्टिकोण के आधार पर अपना मत स्थिर करते है।

आजकल स्त्री-पुरुष विशुद्ध राजनीतिक दृष्टिकोण से विचार नही करते। परिस्थिति का स्पष्ट चित्र प्राप्त करने के स्थान पर धार्मिक, राष्ट्रीय, जातीय तथा दलगत भावनाए उनके विचारो को प्रभावित करती है। मै स्वय अनुभव कर चुका हू कि भावनाए मनुष्य की दृष्टि को कितनी धूमिल बना सकती है। इसलिए मैने फैसला कर लिया है कि मुझे अपने साथ कुछ भी रियायत नही करनी चाहिए। घटनाओ का विश्लेषण तथा अध्ययन करने वाले को भावनाओ से प्रभावित नही होना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो अपने साथ न्याय नही करता।

इस निरपेक्ष दृष्टि से कार्य करने की इच्छा को प्रोत्साहन मिलता है। इस बात का ज्ञान कि यह बुराई सभी जगह घुसी हुई है, उस बुराई का मुकाबला करने के सकल्प को बल प्रदान करता है। दोहरी अस्वीकृति से कार्य करने के लिए स्फूर्ति मिलती है, क्योकि मानव-समाज के उद्धार के लिए कुछ करने की

आवश्यकता का हम अनुभव करने लगते है। १९३० मे अत्यधिक आशावाद दूसरे महायुद्ध का एक कारण था। जनता के मन मे भ्रम पैदा हो गया था कि परिस्थिति उतनी गम्भीर नही है, जितनी बताई जाती है। वह सोचती थी कि किसी-न-किसी तरह परिस्थिति मे सुधार हो जायगा और हिटलर भी क्रमश रास्ते पर आ जायगा। उस समय निराशा अथवा घबराहट होती तो कदाचित् दूसरा महायुद्ध न छिडता। इस प्रकार निराशावाद कभी-कभी उपयोगी होता है। अब भी दोहरी अस्वीकृति के दृष्टि-कोण से हमे इर्द-गिर्द फैले हुए सकटो का बोध हो सकता है।

अधिकाश व्यक्ति, कभी-कभी बिना जाने हुए ही, दोहरी अस्वीकृति से बचना चाहते है। दोहरी अस्वीकृति की अवस्था मे उनके लिए सिद्धान्त पर जम जाना आवश्यक हो जाता है। परन्तु सिद्धान्त पर जमना कितने व्यक्तियो को अच्छा लगता है?

कुछ अमरीकी, जो रूस की तारीफ के पुल बाधा करते है, इसका कारण है। अमरीकी-प्रणाली की बुराइयो के कारण वे उसे अस्वीकार कर देते है। तब वे एक दूसरी---रूसी-प्रणाली को स्वीकार करते हैं। यदि उनसे कहा जाय कि रूसी प्रणाली मे भी बुराइया है तो उन्हे प्रसन्नता नही होती। ऐसा कहने से उनका नैतिक आधार जाता रहता है।

किसी ऐसी अच्छाई को स्वीकार कर लेना, जिससे आपका परिचय नही है, अथवा निकट की किसी भी परिस्थिति को स्वीकार कर लेना, क्योकि दूसरी परिस्थिति का ज्ञान नही है, कमजोरी प्रकट करता है। बोलशेविज्म मे जो भी बुराई है, उसे मै नही मानता। इसी प्रकार पूजीवाद की बुराई भी मुझे मान्य नही है। मै तो कोई ऐसी वस्तु चाहता हू, जो इन दोनो से बढकर हो।

दोहरी अस्वीकृति नकारात्मक अस्वीकृति नही होती। यह एक क्रियात्मक सिद्धान्त है, जो मौजूदा हालत मे परिवर्तन चाहता है। वह उज्ज्वल भविष्य की तरफ अग्रसर होने का हामी है।

अज्ञात समुद्रो मे बढने वालो को ही नये महाद्वीपो या नई दुनिया का पता लगता है। नई दुनिया की जरूरत है। यह नई दुनिया कहा है? यह उज्ज्वल भविष्य किस दिशा में बढने से प्राप्त हो सकता है? नई दुनिया या उज्ज्वल भविष्य का दिखाई देना आसान नही है। यह हमें पुरातनवादियो से नही प्राप्त हो सकता। यह तो हमे सुधारवादियो या निश्चित कार्यक्रम रखने वाले ऐसे असतुष्ट व्यक्तियो द्वारा ही प्राप्त हो सकता है, जिनमे कल्पना है, जो सकुचित पथ पर बहादुरी से आगे बढना जानते है और जो दोनो मार्गों के विरोधियो की गोलियो को सहने के लिए तत्पर रहते है।

: २१ :

एक भारी संकट

हममे से प्रत्येक व्यक्ति विद्रोही होता है। यह विद्रोह एक रात, एक दिन, एक वर्ष या जीवन भर रह सकता है। यह भी सम्भव है कि विद्रोह का अन्त किशोरावस्था के साथ ही हो जाय अथवा उसका प्रारम्भ उस समय हो जब वृद्धावस्था आने वाली हो। यह विद्रोह किसी काम की थकान से, शत्रुओ से घिरे रहने पर या जीवन मे दिखाई देने वाले पाखडो के प्रति हो सकता है। निर्धनता, अधिकार, धन, स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धो पर लगे प्रतिबधो अथवा माता-पिता के शासन के विरुद्ध यह विद्रोह उठ सकता है। मुख्य बात यह है कि हम सभी मे कम या अधिक विद्रोह की मात्रा रहती है।

जहा एक ओर धनाधीश अपनी सुसज्जित नौका मे बैठा हुआ कम्युनिज्म का स्वप्न देखता है, वहा दूसरी ओर निराशापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला हब्शी मजदूर धर्म की शरण में जाने की सोचता है। यदि अग्रेज कवि एक समय कम्युनिज्म मे प्रेरणा प्राप्त करते थे तो अब वे केथोलिक बनते है या जीवन से मुक्ति पाने के लिए योग की शरण मे जाते है। एक नाजी-विरोधी जर्मन कम्यु-निस्ट कवि ने १९३९ मे सोवियत् सरकार की नीति मे एकाएक परिवर्तन होने के कारण आत्म-हत्या कर ली थी। हीवुड ब्राउन नामक पत्रकार ने पहले कम्यु-निस्ट सिद्धान्त स्वीकार किये और फिर उन्हे छोडकर रोमन केथोलिक बन गया। हिटलर के शासन-सूत्र सभालते ही जर्मनी के कम्युनिस्ट दल के एक तिहाई सदस्य नाजी बन गये। फासीसी फाशिस्ट-नेता डोरिअट पहले कम्युनिस्ट इट-र्नेशनल का उच्च अधिकारी था। नाजियो का मित्र लवाल भी एक समय कम्यु-निस्ट था।

कम्युनिज्म, केथोलिक सम्प्रदाय और एक सीमा तक फाशिज्म दुनिया के सभी प्रश्नो का अलग-अलग उत्तर प्रदान करते है। एक व्यक्ति ने इनमे से पहले एक को अपनाता है और असन्तुष्ट रहने पर दूसरे की शरण में जाता है।

एक हब्शी, एक यहूदी और एक फाशिस्ट कम्युनिस्ट हो जाता है और

एक कम्युनिस्ट आत्म-हत्या कर लेता है, या केथोलिक हो जाता है या नाजी बन जाता है। जो भी जीवन वे बिता रहे होते है उसके प्रति यह विद्रोह है। वे विद्रोही है और मौजूदा जीवन उन्हे नही सुहाता इसलिए उसका परित्याग कर रहे है।

हिटलर से पूर्व जर्मनी मे कितने ही यहूदी कम्युनिस्ट बने और फिर यहूदी धर्म मे प्रविष्ट हो गए। इस प्रकार उन्होने परोक्ष रूप से जर्मनी के प्रति अपनी विद्रोह की भावना प्रकट की।

अमरीका, इग्लैड और फ्रास मे ऐसे कितने ही लोग है, जिन्होने पहले कम्युनिस्ट दल से सम्बन्ध तोड दिया था और अब फिर उसी मे सम्मिलित हो गये है। वे दूसरा मार्ग खोजना चाहते थे, पर वह उन्हे मिला नही।

कम्युनिस्टो का स्टालिन और रूस की सत्ता मे विश्वास है। उनकी भी नीव मार्क्स के सिद्धान्त है और पार्टी उनका सगठन है। कम्युनिज्म और केथोलोसिज्म के सिद्धान्तो मे आकाश-पाताल का अन्तर है, किन्तु मानसिक दृष्टि से एक को छोडकर दूसरे में जाना एक पग आगे बढाने से अधिक महत्त्व का नही है।

इस युग के सबसे बडे राजनीतिक विद्रोही कम्युनिस्ट अथवा फाशिस्ट रहे है। कम्युनिस्ट पूँजीवादी ससार का परित्याग करते है। वे रूस का पक्ष ग्रहण करते है, जिसे वे परित्यक्त पूँजीवादी ससार का शत्रु समझते है। कम्युनिस्टो का विचार है कि पूँजीवाद मे सुधार असम्भव है। वे क्रान्तिवादी है। वे पूर्ण परिवर्त्तन के हामी है। इस परिवर्त्तन के लिए वे रूस को एक साधन मानते है। वे सघर्ष इसलिए करते है कि उन्हे और रूस को परिवर्त्तन करने के लिए शक्ति प्राप्त हो सके। कम्युनिस्ट दल सुधार का साधन नही है, वह तो शक्ति प्राप्त करने का साधन है।

कम्युनिज्म और फाशिज्म की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि सभी वर्गों, दलो तथा व्यक्तियो के हाथ से शक्ति छिनकर राज्य मे केन्द्रित हो जाती है, राज्य इतना शक्तिशाली हो जाता है कि व्यक्ति में विद्रोह करने की सामर्थ्य नही रह जाती। इस प्रकार विद्रोह का अन्त विद्रोह को असम्भव कर देने के रूप मे होता है।

सोवियत रूस मे स्त्री और पुरुष कम्युनिस्ट दल मे अपने विश्वास और परम्परा के कारण ही नही, बल्कि व्यावहारिक तथा आर्थिक कारणो से भी सम्मिलित होते है। इसके विपरीत, रूस के बाहर लोग कम्युनिस्ट दल मे अपने विद्रोही विचारो के कारण सम्मिलित होते है। वे ससार की व्यवस्था मे परिवर्त्तन करना चाहते है। कम्युनिस्ट दल क्रियाशील है। वह अपने सदस्यो

से अनुशासन, सचाई और सेवा-भावना की आशा रखती है। दल की शरण मे कम्युनिस्टो को काम तथा साहचर्य प्राप्त होता है। कुछ अमीर आदमियो, जैसे विरासत मे भारी सम्पत्ति प्राप्त करने वाले, और हालीवुड के लेखको के अत-करण को कम्युनिस्ट दल में सम्मिलित होने से शान्ति मिलती है। अन्य लोग कम्युनिस्ट इसलिए होते है कि वे एकाकी, निराश, कार्य करने को उत्सुक अथवा समाज से असतुष्ट है। कम्युनिस्ट बनने मे दोस्त मिलते है, पार्टियो मे जाने का अवसर मिलता है, और सचित शक्ति को व्यय करने का रास्ता निकलता है।

औसत कम्युनिस्ट एक औसत फाशिस्ट की अपेक्षा अधिक सरस और सच्चा होता है। फाशिज्म ऐसे लागो को आकर्षित करता रहा है और अब भी करता है, जिनकी अपराधी मनोवृत्ति है, जो समाज से निकाले हुए है और जिन्हे हिसा से प्रेम है। फाशिस्टो मे ऐसे महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति भी आपको मिलेगे, जो अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए बदमाशो का समर्थन प्राप्त करते है। इसके सिवा फाशिस्टो मे ऐसे व्यक्तियो की भी कमी नही है, जिनमें घृणा भरी हुई है और जिन्हे मरने-मारने मे ही आनद आता है।

कभी-कभी निराशा मनुष्य को क्षुब्ध कर देती है और क्षुब्ध व्यक्ति को सिद्धान्तो का मोह नही होता। उन्माद मनुष्य की शान्ति नष्ट कर देता है। घबराहट और खून की गरमी उसके मस्तिष्क को निकम्मा कर देते है। बुद्धि भावोद्वेग की दासी बन जाती है। विचार विश्वास के मध्य डूब जाता है। सिद्धान्त का महत्त्व नही रह जाता, क्योकि सिद्धान्त को महत्त्व देने पर कार्य की सिद्धि के लिए अवसरवादिता का आश्रय नही लिया जा सकता।

अब प्रत्येक लोकतन्त्रवादी सत्ता को तानाशाही की छूत लग रही है। इसछूत ने ससार मे एक सास्कृतिक सकट उत्पन्न कर दिया है।

अभी कुछ समय पूर्व मुझे इसका एक उदाहरण देखने मे आया। एक ब्रिटिश प्रकाशक ने सितम्बर १९४५ में मेरी पुस्तक "साम्राज्य" प्रकाशित की और पाठ्य-सामग्री मे कतिपय परिवर्त्तन कर दिये। प्रकाशक, विशेषकर अग्रेज प्रकाशक, इस विषय मे बडी सावधानी रखते है। परिवर्त्तन करने से पहले वे लेखक से अनुमति ले लेते है। परन्तु इस पुस्तक मे परिवर्त्तन करते समय मुझ से सलाह नही ली गई। मैने लिखा था कि चाहे गाधी को भारत भर मे सभी न जानते हो, किन्तु "इससे भारत की स्वाधीनता के लिए योग्यता के सम्बन्ध में कोई परिणाम नही निकाला जा सकता। सोवियत् सरकार की स्थापना के समय १०० रूसियो मे से कदाचित् एक ने भी लेनिन या ट्राट्स्की का नाम नही

सुना था ।" पुस्तक के ब्रिटिश सस्करण मे "५१ ट्राट्स्की" शब्दो को निकाल दिया गया था। एक अन्य स्थान पर मैने लिखा था कि "मै रूस विरोधी नही हू, मै स्टालिन-विरोधी हू ।" इन शब्दो को भी निकाल दिया गया था। एक अन्य स्थल पर मैने लिखा था—"जब से मै भारत आया हू और यहा जिन लोगो से मिलने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है उनमे से प्रत्येक पाचवे आदमी ने मुझसे कहा है कि वह जेल जा चुका है। मै रूस और जर्मनी में भी रह चुका हू। उन देशो मे ऐसा कोई व्यक्ति शायद ही मिले, जो जेल जा चुका हो। वहा जेल जाने वाले जेल मे ही रह जाते है।" यहा भी रूस का उल्लेख निकाल दिया गया था। इसी प्रकार एक अन्य स्थान से भी रूस-विरोधी तथा स्टालिन-विरोधी अश को निकाल दिया गया था।

निश्चय ही यह काट-छाट किसी कम्युनिस्ट ने या कम्युनिस्टो से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति ने की थी। उसकी दृष्टि मे अमरीका या ब्रिटेन की नीति की आलोचना करने मे कोई हर्ज नही है, परन्तु स्टालिन और उसकी नीति पर किसी तरह आँच न आनी चाहिए।

हमारी सभ्यता की एक बहुत बडी विशेषता का यह एक साधारण-सा उदाहरण है। यह प्रवृत्ति बढती जा रही है। यह तानाशाही पाखड का ही एक अग है। मास्को के मुकदमो मे यही प्रवृत्ति दिखाई दी थी। अब भी यह हमें सोवियत प्रकाशनो, कम्युनिस्टो की विदेशी पत्रिकाओ तथा उनके तर्कों मे मिलती है। यदि एक कम्युनिस्ट किसी लेखक के अप्रिय शब्दो को दबा देने के लिए तत्पर रहता है तो वह स्वय लिखते या बोलते समय उतनी ही ईमानदारी या सचाई का परिचय क्यो नही देता ? तानाशाही के अन्य हिमायतियो की तरह कम्युनिस्ट भी सत्य की रक्षा का विशेष ध्यान नही रखते।

एलीनर रूजवेल्ट ने २२ जून, १९४५ को लिखा था—"कम्युनिस्टो के अपने दल के सदस्य होने अथवा उनके उद्देश्यो पर मुझे कुछ भी आपत्ति नही है। कितने ही वर्षों से वे मिथ्यावाद के सिद्धान्त का प्रचार करते रहे है। उन्होने यह भी प्रचार किया है कि दल के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन और दल के नेताओ के आदेशो को मानना सर्वोपरि बात है और वह भी ऐसी दशा मे जब कि दल के नेताओ तथा अमरीका के स्वार्थ सदा एक जैसे नही होते। मै अमरीकी कम्युनिस्टो के धोखे को देख चुकी हू। इसलिए मै कभी उन पर विश्वास नही कर सकती।"

यदि आपको उन पर विश्वास नही है तो आप उनके साथ काम भी नही कर सकते।

मिथ्या बातो का प्रचार कम्युनिस्टो के सिद्धान्त के विरुद्ध नही है। सत्य की रक्षा की कम्युनिस्ट खिल्ली उडाते है। लिखने और बोलने को वे अपने उद्देश्य की सिद्धि का साधन मात्र मानते है और यही करते भी है। छोटे-से-छोटे और बडे-से-बडे असत्य का प्रयोग करने से वे नही चूकते। चरित्र की हत्या करने और दूसरे को बदनाम करने को भी वे उद्देश्य-सिद्धि का उत्तम साधन मानते है।

यह दूसरे को बदनाम करने का युग है। तर्क के अभाव मे तानाशाहिया कीचड उछालती है। "प्रतिक्रियावादी", "ट्राट्स्की का अनुयायी", "फाशिस्ट" आदि कहकर किसी को बदनाम करना सर्वसाधारण के मस्तिष्क पर अधिकार करने का सबसे सहज तरीका है।

शब्दो का गलत प्रयोग करके किसी को बदनाम करना आजकल की सबसे बडी बुराई है। गोइबल्स पश्चिमी राष्ट्रो को "अमीर पूजीवादियो की यहूदी लोकतत्रवादी सत्ताए" कहा करता था। कम्युनिस्ट पहले नाज़ियो को "समाजवादी फाशिस्ट" कहा करते थे और फिर उन्ही से उन्होने समझौता कर लिया था। आजकल कम्युनिस्ट लोग प्रत्येक कम्युनिस्ट बात को "लोकतत्रीय" और "फाशिस्ट-विरोधी" कहते है और प्रत्येक लोकतत्रीय तथा उदार वस्तु को कम्युनिस्ट-विरोधी तथा प्रतिक्रियावादी बताते है। इसी प्रकार ब्रिटेन के कट्टरपथी प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जिसे वे नही पसन्द करते, कम्युनिस्ट कहते है।

यदि हमारी आखे नही खुलती तो यही कटु शब्द लोकतत्रवाद को बाध रखने वाली जजीरे बन जायगे। शब्द विचारो को आगे बढाते है और विचार दुनिया को उचित अथवा अनुचित रूप से प्रभावित करते है।

कम्युनिस्टो में सचाई का अभाव और उनके द्वारा सत्य का अनादर ही उनके लोकतत्रवाद के विरोध का मुख्य कारण है। शब्दो और विचारो के एक विशेष उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होने के कारण वे एकागी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना नही रह सकते। जब राजनीतिक उद्देश्य की प्रधानता मुख्य है तब विचार किस प्रकार स्वतत्र रह सकते है?

लेखको, व्याख्यानदाताओ तथा कलाकारो के लिए विचार-स्वातन्त्र्य महत्त्व की वस्तु है, किन्तु वे कम्युनिस्टो के इशारो पर चलना आवश्यक समझते है। कम्युनिस्टो का सगठन चाहे जिस भी देश में क्यो न हो, मजदूर-सभाओ अथवा उनके राष्ट्रीय सगठन चाहे जहा क्यो न हो, नागरिको का सघ अथवा ऐसी पत्रिका कही भी क्यो न हो—यदि कम्युनिस्टो का उन पर प्रभाव है तो

ये पत्रिकाए और सगठन कभी रूस के सम्बन्ध में सत्य बात नही कहेगे। वे इग्लैड, फ्रास, अमेरिका तथा अन्य देशो की बडी उत्साह से निन्दा करते है पर वे रूस की आलोचना कभी नही करते। यद्यपि यह सरासर झूठ का प्रचार है, फिर भी कम्युनिस्ट-दलो की तरफ लोग आर्कषित होते है।

ऐसा करने वालो के इरादे अलग-अलग होते है। कुछ अधिक बडी फौजो का समर्थन चाहते है। कुछ इस धमकी से प्रभावित होते है कि यदि अमुक बात का समर्थन नही किया गया तो उनका जीवन नीरस और शुष्क कर दिया जायगा। अन्य लोग इसलिए सम्मिलित होते है कि प्रकाश मे आने वाले दूसरे कितने ही लोग कम्युनिस्टो की हा-मे-हा मिलाते है और वे स्वय भी उन्ही के समान प्रकाश मे आने को उत्सुक है। कुछ लोग केवल हलचलो, डिनरो, सम्मेलनो तथा विभिन्न कार्रवाइयो में शरीक होना चाहते है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि दुनिया मे चारो तरफ बुराई-ही-बुराई है, पर ऐसे विरले ही है जो उस बुराई से लाहा लेते है। स्वाधीनता और सुख का प्रसार करने वाली एक प्रणाली के लोप होने का सकट केवल इसीलिए बढ गया है कि कुछ लोग और अधिक स्वाधीनता तथा सुख चाहते है। परन्तु इस सकट से प्रणाली के समर्थको को स्वाधीनता और सुख के क्षेत्र का विस्तार करने के लिए प्रेरणा नही प्राप्त होती। इससे केवल प्रणाली के शत्रुओ को ही बल प्राप्त होता है, जो अधिक स्वाधीनता तथा अधिक सुख की मृग-मरीचिका दिखाकर स्वाधीनता का पूरी तरह गला घोटकर ही दम लेगे।

ब्रिटेन मे मजदूर-दल के शक्तिशाली होने के कारण वहा कम्युनिस्ट-दल की शक्ति अधिक नही है। युद्ध से पूर्व आस्ट्रिया मे कम्युनिस्टो का बल बहुत कम था, क्योकि समाजवादी-प्रजातन्त्र दल वालो के सिद्धातो का आकर्षण अधिक था और उनकी राजनीतिक शक्ति भी अधिक थी। १९३६ से पूर्व स्पेन में कम्युनिस्टो को अधिक अनुयायी नही मिले, क्योकि समाजवादियो तथा सिंडी-कलिस्टो—मजदूर-संघो के हाथो मे विभाजन एव उत्पादन सौंपने के समर्थको का दल—ने विद्रोह का झडा फहरा रखा था। भारत में कम्युनिस्टो को अधिक समर्थक नही प्राप्त होते, क्योकि वहा गाधी और नेहरू के नेतृत्व में साम्राज्य-वाद के विरुद्ध मोर्चा लेने वाली प्रमुख सस्था काग्रेस है।

ब्रिटेन के मजदूर-दल, आस्ट्रिया के समाजवादी दल और स्पेन के समाजवादी दल ने जहा एक ओर पीछे धकेलने वाले कट्टर पथियो के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठाया वहा दूसरी ओर तानाशाही कम्युनिस्ट के भी पैर नही जमने दिये। इस प्रकार दोहरी अस्वीकृति जहा प्रभावपूर्ण होती है वहा असत्य-

के आधार पर कार्य करने वाले पाखडी विद्रोहियो की दाल नही गलने पाती ।

लोकतत्रवादी सत्ता मे जितनी ही कम कमजोरिया होगी उतनी ही कम सम्भावना उस पर आक्रमणो की होगी । लोकतत्रवादी सत्ता मे जितनी अधिक उन्नति होगी उतनी ही वह आलोचको द्वारा की गई निन्दा को कम पसद करेगी, यदि लोकतत्रवादी सत्ता निष्क्रिय होने लगेगी तो अन्य ऐसे लोगो को दोष नही दिया जा सकता, जो उसके स्थान पर अधिकार करना चाहते है ।

यदि लोकतत्रवाद को नष्ट नही होना है तो उसे स्वय अपने रक्षक खोज निकालने पडेगे ।

लोकतत्रवाद के शत्रु उसे नष्ट करना चाहते है और इसीलिए उन्होने उसे चुनौती दी है । कम्युनिस्टो या फाशिस्टो का लोकतत्रवाद मे विश्वास नही है, फिर भी वे अपने को लोकतत्रवादी कहते है । फाशिस्ट लोकतत्रवादियो मे सम्मिलित होने के बाद भीतर से उसकी शक्ति नष्ट करना चाहते है । इससे लोकतत्रव दी शक्तिया क्षीण होती है और फाशिज्म का बल बढता है । यूरोप के कई देशो मे कम्युनिस्टो के कारण फाशिज्म की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ । जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी से हिटलर को बडी सहायता मिली थी । अमेरिका के ट्रेड यूनियन आन्दोलन की एकता और शक्ति के ह्रास का कारण कम्यनिस्ट ही है ।

यदि लोकतत्रवाद मे अपने पुनर्निर्माण के लिए साहस, ओज और कल्पना की कमी है तो यह उसके लिए सबसे बडी चुनौती है । यदि कही लोकतत्रवाद में त्रास, दमन अथवा जातीय भेद-भाव बना हुआ है तो यह उसके लिए एक भारी सकट है ।

: २२ :

दूसरे महायुद्ध के बाद

छोटे राष्ट्रो पर महाशक्तिया छा गई है। पृथ्वी के बटवारे के प्रश्न पर महाशक्तियो में समझौता नही हो पा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीयता के आवरण के पीछे आक्रामक राष्ट्रीय प्रवृत्तिया छिपी हुई है । साम्राज्यवादी लूट-मार के लिए "रक्षा" का बहाना बनाया जाता है। आर्थिक युद्ध छिड जाते है। उप-निवेशो की विद्रोही जनता का क्रूरता से दमन किया जाता है । जिन करोडो प्राणियो ने कष्ट में युद्ध के दिन गुजारे थे अब वही प्रतिहिंसापूर्ण शान्ति की यातनाए भुगत रहे है। न्याय तथा जनता के हितो का गला घोट कर शक्ति प्राप्त करने के प्रयत्न किये जा रहे है। कही-कही इन्हे रोकने की शक्ति सरकारो मे नही है और कही सरकारो के ही आगे जनता का बम नही चलता। नेता सत्य पर पर्दा डालने के लिए प्रयत्नशील है, क्योकि सत्य प्रकट होने पर उनकी नेतागिरी सकट में पड जायगी । सरकारी अफसरो ने झूठी आशा फैला रखी है। अधिकारीवर्ग अनिश्चित नीति का सहारा पकडे हुए है और सोचते है कि कदाचित् उसी पर चलने से सफलता मिल जाय। समस्याओ का समझदारी से निबटारा हो सकने में जनता का कुछ भी विश्वास नही रह गया है। यह सब प्रवृत्तिया हमारे लिए नई नही है । इन्हे हम पहले भी देख चुके है। ससार में युद्ध अभी जारी है।

सबसे अधिक चिन्ता में डालने वाली बात तो वर्तमान अवस्था की पिछली कुछ उन परिस्थितियो से समानता है, जिन के कारण युद्ध छिड चुके है।

कोई भी ईमानदार व्यक्ति नहीं कह सकता कि जिन परिस्थितियो के कारण दूसरा महायुद्ध हुआ वे युद्ध में बरते गए अथवा शान्ति के लिए काम में लाये गए तरीको के कारण मिट सकी है। युद्ध जिस उद्देश्य से लडा जाता है उसके सिद्ध हुए बिना वह समाप्त नही होता। इसीलिए कहा जा सकता है कि अभी दूसरा महायुद्ध समाप्त नही हुआ है। वर्तमान शान्ति को शान्ति नही कहा जा सकता। सच तो यह है कि दुनिया में अभी तक सघर्ष चल रहा है।

हिटलर, मुसोलिनी और जापानी युद्ध-नेता अब नही रहे । जर्मनी, इटली और जापान की युद्ध-कालीन सरकारो का भी नाम-निशान बाकी नही है ये बडी सफलताए है और इन्हे प्राप्त करने के लिए असख्य प्राणी अपनी जाने होम चुके है और कितने ही व्यक्ति अपने अग, अपना स्वास्थ्य और अपना मानसिक शान्ति गवा चुके है। परन्तु यदि हम अधिक सुखद ससार का निर्माण कर सकते तो ये सफलताए और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होती । परन्तु अब तो इनके कारण कितनो ही को अपनी राष्ट्रीय स्वार्थपरता की प्यास बुझाने, प्रदेशो के लिए छीना-झपटी करने, अन्यायपूर्ण एकागी कार्य करने और पिछली सधियो को भग करने का अवसर मिल गया है।

इतना ही नही, अतर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे हमे एकता की तरफ अग्रसर करने वाले किसी सिद्धान्त किसी नैतिक आदर्श, कार्य करने के किसी सयुक्त कार्य-क्रम, किसी समान लक्ष्य और किसी स्पष्ट उद्देश्य का भी अभाव दिखाई देता है।

हिटलर, मुसोलिनी और जापानी युद्ध-नेता अब नही हैं। परन्तु क्या फाशिज्म का अन्त हो गया ? क्या तानाशाही मर चुकी ?

युद्ध पाच वर्ष से कुछ अधिक चला। इससे कितने ही देश तबाह हो गए। किन्तु जिन लोगो को युद्ध के श्मशानो और मलवे के बीच रहना पड रहा है उन्हे भी युद्ध एक साधारण घटना के ही समान जान पड रहा है, क्योकि इसके बाद जो कुछ देखने मे आ रहा है वह बहुत कुछ उसके पहले हो चुकने वाली बातो के ही समान है।

मानव-समाज किधर जा रहा है ? क्या अधिकारीवर्ग मे से कोई कुछ जानता है ? क्या इसकी जिम्मेदारी किसी पर है ? सूर्य-मडल मे ग्रह विशेष नियमो से परिचालित होते है, जिनके कारण वे एक दूसरे से टकरा नही जाते। परन्तु राष्ट्रो के सम्बन्ध में ऐसी बात नही है। वे समय-समय पर टकरा जाते है। क्या युद्ध के बाद राजनीतिज्ञ कोई ऐसा तरीका निकाल पाये है, जिससे वे इन टक्करो से बच सकें। नही, बिलकुल नही। परमाणु-बम की भयकरता से भी हमें पर्याप्त शिक्षा नही मिल सकी।

पहले महायुद्ध ने ऐसे लाखो शान्तिवादियो को जन्म दिया, जो सेनावाद के हिमायती है। वे कहते हैं, युद्ध बडा सत्यानाशी होता है, परन्तु युद्ध अनिवार्य है; इसलिए उसके लिए तैयार रहो।

युद्ध से केवल एक ही वस्तु शेष रही है—शक्ति की अतृप्त लालसा। बडी सेनाए विचारो तथा नैतिकता को धूल मे मिला देती है। युद्ध में विजय

प्राप्त करने वाला चाहे बदमाश ही हो—राजा वही होता है। विजेता के पीछे जाना ही पडेगा—चाहे वह कैदखाने को ही ले जाय। झूठ और बेईमानी से काम भले ही लेना पडे—शक्ति जरूर प्राप्त करनी चाहिए। कम्युनिस्ट तथा फाशिस्टो का यही विचार है। "शक्ति मिलने पर हम वैसे ही भीषण अत्याचार दूसरों पर करेंगे, जो वे हमारे साथ कर चुके है।" यह नया सिद्धान्त है। ताना-शाहियो ने प्रतिरोध के कानून को स्वीकार कर लिया है।

शक्ति के पुजारियो के लिए नैतिकता एक बेहूदा शब्द है। वे कहते है—"आदर्शवाद—परमाणु-युग मे? क्या पागल हो गए हो?"

उनके विचार है, "गाधी स्वप्नदृष्टा है, नेहरू इस दुनिया का नही है। उनमे धोखा देने की शक्ति नही है। वे जो सोचते है वही कह देते है—यहाँ तक कि अपने सम्बन्ध मे भी। उनका व्यक्ति में विश्वास है।'

तानाशाही शक्ति के पूजक है—उसी शक्ति के, जो मनुष्य को गुलामी की बेडी में जकड लेती है और अन्त में उसे नष्ट कर देती है। फाशिस्ट विदेश-मत्री सिआनो की जो डायरी प्रकाशित हुई है उसे पढने से प्रकट होता है कि मुसोलिनी की दृष्टि मे मनुष्य के प्राणो का क्या मूल्य था। इटली के पास खाद्य, कच्चे माल और धन की बेहद कमी थी, किन्तु मुसोलिनी यही चाहता था कि हिटलर उस के अपर्याप्त शस्त्रास्त्र से सुसज्जित इटालियन सिपाहियो का रूस के विरुद्ध अधिक-से-अधिक प्रयोग करे, ताकि उसे भी रूस का विजेता बनने का श्रेय मिले। हताहत होने वाले तथा अपग व्यक्तियो की कोई गिनती न थी—"जो मरता है उस मरने दो' "इटली' और 'राष्ट्र' का सम्बन्ध मुसोलिनी की दृष्टि मे उस देश मे रहने वाले व्यक्तियो से कुछ भी न था। देश की शक्ति क्षीण हो चली थी, पर मुसोलिनी नवीन प्रदेश पर आधिपत्य होने की आशा मे खुश था। वह कमजोर और बोदे आदमियो के देश को शक्तिशाली राष्ट्र बनाना चाहता था। सभी तानाशाहो की यही मनोवृत्ति होती है। शक्ति के भडार को भरने की उनकी लिप्सा का कही भी अन्त नही होता।

यह तानाशाही युग है। इसका आरम्भ १९३९ से पहले हो चुका था। परन्तु युद्ध से इसका अन्त नही हुआ है। युद्ध इसलिए लडा गया था कि जिस प्रकार तानाशाहियो मे केवल पशु-बल से निर्णय होते है उसी प्रकार ससार में भी पशु-बल के द्वारा फैसले न होने लगें। युद्ध मे प्रमुख फाशिस्ट शक्तियाँ नष्ट हो गईं, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पशु-बल का अब भी बोल-बाला है।

न्याय की पुष्टि के लिए बल की आवश्यकता पडती है, परन्तु न्याय के बिना जब बल का प्रयोग किया जाता है तो वह तानाशाही का रूप धारण कर

लेता है। विचारहीन बल नास्तिकवाद है। बल का बल के लिए प्रयोग फाशिज्म है। बल द्वारा शासन लोकतन्त्रवाद के लिए सबसे बडा सकट है।

यदि लोकतन्त्रवादी राष्ट्र १९३६ अथवा १९३७ मे अथवा १९३८ में ही सतर्क होते तो दूसरे महायुद्ध को रोका जा सकता था। इसके विपरीत 'सफल सम्मेलनो' के समाचार प्रकाशित करके लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो की जनता को निश्चिन्त कर दिया जाता था। इतना ही नही, बल्कि उनमे यह धारणा भी उत्पन्न की जाती थी कि यदि वे कुछ न करेंगे—यदि वे मचूरिया, अबीसीनिया और स्पेन मे तटस्थ बने रहेगे तो सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य रहेगा। परन्तु हुआ यह कि युद्ध छिड गया।

अपने अस्तित्व के लिए सकट उपस्थित हो उठने पर भी लोकतन्त्रवादी राष्ट्र इतने बेखबर क्यो रहते है? वे दूर बने रहने, विरोधी राष्ट्रो को मना-कर खुश करने या चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने की नीति का क्यो अनुसरण करते है?

आधुनिक लोकतन्त्रवाद निर्दिष्ट ध्येय की प्राप्ति के लिए कोई आन्दो-लन न होकर रहन-सहन का एक खास तरीका है। राष्ट्र अपने अस्तित्व की रक्षा और दौलत या दूसरे प्रलोभनो की प्राप्ति के लिए जो सघर्ष करते हैं लोकतन्त्रवाद उन सघर्षों से विश्राम की अवस्था है।

आधुनिक सभ्यता मनुष्य के क्रुद्ध होने के स्वभाव को दबा देती है। शायद इसी तरह वह चारो तरफ फैली हुई बुराइयो के प्रति निरन्तर क्रोध करने के मानसिक त्रास से बच जाता है। ईश्वर पर विश्वास रखने अथवा आज के कष्टो के बदले मे भविष्य मे सुख और शान्ति उपलब्ध करने के सब्ज बाग दिखाकर धर्म मनुष्य की विरोधी-भावना को शान्त कर देता है। व्यक्ति-वाद प्रत्येक मनुष्य की समस्या को अलग-अलग हल करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

तानाशाही जनता को लडने के लिए सदा कटिबद्ध रखती है। ताना-शाही शासक अपनी प्रजा को युद्ध के लिए तैयार रहने के आदेश देते रहते हैं। इसके विपरीत लोकतन्त्रवाद सामूहिक क्रियाहीनता की ओर ले जाता है।

लोकतन्त्रवादी समाज की आखें खोलने के लिए पर्लहार्बर के आक्रमण, अथवा सितम्बर १९३९ में इग्लैंड के लिए उपस्थित होने वाले सकट जैसे किसी सकट अथवा घोर आर्थिक मन्दी की आवश्यकता पडती है। लोकतन्त्रवादी जनता अपनी इच्छा से प्रेरित होकर कोई कार्य शायद ही कभी करती है। लोकतन्त्रवादी राष्ट्र को किसी कार्य के लिए उसका एक विशेष वर्ग—जैसे

मजदूर दल, कोई जातीय अल्पसख्यक समुदाय अथवा पूंजीपतियो का कोई एक गुट विवश करता है और इसमें सफल होने के लिए उसे समाज के अधिकाश भाग का सुस्ती और उदासीनता पर विजय पानी होती है।

सार्वजनिक प्रश्नो पर जनता के बीच जो मतभेद होते है उनसे लोकतन्त्री सरकारो को कुछ न करने का बहाना मिल जाता है और कभी-कभी ता इन मतभेदो के कारण सरकारे सचमुच ही कोई कार्रवाई नही करने पाती।

लोकतन्त्रवाद का कार्य अल्पसख्यको से बहुसख्यको की, बहुसख्यको से अल्पसख्यको की और एक अल्पसख्यक समुदाय की दूसरे अल्पसख्यक समुदाय से रक्षा करना होता है। इससे उसमे निष्क्रियता आ जाती है। लोकतन्त्रवाद मे विरोधी शक्तियो की रोक-थाम और सतुलन होता रहता है। निष्क्रियता इस रोक-थाम से और भी बढ जाती है।

लोकतन्त्रवाद की प्रवृत्ति समाज को उसकी छोटी-से-छोटी इकाइया— व्यक्तियो और परिवारो में बाट देनी है। इस प्रकार लोकतन्त्रवाद विघटन को प्रोत्साहन देता है और विघटित होने पर वह अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। ट्रेड यूनियने, पूँजीपतियो के सघ तथा अन्य दल और सस्थाए अपनी रक्षा तथा दूसरो पर हमले करती है, किंतु सम्पूर्ण राष्ट्र एक इकाई के रूप मे कुछ नही कर पाता।

लोकतन्त्री सरकारे कभी कोई निर्णय नही कर पाती, क्योकि उनकी सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्र के भीतर की विरोधी शक्तियो की रोक-थाम और उनके मध्य सतुलन स्थापित करने में ही खर्च हो जाती है।

राजनीति और विज्ञान की एक जैसी उन्नति न होने से समाज बडी दुविधा मे पड जाता है। मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क जिस सर्वोत्तम तरीके को निकालने की क्षमता रखते हैं उससे परमाणु-बम का आविष्कार होता है। परतु शान्ति-काल में परमाणु-बम के नियन्त्रण का निर्णय समाज के सबसे बुद्धिमान् व्यक्तियो के हाथ में नही दिया जाता। इस सम्बन्ध में जो फैसला होता है वह असख्य स्वार्थों की खीच-तान तथा अनेक आशकाओ, प्रलोभनो, दबावो और आशाओ के घात-प्रतिघात का परिणाम है। विज्ञान का बस चलता तो निर्धनता, साम्राज्यो और पिछडे हुए मजहबो का नाम-निशान न जाने कब का मिट गया होता, परन्तु राजनीति अभी तक इन पुरानी और बेकार बातो को कायम रखे हुए है। राजनीति शरीर की विषैली ग्रथियो को काटकर निकाल देने से घबराती है।

दल के सबसे योग्य व्यक्ति को चुनाव मे उम्मीदवार बनाया जाना

जरूरा नही है, बल्कि उम्मीदवार उस व्यक्ति को बनाया जाता है, जिसे सबसे अधिक वोट मिलने की सम्भावना होती है। सर्वोत्तम विचार की विजय नही होती, बल्कि उस विचार की होती है, जिसे जनता का समर्थन सबसे अधिक प्राप्त होता है।

लोकतन्त्रवाद क्रियाशील तथा कार्यक्षम सरकार से घबराता है कि कही वह स्वाधीनता पर ही कुठाराघात न करने लगे। और जब किसी सरकार को सुस्ती और लापरवाही की आदत पड जाती है तो जरूरत के समय भी वह कार्य नहीं कर पाती।

इस तथ्य को समझने से स्पष्ट हो जाता है कि आक्रमणशील तानाशाहियो का सामना होने पर लोकतन्त्रवादी राष्ट्र पीछे क्यो हटते गये। इससे घरेलू समस्याए हल करने मे लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो की असमर्थता और उनके कारणो पर भी प्रकाश पडता है।

युद्ध से लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो की गुप्त शक्तिया सामने आ जाती है। सकट उनकी आखे खोल देता है। वे अपनी शक्ति सग्रह करने लगती है और अत मे युद्ध मे जीत जाती है। परन्तु राजनीति का अभिशाप और शक्ति का विघटन फिर उन पर अधिकार जमा लेता है।

दूसरे महायुद्ध के बाद ससार को अनेको महान् समस्याओ का हल करना है। यदि सकट से बचना है तो लोकतन्त्रवादी देश उन समस्याओ की उपेक्षा नही कर सकते। यातायात के साधनो की गति बढने के कारण भू मडल पहले-से छोटा हो गया है। युद्ध के बाद महाशक्तियो की सख्या मे भी कमी हुई है। ससार के एक भाग में सकट उपस्थित होने से अनेक देशो पर उसका असर पडेगा और यदि उसे दूर न किया गया तो इस सकट के असर की मात्रा भी अधिक होगी। राजनीतिक वार्ताए अब मजाक न रह जायगी, वे जीवन-मरण और राष्ट्रो के अस्तित्व का निपटारा करेगी। लापरवाही, दूर रहने की मनोवृत्ति, सरल आशावाद और टालमटोल की नीति का परिणाम तीसरा महायुद्ध हो सकता है।

इसी प्रकार घरेलू समस्याओ ने अधिक महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर लिया है। ससार के स्त्री-पुरुष अधिक उत्तम जीवन की माग करने लगे है। काम प्राप्त करना मनुष्य का आवश्यक अधिकार समझा जाने लगा है। युद्ध के समय लोकतंत्रवादी देशो में कोई बेकार न था, क्योकि लडाई के कारण वस्तुओ की माग बढी हुई थी। अब शान्तिकालीन रचनात्मक उद्देश्यो के लिए ही नागरिक पूरे काम की माग करने लगे है। परन्तु गैर-सरकारी उद्योगो द्वारा सभी को

लगातार काम देना असम्भव है। यही कारण है कि गैर सरकारी उद्योग जिन गुत्थियो को सुलझाने मे असमर्थ रहे है उन्हे सुलझाने की आशा सरकारो से की जा रही है।

इस प्रकार गैर सरकारी उद्योगो का प्रभुत्व घटने लगा है। यहां तक कि निजी कारबारो को भी सार्वजनिक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा है। ब्रिटिश औद्योगिक सघ के अध्यक्ष सर क्लाइव वेल्यू ने ३० नवम्बर १९४५ को माचेस्टर मे भाषण देते हुए कहा था—"हम मानते है कि उद्योग-धधो का नियत्रण उनके मालिको की ही एक-मात्र इच्छा की वस्तु नही है।" जनता के हितो का ध्यान रखते हुए उद्योगपतियो के अधिकार मे कमी की जाती है। जिस प्रकार किसी घर के मालिक को राष्ट्रीय महत्त्व की अपनी किसी कलाकृति को नष्ट करने का अधिकार नही है उसी प्रकार कारखानेदार को अपने कर्मचारियो को थोडा वेतन देकर अथवा तैयार माल का अधिक मूल्य लेकर समाज को हानि पहुचाने का अधिकार नही है। मानव अधिकारो के इस नये दृष्टिकोण ने साम्पत्तिक अधिकारो की पुरानी धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है।

परन्तु नये दृष्टिकोण ने नये सकटो को भी जन्म दिया है। यदि राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप मे सरकार के कार्यक्षेत्र में विस्तार हो जाता है तो उसकी शक्ति बढ जाती है और तब इस देख-रेख की आवश्यकता उठ खडी होती है कि कही सरकार समाज पर अत्यधिक प्रभुत्व तो नही प्राप्त कर लेती। आधुनिक तानाशाहियो का इतिहास देखने से पता चलता है कि किस प्रकार व्यक्तियो तथा दलो के हाथो से शक्ति पहले सरकारो के हाथो मे आई और फिर ये सरकारें जनता के नियत्रण के बाहर हो गईं। प्रत्येक लोकतत्रवादी राष्ट्र को तानाशाही का खतरा रहता है।

बेकारी, अभाव और भेद-भाव आधुनिक लोकतन्त्रवाद की कठिनाइया है, जो तानाशाही के हिमायतियो का बल बढाती है। इसके विपरीत, व्यापक अधिकारो वाली ऐसी सरकार, जो सभी आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओ को हल करने का बीडा उठाती हो, तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करती है।

तानाशाही मे स्वतत्रता का अभाव होता है और वेतन कम होते है, किन्तु काम प्रत्येक व्यक्ति को मिलता है। पुराने पूजीवादी लोकतन्त्रीय राष्ट्रो में स्वतत्रता तो रहती है, किन्तु काम का अभाव रहता है और जिन्हे काम मिला हुआ है वह आगे बना रहेगा इसकी कोई गारटी नहीं है। लोकतत्र-वाद की मुख्य समस्या राजनीतिक स्वतत्रता बनाये हुए आर्थिक सुरक्षा तथा समृद्धि में वृद्धि करना है। इस विषय में सफलता प्राप्त करने पर ही लोकतत्रवाद

तानाशाही पर विजय प्राप्त कर सकता है।

लोकतन्त्रवाद को सरकार की उपेक्षा, जिसमे अधिकाश समस्याए बिना हल की हुई रह जाती है और सरकार के कार्यक्षेत्र के अत्यधिक विस्तार के, जिससे सबको काम तो मिल जाता है पर स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है, बीच का मार्ग खोज निकालना है।

अमरीका ससार का सबसे समृद्धिशाली तथा शक्तिशाली राष्ट्र है। वह अत्यल्प शासन तथा अत्यधिक शासन के मध्य का सुविधापूर्ण मार्ग कुछ समय तक ग्रहण कर सकता है। अधिक-से-अधिक अमरीका "नई योजना" जैसे किसी कार्यक्रम का अनुसरण कर सकता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत "टेनीसी वेली अथॉरिटी" जैसे सरकारी उद्योग भी सम्मिलित किये जा सकते है। अमरीका मे पहले तो सरकारी नियन्त्रण थोडा रहे, किन्तु उसमे क्रमश वृद्धि होती रहनी चाहिए। सरकार को अपनी योजना बनाने, निरीक्षण करने तथा मालिको और मजदूरो के झगडो में पचायत द्वारा फैसला कराने के कार्य मे वृद्धि करनी चाहिए। उत्पादको तथा उपभोक्ताओ की सहयोग समितियो की स्थापना भी एक अच्छी बात रहेगी। यदि इस साधारण उन्नति का कट्टर पूँजीवादियो ने विरोध किया तो अमरीकी समाज विचित्र स्थिति मे हो जायगा और कट्टर-पथियो का वामपक्षियो से सघर्ष छिड जायगा।

परन्तु यूरोप मे लोगो को पूजीवादी लोकतन्त्रवाद और कम्युनिस्ट तानाशाही के मध्य चुनाव नही करना है। हिटलर के हाथो में सत्ता मुख्यत जर्मन पूजीपतियो और जमीदारो ने ही सौपी थी और उसे गैर-जर्मन प्रतिक्रियावादी वर्ग कम्युनिज्म के विरुद्ध सबसे बडी शक्ति मानने लगे थे। इस से यूरोप मे पूँजीवाद का जनाजा ही उठ गया। अब यूरोप के सामने दो मार्ग है। पहला है समाजवाद—पूजीवाद और लोकतन्त्रवाद के साथ, जिसे समाजवादी लोकतन्त्रवाद कहा जा सकता है। दूसरा मार्ग है समाजवाद—पूजीवाद तथा लोकतन्त्रवाद के बिना, जो बालशेविज्म है।

इसी प्रकार ससार के आर्थिक पुनर्निर्माण में एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया की उद्योग और कृषि की दृष्टि से पिछडी हुई सरकारे भी बहुत कुछ भाग ले सकती है। भारत के करोडपति व्यवसायी ने मुझे बताया कि वह भी समाजवादी है। बम्बई के कतिपय प्रमुख पूजीपतियो ने इस बात के प्रमुख भारतीय उद्योगपति श्री जे० आर० डी० ताता के नेतृत्व मे औद्योगिक उन्नति की एक १५ वर्षीय योजना बनाई है, जिसकी सफलता सरकारी सहयोग पर निर्भर है। इससे प्रकट होता है कि नवीन विचारधारा किस

दिशा की ओर बढ रही है। पूजीपतियो ने स्वीकार किया है कि राज्य की सहायता के बिना वे कुछ करने मे असमर्थ है। भारतीय पूजीपतियो ने अमरीकी पूंजीपतियो से भी सहायता की आशा की है। इस प्रकार नई आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ मिश्रित-सी होती जान पडती है।

युद्ध ने समाजवाद का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। पहले महायुद्ध मे विदेशी सरकारो को अमरीकी बैंको से ऋण मिले थे। दूसरे महायुद्ध मे उन्हे अमरीकी सरकार की मार्फत उधार-पट्टा प्रणाली के अन्तर्गत माल उधार मिला है। यह अमरीका की सघ सरकार ही थी जिसने १९४१ मे युद्ध-उद्देश्य से प्रेरित होकर औद्योगिक विस्तार का आयोजन किया, उसमें धन लगाया और उसके सचालन का प्रबन्ध किया। सरकारी सहायता के बिना युद्धोत्पादन का कार्य असम्भव था। अब शान्ति के समय भी लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो को उतने ही विशाल कार्य को अपने हाथो में लेना है।

इस तरह स्पष्ट है कि आर्थिक क्षेत्र से सरकारो को अपदस्थ नही किया जा सकता। कट्टरपथी चर्चिल मान चुका है कि ससार मे समाजवाद की तरफ जो एक लहर बह चली है—वह निश्चित रूप से एक स्थायी विचारधारा है।

सोवियत् रूस के अतिरिक्त, जहा गैर सरकारी पूंजी पर प्रतिबन्ध है, अन्य देशो में यह प्रश्न नही है कि गैर-सरकारी उद्योग कायम रहे अथवा नही ? वहाँ तो प्रश्न यह है कि उद्योगो में कितना हिस्सा सरकार का रहे और कितना अन्य लोगो का और इस प्रश्न पर राष्ट्र के व्यापक हित को ध्यान मे रखते हुए विचार किया जाय। दूसरे शब्दो मे समाजवाद का मिश्रण किस सीमा तक पूजीवाद के साथ वाञ्छनीय है। महत्त्व अनुपात को निर्धारित करने का है। अनुपात इस दृष्टि से निर्धारित किया जाय कि एक तरफ तो किसी काम का अभाव न रहे—सबकी समृद्धि बढे और दूसरी तरफ स्वतन्त्रता मे कमी न हो। युद्ध के बाद इस प्रयोग पर ही लोकतन्त्रवाद का भविष्य निर्भर है। इस प्रयोग का उद्देश्य मनुष्य को स्वतन्त्र तथा सुखी बनाना है।

युद्ध के बाद सामाजिक प्रयोगशाला मे सबसे पहले ब्रिटेन ने प्रवेश किया, जो लोकतन्त्रवादी सत्ताओं मे सबसे परिपक्व है।

ऐसा बिरला ही भाग्यवान् राष्ट्र होगा, जिसे अपने पसन्द की सरकार मिली हो। स्पेन फ्राको, हिटलर तथा मुसोलिनी से जूझता रहा, किंतु रहना पड़ा उसे फ्राको के ही शासन में। फिर भी कभी-कभी, और विशेषकर प्रगतिशील लोकतन्त्रवादी देशो में जनता ऐसे निर्णय कर डालती है, जो वास्तव में

राष्ट्रीय हितो के अनुकूल होते हैं। एक ऐसा ही निर्णय जुलाई, १९४५ के आम चुनाव मे ब्रिटेन के मजदूर-दल की विजय थी। पार्लमेंट मे मजदूर सदस्यो को भारी बहुमत में भेजकर निर्वाचको ने आर्थिक-क्षेत्र मे राष्ट्रीयकरण की नीति का और वैदेशिक क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति पर चलने का फैसला दे दिया था।

ब्रिटेन की औद्योगिक व्यवस्था पुरानी पड गई है। उसमें सुधार करने के लिए राष्ट्रीयकरण परम आवश्यक है। १९४१ मे मै ब्रिटिश कारखानो की कुछ ऐसी मशीनो को देख चुका हू, जो बहुत पुरानी चाल की थी। ब्रिटेन मे साधारण वस्तुओ के उत्पादन की कुछ आधुनिक मशीने अवश्य है, किंतु आम-तौर पर यह कहा जा सकता है कि पूजीवाद और साम्राज्यवाद के सयुक्त प्रभाव के कारण ब्रिटेन औद्योगिक उन्नति के विषय में कुछ पिछडा हुआ ही रहा है।

ब्रिटेन की विदेश-नीति मे अन्तर्राष्ट्रीयता की आवश्यकता स्पष्ट है। अब राष्ट्रीयता की नीति का, जिसमें कमजोर राष्ट्रो को जबरन अपने अधीन रखा जाना है, उसके लिए कुछ भी महत्त्व नही है। अब उसे रूस और कहीं-कही अमेरिका का सामना करना है।

परन्तु कभी-कभी उपयोगिता न रहते हुए भी पुरानी नीति का अनुसरण सुस्ती, पहले की आदत और नवीनता से भय के कारण होता रहता है। कभी-कभी अस्थायी अफसर पुरानी नीति के पोषक बन जाते है और निर्वाचित मन्त्रियो की अपेक्षा उनकी अधिक चलती है। परन्तु यदि इग्लैंड अपने पुराने साम्राज्यवाद को त्याग दे और शक्ति-सतुलन तथा पूँजीवादी नीति को तिलाजलि दे सकें तो पहले यूरोप और बाद मे एशिया उससे नेतृत्व ग्रहण करने को कह सकते है।

ब्रिटिश जनता ने इसीलिए मजदूर-सरकार के हाथो में शासन-सूत्र सौंपा है। मजदूर-दल के राजनीतिज्ञ भी ब्रिटेन के इस अवसर से अपरिचित नही है। यह समय ही बतायेगा कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस अवसर से लाभ उठा पाते है अथवा नही?

यूरोप की सबसे बडी तीन शक्तिया ब्रिटेन, रूस और पोप है। भूखे, थकित और क्षत-विक्षत यूरोप पर, जो युद्ध की विभीषिका के बावजूद भी सब से महान् सास्कृतिक केन्द्र है, प्रभाव जमाने के लिए इन तीनो के ही बीच स्पर्धा होनी है।

ब्रिटेन सामाजिक लोकतत्रवाद का नवीन सिद्धान्त लेकर आगे बढ रहा है। रूस बालशेविज्म——रहन-सहन के सोवियत् तरीके को लेकर अग्रसर हुआ

है । अपरिवर्तनवादी कैथोलिक, अपरिवर्तनवादी पूँजीपति राजतन्त्रो के हिमायती और फाशिस्ट इन दोनो ही विचार-धाराओ के विरुद्ध है । ब्रिटेन, रूस और पोप के इस त्रिकोण के प्रति अमेरिका के सम्बन्धो का असाधारण महत्त्व है ।

१९४४ मे स्टालिन ने धार्मिक समस्याओ के सम्बन्ध मे एक पत्र पोप को लिखा था । स्टालिन ने पोप के प्रति मैत्री का हाथ बढाया था । यहा तक कि उसने रूस के पुराने यूनानी सम्प्रदाय और रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय दोनो को मिला देने तक का प्रस्ताव किया था ।

स्टालिन की चिन्ता पोलैंड के सम्बन्ध में थी । जर्मनी जाने के लिए पोलैंड रूस के पुल के समान है और जर्मनी यूरोप का हृदय—उसका केन्द्रस्थल है । पोलैंड रोमन कैथोलिको का देश है । स्टालिन जानता था कि पोलो पर आधिपत्य जमाने मे उसे विशेष कठिनाई होगी । वह यह भी जानता था कि पोल लोग दीर्घकाल तक उसका सक्रिय विरोध करते रह सकते है । इसीलिए स्टालिन पोप की सहायता का इच्छुक था । पोप और स्टालिन का समझौता होने पर पालैंड में रूस की कठिनाइया दूर हो सकती थी ।

अमेरिका मे बसे हुए एक कैथोलिक पादरी फादर ओरलेमनस्की ने १९४४ मे स्टालिन से मिलने के उपरान्त एक वक्तव्य निकाला था कि पोलैंड के रोमन कैथोलिको को रूस किसी प्रकार की हानि नही पहुचाना चाहता । परन्तु पोप ने इस सम्बन्ध मे कुछ भी कहना ठीक न समझा । जब पोप ने स्टालिन के पत्र का उत्तर बहुत समय तक न दिया तो राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने इसमे कुछ दिलचस्पी ली । एक अमरीकी नेता एडवर्ड जे० फ्लिन कई बार रोम और मास्को गया । वह माल्टा-सम्मेलन में भी उपस्थित था । परन्तु समझौते का यह प्रयत्न भी निष्फल हुआ और पोप न स्टालिन का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । उसी दिन से सोवियत् पत्रो तथा रूस के हिमायतियो ने सभी जगह रोमन कैथोलिको के विरुद्ध विष-वमन करना आरम्भ कर दिया ।

स्टालिन और पोप दोनो अपने-अपने क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीयता हामी है, किन्तु उनके आदर्श तथा राजनीति परस्पर टकराती है । दूसरे महायुद्ध से यूरोप में कैथोलिको का प्रभाव घट गया । कैथोलिको का मुख्य देश इटली हार गया । जर्मनी में भी कैथालिको की सख्या अधिक है,किन्तु दूसरे महायुद्ध के बाद उसकी कोई राजनीतिक स्थिति नही रही । दो अन्य कैथोलिक देश स्पेन और पुर्तगाल अभीतक फाशिस्ट है । इसलिए उनका भी कोई प्रश्न नही उठता । फ्रास पहले प्रथम कोटि की शक्ति था, किन्तु अब दूसरी कोटि में आगया है । पोलैंड, जो पोप की राजनीतिक व्यवस्था का एक आधार-स्तम्भ था, रूस के प्रभाव में होगया

है। इसलिए पोप ने अब अमरीकी देशो की ओर दृष्टि फेरी है। इसका यह मतलब नही कि पोप ने यूरोप मे हार मान ली है, बल्कि इसके विपरीत, वह अमरीका को भी इस सघर्ष मे घसीटने की चेष्टा कर सकता है।

ससार के अपरिवर्तनवादी रूस तथा ब्रिटेन के विरुद्ध पोप को अपना मित्र मानते है। परन्तु फ्रास और इटली मे कैथोलिक वर्ग प्रगतिशील है और नई विचार-धाराओ से प्रभावित हो चुके है। वे ब्रिटेन से मैत्री कर सकते है।

ब्रिटेन और रूस एक सघर्ष मे व्यस्त है। दोनो के घात-प्रतिघातो की गूज यूरोप और एशिया मे सुनाई देने लगी है। दूसरे महायुद्ध के बाद यह एक और निर्णयात्मक सघर्ष चल रहा है।

वाल्टर लिपमान प्रभाव-क्षेत्रो के बटवारे और 'तीन बडो' के प्रभुत्व के विरुद्ध नही है। उसका कहना है कि ब्रिटेन और रूस मे झगडा होने की सम्भावना नही है, क्योकि जहा ब्रिटेन ह्वेल अर्थात् सबसे महान् जल-शक्ति है वहाँ रूस हाथी अर्थात् सबसे बडी स्थल-शक्ति है, परन्तु, एशिया मे इग्लैड बहुत बडी स्थल-शक्ति है और उधर रूस महान् जगी बेडे का निर्माण कर रहा है। वह अटलांटिक की तरफ क्रमश बढ रहा है। स्टालिन की आँखे प्रशान्त, बाल्टिक सागर, फारस की खाडी और भूमध्य सागर की तरफ लगी हुई है।

इसलिए प्रश्न यह नही है कि "ह्वेल' 'हाथी' के जगल मे घुस सकती है या नही। प्रश्न यह है कि क्या ब्रिटिश 'सिह' रूसी 'रीछ' के साथ निर्वाह कर सकेगा ? 'सिह' चाहे 'रीछ' के साथ विश्राम करना भले ही मजूर कर ले, पर रूसी 'रीछ' स्फूर्ति से भरा हुआ है और एक जगह से दूसरी जगह घूमना ही पसद करता है। कम-से-कम वह बुड्ढे 'सिह' के साथ रहना कभी पसद नही करेगा, जो निर्बल हो चुका है और जिसकी गर्जन अपनी एशियावासी प्रजा के चीत्कारो और चुनौतियो में विलीन हो जाती है।

अपनी एक पिछली पुस्तक लिखते समय मुझे जार्ज चिचरिन से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो १९१८ से १९३० तक रूस का विदेश-मत्री था। चिचरिन की अफगानिस्तान और ईरान मे विशेष तथा पूर्व में साधारण दिलचस्पी थी। उसने कहा था कि बाकू एशिया की तरफ निर्देष करने वाली एक अगुली है। एशिया और जर्मनी में दिलचस्पी अधिक होने के कारण उसका ब्रिटेन से मैत्री बनाये रखने मे अधिक विश्वास न था। चिचरिन कम्युनिस्ट दल का सदस्य अवश्य था, किन्तु जारो के विदेश कार्यालय मे काम कर चुकने के कारण उसका झुकाव पिछली परम्परा कायम रखने की तरफ ही अधिक था।

परन्तु मैक्सिम लिटविनोव मुझे बताया करता था कि सोवियत् सरकार के लिए ब्रिटेन से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। मध्य-पूर्व के अर्द्ध-औपनिवेशिक देशो के लिए रूस को ब्रिटेन से अपने सम्बन्ध नही बिगाडने चाहिए। लिटविनोव चिचरिन का सहकारी था और बाद मे वह भी विदेश-मन्त्री हुआ। चिचरिन और लिटविनोव मे विदेशी नीति के इस पहलू को लेकर लगातार सघर्ष चला करता था। स्टालिन ने जब चिचरिन की नीति स्वीकार कर ली तो लिटविनोव को अलग कर दिया गया। लिटविनोव को १९-३९ के मई महीने मे निकाला गया था, जब रूस ने आक्रमणकारी नीति का श्रीगणेश किया था। लिटविनोव का विस्तार करने की नवीन सोवियत् नीति में विश्वास नही है और इसीलिए वह उस पर अमल नही करना चाहता।

१९३६ में अबीसीनिया के युद्ध के समय मैं पेरिस में था। मुझे एक फ्रासीसी पत्र में यह पढकर आश्चर्य हुआ कि अबीसीनिया का पेरिस-स्थित राजदूत रूसी भाषा बोलता है। मुझे ज्ञात हुआ कि बोलशेविक क्रान्ति से पूर्व हब्शी सरदारो के लडके जारो के निमत्रण पर सैनिक-शिक्षा प्राप्त करने के लिए सेंट पीटर्सबर्ग आते थे। उन दिनो अबीसीनिया ब्रिटेन के प्रभाव मे था।

अबीसीनिया के ईसाई मोनोफिस्टिक सम्प्रदाय के है अर्थात् वे ईसा के मानवीय रूप को न मानकर केवल ईश्वरीय रूप को ही स्वीकार करते है। आर्मीनियन ईसाई भी इसी सम्प्रदाय के है और उनका प्रधान केन्द्र रूसी आर्मी-निया में है। रूसी अधिकारी आर्मीनियन ईसाइयो का उपयोग अबीसीनिया मे अपना प्रभाव बढाने के लिए करते रहे है।

जारशाही रूस की नीति ब्रिटेन के प्रभाव-क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने की रही है। आज भी जहाँ ब्रिटेन का प्रभाव है वही रूस उपस्थित होकर हस्तक्षेप करने का चेष्टा करता है।

१९४४ में मिस्री सरकार ने सोवियत् सरकार से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये। यह कार्य वहा के प्रतिक्रियावादी जमीदारो को बुरा लगा, जो मिस्री किसानो पर अपने अत्याचारो के कारण प्रसिद्ध है। तब रूस ने एक चाल चली। उसका जो राजदूत काहिरा आया उसके साथ सेक्रेटरियो का बडा स्टाफ भी था और ये सब-के-सब मुसलमान थे (रूस मे लाखो मुसलमान है)। इन मुसलिम सेक्रेटरियों का पहला काम शाह फरुख के आगे सलाम करने आना और शुक्रवार की नमाज के समय उपस्थित रह सकने की अनुमति प्राप्त करना था। दूसरे शब्दो में इसका तात्पर्य यह था कि रूस की मिस्र से सहानुभूति है और वह उसकी भावनाओ का आदर करता है।

सोवियत् शासक फिलस्तीन तथा अरब राज्यो मे भी दिलचस्पी लेने लगे है। कारण सिर्फ यह है कि यह ब्रिटेन का प्रभाव-क्षेत्र है। सोवियत् सरकार का कहना है कि अरबो तथा अन्य पूर्वी राष्ट्रो के मध्य वह अग्रजो का स्थान ग्रहण करने को तैयार है। सोवियत् मुसलमान, सोवियत् आर्मीनियन, सोवियत् यूनानी स्लाव ब्रिटिश देशो मे और उनके इर्द-गिर्द रूस के प्रति सद्भावना उत्पन्न करने की चेष्टा कर रहे है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति इन प्रदेशो मे जो कटुता की भावना है, उसे बढाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

रूस के इरादो का अलग-अलग मतलब लगाया जा सकता है। सवाल यह नही है कि दर्रे दानियाल मे रूसियो के अड्डे प्राप्त करने, ईरान मे रूसियो के घुस जाने, यूनान मे उनका प्रभाव बढाने, डोडेकोनीज द्वीपो पर उनका नियत्रण होने और ट्रिपोलीटानिया के उपनिवेश मे उनके पैर जम जाने से ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरा उपस्थित होता है और मिस्र तथा भारत के लिए ब्रिटेन का मार्ग कट जाता है। यदि रूस को रक्षा के लिए उत्तरी अफ्रीका चाहिए तो ब्रिटेन दर्रे दानियाल और अमरीका पोलैंड की माँग अपनी रक्षा के लिए कर सकते है। इस तरह तो सम्पूर्ण भूमडल पर अधिकार जमाये बिना रक्षा की आवश्यकताए पूरी नही हो सकती।

ब्रिटिश साम्राज्य के भग होने पर मुझे तनिक भी आपत्ति नही। परन्तु अगर ऐसा रूस के दबाव से होता है तो ये उपनिवेश रूस के अधिकार मे चले जायगे और फिर एक मात्र बचे हुए महान् राष्ट्र अमरीका को विशाल रूसी साम्राज्य से टक्कर लेनी पडेगी।

ब्रिटेन द्वारा उपनिवेशो को आजादी देना अच्छा है। यदि सयुक्त राष्ट्रो का सगठन उनकी रक्षा करता रहे तो ये उपनिवेश क्रमश. उन्नति करके अन्तर्राष्ट्रीय ईर्ष्या के लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ और भी बन सकते है। परन्तु यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्द्धा के परिणामस्वरूप ये ब्रिटेन के प्रभुत्व से मुक्त होते है तो अनिवार्य रूप से सोवियत् तानाशाही के उदर मे समा जायगे। एक साम्राज्यवादी शक्ति की साम्राज्य विरोधी नीति भी अतत साम्राज्यवाद ही होती है।

मध्य एशिया और निकट पूर्व के देश ब्रिटिश तथा रूसी साम्राज्यो की इस कशमकश को चुपचाप खडे होकर देखते नही रह सकते। वे भी षड्यत्रो में शामिल होगे और कभी एक महाशक्ति का और कभी दूसरी महाशक्ति का साथ देकर अपने स्वार्थ-साधन का प्रयत्न करेगे उन्होने ऐसा करना आरम्भ भी कर दिया है।

रूस और ब्रिटेन के साम्राज्यो के पारस्परिक सघर्ष के बीच पराधीन

राष्ट्रो के इस स्वाधीनता-प्रयत्न का विशेष महत्त्व है। जब तक इग्लैड अपने साम्राज्य को भग नही करता तब तक इस प्रयत्न से रूस का ही लाभ होगा। एशियाई राष्ट्र प्रत्येक सम्भव तरीके से स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयत्न करेगे। ब्रिटेन की अधीनता मे रहने वाला अशान्त और विद्रोही भारत साम्राज्यवादी शक्ति से लडने के लिए रूस को बुला सकता है। परन्तु स्वतत्र भारत रूसी प्रभुत्व का कट्टर विरोधी होगा और वह सोवियत् आक्रमण से रक्षा के उद्देश्य से विश्व-सगठन कायम करने के लिए ब्रिटेन अथवा अमेरिका से नेतृत्व ग्रहण करने के लिए कह सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे साम्राज्य-विस्तार के इच्छुक रूस के पदार्पण से पश्चिमी साम्राज्यवाद की समस्या का हर पहलू बदल जाता है। इस अवस्था में रूस रगीन जातियो का हिमायती और उनका नेता बनकर सबकी आखो मे धूल झोक सकता है।

१९४६ के आरम्भ मे रूस के सहकारी विदेश-मत्री एड्री विशिस्की की इडोनेशिया के प्रश्न पर ब्रिटिश विदेश-मत्री बेविन से जो झडप हुई थी उसमे मि० विशिस्की को इस बात मे कुछ भी दिलचस्पी न थी कि मित्रराष्ट्रीय सगठन का निर्णय क्या होता है, या बेविन का कहना क्या है अथवा ब्रिटिश और अमरीकी पत्र इस भाषण का कैसा मजाक कर सकते है। उसकी दिलचस्पी सिर्फ इसी बात मे थी कि पश्चिमी साम्राज्यवाद की सम्मिलित सेना के दमन का शिकार होने वाले उपनिवेशवासियो की हिमायत लेने वाले के रूप में समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया मे उसका स्वागत किया जायगा।

अब किया क्या जाय ? एशिया के लोगो को स्वाधीनता मिलनी चाहिए ताकि कोई उनसे अनुचित लाभ न उठा सके। इसके उपरान्त इन लोगो को स्वतत्रता की रक्षा और आर्थिक उन्नति करने के लिए जिस सहायता की आवश्यकता हो वह मित्र-देशो द्वारा स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था से मिले।

प्रत्येक असतुष्ट एशियावासी पश्चिमी देशो—विशेषकर इग्लैड और अमरीका के विरुद्ध रूस के समर्थको की सख्या बढाता है। पश्चिम को और कुछ नही तो केवल इसलिए साम्राज्यवाद को त्याग देना चाहिए कि वह उसके नैतिक और आर्थिक स्वार्थो के लिए हानिकर है। यदि पश्चिमी महाशक्तियो ने इस तथ्य को हृदयगम करके उसके अनुसार कार्य नही किया तो रूस के दबाव के कारण उन्हे ऐसा करना ही पडेगा।

सोवियत् सरकार के पक्ष म दूसरा लाभ ससार भर मे कम्युनिस्ट दलो का फैला होना है। मई १९४३ मे तीसरी अतर्राष्ट्रीय या कामिटर्न भग होने की

घोषणा की गई। परन्तु इस बात का कोई सबूत नहीं है कि विभिन्न देशो का कम्युनिस्ट दल, जिनका प्रतिनिधित्व कामिटर्न करती थी, सोवियत्-सरकार के आदेश के बिना स्वतन्त्र रूप मे कोई कार्य करते रहे है। आज तक किसी भी कम्युनिस्ट दल ने सोवियत्-सरकार के किसी कार्य की न तो आलोचना की है और न उससे कोई मतभेद ही प्रकट किया है। सभी दल सोवियत् सरकार के कार्यो का समर्थन ही करते रहे है। रूस के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र निर्णय का एक उदाहरण भी सोवियत् सरकार के प्रभाव मे स्वतन्त्र होने का प्रमाण माना जा सकता था, किंतु ऐसा एक भी उदाहरण अब तक देखने मे नही आया है।

कभी-कभी किसी कम्युनिस्ट दल द्वारा गैर-कम्युनिस्ट कार्यक्रमो और विचारो का समर्थन इस बात का सबूत मान लिया जाता है कि दल वास्तव मे कम्युनिस्ट नही है और न वह सोवियत् सरकार के इशारे पर ही नाचता है। यह तर्क असगत है। वास्तव मे रूस केवल नाम का ही कम्युनिस्ट है। चीनी कम्युनिस्टो द्वारा नरम विचारो के सुधारो का समर्थन करना आश्चर्य की बात नही है। उनकी परीक्षा तो इसी तरह हो सकती है कि क्या कभी उन्होने अथवा अन्य देशो के कम्युनिस्टो ने सोवियत् सरकार की नीति की निन्दा की है या उससे सहयोग करने से कभी इन्कार किया है।

सोवियत् सरकार ने अप्रैल १९४१ की सधि द्वारा मचूरिया को जापान के सरक्षण मे एक राज्य स्वीकार कर लिया था। क्या किसी भी चीनी के लिए इस प्रकार की सधि का समर्थन करना उचित हो सकता था? परन्तु चीनी कम्युनिस्ट दल के नेताओ ने सार्वजनिक रूप से यही घोषित किया। तर्क-सगत बात तो यह थी कि १९४३ मे कामिटर्न भग होने के परिणामस्वरूप चीनी कम्युनिस्टो की सोवियत्-सरकार के प्रति नीति मे परिवर्तन हो जाना चाहिए था। परन्तु परिवर्तन हुआ नही, क्योकि कामिटर्न का तोडा जाना वास्तविक न था।

दूसरा महायुद्ध छिडने पर भारत के सभी राजनीतिक दलो ने युद्ध का विरोध किया, क्योकि युद्ध का समर्थन परोक्ष रूप से ब्रिटेन का समर्थन करने के समान था। जब रूस पर हमला हुआ तो भारतीय कम्युनिस्ट दल युद्ध का समर्थन करने लगा और उसने ब्रिटिश सरकार को अपना सहयोग दिया। इस प्रकार भारतीय कम्युनिस्टो के लिए रूस के हितो का प्रश्न सबसे प्रधान था। कामिटर्न भग होने के बाद भी भारतीय कम्युनिस्ट रूस से चिपके रहे और उन्होने युद्ध मे सहायता पहुचाई।

इटालियन कम्युनिस्टो को साधारणत मुसोलिनी के चीफ आफ-स्टाफ

मार्शल वेडोग्लिओ के विरुद्ध होना चाहिए था। परन्तु सोवियत्-सरकार द्वारा वेडाग्लिओ-मन्त्रिमडल स्वीकार कर लेने पर इटली के कम्युनिस्ट भी उसका समर्थन करने लगे और उसमे सम्मिलित होना मजूर कर लिया। साधारण तौर पर अन्य इटालियन नागरिको की तरह उन्हे ट्रीस्ट मार्शल टिटो के सुपुर्द करने के विरुद्ध होना चाहिए, किन्तु यह विचार करके कि ट्रीस्ट टिटो के हाथ मे जाने से यूगोस्लाविया मे कम्युनिस्टो का प्रभाव बढ जायगा और रूस का प्रभाव एड्रियाटिक सागर तक पहुच जायगा, इटली के कम्युनिस्टो ने अपने देश के हित के विरुद्ध टिटो के पक्ष का समर्थन किया।

दूसरे महायुद्ध के बाद जर्मनी से जो भूमि छीनी गई है उसका जर्मन कम्युनिस्टो को खेद है। उन्होने जर्मनी से राइनलैड और रूर छीने जाने का विरोध किया है। परन्तु उन्ही जर्मन कम्युनिस्टो ने पोलैड की भूमि रूस मे मिलाये जाने का समर्थन किया है।

सोवियत्-सरकार की नीति मे जब भी परिवर्तन हुए है उन्हे ससार के कम्युनिस्ट दलो ने प्रसन्नतापूर्वक सिर-माथे पर लिया है। इसलिए कहा जा सकता है कि सोवियत्-सरकार तथा विदेशी कम्युनिस्ट दलो के कथन तथा कार्य मे तनिक भी अतर नही देखने मे आता और वे अब भी परस्पर सम्बद्ध है।

तब कामिटर्न को भग करने से तात्पर्य क्या था ? रूस ने अन्तर्राष्ट्रीयता से जो पीछे कदम हटाया है—यह उसी नीति का पूर्व लक्षण था। ऐसा करके ससार के कम्युनिस्ट दलो के जिम्मे एक नया कार्य सौपा गया था।

राजनीति के क्षेत्र मे स्टालिन एक कारबारी आदमी है। साधारण व्यापारी की तरह वह बही मे अपने हानि-लाभ का लेखा लिख लेता है और बाद मे उसकी समीक्षा करता रहता है। चीनी कम्युनिस्टो के पास एक विशाल सेना रही है और वे एक विस्तृत भूखड पर शासन करते रहे है, किन्तु एक बार भी वे मार्शल चाग-काई-शेक की विदेश-नीति मे परिवर्तन करने मे सफल नही हो सके। १९३३ से पूर्व जर्मन कम्युनिस्टो का बहुत जोर था और चुनाव मे उन्हे ६०,००,००० से अधिक मत प्राप्त हो चुके थे। परन्तु वे न तो हिटलर के हाथ में सत्ता जाने से रोक सके और न बाद मे ही उसे अपदस्थ कर सके। कम्युनिस्ट इग्लैड, फास और अमेरिका मे स्पेन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने मे अवश्य सफल हुए, किन्तु वे स्पेन के प्रति उन देशो की विदेश-नीति में कोई रद्दो-बदल न करा सके। कही भी कम्युनिस्टो ने विदेशी सरकारो की नीतियो को निर्णयात्मक ढग से प्रभावित नही किया।

कारण स्पष्ट था और स्टालिन भी उसे ताड गया। कम्युनिस्ट विशाल सार्वजनिक प्रदर्शन कर सकते थे, वे किसी सगठन पर कब्जा कर सकते थे और वे जोरदार प्रचार भी कर सकते थे। परन्तु विदेशी कम्युनिस्टो के इन कार्यो से सोवियत् सरकार को कभी भी अधिक लाभ नही हुआ, क्योकि ये सब विरोधी पक्ष मे रहने वाले दल के कार्य थे। ये कार्य वे ऐसे क्षेत्र मे रहकर कर रहे थे, जिसमे शक्ति का अभाव होता था और शक्ति के बिना वे रूसी सरकार की कुछ ठोस सहायता करने मे असमर्थ थे।

कामिंटर्न को भग करके स्टालिन ने विदेशी कम्युनिस्ट दलो को अधिकार ग्रहण करने की सुविधा दे दी।

१९४३ से पूर्व रूस के बाहर ऐसी सरकार, जिसमे कम्युनिस्ट थे, केवल स्पेन की ही सरकार थी। १९४३ के बाद कम्युनिस्ट दलो के निर्बल सगठनो ने भी, जहा सम्भव हो सका है, शक्ति ग्रहण की है।

इसमे कम्युनिस्टो के हाल के कार्यों पर प्रकाश पडता है और भविष्य की झलक मिलती है।

अब स्टालिन और कम्युनिस्ट दल स्तीफे देकर अपने यहा की सरकारो का पतन करा सकती है। इसी कारण, इटली और फास की सरकारे रूस के विरुद्ध नीति ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र नही रह गई है। यही कारण है कि फ्रास पश्चिमी राष्ट्रो के गुट में सम्मिलित होने मे असमर्थ है। फ्रासीसी कम्युनिस्ट दल और दूसरे शब्दो मे सोवियत् सरकार इसके विरुद्ध है।

इस प्रकार विदेशी सरकारो मे कम्युनिस्टो की उपस्थिति होने पर वे सोवियत् सरकार के विरुद्ध कुछ कह या कर पाएगी। सिर्फ विरोध करने की अपेक्षा स्टालिन के लिए इस नीति का कही अधिक महत्त्व है। स्टालिन के लिए कौंसिल चैम्बरो के भीतर अपने प्रतिनिधियो को मत प्रदान करने के लिए भेजना अधिक लाभकर है, बनिस्बत इसके कि वे उसके बाहर रहकर नारे लगाते रहे। समय पडने पर कम्युनिस्ट दोनो ही कार्य कर सकते है।

कामिंटर्न भग होने के बाद अन्य देशो में काम करने वाले कम्युनिस्ट-दलो ने जो नीति ग्रहण की है उसमे समाजवाद के सिद्धातो की तुलना में शक्ति-ग्रहण करने और रूस के राष्ट्रीय साधनो की पूर्ति का अधिक महत्त्व है, यही कारण है कि भारतीय कम्युनिस्टो ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का साथ दिया था। चीनी कम्युनिस्ट उस च्याग-काई-शेक से सहयोग करने को तैयार हो गए थे, जिसकी वे पहले फाशिस्ट कहकर निंदा किया करते थे। रूमानिया के कम्युनिस्टो ने हिटलर का साथ देने वाले राजा माइकेल के साथ और यूरोप के एक

सबसे बडे प्रतिक्रियावादी रूमानिया के विदेश-मन्त्री जार्ज तातरेस्कू के साथ सहयोग किया था। अब कम्युनिस्ट वामपक्षी नही है—अब उन्हे केवल रूसी साम्राज्यवाद के एजेट कहा जा सकता है।

अमेरिका जैसे देश मे जहा राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित होने की शक्ति कम्युनिस्टो मे नही है वहा उन्होने नई नीति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया है। वे मत्रियो, काग्रेस के सदस्यो, पूजीवादी समाचार पत्रो, रेडियो-स्टेशनो, ट्रेड यूनियनो इत्यादि मे प्रभाव जमाने की चेष्टा करते हैं। मजदूर-दलो तथा वामपक्षियो मे घुसकर उन पर कब्जा करने की चेष्टा की जाती है। अन्य प्रभावशाली सस्थाओ पर भी प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया जाता है।

इस नीति का कम-से-कम इतना प्रभाव तो होता ही है कि सोवियत् सरकार की आलोचना इन दलो तथा सस्थाओ मे बद हो जाती है। ये दल ब्रिटिश सरकार तथा अपनी सरकार की तो आलोचना करते है, किंतु सोवियत् सरकार के विरुद्ध अगुली तक नही उठाई जाती।

यदि अन्य सस्थाओ पर प्रभाव जमाने मे सफलता नही मिलती तो कम्युनिस्ट दल पूँजीवाद को बुरा-भला कहकर जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगता है।

इस प्रकार स्टालिन ने एक गहरी चाल चलकर अपना उल्लू साधा है। कामिटर्न को भग कर दिया गया है। यद्यपि विदेशी कम्युनिस्ट दलो का अब सोवियत् सरकार से सम्बन्ध नही रह गया है फिर भी उसके लिए उनकी उपयोगिता कही अधिक बढ गई है। अब रूस को अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे कम्युनिस्ट दलो द्वारा पहले से कही अधिक सहायता मिल सकती है।

युद्ध मे सोवियत् रूस को हिटलर को पराजित करने का जो श्रेय प्राप्त हुआ है उसके कारण यूरोप और एशिया के कम्युनिस्ट दलो का कार्य और सरल हो गया है। कम्यूनिस्ट और उनके समर्थक रूस के युद्ध-प्रयत्न को ही प्रधान महत्त्व देते रहे हैं। लडाई जीतने मे ब्रिटेन, अमरीका, चीन तथा अन्य राष्ट्रो ने जो भाग लिया है उनका और उधार पट्टा सहायता का महत्त्व कम्युनिस्ट घटाकर बताते है। यूरोप तथा एशिया के देश रूस की सैनिक शक्ति से बड़े प्रभावित हुए है और एक सीमा तक उसके प्रशसक बन गए है।

जो देश रूस के सम्पर्क मे नही आये है उनमें यह प्रशसात्मक भावना अभी तक बनी हुई है। प्रशसको में इग्लैंड, अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, एशिया, दक्षिण अमेरिका आदि मुख्य है। परन्तु केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप की जनता की

आखो का पर्दा हट गया है, क्योकि उसने रूसी सैनिको को हाथघडी चुराते देखा है ।

यूरोप लाल सेना के पुराने ढग के साज-सामान को देख चुका है। वह उसकी घोडे से चलने वाली गाडियो और सैनिको के फटे पुराने कपडो को भी देख चुका है ।

कोई भी राष्ट्र विदेशी विजेता का स्वागत नही करता, किन्तु लालसेना को मध्ययूरोप मे सम्मान की दृष्टि से न देखे जाने का एक और भी कारण है। यूरोप का यह भाग युद्ध के कारण पहले ही तबाह हो चुका था । फिर भी लाल सेना जो अमरीकी, ब्रिटिश और फ्रासीसी सेनाओ की सम्मिलित शक्ति मे अधिक थी, उसी ध्वस्त यूरोप पर अपना निर्वाह करती थी । इसके विपरीत, अमरीकी सेना अपना ही नही बल्कि जर्मनो और आस्ट्रियनो तक के लिए अपने देश से भोजन लाती थी । बस मध्य तथा पूर्वी यूरोप के लोगो ने अनुमान लगा लिया कि रूसियो की तुलना मे अमरीकी, ब्रिटिश तथा फासीसियो का रहन-सहन कितना ऊचा है ।

यूरोप वालो ने लाल सेना को देखकर एक और बात मालूम की । पोलैंड और बाल्टिक देशो के निर्वासित लोग ही नही, वरन् रूसी नागरिक भी युद्ध समाप्त होने पर रूस को वापस नही जाना चाहते थे । अमरीकी, ब्रिटिश तथा फ्रासीसी सैनिक स्वदेश जाने का अवसर मिलने पर खुशी से पागल-से हो जाते थे, किन्तु रूसी सैनिक अपने प्रचारको द्वारा चित्रित उस "मजदूरो के स्वर्ग" को लौटने से बचने के लिए कोई प्रयत्न बाकी नही छोडते थे । माल्टा सम्मेलन मे स्टालिन ने सभी रूसी नागरिको के रूस लौटाने की माँग की थी, जिसे रूजवेल्ट और चर्चिल ने स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार अनिच्छुक रूसियो को स्वदेश वापस जाना पडा था । कुछ को जबरन भेजा गया था और कुछ ने विरोध मे आत्म-हत्याए तक कर ली थी । इसका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य था ।

लालसेना के कुछ कार्यो ने यूरोप की जनता को आश्चर्य मे डाल दिया। वहाँ के कम्युनिस्ट, समाजवादी तथा अन्य प्रगतिशील वर्ग लालसेना के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे । बर्लिन की श्रमजीवी बस्तियो तथा अन्य नगरो मे खिडकियो तथा छज्जो पर लाल झडे लगाये गए थे । यह भय से प्रेरित होकर नही किया गया था, जैसा कि ऐसे अवसरो पर बहुधा हुआ करता है । यह वास्तव में उन लालसेना के वीरो के स्वागत की तैयारी थी, जो जर्मन नागरिको को नाजियो से मुक्त करने आ रहे थे । परन्तु लालसेना ने जिस प्रकार अमीरो के मुहल्लो को तबाह किया उसी प्रकार श्रमजीवियो की बस्तियो में

भी लूट-मार और बलात्कारो का बाजार गरम किया। वर्गवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की शिक्षा का स्थान रूस की राष्ट्रीय भावना ने ग्रहण कर लिया था।

इसके अतिरिक्त रूसी सैनिको ने चोर बाजार से भी खूब जेबे भरी। अन्य देशो के सैनिको ने भी यही सब किया, किन्तु माल-असबाब के लिए रूसियो की भूख सबसे अधिक बढी हुई थी। इससे यूरोप के उन आदर्शवादियो की आखे खुल गईं, जो लालसेना मे रूस के उस समाजवादी समाज की बानगी देखने की आशा करते थे, उसी समाज की, जो पूजीवाद को मिटाकर एक "नवीन मनुष्य" की सृष्टि करने का दावा करता आया है।

इसके कुछ ही समय बाद यूरोप ने देखा कि उसके कारखानो, दूकानो, खेतो और घरो का सामान ट्रेनो पर लद-लद कर रूस को जा रहा है। भूतपूर्व शत्रु-देशो की ही नही, बल्कि पोलैंड, चीन, चेकोस्लोवाकिया और चीन जैसे मित्रदेशो तक की सामग्री का अपहरण किया गया। आस्ट्रिया मे रूसियो ने उस सम्पत्ति को हथिया लिया, जो नाजियो ने यहूदियो तथा अपने अन्य शत्रुओ से लूटी थी।

पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रुमानिया, बल्गारिया, और युगोस्लाविया मे लालसेना के अफसरो ने स्थानीय सेनाए तैयार कर ली। आगपू के भेदियो का जाल सभी जगह फैल गया। रूसी प्रभाव-क्षेत्र की स्थानीय सरकारो के साथ किये समझौतो द्वारा वहाँ की आर्थिक व्यवस्था पर नियत्रण स्थापित कर लिया गया। प्रत्येक देश मे या तो कम्युनिस्ट दल के हाथ मे बाकायदा शक्ति आ गई और या वह परदे के पीछे रहकर कार्रवाई करने लगा।

ऐसा जान पडता था जैसे कि आधे यूरोप को, जिसमे लगभग १५ करोड प्राणी रहते है, रूस ने खरीद लिया है। इस परिस्थिति मे सघर्ष बढने की सम्भावना थी और सोवियत् सरकार ने उससे सामना करने की तैयारी भी कर ली।

पहली बात तो उसने यह की कि जर्मनी के रूसी क्षेत्र का सम्बन्ध बाहर से तोड दिया। बाद मे किसी चुने हुए पत्र-प्रतिनिधि अथवा प्रतिनिधियो को निर्दिष्ट क्षेत्रो मे घुमाया गया। विदेशी राजनीतिक अथवा सैनिक प्रतिनिधियो पर रोक लगा दी गई और पत्र-प्रतिनिधियो के विदेशो को जाने वाले तारो पर कडा सेंसर लगा दिया गया। जिन सरकारो को अपने प्रतिनिधियो से रिपोर्ट मिलती थी वे सोवियत् सरकार की नाराजी के भय से उन्हे दबा देती थी। सरकारे एक दूसरी से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की फिक्र में सत्य और न्याय का गला घोटने से नही चूकती।

यदि कभी कोई बात निकल पडती थी तो उससे दुनिया मे एक हगामा उठ खडा होता था। लोगो को खयाल नही रहता कि रूस मे समाचार बाहर नही आने पाते। जब यूनान अथवा इडोनेशिया मे कोई अनहोनी घटना हो जाती है तो समाचारपत्र और रेडियो इसकी खबरे खूब विस्तार से देते है। परन्तु जब युगोस्लाविया, पोलैड अथवा उत्तरी ईरान के सम्बन्ध मे कोई असाधारण घटना हो जाती है तो सब चुप रहते है। परिणाम यह होता है कि जहा यूनान अथवा इडोनेशिया की खबरो का, जिन्हे प्राप्त करने मे पत्र-प्रतिनिधियो को कोई कठिनाई नही होती, जनता के मस्तिष्क और अत करण पर गहरा प्रभाव होता है वहा रूसी प्रभाव-क्षेत्र की परिस्थिति के सम्बन्ध में जनता अज्ञान मे रह जाती है। इस अज्ञान को कम्युनिस्ट प्रचारक इस तरह और भी गहरा बना देते है कि वे जनता का ध्यान उन देशो से हटाकर, जहा रूस की गलती होती है, उन देशो की ओर ले जाते है जहा ब्रिटेन और अमेरिका की गलती होती है। यही कारण था कि एक समय जहा दुनिया का ध्यान सभी तरफ से खिचकर स्पेन और अर्जेन्टाइना की ओर केन्द्रित होगया था। वहा एशिया तथा यूरोप मे रूसी साम्राज्यवादियो की करतूतो का उसे कुछ भी पता न था।

रूसियो का यह पर्दा इतना गहरा है कि उसे भेदकर प्रकाश को एक भी किरण भीतर नही पहुच पाती। इसी पर्दे के पीछे रहकर सोवियत् अधिकारी और उनके सहायक उन लोगो का नाम-निशान मिटा रहे है, जो तानाशाही और विदेशी शासन के विरुद्ध सिर उठाने की हिम्मत करते है। पोलिश अथवा युगोस्लाव सरकारो की सेनाओ तथा उनके तथाकथित शत्रुओ के मध्य होने वाली घमासान लडाइयो के समाचार कभी-कभी इस काले पर्दे को फाडकर निकल पडते है और कभी-कभी पोलिश अधिकारो द्वारा की जाने वाली हत्याओ की सख्या इतनी अधिक बढ जाती है कि अन्य देशो की सरकारो को उसका विरोध करना पडता है।

फिर भी लोकतत्रवादियो, कम्युनिस्ट-विरोधियो, प्रतिक्रियावादियो और समाजवादियो का सफाया करने की कार्रवाई अबाध रूप से जारी है। आधे यूरोप से ऐसे लोगो का नाम-निशान मिटाया जा रहा है, जो पश्चिमी देशो में स्वाधीनता और उन्नति के आन्दोलनो का नेतृत्व करते है। पहले तो नाजियो ने यूरोप के बुद्धिवादियो तथा निरकुश-शासन-विरोधियो पर सितम ढाये और जो इस दमन से बच रहे उनका सफाया अब बोलशेविक कर रहे है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कम्युनिस्टो ने फिन्लैड से लेकर अल्बानिया तक सभी देशो के गृह-विभागो में रूस मे शिक्षा प्राप्त भूतपूर्व कामिटर्न कर्मचारियो को मत्री

बनवा दिया है ताकि गुप्तचर पुलिस का विभाग उन्ही के नियत्रण मे रहे और उनके द्वारा वे अपनी मनमानी करने मे सफल हो सके।

रूस की तरह रूसी प्रभाव-क्षेत्र में भी कम्युनिस्टो ने पुलिस शक्ति को हथियाने के अतिरिक्त प्रचार द्वारा भी अपना बल बढाया है। कभी-कभी प्रचार पुलिस से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। वीरो के शरीर तलवारो का सामना कर सकते है, किन्तु अधिकाश व्यक्तियो के मस्तिष्क निरतर किये जाने वाले, एकागी प्रचार के अनिवार्य प्रभाव से नही बच सकते।

रूसी प्रभाव क्षेत्र मे सोवियत् सरकार की नीति क्या है? प्रश्न उठता है कि रूस राष्ट्रीय भावना से प्ररित होकर साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण कर रहा है या वह पहले सम्पूर्ण यूरोप को और फिर समस्त एशिया को कम्यु-निस्ट बनाने का षड्यत्र रच रहा है?

इस प्रश्न का उत्तर है कि स्टालिन जैसा कूटनीतिज्ञ सदा एक ही नीति का अनुसरण नही करता। एक तो वह स्वभाव से ही परिवर्तनशील है और दूसरे लोगो की आखो मे धूल झोकने के लिए भी नीति मे परिवर्तन किया करता है। एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह कितने ही उपायो को ग्रहण करता है। यदि ये उपाय या साधन परस्पर विरोधी है तो और भी अच्छा है। इससे विरोधी विचार वालो का समर्थन प्राप्त हो जाता है और आलोचक दुविधा मे पड जाते हैं।

सोवियत् सरकार स्लाव जाति वालो से कहती है कि रूस बडे भाई की तरह उनकी जर्मनो से रक्षा करेगा। सोवियत् प्रचारक नित्य ही इस विरोध को बढाने की चेष्टा करते रहते है। इसमें सदेह नही कि चेकोस्लोवाक, बल्गे-रियन, युगोस्लाव और कितने ही पोल हिटलर से मुक्ति दिलाने के लिए रूसियो के कृतज्ञ है। यद्यपि जर्मनो का पतन हो गया है फिर भी उनके फिर से उठ खडे होने का भय बना हुआ है और इसमें रूसियो का लाभ है। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि उनके फिर से जर्मनो के चगुल में फसने की सम्भावना है। यह तो सम्भावना ही है, किन्तु रूसियो का प्रभुत्व तो अभी है—आज की यथार्थता है।

परन्तु फिन्लैंड, बाल्टिक देश, रूमानिया, हगरी, आस्ट्रिया और अल्बा-निया के निवासी तो स्लाव नही है। पोल स्लाव है, किन्तु वे सदा से रूसियो के कट्टर शत्रु रहे है। पोल स्लाव और कैथोलिक दोनो ही है। इसलिए सभी देशों के स्लावो की एकता का आन्दोलन पूर्वीय यूरोप के टुकडे-टुकडे करके ही रहेगा।

स्लावो की एकता के इस आन्दोलन को रूसी पादरियो का समर्थन प्राप्त है। अखिल जर्मन एकता की तरह यह भी एक जातीय और प्रतिक्रिया-वादी आन्दोलन है। पूर्वीय यूरोप के उदारपथी और समाजवादी इससे घृणा करते है। यहूदी भी इसके विरोधी है।

अखिल स्लाववाद का परिणाम यह होगा कि पोलैड, चेकोस्लोवाकिया बल्गारिया और युगोस्लाविया स्लाव-रूस के उदर मे समा जायगे और उनके पृथक् अस्तित्व का सदा के लिए अत हो जायगा।

स्लाव देशो के भय को दूर करने के लिए रूस ने एक और चाल चली। फरवरी १९४४ मे जब लालसेना एस्थोनिया होती हुई पोलैड की तरफ बढ रही थी, सोवियत्-सघ के भीतर के सोलहो प्रजातन्त्रो को पृथक् सेनाए रखने और विदेशी सम्बन्धो मे स्वतन्त्र होने का अधिकार दे दिया गया। इसी आधार पर स्टालिन ने माल्टा मे रूजवेल्ट और चर्चिल को यूक्रेन तथा श्वेत रूस के प्रजातन्त्रो को स्वतत्र मानने और सयुक्त राष्ट्र मे उन्हे अपने पृथक् प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्रदान करने के लिए मजबूर कर दिया। परन्तु वस्तुस्थिति क्या है?

यूक्रेन, श्वेतरूस, पोलैड, चेकोस्लोवाकिया अथवा युगोस्लावाकिया के जो प्रतिनिधि अतर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे रूस के पक्ष मे मत दिया करते है उन्हे स्वतत्र रूप से कुछ भी करने का अधिकार नही है। सोवियत् प्रभाव-क्षेत्र का जो भी अधिकारी सोवियत् सरकार का आदेश मानने से इकार करता है उसे रूसी अधिकारी अथवा कम्युनिस्ट अपदस्थ कर देते है।

सोवियत् सरकार जानती है कि ऐसी परिस्थिति से सम्बधित देशो मे रूस के विरुद्ध असतोष बढता है और पश्चिमी राष्ट्रो के प्रति सहानुभूति मे वृद्धि होती है। इस सम्भावना का निराकरण करने के लिए कम्युनिस्ट उन देशो के राष्ट्रीय आन्दोलनो मे उत्साहपूर्वक सम्मिलित हो जाते है। १९४६ में चेकोस्लोवाकिया का दौरा समाप्त करने के उपरान्त मारिस हिडस को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहा की प्रत्येक जर्मन वस्तु का बहिष्कार करने में कम्युनिस्ट सबसे आगे है—यहा तक कि वे बीथोवन और शिलर तक के विरुद्ध है। वे प्रत्येक जर्मन को, चाहे वह मजदूर हो अथवा पूँजीपति, सुडेटनलैड से निकाल बाहर करने के लिए कटिबद्ध है। जर्मनी मे कम्युनिस्ट जर्मन राष्ट्रीयता के पुजारी है। उधर फ्रासीसी कम्युनिस्ट जर्मनी के विरुद्ध आन्दोलन करते है।

यूरोप में शान्ति की स्थापना का क्या यही तरीका है कि चेको मे जर्मन-विरोधी भावना की जर्मनो में जर्मन राष्ट्रीयता की और फ्रासीसियो में फ्रासीसी राष्ट्रीयता

की वृद्धि की जाय ? रूसी यह चाल इसलिए चल रहे हैं कि जिससे प्रत्येक देश की राष्ट्रीय शक्ति पर वे अधिकार जमा सकें और उसे रूस का विरोधी होने मे रोक सके। टिटो के ट्रीस्ट पर अधिकार जमाने का समर्थन करने के कारण जब इटली के कम्युनिस्ट दल के अनुयायियो की सख्या घटने लगी तो उसे अपनी नीति मे परिवर्तन करना पडा, क्योंकि सोवियत् सरकार के लिए ट्रीस्ट के प्रश्न पर इटालियन कम्युनिस्टो की सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा इटली में एक शक्तिशाली कम्युनिस्ट दल बनाये रखना कही अधिक महत्त्वपूर्ण था।

रूस ने यूरोप मे जिन देशो से उनके प्रदेश छीने है उन्हे उनके चिर-वाछित अन्य प्रदेश दिलाकर सतुष्ट करने का प्रयत्न भी वह करता है। पोलैंड को एक बडा जर्मन-प्रदेश देकर खुश किया गया है। युगोस्लाविया यूनानी मेसी-डोनिया और ट्रीस्ट माग रहा है। बल्गारिया टर्की के प्रदेश हडप जाना चाहता है। नक्शे के इस काया-पलट से रूस का प्रभाव बढना अनिवार्य है। ऐसा करके रूस विभिम्न देशो की भूमि-विस्तार की आकाक्षा को तुष्ट करने का भी ढोग करना है। तब नया प्रदेश प्राप्त करने वाले राष्ट्र भूल जाते है कि रूस उनसे कुछ छीन भी चुका है। इसके अतिरिक्त, सीमा सम्बन्धी झगडो के कारण प्रत्येक बाल्कान राष्ट्र रूस का समर्थन पाने के लिए उनकी खुशामद करने को बाध्य हो जाता है। अतत इसका परिणाम यह होगा कि जहा एक तरफ रूस के प्रभुत्व तथा प्रभाव मे वृद्धि होगी वहा दूसरी तरफ यूरोप तथा निकटपूर्व मे स्थायी अशान्ति का बीजारोपण हो जायगा।

तानाशाहियो की उन्नति के लिए विदेशी नीति की सफलता आवश्यक है। धुरी राष्ट्रो की शक्ति इसी प्रकार बढी थी। हिटलर ने तो इसे सिद्धान्त का रूप दे दिया था। अमरीकी सरकार के हाथ लगे एक गुप्त कागज को देखने से पता चलता है कि जनरल फ्राको के विदेश-मन्त्री मि० सुनेर का बर्लिन मे स्वागत करते हुए नाजी डिक्टेटर ने कहा था—"स्पेन को घरेलू क्षेत्र मे जिन कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है उनका अत विदेशी नीति की सफलता से एक दिन मे हो सकता है। इतिहास का यही अनुभव है।"

आर्थिक कठिनाइयो तथा सार्वजनिक असतोष का सामना करने के लिए तानाशाहिया राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन देती है। राष्ट्रीय भावना से अन्य देशो पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय उत्तेजना का वातावरण उत्पन्न होते ही तानाशाही सरकार जनता से सहायता और समर्थन की अपील करती है और देश की शक्ति बढाने के लिए लोगों से त्याग करने का अनुरोध करती है।

तानाशाही सरकार अपनी सत्ता कायम रखने और कठिनाइयो को दूर करने के लिए देशभक्ति का राग अलापने लगती है और लोगो को भोजन के स्थान पर बदूक देती है। तानाशाहियो ने शत्रुओ का खूब विज्ञापन किया है। वे डिक्टेटरो के सबसे बडे सहायक है।

एक डिक्टेटर दूसरे की नकल करता है। मुसोलिनी ने अपने मास्को के दूतावास को आदेश दे रखा था कि स्टालिन के तौर-तरीको की सूचना उसे नियमित रूप से मिलती रहनी चाहिए। जिस प्रकार इटालियन गला फाड-फाड कर "ड्यूस! ड्यूस!" चिल्लाते थे और स्पेन के फाशिस्ट "फ्राको! फ्राको" के नारे लगाते थे उसी प्रकार युगोस्लाविया की जनता अब "टिटो! टिटो" चिल्लाने लगी है। यह तानाशाह आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक मामलो मे सोवियत् रूस का अनुकरण कर रहा है।

तानाशाहिया नये देशो मे अपने ही यहा की प्रणाली जारी कर देती है। स्टालिन ९ फरवरी १९४६ को अपने एक भाषण मे कह भी चुका है कि सोवियत् प्रणाली अन्य सभी प्रणालियो की तुलना मे उत्तम है। ऐसी दशा मे स्टालिन के लिए अपने प्रभुत्व मे आने वाले नये देशो मे सोवियत्-व्यवस्था कायम करना बिलकुल स्वाभाविक है।

परन्तु सोवियत् प्रणाली तुरत जारी नही की जा सकती। किसी देश मे वह कितनी शीघ्रता से जारी की जा सकती है यह उस देश की जनता की प्रवृत्तियो तथा राजनीति पर निर्भर रहता है। और ये विभिन्न देशो मे विभिन्न होती है।

टिटो की शिक्षा-दीक्षा मास्को मे हुई थी। उसने युगोस्लाविया मे एक दल का शासन स्थापित किया है। वहा की पुलिस सर्वशक्तिमान् है और उसका सगठन आगपू के ढग पर हुआ है। माल्टा मे स्टालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट के मध्य हुए समझौते के अनुसार टिटो ने अपनी सरकार मे राजनीतिक विरोधियो को स्थान तो दिया, किन्तु कुछ ही दिन बाद उन्हे निकाल भी दिया।

अल्बानिया का तानाशाह होक्सा टिटो के पद-चिह्नो का अनुसरण कर रहा है। ऐसा करने मे उसे टिटो से सहायता मिलती है।

रेडेस्कू के रूमानियन मत्रि-मडल का पतन सहकारी सोवियत् विदेश-मत्री एड्रीविशिस्की के हस्तक्षेप से हुआ था, जो विशेष रूप से इसीलिए बुखारेस्ट गया था। फिर विशिस्की ने एक नया मत्रि-मडल स्थापित किया। इसमें जूलियस मेनीयू के किसान-दल को सम्मिलित नही किया गया, क्योकि वह रूस तथा कम्युनिस्टो का विरोधी था। यह रूमानिया का सबसे बडा राजनीतिक दल था।

बल्गारिया की सरकार मे 'फादरलैंड फ्रट' नामक दल का प्रभुत्व है। इस दल का नेता जार्ज डिमीट्रोव है, जिसे रीखटाग अग्नि-काड के मामले मे ख्याति मिल चुकी है। वह कामिटर्न का अधिकारी भी रह चुका है।

आस्ट्रिया तथा हगरी मे लालसेना के प्रवेश के समय वहा के मत्रि-मडलो मे कम्युनिस्टो की प्रधानता थी, किन्तु जनसाधारण की कम्युनिस्टो से कोई सहानुभूति न थी।

पोलिश सरकार की स्थापना पहले मास्को में हुई थी। कुछ दिन लुबलिन रहने के बाद अन्त मे वह वारसा आगई। सरकार मे कम्युनिस्टो की प्रधानता थी। पहले उसमे किसान दल के नेता मिकोलाजेज्क को नही लिया गया था, जो एक समय निर्वासित पोलिश सरकार का प्रधानमत्री रह चुका था। बाद में पश्चिमी राष्ट्रो के जोर देने पर उसे वारसा में स्थापित सरकार मे सम्मिलित कर लिया गया। यह व्यक्ति राजनीतिक प्रभाव की दृष्टि से पोलिश नेताओ मे सबसे बढकर है, किन्तु राजनीतिक शक्ति उसके हाथो मे अधिक नही है।

फिन्लैंड की सरकार पर कम्युनिस्ट जबरन थोपे गए। इस सरकार को युद्ध के लिए रूस को हरजाना देना पडा। सोवियत् सरकार के आदेश से रूस से युद्ध छेडने केअपराध मे कितने ही फिनिश अफसरो को दड दिया गया। परन्तु सोवियत् प्रभाव-क्षेत्र के अधिकाश देशो की तुलना मे फिन्लैंड को अधिक स्वाधीनता का उपभोग करने दिया गया।

एस्थोनिया, लटाविया और लिथुआनिया के मत्रि-मडलो का सगठन विशुद्ध सोवियत् ढग पर किया गया है।

रूस के प्रभाव-क्षेत्र में जितने भी राष्ट्र है उनमें सबसे अधिक स्वतत्रता तथा लोकतत्रवाद चेकोस्लोवाकिया को प्राप्त है। परन्तु वहा भी कम्युनिस्ट अपनी सख्या से कही अधिक प्रभाव रखते है।

जर्मनी के रूसी क्षेत्र मे स्थानीय शासन कम्युनिस्टो के ही हाथो मे है और इन सब-के-सब कम्युनिस्टो को मास्को में शिक्षा मिल चुकी है।

स्टालिन का पहला कार्य नये रूसी साम्राज्य में कम्युनिस्टो को भेजना था। इससे स्टालिन को शक्ति प्राप्त होती है और बाद में शक्ति बढने पर कम्युनिस्ट अपने सिद्धान्तो को कार्यान्वित भी कर सकते है।

ये कम्युनिस्ट अथवा कम्युनिस्ट प्रधान सरकारे इन देशो की जनता की विचार-धारा का प्रतिनिधित्व नही करती। इसका कोई भी सबूत नही है कि उनकी जनता समाजवाद मे विश्वास करने लगी है। जहा भी स्वतन्त्र चुनाव

हुए—जैसे आस्ट्रिया और हगरी मे—वही कम्युनिस्टो की शक्ति सबसे कम दिखाई पडी। इन चुनावो मे एक प्रकार से रूस के विरुद्ध स्पष्ट मत प्रकट किया गया। यद्यपि जनता ने अपने यहा के कम्युनिस्टो के विरुद्ध मत दिये, किन्तु ऐसा करके उसने रूस के प्रभुत्व के विरुद्ध अपना निर्णय दिया। फिर भी लाल-सेना अपना नियत्रण उन देशो मे बनाये रही। हगरी के चुनाव मे कम्युनिस्टो को केवल थोडे-से मत मिले थे, किन्तु सोवियत् सरकार के प्रभाव से उन्हे मन्त्रि-मडल मे सबसे महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त हो गए।

रूस के प्रभाव क्षेत्र मे कम्युनिस्टो को बहुमत प्राप्त न था, फिर भी उनको अथवा उनसे प्रभावित सरकारो को तानाशाही उपायो, गुप्त पुलिसो तथा रूसी सगीनो के जोर से कायम रखा गया।

इस प्रकार सोवियत् रूस की शक्ति बढने से ससार में तानाशाही के क्षेत्र का विस्तार हो गया है। तानाशाही का प्रथम कार्य उन लोगो को गोली मारना, कैद करना, निर्वासित करना अथवा उन्हे अपने दमन के शिकजे मे कसना होता है, जो आदर्श सम्बन्धी, राष्ट्रीय, धार्मिक, राजनीतिक, वर्गीय, आर्थिक अथवा अन्य किसी भी कारण से उसे अपदस्थ करने की चेष्टा कर सकते है। तानाशाही के विरुद्ध सघर्ष जारी है और रहेगा किन्तु मध्य तथा पूर्वी यूरोप भर में सोवियत् सरकार की सर्वोपरि शक्ति राजनीतिक स्वाधीनता का गला घोट सकती है।

परन्तु तुरत सवाल उठाया जा सकता है कि मध्य तथा पूर्वी यूरोप में स्वाधीनता कभी रही भी है ? वहा तो सदा से ही सामतवाद का दौर-दौरा रहा है।

इस प्रकार की बात अज्ञान अथवा बौद्धिक खोखलेपन के कारण कही जाती है। युद्ध से पूर्व वहा स्वाधीनता अपूर्ण थी। निर्धनता के कारण लोग लोकतत्रवाद का विकास नही कर पाए थे। इन देशो मे सर्वत्र ही जातीय शत्रुता, घूसखोरी, राजनीतिज्ञो की अकुशलता, पुलिस के अत्याचार, जमीदारो, अमीरो और राजाओ का बोल-बाला था। परन्तु इन सभी मे, जहा, आज कम्यु-निस्ट शासन करते है, पहले विरोधी दल थे। हगरी का समाजवादी दल नाजी-विरोधी था और भूमि-प्रणाली मे सुधार का पक्षपाती था। कुछ देशो मे विरोधी दल के हाथ मे कुछ भी शक्ति न थी और उसे दमन का शिकार बनना पडता था। परन्तु कम-से-कम वह पार्लमेंट में चिल्लपो मचा कर अपना पक्ष तो उप-स्थित कर ही सकता था। इन सभी देशो मे विरोधी दल के पत्र थे, जो सर-कार की आलोचना करने से नही चूकते थे। मजदूर सभाए थी और हडताले

की जा सकती थी। लोग देश के बाहर जा सकते थे और बाहर से देश मे वापस आ सकते थे। विदेशी लोग सम्पूर्ण प्रदेश मे खुशी से घूम-फिर सकते थे। विदेशी पत्र और पुस्तके अबाध रूप से आ सकती थी। नागरिक विदेशी रेडियो सुन सकते थे।

युद्ध से पूर्व पोलैंड, रूमानिया तथा पूर्वी यूरोप के अन्य देशो की सरकारो की मै अक्सर आलोचना किया करता था। निश्चय ही प्रगतिशील और समाजवादी वर्गो की इच्छा यही थी कि युद्ध के उपरान्त पूर्वी यूरोप के देशो मे लोकतन्त्रवाद का अधिक विकास हो, न कि यह कि वे स्टालिनवाद के शिकार बन बैठे।

उन लोकतन्त्रवादियो तथा उदार राजनीतिज्ञो की बात मेरी समझ म नही आती, जो लोकतन्त्रवाद के दमन से खुश है और लोकतन्त्रवादियो के विनाश का प्रतिवाद नही करते।

अन्य कितने ही लोगो की तरह मै भी भारतीय स्वाधीनता का समर्थक रहा हू। साम्राज्यवाद एक प्रकार की तानाशाही है और मै उससे घृणा करता हू। हिन्दुस्तान की अग्रेजी हुकूमत ऐसे हजारो लोगो को गिरफ्तार कर लेती है, जिन्होने कोई नियम भग नही किया है और उन्हे बरसो तक जेल मे रखती है। अनेक बार गिरफ्तार व्यक्तियो पर मुकदमे तक नही चलाये जाते। ब्रिटेन के जगी वायुयानो ने आसमान से हिन्दुस्तान के गावो पर मशीनगनो द्वारा गोलियो की वर्षा की है। ये कार्य १९४२ के राजनीतिक उपद्रवो के समय हुए है। परन्तु साधारण वर्षों में भारतीय समाचारपत्र और राजनीतिक दल अग्रेजो की नीति तथा अग्रेजो के अफसरो के विरुद्ध जबानी जिहाद-सा जारी रखते है। सरकार का विरोध करने के लिए सगठन होने दिया जाता है। यह एक पराधीन देश की स्वतत्रता है। स्थिति असतोषजनक है, किन्तु यह एक ऐसी स्वाधीनता है, जिसका रूस अथवा रूमी प्रभुत्व वाले क्षेत्रो मे अभाव है। रूसी जहा भी जाते है, अपनी प्रणाली को साथ ले जाते है। उनके साथ जो सबसे प्रधान वस्तु अन्य देशो में पहुचती है, वह दमन है। रूस इस बात की शखी बघारता है कि उसने मध्य तथा पूर्वी यूरोप से सामतवाद की जडे खोद दी है। परन्तु साथ ही उसने एक ऐसी राजनीतिक तथा बौद्धिक गुलामी को जन्म दिया है, जो कम-से-कम उतनी ही बुरी है।

परन्तु स्टालिन ने अपनी दूरदर्शिता के कारण यह अवश्य अनुभव किया है कि यदि कम्युनिस्ट लोग स्थानीय जनता का समर्थन नही प्राप्त करते तो आगे जाकर एक दिन रूसियो के लिए अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्र मे बने रहना

असम्भव हो जायगा। यही कारण है कि उन्होने मध्य तथा पूर्वी यूरोप मे बड व्यवसायो का राष्ट्रीयकरण और बडी जमीदारियो का बटवारा आरम्भ कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जहा एक तरफ पूजीपतियो और जमीदारो के हाथो से आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति जाती रही है, वहा दूसरी तरफ जिन किसानो और मजदूरो को जमीनें मिली है वे रूसियो का आभार मानने लगे है।

यूरोप के बहुत से भागो मे निर्धन किसानो के हित-साधन के लिए भूमि-प्रणाली के सुधार और वहा के अमीर और विलासी जमीदारो के खात्मे की बहुत अधिक आवश्यकता थी। परन्तु रूसियो ने भूमि-प्रणाली का जो सुधार किया उसका लोगो ने बहुत ही अतिरंजित वर्णन किया है। इनमे से कुछ तो मेरे मित्रो ने ही उन देशो के सम्बन्ध में "दि नेशन" मे लेख लिखे है, जिनका उन्हे ज्ञान नही है। बोलशेविक क्राति से प्रेरणा प्राप्त करके फिन्लैंड, तीनो बाल्टिक राज्य, पोलैड, रुमानिया, बल्गारिया, युगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया मे भूमि-प्रणाली का सुधार पहले ही हो चुका था—यह सुधार होर्थी के हगरी और जर्मनी मे नही हुआ था। भूमि-प्रणाली मे सुधार न होना भी लोकतत्रवादी जर्मनी के पतन का एक कारण था।

फिन्लैड, बाल्टिक राज्य, बल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया ऐसे छोटे किसानो के राज्य है, जो खेतो के स्वय स्वामी है। कुछ जमीदारिया रह गई, किन्तु देश की आर्थिक व्यवस्था मे उनका कुछ भी महत्त्व नही रह गया। रुमानिया और पोलैड मे बची हुई जमीदारियो की सख्या अधिक थी। किन्तु इस पोलैड मे भी कर्जन पक्ति से पूर्व, अर्थात् पोलैड के रूस द्वारा लिये गए भाग मे, युद्ध से पूर्व ही ८० प्रतिशत भाग किसानो के बीच विभाजित किया जा चुका था।

किसी देश में लालसेना के पदार्पण करते ही स्थानीय परिस्थितियो का ध्यान रखे बिना ही भूमि-प्रणाली मे सुधार का कार्य आरम्भ कर दिया जाता है। पोलैड, रुमानिया और हगरी में इसका तात्कालिक परिणाम खाद्य की कमी तथा जनता के कष्टो की वृद्धि के रूप मे दिखाई दिया। जिस प्रकार रूस मे मिली-जुली खेती की प्रणाली शुरू करते समय सोवियत् अधिकारियो ने जनता के कष्टो की तरफ ध्यान नही दिया, वही अन्य देशो में हुआ।

पोलैड में जिन किसानो को भूमि-प्रणाली के सुधार से लाभ हुआ उन्हे अधिक-से-अधिक ८ एकड और कुछ को इतनी कम कि ५ एकड भूमि मिली। इसका परिणाम यह होगा कि वे अपनी माली हालत कभी सुधार न सकेंगे और या हताश होकर उन्हें पूर्वी जर्मनी के हाल में प्राप्त प्रान्तो मे चले जाना पडेगा।

रूस की दुहाई देने वाली लेखिका अन्ना लुइसी स्ट्रॉग ने ३ फरवरी

१९४५ के "नेशन" मे पालेंड की भूमि-प्रणाली के सुधार के सम्बन्ध म लिखा था—"इस प्रकार ९ लाख एकड भूमि को, जिस पर पहले १०००प रिवारा का अधिकार था, १ लाख परिवारो के बीच बाट दिया गया।" पर इसमे प्रत्येक परिवार के हिस्से मे ८ एकड भूमि ही आती है।

५ दिसम्बर १९३५ को पोलिश अर्थ-मत्री क्वीआरकोवस्की न देश का पार्लमेंट को बताया था कि जिन किसानो के पास २५ एकड भूमि है वे औसतन ८ डालर वार्षिक कमाते है। परन्तु उन्हे उन किसानो की तुलना म लखपति कहा जा सकता है, जिनके पास केवल १० या १२ करोड भूमि है। इनका अनुपात कुल जनसख्या में ३१ प्रतिशत है। अन्य ३४ प्रतिशत किसानो के पास इससे छोटे खेत हैं। १ करोड के लगभग किसानो का देश के आर्थिक जीवन मे कुछ स्थान ही नहीं है, क्योकि उनके पास ८ एकड या इससे कुछ ही अधिक भूमि है। उन्हे इतनी कम आय होती है कि वे शहर का कोई भी सामान नही खरीद सकते।

फिर युद्ध के मध्य ही भूमि-प्रणाली मे सुधार की क्या आवश्यकता उत्पन्न हो गई। अन्ना लुइमी स्ट्राग ने इसके कई कारण बताये है। उसने लिखा था—"भूमि-प्रणाली में सुधार से पोलिश सेना के लिए केवल जवान ही अधिक सख्या मे नही मिलते है बल्कि इससे लाखो पोलिश किसानो में पूर्वी प्रशा तथा बोमेरानियन प्रदेशो को प्राप्त करने की इच्छा में भी वृद्धि होती है, क्योकि इन नये प्रदेशो के मिलने पर ही प्रत्येक किसान को १२ एकड भूमि मिल सकती है।" आठ एकड भूमि मिलने पर प्रत्येक पोलिश किसान १२ एकड़ भूमि प्राप्त करने के लिए जर्मनी से लडने को तैयार हो जाता है।

निर्धन देशो मे थोडी भूमि पर खेती को प्रोत्साहन देने से न तो किसानो का रहन-सहन ऊचा हो सकता है और न देश की आर्थिक उन्नति ही सम्भव है।

मध्य और पूर्वी यूरोप मे स्टालिन ने भूमि-प्रणाली मे सुधार की जो चाल चली है उससे इस विस्तृत भू-खड की आर्थिक समस्या हल नही हो सकती। मुख्य समस्या उद्योग-धधो तथा पूजी का अभाव है। इस क्षेत्र मे रूस विवश है। रूस अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्र के तैयार माल की ऐसी बडी मडी बन सकता है, जिसकी माग शायद ही कभी पूरी हो सके। रूस उन देशो के कारखानो के लिए कुछ कच्चा माल दे सकता है, जिस तरह उसने पोलैंड को कपास दी भी है। परन्तु कितने ही वर्षों तक—शायद १५ वर्ष तक—रूस को अपने ही यहा भोजन, निवास-स्थान, कपडा, मशीनी औजार तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ की कमी का सामना करना है। इसलिए वह अन्य देशो को ये चीजे दे नही सकता। उसे तो अन्य देशो से माल मगाने की ही जरूरत पड़ेगी। वह आस्ट्रिया,

हगरी, रुमानिया और पोलैड से तेल, रुमानिया से अनाज हगरी से मास और चेकोस्लोवाकिया से साधारण उपयोग मे आने वाली वस्तुए लेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रूस के प्रभुत्व मे रहने वाले देशो को अमरीका और ब्रिटेन की आर्थिक सहायता पर निर्भर रहना पडेगा। इस सहायता के बिना न तो उनकी आर्थिक अवस्था में सुधार हो सकता है और न राजनीतिक स्थिरता हो हो सकती है। अमेरिका और इग्लैंड का रूसी क्षेत्र मे प्रवेश इन देशो से सोवियत् सरकार की सधि के परिणामस्वरूप ही हो सकता है।

रूस न तो मध्य तथा पूर्वी यूरोप की आर्थिक समस्या का हल कर सकता है और न राष्ट्रीयता के सवाल का ही। हिटलर के सकुचित जाति-वाद, रूस की नीति और अखिल स्लाववाद के परिणामस्वरूप प्राय प्रत्येक देश मे राष्ट्रीयता की लहर जगी हुई है। इस क्षेत्र में चेक सबसे सुसस्कृत है और ये अपने प्रदेश से जर्मनो तथा हगेरियनो को निकाल रहे है। चेकोस्लाविया और पोलैंड के सीमा सम्बन्धी झगडे अभी बने हुए है। धुरी राष्ट्रो ने हगेरियनो को ट्रासिलवानिया प्रदेश देकर अपनी तरफ फोडा था। बाद में वही प्रदेश रुमानिया को देकर स्टालिन ने रुमानियनो को अपनी तरफ से लडने को राजी कर लिया, परन्तु ट्रासिलवानिया में हगेरियन और रुमानियन दोनो ही हैं, इसलिए नई व्यवस्था मे हगेरियन असतुष्ट है। युद्ध के दिनो में युगोस्लाविया में क्रोटो ने सरबो की सामूहिक हत्या की थी। टिटो ने "न्यूयार्क फ्रीवर्ल्ड" पत्रिका के एक विशेष लेख में लिखा था—"जर्मनो के उकसाने पर क्रोटो ने लाखो सरबो को मौत के घाट उतार दिया था। उधर मिहेलोविच के चेटनिको ने जर्मनो तथा इटालियनो द्वारा भडकाये जाने पर लाखों क्रोटो का यही हाल किया था.. .. हमने चेटेनिको, और चेटनिकी सरबो को यह विश्वास दिलाने मे कोई प्रयत्न बाकी नही छोडा कि सभी क्रोट बदमाश नही होते।" प्रश्न यह है कि सरबो को विश्वास हुआ या नही ? सरबो ने क्रोटो को क्षमा नही किया। क्रोट होने के कारण टिटो से और उसके हिमायतों रूस तक से सरब नाराज है। युगोस्लाविया मे सरबो का अनुपात जनसख्या में आधा है। इसी प्रकार क्रोटो द्वारा सरबो को माफ किये जाने की कोई सम्भावना नही है। सरबो के विरुद्ध क्रोटो की स्थिति को सुदृढ बनाने के लिए रूस युगोस्लाविया से बल्गारिया और मेसीडोनिया को मिलाकर एक सघ कायम करना चाहता है। इस सघ मे सरबो की सख्या अपने विरोधियो की अपेक्षा कम रह जायगी। परन्तु इससे राष्ट्रीय कठिनाइयो का अंत नही होगा, इससे तो सघर्ष तथा दमन का ही द्वार खुलेगा।

सीमाओ के उलट-फेर, विशाल जन-समूहो के निर्वासन अथवा अन्य किसी

भी तरीके से राष्ट्रो अथवा उपराष्ट्रो की ये समस्याए हल नही हो सकती। इन्हे हल करने का एक-मात्र उपाय अन्तर्राष्ट्रीयता है। परन्तु सोवियत् सरकार राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर हो रही है और दूसरो से भी ऐसा ही करने को कह रही है। इसलिए मध्य तथा पूर्वी यूरोप के राष्ट्रो के लिए तीन ही रास्ते है—(१) राष्ट्रीय कटुता और सघर्ष जारी रहे, या (२) यूरोपीय राष्ट्रो को मिलाकर एक सयुक्त सघ की स्थापना हो अथवा (३) ये राष्ट्र सोवियत् सघ मे सम्मिलित कर लिये जाय।

पूर्वी यूरोप, जर्मनी और एशिया मे सोवियत् सरकार को एक ऐसा दल चाहिए, जो उसके अपने स्वार्थ को इन क्षेत्रो मे अग्रसर कर सके। कम्युनिस्ट दल इस कार्य मे असफल रहा है, क्योकि उसके अनुयायियो की सख्या अधिक नही रही है। सोवियत् अधिकारियो ने परिस्थिति का सामना करने के लिए तरह-तरह के उपाय किये हैं। बलगारिया मे राष्ट्रवादियो को फुसलाने के लिए उन्होने "फादरलैंड-फ्रट" खोला है। ईरान मे उन्होने डेमोक्रेटिक (लोकतत्री) दल को जन्म दिया है। एक अन्य देश मे उन्होने पीपल्स (जनता का) दल स्थापित किया है।

इस तरह स्पष्ट है कि सोवियत् सरकार की चाल कम्युनिस्ट दलो को यूरोप के अन्य लोकप्रिय लोकतत्रवादी अथवा समाजवादी दलो मे मिला देने की है। उसे आशा है कि सहायता करने पर कम्युनिस्ट अधिक लोकप्रिय दलो पर अधिकार जमा सकेंगे और इस प्रकार रूस को अपने स्वार्थ-साधन का अवसर मिल सकेगा।

कम्युनिस्टो और समाजवादियो का झगडा आज का नही है। यह उस समय का है, जब स्वय रूस मे ही दो दल थे। एक था बोलशेविको का, जो हिंसा द्वारा निम्नवर्ग की सत्ता स्थापित करना चाहते थे। दूसरा दल था मेंशेविको का, जो समाजवाद-युक्त लोकतत्रवाद के समर्थक थे और हिंसा के विरोधी थे। जर्मनी में इसी झगडे के कारण मजदूरो मे फूट पड गई और हिटलर के लिए रास्ता साफ हो गया। कभी-कभी कम्युनिस्ट पार्लमेन्ट मे नाजियो का भी समर्थन करते थे। उनका खयाल था कि वे इसी प्रकार अपनी शक्ति मे वृद्धि कर सकेंगे। इसलिए उन्होने सामाजिक लोकतत्रवादियो का विरोध किया। इससे नाजियो को लाभ हुआ और उन्होने दोनो ही का खात्मा कर दिया।

जर्मनी के सामाजिक लोकतत्रवादी नरम विचारो के थे। १९१८ मे उन्हे देश की सामाजिक व्यवस्था बदलने और सैनिक वर्ग तथा पूजीपतियो के निराकरण करने का अवसर मिला। परन्तु उन्होने आधारभूत सुधार करने का साहस

कभी नही किया । अत मे शक्ति उनके शत्रुओ के हाथ मे चली गई ।

इस प्रकार जर्मनी के दोनो ही श्रमजीवी दलो ने अपने कर्त्तव्य का ठीक तरह पालन नही किया ।

१९३५ मे नाजियो की शक्ति से भयभीत होकर सोवियत् सरकार लोकतत्रवादी देशो से मैत्री बढाने की आवश्यकता का अनुभव करने लगी और उसने अन्य देशो के कम्युनिस्टो को सामाजिक लोकतत्रवादियो से सम्पर्क बढाने का आदेश दिया । तब कम्युनिस्टो ने उन्ही सामाजिक लोकतत्रवादियो के साथ काम करना स्वीकार किया, जिन्हे पहले वे "सामाजिक फाशिस्ट" कहते थे ।

स्पेन मे केटेलोनिया के सामाजिक लोकतत्रवादियो और कम्युनिस्टो ने मिलकर एक गुट बनाया और यह गुट कामिटर्न मे सम्मिलित हो गया । स्पेन के समाजवादी तथा कम्युनिस्ट युवक-सगठनो ने मिलकर एक सयुक्त सस्था बनाई और इसने क्रमश विशुद्ध कम्युनिस्ट दल का रूप ग्रहण कर लिया ।

सोवियत्-सरकार यही तो चाहती थी । कामिटर्न के नेता डिमिट्रोव ने मुझे मई, १९३८ मे बताया कि वह प्रत्येक देश मे कम्युनिस्ट और समाजवादी दलो की एकता चाहता है । उसने यह भी कहा कि अन्त में यह समाजवादी-कम्युनिस्ट सगठन कामिटर्न का स्थान ग्रहण कर लेगा ।

इस प्रकार कामिटर्न भग किये जाने का विचार डिमिट्रोव के मस्तिष्क में १९३८ मे ही था । उसका यह भी खयाल था कि इस सयुक्त सगठन म कम्युनिस्टो का प्रभुत्व रहेगा । अब सोवियत् सरकार तथा कम्युनिस्टो की यही नीति है ।

यूरोप के कम्युनिस्ट दलो ने सामाजिक लोकतत्रवादी शक्तियो से एकता स्थापित करने के लिए कोई भी प्रयत्न शेष नही छोडा है । इससे उस दल के पृथक् अस्तित्व का अत हो जायगा, जिसे श्रमजीवियो का समर्थन कम्युनिस्टो की अपेक्षा अधिक मात्रा मे मिलता रहा है । इससे कम्युनिस्टो को श्रमजीवियो के सयुक्त सगठन को चलाने का अवसर मिल जायगा । कितने ही देशो मे ऐसी पार्टी या तो सरकार बनाकर शासन करेगी और या सरकार पर निर्णयात्मक प्रभाव डालेगी ।

जर्मनी के रूसी क्षेत्र और बर्लिन में लालसेना के अफसरो ने सामाजिक लोकतत्रवादियो को कम्युनिस्टो से मिलकर कार्य करने का आदेश दे दिया है । अधिकाश सामाजिक लोकतत्रवादी इस आदर्श को मान लेते है और जो नही मानते उन्हे साइबेरिया भेज दिया जाता है । अन्य कुछ अमरीकी तथा ब्रिटिश सेना की सहायता से पश्चिमी जर्मनी को भाग गए है ।

सोवियत् सरकार को विश्वास है कि यदि श्रमजीवियो के एक-मात्र सगठन में और मजदूर सभाओ मे कम्युनिस्टो का बोल-बाला बना रहे तो रूस स्थानीय राजनीतिज्ञो की मदद से अपने प्रभाव-क्षेत्र के शासन का सचालन कर सकता है। इस हालत मे लालसेना का अधिकार भी स्थानीय जनता को कम खलेगा। यदि जर्मनी के अमरीकी, ब्रिटिश और फासीसी क्षेत्रो में भी समाजवादियो का जोर बना रह सके तो कम्युनिस्ट और समाजवादियो का मास्को से नियत्रित सयुक्त दल जर्मनी भर मे रूस की सत्ता स्थापित कर सकता है। इस प्रकार सोवियत्-सरकार ने "जर्मनी का क्या होगा ?" प्रश्न का उत्तर दिया है।

जहा तक पूजीवाद और फाशिज्म के विरोध का सम्बन्ध है, समाजवादियो और कम्युनिस्टो में कोई मतभेद नही हो सकता। परन्तु लोकतत्रवाद के विषय मे उनका सैद्धान्तिक मतभेद है। यह उनके मध्य एक गहरी खाई है। समाजवादी लोग ऐसा समाजवाद चाहते है, जो लोकतत्रवाद के साथ हो। और कम्युनिस्ट ? उनके लक्ष्य की व्याख्या प्रसिद्ध जर्मन कम्युनिस्ट-नेता विल्सेलापीक अपने २१ फरवरी, १९४६ के उस भाषण मे कर चुका है, जो उसने समाजवादियो तथा कम्युनिस्टो की एकता के समर्थन मे बर्लिन मे हुए एक प्रदर्शन के अवसर पर दिया था। उसने कहा था—"हमारा लक्ष्य सदा वही सच्चा समाजवाद रहेगा, जिसकी सफलता सोवियत् रूस में दिखाई देती है।"

कम्युनिस्टो की मातृभूमि रूस है। इसीलिए जर्मन के सामाजिक लोकतत्रवादियो ने खुले शब्दो में जर्मन कम्युनिस्टो से प्रश्न किया है कि उनका दल रूसी है या जर्मन ? एक तरफ कम्युनिस्टो का रूसी सरकार से गहरा सम्बन्ध बना हुआ है और दूसरी तरफ समाजवादी लोकतत्रवाद की ओर झुके हुए है। इन विरोधी प्रवृत्तियो के कारण ही श्रमजीवियो के सयुक्त सगठन का काम रुका हुआ है। जब तक एसा नही होता तब तक प्रतिक्रिया, राजतत्रवाद, पादरियों की गुलामी और फाशिज्म का पूर्ण रूप से विनाश नही हो सकता।

कुछ समाजवादियो का कम्युनिस्टो से मिलने की ओर झुकाव रहा है। रूसियो के प्रभाव-क्षेत्र के बाहर के देशो में यह प्रवृत्ति सोवियत् सरकार के दबाव के कारण नही है। वहा यह प्रवृत्ति मुख्यत अपरिवर्त्तनवादियो का बल बढने के कारण उत्पन्न होती है। जब अपरिवर्त्तनवादियो के हाथ मे शक्ति चली जाती है या जाने लगती है तो वामपक्षी अपने मतभेद भूलकर एकता के सूत्र मे बंधने लगते हैं।

यही कारण है कि मजदूर-दल द्वारा चर्चिल को पराजित करने से स्टालिन

प्रसन्न नहीं हुआ । चर्चिल के कट्टरपथीपन और नरेशो से सहानुभूति के कारण स्टालिन अपनी शक्ति बढने की आशा कर सकता था । चर्चिल के हाथ मे शक्ति बनी रहने की अवस्था मे ही कम्युनिस्ट लोग श्रमजीवियो, समाजवादियो और उदारपथियो से एकता की अपील कर सकते थे । परन्तु हुआ यह कि ब्रिटेन मे मजदूर दल की सरकार स्थापित होते ही लास्की ने यूरोप के अन्य देशो के समाजवादियो को कम्युनिस्टो से न मिलने की सलाह दी । समाजवादियो मे कम्युनिस्टो के प्रति घृणा की भावना पहले ही थी, लास्की की सलाह से वह और भी पुष्ट हो गई । परन्तु भविष्य म कम्युनिस्ट दल समाजवादियो के आक्रमण से मुक्त केवल उसी अवस्था मे रह सकता है जब कि यूरोप, रूढिवादियो से मुक्त रहे । मध्यमश्रेणी तथा पेशेवर लोगो को युद्ध-काल में बहुत कष्ट मिला है और राजनीति मे उनकी दिलचस्पी भी बहुत कुछ घट गई है । युद्ध से पूर्व फ्रास मे और हिटलर से पूर्व जर्मनी मे समाजवादी लोग रूढिवादियो का बल बढने पर मध्यम श्रेणी तथा उदारपथियों की तरफ झुकते थे । इधर उदारपथियो की शक्ति घटने पर समाजवादी दल रूढीवादियो से लोहा लेने के लिए अब केवल कम्युनिस्टो के समर्थन पर ही निर्भर रह सकता है ।

इस प्रकार रूढिवादियो का बल बढने पर समाजवादियो और कम्युनिस्टो की एकता को प्रोत्साहन मिलता है। इससे पश्चिम के लोकतत्री राष्ट्रो का बल घटता है और सोवियत् सरकार को प्रसन्नता होती है। फाशिस्टो, प्रतिक्रियावादियो और राजतत्रवादियो की शक्ति घटने पर समाजवादी वर्ग कम्युनिस्टो को धता बताने में समर्थ हो जाते है। तब वे कम्युनिस्ट तानाशाही से अपना बचाव कर सकते है।

इसलिए ब्रिटेन की मजदूर सरकार को समाजवादियो के सम्मेलनों मे लास्की जैसे वक्ताओ को भेजकर ही सतुष्ट न हो जाना चाहिए। उसे यूरोप में उदार तथा लोकतत्रीय प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन देना चाहिए। स्पेन में फ्राको, पुर्तगाल में सालाजार, हगरी में राजतत्रवादी, आस्ट्रिया में जमीदार, जर्मनी मे उद्योगपति और इटली के बचे खुचे फाशिस्ट—ये सब समाजवादियो में कम्युनिस्टो की ओर झुकने की प्रवृत्ति उत्पन्न करते है।

प्रश्न उठता है कि कम्युनिस्ट लोग समाजवादियो का कार्यक्रम क्यो नही स्वीकार करते ? कारण यह है कि कम्युनिस्ट दल मे अनुशासन कडा है और उसका मुख्य कर्त्तव्य रूस के हितो को अग्रसर करना है । यदि कम्युनिस्ट दल का कोई नेता एक नीति ग्रहण करता है और मास्को से आदेश मिलने पर उसमें परिवर्तन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तो उसे "पूंजी-

वादियो का गुलाम'' कहकर बदनाम किया जाता है। कम्युनिस्ट-नेता मे विचार-स्वातन्त्र्य की भावना जहाँ एक बार देखी गई, बस उसे ''ट्राट्स्की का अनुयायी'' या ''फाशिस्ट'' कहा गया। इसलिए कोई भी कम्युनिस्ट दल सोवियत् सरकार की नीति के खिलाफ कुछ नही कर सकता। जब कम्युनिस्ट ''लोकतन्त्रवाद'' की बातें करते है तो उनका मतलब ''सोवियत् लोकतन्त्रवाद'' से होता है, जिसके आवश्यक अग गुप्त पुलिस, एक ही दल और एक ही डिक्टेटर है। कम्युनिस्ट को ''तानाशाही लोकतन्त्रवादी'' कहा जा सकता है।

यदि कम्युनिस्टो को सामाजिक-लोकतन्त्रवादियो का सहयोग प्राप्त हो गया तो यूरोप से लोकतन्त्रवाद और ब्रिटेन के प्रभाव का खात्मा हो जायगा और रूस के प्रभुत्व की पुष्टि हो जायगी। हिटलर के साथ केवल पशु बल था। स्टालिन को राजनीति का भी बल प्राप्त है।

रूसी और ब्रिटिश साम्राज्य का पुराना सघर्ष अब नये सिरे से शुरू हो गया है और उसके विस्तार मे वृद्धि भी हो गई है। पहले वह एशिया तथा पूर्वी यूरोप तक ही सीमित था। अब वह यूरोप के प्रत्येक कोने और एशिया के सभी भागो मे फैल गया है। ससार के अधिक दूर के भागो तक उसका प्रभाव फैला हुआ है। नये हथियारो को काम मे लाया जा रहा है। जारो के शस्त्रागार मे अखिल स्लाववाद, ईसाइयो का यूनानी सम्प्रदाय, कूटनीतिज्ञ, गुप्तचर और सेना के शस्त्रास्त्र थे। बोलशेविको के पास ये सब तो है ही, किन्तु इनके अतिरिक्त सभी देशो मे उनके क्रियाशील राजनीतिक दल फैले हुए है, कम्युनिज्म का आकर्षक सिद्धान्त साम्राज्य-विरोधी नारा है। जहा जारो ने सेनाओ के जोर से दो बार भारत को विजय करने का असफल प्रयत्न किया, वहा सोवियत् सरकार ने समस्त उपनिवेशो की जनता से अपनी पराधीनता की जजीरे तोड फेंकने की अपील की है।

इसके अतिरिक्त, १९वी शताब्दी की अपेक्षा ब्रिटेन कमजोर और रूस शक्तिशाली होगया है। तेहरान और याल्टा में शान्ति की जो व्यवस्था स्टालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट ने मिलकर तैयार की थी उसके परिणामस्वरूप रूस की भारी विजय हुई है और उसे लगभग आधे यूरोप पर अधिकार प्राप्त हो गया है। अग्रेजो का कहना है कि शेष यूरोप को मिलाकर एक पश्चिमी राष्ट्रो का गुट बनाया जाय और रूसी प्रभाव-क्षेत्र के जवाब में ब्रिटेन अथवा ब्रिटेन और फ्रास दोनो ही मिलकर उसका नेतृत्व करे।

प्रश्न है कि क्या इस प्रकार का कोई गुट बनाया जा सकता है? रूस के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर के राष्ट्रो पर एक बार दृष्टिपात तो कीजिये।

नार्वे, स्वीडेन और डेनमार्क सदा से यूरोप की राजनीति से तटस्थ रहते आये है। स्कैंडेनेविया प्रायद्वीप से बाहर के राष्ट्रो से सधि करना अथवा उनसे मिलकर गुट बनाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त, नार्वे, स्वीडेन और डेनमार्क रूस के पडोसी है। ऐसी अवस्था में वे पश्चिमी राष्ट्रो के किसी ऐसे गुट मे कैसे सम्मिलित हो सकते है, जिसका रुख रूस-विरोधी हो।

हालैड और बेल्जियम पश्चिमी राष्ट्रो के गुट में शरीक हो सकते है। किन्तु फ्रास मे जब तक कम्युनिस्टो की वर्तमान शक्ति बनी हुई है तब तक वह ऐसा नही कर सकता। यदि स्पेन और पुर्तगाल में लोकतन्त्रवादी शासन कायम हो जाय तो वे ऐसा कर सकते है। इटली का निर्णय भी एक सीमा तक वहा के कम्युनिस्टो पर निर्भर है। स्विटजरलैड पक्का तटस्थतावादी है। यद्यपि उसकी सहानुभूति ब्रिटेन के साथ है, फिर भी वह किसी गुट मे शामिल नही हो सकता। यूनान मे फूट फैली हुई है। उसका सम्बन्ध ब्रिटेन के साथ हो जाने पर दक्षिण-पक्षियो और वामपक्षियो में विरोध बढेगा और युगोस्लाविया तथा बल्गारिया के बीच कटुता बढेगी। इसलिए यूनान भी गुट मे सम्मिलित होने से हिचकिचाएगा। तुर्की का एक भाग यूरोप मे है और दूसरा एशिया में है। निस्सन्देह उसे ब्रिटेन से बहुत कुछ आशा है, किन्तु वह रूस के आक्रमण की आशका से भयभीत है। ऐसी अवस्था में रूस से सुलह होने की आशा जब तक बनी रहेगी तब तक वह ब्रिटेन के साथ किसी पश्चिमी गुट मे नही शामिल होगा।

जर्मनी को छोडकर यूरोप के शेष देशो का यह हाल है।

दूसरे महायुद्ध मे असख्य जर्मनो ने पशुओ तथा राक्षसो का सा व्यवहार किया है। यदि मानव जाति के विरुद्ध जर्मनो के अपराधो की सूची तैयार की जाय तो जर्मनी की समस्त भूमि एक विशाल काले धब्बे से ढक जायगी। जर्मनी के युद्ध सम्बन्धी तथा उससे पूर्व के अपराधो को किसी प्रकार क्षम्य नही कहा जा सकता। इन सब अपराधो के लिए क्या जर्मनी को कुछ दण्ड न मिलेगा? पराजय और उसके परिणाम ही जर्मनी के लिए दण्ड है। जर्मनी के विरुद्ध ससार के असतोष का सरलता से अन्त नही हो सकता। परन्तु यदि वास्तव मे देखा जाय तो जर्मन जो कुछ कर चुके है उसका पर्याप्त दण्ड देना सम्भव ही नही है क्योकि पहले की जो भी कार्रवाई की जायगी उससे जर्मनी के भीतर के निर्दोष जर्मन और बाहर के निर्दोष जर्मन ऐसे दब जायगे कि ससार की उन्नति मे बाधा पडने लगेगी। एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है। यदि जर्मनी को उसके अपराधो के लिए दण्ड दिया जाय तो दण्ड देने वालो का नैतिक अध -पतन हो जायगा। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें बुराई का बदला भलाई

से देना पडेगा, चाहे जिनके प्रति भलाई की जाय वे इसके योग्य न भी हो

हमारी सभ्यता किधर जा रही है ? यूराप को देखिये या एशिया का—अग्रेज, डच, फासीसी, रूसी, आर्जेन्टाइनी, स्पेनवासी या चीनी किसी को भी देखिये, हमारे ऊपर बर्बरता उसी प्रकार छाती जा रही है, जिस प्रकार फासी पाने वाले व्यक्ति के मस्तक पर कनटोप आ जाता है, परन्तु हमे फासी नही लगाई जाती । हम कनटोप लगाये निरुद्देश्य फिर रहे है । हमारी सभ्यता क्षत-विक्षत होने जा रही है । प्रतिहिसा के इस कुचक्र का कही तो अन्त होना ही चाहिए । प्रश्न यह नही है कि जर्मन अच्छे व्यवहार के योग्य है या नही ? तथ्य की बात तो यह है कि हमे केवल अच्छा व्यवहार करना चाहिए ।

१८ जून १९४५ को पत्र-प्रतिनिधियो के एक सम्मेलन मे भाषण करते हुए जनरल आइज़न होवर ने कहा था "घृणा अथवा हिसा द्वारा आप शान्ति का निर्माण नही कर सकते ।" ये शब्द एक ईसाई के मुह से निकले थे ।

१९४२ मे जब मै महात्मा गाधी के साथ ठहरा हुआ था तो उन्होने मुझसे प्रश्न किया था "आपके राष्ट्रपति चार स्वाधीनताओ की बात कहते है । क्या इनमें स्वतन्त्र होने की स्वाधीनता भी सम्मिलित है ?"

"युद्ध के बाद दुनिया मे सुधार होगा"—मैने उत्तर दिया ।

गाधीजी ने मुझसे दृष्टि मिलाते हुए कहा—"आपको इसमे कोई शक तो नही है ?"

मैने उत्तर दिया—"मुझे आशा है ।"

गाधीजी बोले—"यदि आप मुझे विश्वास दिलाना चाहते है कि आप दुनिया में शान्ति की स्थापना करने मे समर्थ हो सकेगे तो मेरे विचार मे इसके लिए इग्लैड और अमेरिका में अभी से हृदय-परिवर्तन होना आवश्यक है ।" ये शब्द भी एक ईसाई के है—ऐसे ईसाई के, जो हिन्दू है ।

कुछ समय पहले एक पादरी की पत्नी ने मुझसे पूछा था कि शान्ति की स्थापना के लिए पादरी क्या कर सकते हैं । मैने जवाब दिया—"उन्हे ईसाइयो को ईसाई बनाना चाहिए ।"

मै अनेक देशो का भ्रमण कर चुका हू । मै ऐसे हिन्दुओ से मिल चुका हू, जो ईसाई थे; और ऐसे यहूदियो से भी, जो ईसाई थे । मै ऐसे प्रोटेस्टेटो और कैथोलिकों से भी मिल चुका हू, जो ईसाई थे । परन्तु ईसाई देश मैने आज तक नही देखा ।

शान्ति उतनी ही अच्छी होगी, जितने अच्छे वे लोग होगे, जो उसका निर्माण करने जा रहे है ।

जर्मनो, जापानियो और इटालियनो ने जो युद्ध छेडा उसमे उन्हे अग्रेजो, फ्रासीसियो, रूसियो, अमरीकियो तथा अन्य लोगो की मदद मिली थी। म्यूनिख की सधि मे भाग लेने वाले सभी युद्ध-अपराधी थे। सोवियत-नाजी सधि करने वाले भी युद्ध-अपराधी थे। कौन कहता है कि यूरोप में युद्ध-अपराधी केवल जर्मन ही थे ?

सभी जर्मनो को युद्ध-अपराधी नही कहा जा सकता। मै कुछ ऐसे जर्मनो को जानता हू, जो उन लोगो की अपेक्षा कही अधिक नाजी-विरोधी है, जो कहा करते है कि सभी जर्मन नाजी है। १९४५ मे नूरेम्बर्ग मे जर्मन युद्ध-अपराधियो के मामले पर विचार करते हुए जस्टिस राबर्ट जेकसन ने कहा था, "हमारा इरादा समस्त जर्मन राष्ट्र पर अपराध लगाने का नही है। हम यह भी जानते है कि नाजी-दल को बहुमत के आधार पर शक्ति नही प्राप्त हुई थी। यह भी हमे अज्ञात नही है कि उसे उग्र नाजी क्रातिकारियो तथा जर्मन सेनावादियो की दुरभिसधि के कारण अधिकार प्राप्त हुआ था। यह एक ऐतिहासिक सत्य है।"

यह कहना कि नाजियो के हाथ मे अधिकार जनता की सहमति के बिना नही रह सकता था, तानाशाही के सबसे कठोर सत्य की उपेक्षा करना होगा। वह कठोर सत्य यह है कि तानाशाही का शासन जनता की स्वीकृति पर आधारित नही होता। हिटलर द्वारा समस्त जर्मन जनता का समर्थन प्राप्त करने की बात मै किसी तरह नही मान सकता। उसने बहुत से जर्मनो का समर्थन प्राप्त कर लिया था। जिन जर्मनो ने हिटलर का समर्थन नही किया उन्हे भी अपना सहयाग प्रदान करना पडा। क्योकि ऐसा न करने पर या तो उन्हे मौत का शिकार बनना पडता और या जेलो मे जीवन व्यतीत करना पडता।

जर्मनी अथवा जापान के विरुद्ध हम चाहे जितना कडा व्यवहार करे—इससे शान्ति की प्राप्ति नही होगी। तीसरे महायुद्ध—परमाणु युद्ध—की चर्चा चल पडी है। परन्तु यह युद्ध जर्मनी, जापान या इटली नही छेडेगे। वे इच्छा रखते हुए भी ऐसा नही कर सकते।

युद्ध और फाशिज्म केवल जर्मनी तक सीमित नही है। ये तो ससार भर की व्याधिया है। भूगोल, रक्त और जाति की सीमाओ से वे परे है।

निर्धनता, कष्ट, दमन और भेद-भाव विश्वव्यापी है। इन्ही के कारण युद्ध होते है।

राष्ट्रवाद युद्ध छेडता है।

तानाशाह युद्ध छेडते है।

लोकतन्त्रवादी देश युद्ध को रोकने की चेष्टा करते है, किन्तु लोकतन्त्र-वाद सर्वत्र नही है।

जर्मनी के लोकतन्त्रवादी सकोची, सुधारवादी और अहिंसक थे। जर्मनी के सामतो, पूजीपतियो और सेनावादियो के हाथो मे अभी तक शक्ति बनी हुई थी। जर्मन लोकतन्त्रवादियो पर अगुली उठाने वाले अन्य देशो के लोकतन्त्र-वादियो को ही जरा देख ले। स्पेन के लोकतन्त्रवादियो की लाकतन्त्रवाद मे वास्त-विक आस्था है और जर्मनो का जोर भी वहा अधिक नही है। १९३१ से १९३६ तक स्पेन मे सेनावादी, जमीदार, फाशिस्ट और राजतन्त्रवादी प्रजातन्त्र का गला घोटने की तैयारी कर रहे थे, किन्तु वहा के लोकतन्त्रवादियो ने क्या किया? फ्रास मे लोकतन्त्रवाद का जोर था और फ्रासीसी बडी गम्भीरता से उसके पक्ष मे अपने मत प्रदान करते थे। १९३९ से पूर्व लोकतन्त्रवाद के जिन विरोधियो ने अनेक षड्यन्त्रो मे भाग लिया था क्या फ्रासीसियो ने उन्हे देश-निकाला दिया?

अमरीका के प्रगतिशील, उदार तथा लोकतन्त्रवादी दलो को ही लीजिये। क्या वे स्वतन्त्रता के घरेलू दुश्मनो, हब्शियो से घृणा करने वालो और यहूदियो, श्रमजीवियो तथा सुधारो के विरोधियो का खात्मा कर सके है? यदि जर्मनो को दोष देते है तो अपने को भी दोष दीजिये!

कहा जाता है कि जब फ्रास, पोलैंड, युगोस्लाविया, इटली और यूनान मे गुप्त नाजी-विरोधी सस्थाए काम कर सकती थी तो जर्मनी मे क्यो नही, परन्तु यह कहना कहा तक उचित है? युद्ध से पहले ही जर्मन नजरबद कैम्प भर चुके थे। वे उन नाजी-विरोधी जर्मनो से भरे हुए थे, जिन्होने अपने प्राणो को वास्तव मे सकट मे डाला था और उनमे कितने ही उनसे हाथ भी धो बैठे थे। नाजी-अधिकृत देशो मे गुप्त सगठनो के अधिक विशाल और शक्तिशाली होने का कारण यही था कि अभी उनमें नाजियो का दमन चक्र पूरी तरह घूम नही पाया था और दूसरे विदेशी विजेताओ से मुक्ति पाने का विचार भी राष्ट्रीयता की भावना को उकसाकर गुप्त सगठनो का बल बढा रहा था।

लोकतन्त्रवादी देशो के उन नागरिको को, जो मृत्यु का सामना न करने के लिए जर्मनो की निन्दा करते है, स्वय अपने से ही प्रश्न करना चाहिए कि अपने यहाँ की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक बुराइयो को दूर करने के लिए वे स्वय कितना खतरा उठाते है। अधिक-से-अधिक इसके लिए वे अपना कुछ समय अथवा धन खर्च कर देते है। क्या उपर्युक्त बुराइयो को दूर

करने के लिए वे अपने पेशे, परिवार, सामाजिक सम्बन्ध, नौकरी और प्राणो की बलि चढा सकते है ?

स्पेन और रूस के कितने नागरिक अपने तानाशाहो से लडते है ?

१८ अक्टूबर १९४३ को न्यूयार्क मे मि० सुमनर वेल्स ने कहा था— "हम एक सडे-गले और बुरे ससार मे रहते आये है और रह रहे है। जर्मनो की बुराई उस बुराई का अधिक कलुषित अश थी, किन्तु वह कुल बुराई न थी। कुछ-न-कुछ बुराई प्रत्येक देश के हिस्से मे आती है।

जापानियो की युद्ध से पूर्व की और युद्ध-काल की अपराध-सूची लम्बी है। यह कौन कह सकता है कि वह जर्मनो से अधिक लम्बी और बुरी है या नही ? फिर भी जापानियो के प्रति जर्मनो से भिन्न व्यवहार हुआ है। जनरल डगलस मैकार्थर की स्वीकृति से वहा जैसी प्रगतिशील सामाजिक क्रान्ति हुई है उससे अमरीकी प्रतिक्रियावादी तो आश्चर्य मे पड जायगे। लोकतत्रवाद के विरुद्ध विद्रोह करने वाले जापानियो को राजनीतिक जीवन मे भाग लेने से वचित कर दिया गया है। भूमि-प्रणाली के सुधार का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। समाचारपत्रो की स्वाधीनता को प्रोत्साहन दिया गया है। राजनीतिक दलो का जीवन भी स्वच्छन्द हो गया है। केन्द्रीय सरकार बनी हुई है, किन्तु सम्राट् के निरकुश अधिकारो का अत कर दिया गया है। सम्राट् को उसकी धार्मिक महानता तथा मर्यादा से वचित कर दिया गया है। यह सब बिना किसा रक्त-पात अथवा सघर्ष के हो सका है। जनता लोकतत्रवाद के लिए उत्सुक है। लोगो में विदेशियों के विरुद्ध कटुता की भावना भी नही है।

जापानियो के साथ जैसा व्यवहार हुआ है उसे करते समय यह नही सोचा गया कि क्या वे इसके योग्य है। कहा जाता है कि ऐसा होने का कारण यही है कि जापान के प्रति नीति-निर्धारित करने की जिम्मेदारी केवल अमराका के कधो पर थी।

१९४६ में जर्मनी का प्रधान यहूदी धर्मोपदेशक डा० वीक अमेरिका का भ्रमण कर रहा था। वह जर्मनी मे सहस्रो यहूदियो को निर्दयतापूर्वक मारे जाते देख चुका था और स्वय भी एक नज़रबन्द कैम्प मे रह चुका था। उससे जब प्रश्न किया गया कि क्या भविष्य मे जर्मनी लोकतत्रवादी बन सकता है तो उसने उत्तर दिया—"अवश्य, जर्मनी लोकतत्रवादी बन सकता है, किन्तु सब कुछ इस बात पर निर्भर है कि मित्रराष्ट्र जर्मनी में रचनात्मक शक्तियो को प्रोत्साहन देने में कहा तक सफल होते है।" डा० बीक ने कहा कि जर्मनो से हमे घृणा नही करनी चाहिए। यह ठीक है कि मुख्य जिम्मेदारी स्वय जर्मनो

की है, किन्तु जर्मनी ससार का ही एक हिस्सा है और और ससार मे होने के कारण हमें जर्मनी के साथ रहना ही पडेगा ।

जर्मनी के प्रति जो व्यवहार किया गया है वह उसके अपराधो के दड की अपेक्षा जर्मनी के नियत्रण के लिए अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और फ्रास की स्पर्द्धा का परिणाम अधिक है ।

जर्मनी यूरोपीय समस्या का केन्द्र-बिंदु है । रूस ने आरम्भ मे ही पूर्वी प्रशा के एक भाग पर अधिकार कर लिया । जर्मनी के पचम भाग को, जिसमे साइलीशिया, पोमेएनिया तथा पूर्वी प्रशा का शेष भाग है, रूस ने पोलेंड को देकर अपने प्रभुत्व मे कर लिया । जर्मनी के इस भाग की समुचित व्यवस्था पोलेंड कारीगरो तथा अन्य साधनो के अभाव मे स्वय नही कर सकता । इसके अतिरिक्त, जर्मनी का एक-तिहाई भाग रूसी प्रबध में है । एक-तिहाई से कुछ कम अमेरिका के हिस्से मे आया है । शेष मे ब्रिटेन और फ्रास के हिस्से हैं । यदि इन महाशक्तियो मे आपसी होड इसी तरह चलती रही तो जर्मनी मे प्राप्त स्थिति का उपयोग प्रत्येक महाशक्ति प्रतिस्पर्धी के विरुद्ध करने का प्रयत्न करेगी।

जर्मना मे, चीन मे और सभी जगह रूस की नीति अपने नियत्रण के प्रदेश की शक्ति बढाना और अपने नियत्रण से बाहर के प्रदेश की टुकडे-टुकडे करके कमजोर करने की है ।

रूस जर्मनी को कृषि-प्रधान देश बनाने की नीति पर अपने क्षेत्र में अमल नही कर रहा है । परन्तु अन्य क्षेत्रो में कम्युनिस्ट और उनके हिमायती जर्मन कारखानो को तोडने और वहा के उद्योगो को नष्ट करने पर जोर दे रहे है । युद्ध के कारण जो तबाही हुई है और विजेताओ ने जिस पूर्णता से अधिकार कर रखा है उसे देखते हुए जर्मनी से निकट भविष्य में युद्ध छेडने की आशा नही की जा सकती । जर्मनी केवल उसी हालत में युद्ध छेड सकता है जब कि अमेरिका, इग्लैड और रूस ऐसा चाहेगे । जर्मनी को चाहे जितना निरस्त्र किया जाय—उसके उद्योग-धधो को चाहे जितनी पूर्णता से क्यो न नष्ट किया जाय, विजेता-शक्तिया जब चाहे इस प्रवृत्ति को उलट सकती है । जर्मनो ने शस्त्रीकरण का कार्यक्रम रूस की सहायता से १९२२ मे आरम्भ किया था और १६३२ तक गुप्त रूप से सोवियत् भूमि मे वह युद्ध-सामग्री तैयार करता रहा, जिसे तैयार करने पर वार्साई की सधि द्वारा उसे रोक दिया गया था । इस की पुनरावृत्ति किसी भी समय इसी प्रकार अथवा अन्य किसी प्रकार हा सकती है ।

युद्ध में पराजित होने के कारण जर्मनी दूसरो की नीतियो का शिकार बना हुआ है। स्वय उस पर नीति निर्धारित करने की ज़िम्मेदारी नही है। अब वह युद्ध नही छेड सकता। परन्तु उसके लिए युद्ध छिड सकता है।

यूरोप मे युद्ध सबसे शक्तिशाली देश ने ही छेडा है। पहले रोम ने, फिर स्पेन ने, फिर फ्रास ने और फिर जर्मनी ने युद्ध छेडे। कारण स्पष्ट है। सबसे शक्तिशाली देश को ही युद्ध मे विजय पाने की आशा हो सकती है।

: २३ :

अमेरिका और सोवियत् रूस

हब्शी-नेता वाल्टर ह्वाइट, जो काला (आदिम) जातियो के सुधार के लिए स्थापित राष्ट्रीय सघ के सेक्रेटरी थे, अक्सर प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट से मिलने ह्वाइट हाउस जाया करते थे। रूजवेल्ट के मरने के कुछ ही दिनों बाद वह ट्रूमन से मिलने ह्वाइट हाउस गये। ट्रूमन के कमरे में प्रवेश करते हुए ट्रूमन ने उनसे कहा—"मै जानता हूँ कि आप क्या सोच रहे है। आप सोच रहे है कि यह कैसी अजीब बात है कि आज इस कमरे मे प्रेसीडेण्ट नही बैठे है।"

कुछ समय बाद, दो लेखको के साथ बात-चात के दौरान मे प्रेसीडेण्ट ट्रूमन ने कहा—"मै इस पद के लिए इच्छुक नही था और न इसके लिए इच्छुक ही हूँ।"

ट्रूमन अमेरिकन व्यक्तित्व के प्रतीक है। बडप्पन का बोझ उन पर लादा गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलो के सम्बन्ध मे अपनी स्थिति के कारण अमेरिका को जो कार्य करने पड रहे है उनके लिए वह इच्छुक नही है। विदेशो मे लडने के लिए भेजे गए अमेरिकन सैनिको को वापस बुला लेने के लिए अमेरिका मे इतनी अनवरत, इतनी व्यापक और इससे शीघ्र सफलता प्राप्त करने वाली माग पहले कभी नही हुई थी। अमेरिकावासी यही चाहते थे कि विदेशो में भेजे गए उनके सैनिक स्वदेश लौट आये। अमेरिकावासी साम्राज्यवादी नही है। एक अमेरिकन टैक्सो को वफादारी के साथ अदा करता किंतु उनसे नफरत करता है। भारी किस्म के जगी-जहाजो के निर्माण और नौकरशाही के लिए होने वाले खर्चों को घटाने के लिए की जाने वाली माग से बढकर लोकप्रिय कोई दूसरी माग नही है और साथ ही जनरलो और फौजी सरदारो जैसे अलोकप्रिय कोई दूसरे व्यक्ति भी नही। सारे अमेरिका मे सैनिकवाद-विरोधी भावना की ही सबसे अधिक प्रधानता है। अमेरिका के बडे-बडे जनरल और फौजी सरदार अपने अड्डे बनाने के लिए द्वीप, विशाल नौ-सेना, हवाई-सेना, और फौज सगठित

करना चाहते है । कुछ लोग अरब के तैल-क्षेत्र प्राप्त करना चाहते है ।" उनके अनुयायियो मे बहुत से "राष्ट्रवादी" और "देशभक्त" है । अप्रत्यक्ष रूप मे वे उनके लिए शक्तिशाली-साधन है। कभी-कभी कुछ इने-गिने व्यक्तियो की इच्छाओ के सामने, जिनके हाथो मे शासन की बागडोर है, करोडो जनता की इच्छाए कम प्रभावपूर्ण साबित होती है ।

ओकीनावा, सेईपान और ट्रक मे जापानियो के विरुद्ध मोर्चे बन्दी करने की कोई जरूरत नही । जापान मे अमेरिका एक नया कानून बना सकता है और उसे अमल मे लाने के लिए वह जर्मनो को मजबूर भी कर सकता है । इस दृष्टि से जापान मे अमेरिका को अपनी सारी सेनाए मौजूद रखने की कोई बात ही नही रह जाती । फिर भी सैनिकवादी अब यह दलील पेश करेगे कि प्रशान्त महासागर के द्वीप, आइसलैंड या ग्रीनलैंड और एल्यूशियम द्वीप-पुज अपने अधिकार मे रखना और अपेक्षाकृत बडे पैमाने पर शस्त्रीकरण करना रूस के विरुद्ध रक्षात्मक कार्रवाई के ही रूप मे है । ससार की घटनाओ के लिहाज से मुमकिन है कि इस दलील पर जनता की सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया हो।

अमेरिका मे जाति-भेद और रग-भेद की भावना रही है । इस तरह की जाति-भेद या रग-भेद सम्बन्धी असहिष्णुता को न तो जन-तत्रात्मक कहा जा सकता है और न उदारतापूर्ण या मानवोचित ही । फिर भी अमेरिका प्रतिहिंसा या वैर-साधन में तत्पर रहने वाला राष्ट्र नही है । जनता के दबाव के कारण और खास करके पादरियो की ओर से दबाव डाले जाने के कारण फरवरी १९४६ मे सघ-सरकार ने स्वेच्छापूर्वक सगठित समितियो की ओर से जर्मनो के लिए सहायता के रूप मे जहाजो से सामग्रियाँ भेजे जाने की अनुमति दे दी थी । जापान के सम्बन्ध मे जो नीति निर्धारित की गई है उस पर औसत अमेरिकन प्रसन्नता प्रकट करता है । क्योकि यह कठोर न होकर कम खर्च वाली और वास्तविक ही है । अमेरिकन रूसियो की कद्र करते और उनके साथ मैत्रीभाव रखते है। चीनियो के साथ परम्परा से उनका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहा है । उनके लिए यह सोचना कठिन ही है कि इटालियन उनके शत्रु थे ।

चाहे यह उनका आदर्शवाद हो या धर्म या चाहे इतने शान-शौकत के साथ रहने की वजह से यह उनकी अपराध की आत्म-स्वीकृति की भावना हो, किसी को कष्ट भोगते देखकर अमेरिकावासियो मे उसकी प्रतिक्रिया होती है। वे भूखो को भोजन देना चाहेगे । उनका यही आदर्शवाद आक्रमणकारियो, अत्याचारियो और तानाशाहो के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए उन्हे मजबूर कर देता है ।

अमेरिकन उन लोगो का पक्ष लेना चाहते हैं जिनका पल्ला कमजोर पड रहा हो। अमेरिकावासी आजादी को जन्मसिद्ध अधिकार समझते है। वे यही चाहते है कि समार उन्हे अच्छी निगाह से देखे। एक नये और पहले की अपेक्षा उत्तम समार के निर्माण के लिए अमेरिकावासी एक अच्छे प्रसाधन है।

लेकिन अमेरिकन इम बात से डरते है कि कही वे 'शोषण करने का नली' न बन जाय। उनकी अनुभवहीनता और बेवकूफी से कोई बेजा फायदा उठावे, इसके वे विरोधी है। वे इम बात से डरते है कि कही चुस्ती-दुरुस्ती के लिहाज से पुराने देश उनसे बाजी न मार ले जाय। दूसरो की बात पर विचार करते समय अपने ही काम से सरोकार रखना वे अधिक पसन्द करते है। वे सुख-साधनो से सम्पन्न जीवन यापन करने मे ही मग्न रहते है। वे जानते है कि हम अणु-बम, असाधारण कोटि के हवाई किलो, शक्ति-मूलक राजनीति तथा अनेकानेक समस्याओ के युग मे रह रहे है।

इस प्रकार अमेरिकन मस्तिष्क असगतियो या परस्पर-विरोधी विचारो का एक पुज है। अभी तक अमेरिका अपनी युद्धोत्तर समस्याओ को हल करने के प्रयत्न मे लगा हुआ है। वह ससार के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र की हैसियत से अपनी जिम्मेदारियाँ उठाने मे अभ्यस्त नही हो सका है। अमेरिका एक बालक के समान है जिसका हाथ एक शक्तिशाली इजन के वोल्व पर है, जिसके द्वारा कोई भी अनहोनी बात हो सकती है।

१६ अप्रैल १९४५ को प्रेसीडेट ट्रूमन ने काग्रेस को सबसे पहला सन्देश देते हुए कहा था—"आज ऐसे ससार मे जब कि दूरी का महत्त्व अधिकाधिक घटता जा रहा है, भौगोलिक अवरोधो से सुरक्षा प्राप्त करने की कोशिश करना व्यर्थ ही है। वास्तविक सुरक्षा एक मात्र न्याय और कानून मे ही निहित है।" कितनी अच्छी बात उन्होने कही थी! इसी प्रकार २८ अक्टूबर १९४५ को उन्होने कहा था, "हम ससार के किसी भी भाग में अपने लिए एक इच भी भूमि प्राप्त करने के लिए लालायित नही है।" और उन्होने अपने इस वाक्य की पूर्ति इन शब्दो मे की थी, "अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक अड्डे कायम करने के सिवाय हम किसी दूसरे राष्ट्र के प्रदेश को अपने अधिकार मे कर लेने के लिए उत्सुक नही है।" ट्रूमन सुरक्षा के विचार से अड्डे कायम करने के लिए द्वीप प्राप्त करना चाहते है, हालाकि काग्रेस से वह कहते है, "वास्तविक सुरक्षा एक मात्र न्याय और कानून मे ही निहित है।"

एक दिन तो ट्रूमन कानून की बात चलाते है और दूसरे दिन अड्डे के लिए द्वीप प्राप्त करने या युद्ध की बात चलाते है—इसका क्या कारण? इसका कारण यही है कि कानून को अमल मे लाने के साधन के बिना कोई कानून

टिक नही सकता। किन्तु महान् राष्ट्रो पर कानून लाद ही कौन सकता है ? किसी राष्ट्र पर कानून लादने का अन्तिम उपाय, और अधिकाश मामलो में एक मात्र उपाय, यही है कि उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी जाय।

एक ऐसे ससार मे, जिसने अणु को खण्डित किया है और साम्राज्य-वाद की सीमाओ को छिन्न-भिन्न कर दिया है, अमेरिका परस्पर-विरोधी विचार-धाराओ मे फस गया है। ससार के सभी राष्ट्र अभी परस्पर-विरोधी विचार-धारा मे फसे हुए है। यह परस्पर-विरोधी विचार-धारा मानव-जाति का गला घोट सकती है।

कुछ लोगो का आग्रह है कि रूस को अपना प्रसार करने से रोक दिया जाय। लेकिन मान लीजिए कि वह नही चाहता कि उसे कोई रोके। तो क्या इसके मानी यही है कि ससार मे एक तीसरे महासमर—प्रथम अणु-युद्ध का श्रीगणेश हो ? ससार के प्रत्येक राष्ट्र की भाति और खास करके प्रत्येक शक्तिशाली राष्ट्र की भाति रूस का अपना एक अलग कानून है।

इस प्रकार रूस की समस्या ससार मे राष्ट्रीयता की समस्या बन जाती है—ऐसे ससार मे जो या तो अन्तर्राष्ट्रीयता स्थापित करेगा या एक दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध मे फस जायगा।

यहा पर प्रश्न यह उठता है कि तीसरा विश्व-व्यापी युद्ध कैसे हो सकता है ? इसका सूत्रपात कैसे हो सकता है ?

सानफ्रान्सिस्को सम्मेलन (१९४५) शुरू होने के कुछ ही पहले ऐथोनी एडिन ने, जो उस समय ब्रिटेन के विदेश-मत्री थे, ग्लासगो मे भाषण देते हुए कहा था—"जैसा कि पिछले कुछ वर्षों के इतिहास से प्रकट है, हमने हमेशा, इसी बात की कोशिश की है कि यूरोप पर किसी एक राष्ट्र का प्रभुत्व न कायम होने पाये, हालाकि हमारे इस प्रयत्न मे कभी-कभी शिथिलता भी हुई है। हमने अपने लिए कभी ऐसी स्थिति प्राप्त करने की कोशिश नही की है, और न किसी दूसरे राष्ट्र को ही ऐसी स्थिति प्राप्त होने दी है। क्योकि हम जानते है कि अगर ऐसा हुआ तो स्वत हमारी स्वतत्रता शीघ्र ही यूरोप के दूसरो राष्ट्रो की स्वाधीनता के साथ-साथ छिन जायगी। इसी उद्देश्य को लेकर हमने दो महायुद्ध लडे है।"

इसी उद्देश्य को लेकर अमेरिका ने भी दो विश्व-व्यापी युद्ध लडे है।

यूरोप पर किसी एक राष्ट्र का प्रभुत्व कायम न होने देने के लिए पहला और दूसरा महायुद्ध लडने के बाद अब इग्लैड और अमेरिका इस बात के लिए उत्सुक है कि यूरोप पर रूस का प्रभुत्व कायम न होने दिया जाय। अगर

रूस यूरोप पर अकुश कायम कर लेने में सफल हुआ तो वह एशिया पर भी अपना सिक्का जमा लेगा। यूरोप की समस्या और एशिया की समस्या दोनो मिलकर यूरोप-एशिया की समस्या मे परिणत होगई है।

यूरोप या एशिया मे रूसियो का प्रभाव न होन पाए यह अमेरिका का कार्य है और उन्ही कारणो से यह ब्रिटेन का भी।

यूरोप या एशिया के छोटे-छोटे या कमजोर राष्ट्रो या यदि रूसी आक्रमण होता है तो उससे ब्रिटेन और अमेरिका यह समझ सकते है कि यह ससार की १०॥ खरब जनता पर अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए उठाया जाने वाला रूसियो का पहला कदम है, और इसलिए यह ससार के अन्य देशो के लिए एक भारी खतरे के रूप मे है।

हिटलर या जापानियो के आक्रमण से इसी बात का खतरा पैदा हो गया था जो दूसरे महायुद्ध का कारण बना।

हिटलर की दलील थी कि उसने आत्म-रक्षा के लिए युद्ध छेडा है। आक्रमण करने का दोष तो उसने वास्तव में पोलो के मत्थे मढा। जर्मनी की इस दलील पर ससार हसने लगा और उसे युद्ध मे उतरना पडा। पिछले कुछ वर्षों मे बोलशेविको ने आक्रमण करने के इस नाजी तौर-तरीके को अख्तियार किया है। क्या यह सच नही है कि १९३९ मे स्टालिन और मोलोटोव ने आक्रमण के लिए ब्रिटेन और फ्रास को दोषी बताया था ? क्या विदेशो में रहने वाले कम्युनिस्ट तथा अनभिज्ञ और कम्युनिस्टो के साथ के यात्रा करने वाले अन्य सभी यात्री यही बकवाद नही करते थे ?

अक्सर तानाशाह लोग बेतुकी बाते मुह से निकालने के दोषी पाये जाते है, लेकिन वे खुद इस तरह की बेतुकी या थोथी बातो को सच समझते या उनका यकीन करते हो, ऐसी बात नही, बल्कि वे यही आशा करते है कि दूसरे लोग उनकी बातो को सच मान लेगे।

किसी देश पर होने वाला आक्रमण चाहे जितना भी प्रच्छन्न हो, उसे छिपाने के लिए चाहे जितनी भी बहानेबाजी की जाय, लेकिन वह एक तीसरे महायुद्ध का सूचक बन सकता है।

द्वितीय महायुद्ध की पहली चिनगारी १८ सितम्बर १९३१ को भडकी थी, जब कि जापानियो ने मुकडेन को हडप लिया था। लेकिन बहुत लोग युद्ध के इस विस्फोट की आवाज केवल तभी सुन सके जब कि कोई दस साल बाद ७ सितम्बर १९४१ को पर्ल बन्दरगाह में वह पुन प्रतिध्वनित हुआ।

जाहिरा तौर पर बहुत बुद्धिमान् समझे जाने वाले अनेक अमेरिकनो के

मैने लेख पढे है और उनके भाषण भी सुने है । उनका कहना है—"अमेरिका और रूस एक दूसरे से बहुत ही दूरी पर है । प्रदेशो के सम्बन्ध मे इन दोनो मे कोई मतभेद नही है और वे एक दूसरे से लडने क्यो जाय ?"

अमेरिका का तो जर्मनी से भी कोई प्रादेशिक मतभेद नही था । फिर भी अमेरिका को जर्मनी से दो-दो लडाइया लडनी पडी । और उसे यह दोनो लडाइया यूरोप पर किसी एक राष्ट्र का आधिपत्य न स्थापित होने के ही उद्देश्य से लडनी पडी । जो लोग केवल इस बात से सन्तुष्ट है कि सोवियत् रूस और सयुक्तराज्य अमेरिका के बीच कोई प्रादेशिक मतभेद नही है वे भौगोलिक स्थिति पर बहुत अधिक और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बहुत कम ध्यान देते है ।

युद्ध उस हालत मे नही छिडता जब कि कोई बडा राष्ट्र किसी बडे राष्ट्र पर हमला करता है । प्रथम और द्वितीय महासमर तभी आरम्भ हुआ जब कि बडे राष्ट्रो ने छोटे राष्ट्रो पर हमला किया । एबीसीनिया, स्पेन, मचूरिया, आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, अल्बानिया, और पोलैंड पर ही आक्रमण होने पर ओहिमो, लिवरपूल, और लेनिनग्राड से नौजवानो को युद्ध-प्रयाण करना पडा और ससार के सभी भागो मे उनकी कब्रे बनी । छोटे-छोटे राष्ट्रो पर होने वाला आक्रमण ही हमारी आपदाओ की जड होता है ।

क्या रूस आक्रमणकारी राष्ट्र रहा है ?

आक्रमण की सोवियत् परिभाषा, जिसका मसविदा तात्कालीन सोवियत् वदेशिक मन्त्री मैक्सिम लिटविनोव ने तैयार किया था, लाजवाब है । इस रूसी परिभाषा का स्वरूप उस घोषणा-पत्र मे सम्मिलित है जिस पर लडन-सम्मेलन मे, जो कि आक्रमण की परिभाषा निश्चय करने के लिए आयोजित किया गया था, ४ जुलाई १९३३ को सोवियत् रूस और रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, यगोस्लाविया, टर्की और लिथुआनिया के प्रतिनिधियो ने और बाद मे पोलैण्ड, ईरान, अफगानिस्तान, फिन्लैण्ड, इस्थोनिया और लैटविया के प्रतिनिधियो ने भी हस्ताक्षर किये थे ।

उस घोषणा की धारा (२) मे कहा गया है, "आक्रमणकारी वह राष्ट्र समझा जायगा जो निम्नलिखित कार्य पहले करेगा

१ किसी दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना ।

२ युद्ध-घोषणा किये या न किये बिना ही किसी दूसरे राष्ट्र के प्रदेश पर अपनी शस्त्र-सेनाओ के साथ आक्रमण कर देना ।

३ युद्ध-घोषणा किये या न किये बिना ही किसी दूसरे राष्ट्र के

प्रदेश, जहाजो या वायुयानो पर अपनी जल, थल या हवाई सेनाओ द्वारा आक्रमण करना।

४ किसी दूसरे राष्ट्र के समुद्र-तटो अथवा बन्दरगाहो की नाकेबन्दी करना।

५ अपने प्रदेश में उन सशस्त्र दलो को सहायता पहुचाना जिन्होने किसी दूसरे राष्ट्र पर हमला कर दिया हो।"

इस घोषणा-पत्र का "परिशिष्ट" और भी रोचक या दिलचस्प है और वह खास घोषणा-पत्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसमे लिखा है, "इस घोषणा की धारा (२) के अन्तर्गत कोई भी आक्रमणात्मक कार्य अन्य बातो के अलावा निम्नांकित आधार पर औचित्यपूर्ण नही ठहराया जा सकता

"(अ) किसी राष्ट्र की आन्तरिक अवस्था। उदाहरण के लिए उसकी राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक व्यवस्था, हडतालो, क्रान्तियो प्रतिक्रान्तियो अथवा गृह-युद्धो के कारण वहा की शासन-व्यवस्था मे उत्पन्न हुई कथित खराबिया या उथल-पुथल।" आक्रमण की इस सरकारी सोवियत् परिभाषा के अनुसार सोवियत् रूस, फिन्लैण्ड, पोलैण्ड, लैटविया, लिथुआनिया, इस्थोनिया और ईरान में, जो सब-के-सब उस घोषणा-पत्र के हस्ताक्षर-कर्ता थे, रूस ही आक्रमणकारी रहा है।

ऐसी हालत में तीन बडे राष्ट्र-नायको में एकता स्थापित होने की आशा दुराशा मात्र है, जब कि उनमें से एक अपना प्रसार कर रहा है। रूसियो के आक्रमण और प्रसारण को देखकर ब्रिटेन और अमेरिका सतर्क हो गए है। एकता और आक्रमण में कोई मेल नही। एकता और प्रसारण यह दोनो परस्पर विरोधी बाते है।

इसी प्रकार एक ओर तो अमेरिकन सोवियत् मैत्री के लिए और दूसरी ओर इस मैत्री मे खिचाव-तनाव पैदा करने वाले रूसी प्रसारण को माफ कर देने के लिए दलील पेश करना व्यर्थ है।

दिसम्बर १९४१ में जब पोलिश प्रधान मन्त्री जनरल सिकोरस्की मास्को पहुचे थे, तो स्टालिन ने पहले पोलैण्ड से पोलिश-प्रदेश के लिए माग की। १९४३ मे रूसियो ने अंग्रेजो को सूचित किया कि वे बाल्टिक प्रदेशो को रूस मे मिला लेना चाहते है। रूस ने १९४३ में चेकोस्लोवाक प्रदेश के लिए माग की। रूसियो की इस शक्ति-वृद्धि की पुष्टि दिसम्बर १९४३ मे तेहरान-सम्मेलन मे और फिर फरवरी १९४५ मे याल्टा-सम्मेलन मे रूजवेल्ट और स्टालिन ने की थी। यह बात तब की है जब कि युद्ध-कालीन तीनो मित्र-राष्ट्रो (रूस,

ब्रिटेन और अमेरिका) मे कोई गहरी तनातनी या सघर्ष नही हुआ था। यह हिरोशिमा पर अणु-बम गिराये जाने के पहले की बात है। उस समय तो ग्रेट ब्रिटेन और सयुक्तराज्य अमेरिका की सरकार बडी सक्रियता पूर्वक और जोरो के साथ रूस को सहायता पहुचाने मे लगी थी और उसके साथ बहुत ही मैत्री-भाव रखती थी। इसलिए स्टालिन के प्रसारण और शक्ति-विस्तार होने का कारण अणु-बम या रूस के प्रति ऐंग्लो-अमेरिकन वैमनस्य नही बताया जा सकता।

हमने अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे कानून का एक विशिष्ट स्वरूप प्रस्तुत करने के इरादे से द्वितीय महासमर मे पदार्पण किया था। क्योकि जहा तक कानून है वही तक शान्ति है। किन्तु सधियो का अतिक्रमण अराजकता है, विदेशो मे वहा की जनता की इच्छाओ के विरुद्ध सेनाए रखना अराजकता है, रियायते या सुविधाए प्राप्त करने के लिए छोटे-छोटे राष्ट्रो पर दबाव डालना अराजकता है—सही माने मे अराजकता, जिसके कारण १९३९ मे महायुद्ध छिडा। कानून तोडने वाला आक्रमणकारी राष्ट्र अन्य राष्ट्रो की सुरक्षा का अपहरण कर लेता है, लेकिन ज्यादातर अन्त में अपने ही को मुसीबत में फसा लेता है।

'सोवियत् इन वर्ल्ड अफेयर्स' नामक पुस्तक मे मैंने इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है कि पूजीवादी देशो से बोलशविक रूस का क्या सम्बन्ध रहा है। सोवियत् राष्ट्र सघ को वर्षो तक अनावश्यक सशस्त्र हस्तक्षेप, आर्थिक बहिष्कार और आर्थिक प्रतिबन्ध का शिकार बनना पडा था और उसके साथ कूटनीतिक सम्बन्ध नही स्थापित किया गया था। विदेशो मे रहने वाले उसके दूतो की हत्याए हुई और सोवियत् दूतावासो पर हमले हुए थे।

वह एक और ही युग था। यह युग तब तक रहा जब तक कि रूस अपेक्षा-कृत कमजोर और कम्युनिस्ट मनोवृत्ति धारण किय था—जब तक कि वह भयभीत और अनाक्रमणकारी था। अब रूस शक्तिशाली और राष्ट्रवादी बन गया है। अब रूस ने आक्रमण का रुख धारण कर लिया है। अब यह एक बिलकुल नया युग है। अगर रूस भयभीत होता तो वह आक्रमणकारी रुख धारण न करता।

नाज़ी लोग लोकतन्त्रवादी राष्ट्रो को समझ नही सके थे। वे लोकतन्त्र-वादी राष्ट्रो से नफरत करते थे और उनके सकल्प को तुच्छ समझते थे। स्टालिन ने इस तरह का व्यवहार किया है जिससे ऐसा जान पडता है कि वह भी नाज़ियो के-से विचार रखते है। वह अपने तई सचाई के साथ कह सकते है— नेहरू न

और याल्टा सम्मेलनो मे रूजवेल्ट और चर्चिल ने हमे वही दिया था जो कि हम जर्मनी, पोलैण्ड, बालकान प्रदेशो, मचूरिया, कोरिया, म्यूराइल द्वीप-पुज और साखालिन मे प्राप्त करना चाहते थे। उस समय पूर्वी प्रशा का कुछ हिस्सा रूस मे मिला दिया जाना उन्होने मजूर कर लिया था लेकिन इसे वे अन्तिम रूप से स्वीकार कर लेते इसके पूर्व ही मैने दर असल उन भागो को सोवियत् रूस मे मिला लिया और उन्होने इस पर कोई आपत्ति नही प्रकट की। इसके बाद रूमानिया, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, और बल्गारिया मे मैने अपनी इच्छा के अनुसार एकागी सरकारे कायम कर ली। मेरा यह कार्य याल्टा समझौते के विरुद्ध ही हुआ था (याल्टा-सम्मेलन में यह समझौता हुआ था कि यूरोप के किसी देश मे या धुरीराष्ट्रो के भूतपूर्व पिट्ठू देशो मे अस्थायी सरकार कायम करने मे तीनो मित्रराष्ट्रो की सरकारें सहायता प्रदान करेगी और यह कि इस प्रकार की अस्थायी सरकारो का निर्माण तत्सम्बन्धी देशो की जनता के सारे लोकतन्त्रवादी दलो के प्रतिनिधियो को चुनकर किया जायगा) और ट्रूमन, बायर्नेस, एटली और बेविन इस बात को जानते है और उन्होने ऐसा कहा भी है लेकिन इस बारे मे कुछ किया नही है। सच तो यह है कि अमेरिका ने अपने यहा के लोकमत के दबाव की वजह से और वहाँ पर मेरी कम्युनिस्ट-दल की भी मदद से, यूरोप से अपनी अधिकाश सेनाए वापस बुला ली है। पोट्सडम सम्मेलन के समय मैने इस्तम्बोल पर नियत्रण स्थापित करने के लिए टर्की से कार्स और अर्दाहान प्रान्त ले लेने की भी माग की थी जो कि 'दर्रे-दानियाल के जल-डमरूमध्य के भीतर एक दुर्ग है।' अमेरिका और ब्रिटेन उस जलडमरूमध्य का मार्ग खुला रख छोडने के लिए राजी होगा और यह एक अच्छी बात भी थी। लेकिन उस दुर्ग के अपने अधिकार में आ जाने पर हम उस मार्ग को बन्द कर सकते हैं। आश्चर्य है कि यह तमाम बाते इतनी खामोशी के साथ स्वीकार कर ली गई। ये लोग बहुत सक्रिय नही जान पडते। इग्लैण्ड को अपने साम्राज्य में कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है। अरब विद्रोह कर रहे है। चीन में फूट पैदा हो गई है। अमेरिका मे कम्युनिस्ट-दल और उसके "मोर्चे" ने जनता को उलझन मे डाल देने और उदार-वादियो तथा मजदूरो की कार्रवाई को निष्क्रिय बना देने का अच्छा काम किया है। जर्मन कम्युनिस्ट-दल सारे जर्मनी पर अपना दबदबा कायम कर लेने की कोशिश कर रहा है। फ्रेंच कम्युनिस्ट-दल की वजह से फ्रास कोई निर्णयात्मक कार्रवाई करने मे असमर्थ है। यूरोप और एशियावासी भूखो मर रहे है। मैने एक महान् शक्ति-शाली रूसी सम्राज्य का निर्माण किया है। जब उन्होंने इतनी बडी बात मजूर कर ली तो क्या वे इस भुनगे के लिए कोई आपत्ति प्रकट करेंगे ? मै देखूँगा

कि जब मैं ईरान और टर्की की ओर मुखातिब होता हू तो वे क्या करते है ?"

इस तरह के मनोभाव, कठोर राष्ट्रीयता, और तानाशाही राष्ट्र के भीतर आम तौर पर पाई जाने वाली तनातनी के फलस्वरूप युद्ध छिड सकता है। इन्ही कारणो से दूसरा महायुद्ध हुआ था।

इन परिस्थितियो मे कुछ अमेरिकनो और अग्रेजो का कहना है कि अमेरिका को अणु-बम बनाना बन्द कर देना चाहिए। फिर क्यो न टी० एन० टी० बम, असाधारण कोटि के हवाई किले और भारी किस्म के युद्ध-पोतो का बनाना भी बन्द कर दिया जाय ? क्यो न नि शस्त्रीकरण किया जाय ? नि - शस्त्रीकरण के लिए राष्ट्र तैयार क्यो नही है ? इसका कारण यही है कि वे आपस मे सघर्ष होने की सम्भावना देखते है।

मान लीजिए अमेरिका ने अणु-बम बनाना बन्द कर दिया। फिर क्या इस बात की कोई गारन्टी है कि रूस अणु-बम न बनाएगा ? क्या रूस अपने सारे देश के कारखानो और वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ की बिजली के स्टेशनो, बिजली की लाइनो की पूरी-पूरी जाच करने देगा ? यह सवाल मास्को से करना चाहिए। रूस एक पुलिस-राज्य है। वर्षो से सोवियत् नागरिको को अपने देश के ही भीतर एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए पासपोर्ट लेना पडता है और पुलिस में अपना नाम दर्ज कराना पडता है। रूस पहुचने वाले विदेशियो पर वहा की पुलिस कडी निगाह रखती है, जैसा कि वहा पर विदेशी पत्रकारो के सम्बन्ध मे होता है। भले ही वे सिर्फ दृश्य का अवलोकन करने, वहाँ की कुछ साधारण जनता से बातचीत करने और जानकारी हासिल करने के इरादे से किसी छोटे-मोटे प्रान्तीय नगर मे जाना चाहते हो। क्या मास्को के अधिकारी विदेशी विशेषज्ञो को अपने यहा के कल-कारखानो की इस बात का पता लगाने के लिए पूरी तौर से छान-बीन करने देगे कि कही उनमे अणु बम तो नही तैयार किये जा रहे है ? क्या वे इस बात को स्वीकार करेगे कि अणु-बम पर नियत्रण स्थापित करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र सस्था का रूस मे यूरेनियम की खानो और रूसी आणविक कारखानो पर अधिकार हो और उसे उन खानो तथा कारखानो को सचालित करने का अधिकार मिले ? सोवियत्-प्रणाली की कुछ भी जानकारी रखने वाले व्यक्ति के लिए यह बात सर्वथा अकल्पनीय ही है। युद्ध के दिनो में जब अमेरिका रूस को उधार-पट्टा कानून के अन्तर्गत ८० खरब डालर की युद्ध-सामग्रिया पहुचा रहा था उन दिनो भी अमेरिकन अफसरो को सिवाय थोडी देर के लिए सरसरी तौर पर निगाह डालने के, मोर्चे पर या सोवियत् फैक्टरियो में जाने की इजाजत नही दी गई थी।

कुछ लोगो का कहना है कि रूस को अणु बम दे दिया जाय। रूस अणु-बम लेकर क्या करेगा ? क्या वह जर्मनी या जापान के विरुद्ध इसका प्रयोग करेगा ? इसकी अब कोई आवश्यकता नही, क्योकि जर्मनी और जापान को कुचल दिया गया है और उन पर कब्जा कर लिया गया है। क्या वह सयुक्त-राज्य अमेरिका और ब्रिटन के विरुद्ध इसे काम मे लायेगा ? यह तो उसे अणु-बम देने का कोई उचित कारण नही जान पडता। तो क्या वह डराने-धमकाने के उद्देश्य से किसी छोटे देश के विरुद्ध इसे इस्तेमाल करेगा ? यह भी तो उसे अणु-बम देने का कोई उचित कारण नही प्रतीत होता।

उनका कहना है, "लेकिन रूस किसी-न किसी तरह अणु-बम प्राप्त कर लेगा और इस बीच अणु-बम पर ब्रिटेन और अमेरिका के एकाधिकार ने मास्को मे सन्देह पैदा कर दिया है और दो दुनिया के बीच मतभेद की खाई और चौडी कर दी है।" शायद रूस के पास अणु-बम है, या शायद वह इसे प्राप्त कर लेगा। अणु-शक्ति की शोध करने वाले प्रमुख वैज्ञानिक और हेरॉल्ड जे० यूरे ने १९४६ के आरम्भ मे कहा था कि मुमकिन है कि ३ मास के भीतर रूसी अणु-बम तैयार करने लग जाय। अन्य अधिकारी व्यक्तियो का ख्याल है कि रूस को अणु बम तैयार करने मे शायद ५ से १० साल तक का समय लगेगा। लेकिन मान लीजिए कि रूस २ साल या १ साल या ६ महीने के ही भीतर अणु-बम बनाने लगे। यूरोप और एशिया का नक्शा रोजाना नया बन रहा है। और यदि रूस के पास अणु बम है तो यह नक्शा यूरोप और एशिया को हानि पहुचाकर ही बनेगा। यदि रूस के हाथ मे अणु-बम आगया तो यूरोप और एशिया के छोटे-छोटे देश इस समय जितने आतकित हो रहे है उससे भी अधिक आतकित हो उठेगे। ब्रिटेन और अमेरिका को, जो पहले से ही रूस को तुष्ट कर रहे है, उसे और भी तुष्ट करना पड जायगा। रूस को अणु-बम देने पर हम इसी अर्थ मे युद्ध से बचे रहेगे, जैसा कि तुष्टीकरण से राष्ट्र कुछ समय के लिए हमेशा युद्ध से बच जाया करते है। लेकिन तुष्टीकरण के बाद जो युद्ध शुरू होता है वह निकृष्ट ही होता है।

रूस को अणु-बम का रहस्य बता देने से क्या हमारे प्रति उसके सन्देह दूर हो जायगे ?

'यह कहना गलत है कि अमेरिका के पास अणु-बम है'—ऐसा मैने कहा है। मेरी इस बात पर सुनने वालो को विस्मय हुआ है। माना कि अमेरिका के पास अणु-बम है लेकिन उसका उपयोग अमेरिका किन परिस्थितियो में करेगा ?

प्रशान्त महासागर स्थित अमेरिका जहाजी बेडे के प्रधान एडमिरल

चेस्टर निमित्ज के सम्मान मे वाशिंगटन मे दी गई एक दावत के अवसर उन्होने एक बहुत ही आश्चर्यजनक भाषण दिया था। उन्होने कहा था, "जापान पर विजय अणु-बम की वजह से नही प्राप्त हुई। सच तो यह है कि हिरोशिमा के साथ ससार मे अणु-युग आरम्भ होने की घोषणा होने और उस युद्ध मे रूस के पदार्पण करने के पूर्व ही जापान सधि-प्रस्ताव कर चुका था। लेकिन यदि सर्वथा सैनिक दृष्टि से यह कहा जाय कि जापान को हराने मे अणु-बम ने कोई निर्णयात्मक कार्य नही किया तो उसका मतलब यह नही कि इस नये अस्त्र का भयानक सहारकारिता को कम बताने की चेष्टा की जा रही है।"

यदि यह बात सच है—और निमित्ज को यह मालूम होना चाहिए—तो हिरोशिमा पर अणु-बम का गिराया जाना और फिर नागासाका पर दूसरा अणु-बम प्रहार करना निश्चय इस दूसरे महायुद्ध मे हुआ सबसे भारी अत्याचार है, बावजूद इसके कि शायद अणु-बम प्रहार से जापान-विरोधी सघर्ष जल्द समाप्त हो जाने मे सहायता मिली।

जो भी हो, सच तो यह है कि ऐसा ख्याल भी नही किया जा सकता कि शान्ति-काल मे अमेरिका मेक्सिको या अर्जेन्टाइना, फ्रान्स या ब्रिटेन पर अणु-बम से इसलिए प्रहार करने जायगा, कि वह अपने शिकार बने राष्ट्र से कुछ हडप कर लेने की इच्छा रखता है। इस बात की कल्पना उस समय तक नही की जा सकती जब तक कि अमेरिका एक लोकतत्रवादी राष्ट्र है और जब तक अमेरिकन लोक-मत शक्तिशाली, आलोचक एव स्वतत्र सत्ता बनाये हुए है।

अणु-बम के विरुद्ध एक रक्षा-कवच है—और वह है लोकतत्रवाद। स्टालिन को मालूम है कि सयुक्त-राज्य अमेरिका किसी देश के विरुद्ध आक्रमण के उद्देश्य से अणु-बम का प्रयोग न करेगा। उसे शायद इस बात की उम्मीद है कि यदि किसी देश पर कोई आक्रमणकारी हमला करता है तो उसकी रक्षा करने के लिए भी अणु-बम का इस्तेमाल करने से वह हिचकेगा।

अमेरिकन समाचार पत्रो मे मुझे इस आशय के कई लेख या वक्तव्य पढने को मिले है कि सोवियत् अधिकारी हमारी नीयत पर सन्देह करते या अमेरिका से भय खाते है। लेकिन उनके इस कथन की सचाई का उनके लेखो या वक्तव्यो में कोई सबूत मुझे देखने को नही मिला है। बेशक, एक सोवियत् रूस के हिमायती अमेरिकन लेखक जॉसफ बार्नेस ने, रूस की यात्रा समाप्त करके वापस लौटने के कुछ ही दिनो बाद न्यूयार्क में १५ दिसम्बर १९४५ को उनके सम्मान में दी गई एक दावत मे भाषण करते हुए कहा था कि मुझे वहा के

लोगो में 'उद्दण्डता और शेखी बघारने की भावना' देखने को मिली है।

रूस न कोई सन्देह रखता है, न उसे कोई डर है। इसके दो स्पष्ट कारण है ब्रिटिश साम्राज्य का पतन हो रहा है और वह अपनी रक्षात्मक कार्रवाइयो मे लगा है। और अमेरिका ?—वह तो युद्ध मे विजय प्राप्त कर लेने के बाद बेसमझे-बूझे मानसिक और सैनिक विसगठन करने मे व्यस्त है। ब्रिटेन और अमेरिका के अलावा ससार मे कोई तीसरा राष्ट्र है ही नही जो रूस पर हमला कर सके—जर्मनी या जापान, ईरान या फिन्लैड, चीन या फ्रास, कोई भी नही। ब्रिटेन की कमजोरी और अमेरिका का साम्राज्यवादी सैनिक विसगठन—इन दोनो बातो से स्टालिन की हिम्मत बढी है। ताकतवर शक्ति की कद्र करता है।

रूस जिस तरह का कार्य करता है उसका असली कारण यह नही कि वह किसी से डरता है, बल्कि यह कि उसे किसी का डर ही नही रह गया है, और उसे इस बात का इतमीनान हो गया है कि उस पर कोई हमला नही कर सकता।

क्या आप कहेंगे कि मेरा यह विचार रूस की निस्बत गैर ईमानदारी से भरा हुआ, अमेरिका के बारे मे बहुत उदारतापूर्ण और ब्रिटेन के सम्बन्ध मे जरूरत से ज्यादा मैत्री-सूचक है ?

मै अपना कोई विचार प्रकट करने में बडी सावधानी और सयम से काम लेता हू। मैने अमेरिका या ब्रिटिश-सरकारो के कार्यों की आलोचना या निन्दा करने में कभी कोई सकोच नही किया है। स्वतत्रता, प्रगति, शान्ति और मानव-जाति की सुख समृद्धि का मै उपासक हू। जब मुझे ऐसा लगता है कि इन बातो मे कोई दखल देना या बाधा डालना चाहता है, तभी मै बोलता हू। मेरा यह विश्वास नही कि किसी की आलोचना करने के कारण युद्ध छिडते हैं, बल्कि इसके खिलाफ मेरी राय मे आलोचना न होने पर ही युद्ध छिड सकता है। खतरो को चिकनी-चुपडी बाते करके कम बताने या गलतिया करने से युद्ध शायद जल्द छिड जाने की सम्भावना रहती है। हिटलर ने अपनी सेनाए हमला करने के लिए इस वजह मे जर्मनी नही रवाना की थी, क्योकि उनके खिलाफ किसी ने कोई भाषण दिया था या कोई पुस्तक लिखी थी। स्टालिन उस समय सैन्य-सचालन का आदेश नही करते जब कोई ऐसा वक्तव्य या पुस्तक पढते है, जिसमे सोवियत् राष्ट्र-सघ की घोर निन्दा की गई होती है। बल्कि इस तरह से की गई निन्दा या आलोचना का जवाब वह कडी निन्दा या आलोचना से ही देते है।

नाजी जर्मनी के विरुद्ध चर्चिल के आग उगलने पर भी हिटलर ने

१९३९ मे इग्लैंड पर हमला नही किया, उसने बहुत खामोश रहने वाले शांति-प्रिय राष्ट्र पोलैंड को अपना शिकार बनाया और ब्रिटेन को लडाई से बचाना चाहा। २३ अगस्त १९३९ से २२ जून १९४१ तक सोवियत् रूस के अधिकारी-गण न केवल जर्मनी की आलोचना करने से अपने को रोकते रहे बल्कि वे जमनी की खुशामद-दरामद करते रहे और जर्मनी ने रूस पर धावा बोल दिया।

प्रतिक्रियावादी अमेरिकन समाचार-पत्र सघ रेडियो-टिप्पणी-कर्ता, सम्पादकीय लेखक, और अमेरिकन काग्रेस के सदस्यो से जो, रूस के खिलाफ लगातार जिहाद शुरू कर रहे है, मुझे नफरत है। लेकिन यह कहना गलत है कि इन सबकी बातो से युद्ध के जल्द छिडने मे सहायता मिलती है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार यह नही कहा जा सकता कि तटस्थतावादियो के प्रचार के ही फलस्वरूप पर्ल बन्दरगाह पर एकाएक जापानियो के युद्ध शुरू हो जाने के पूर्व तक अमेरिका युद्ध से तटस्थ ही बना रहा।

प्रोपेगण्डा मनोभावो को परिपक्व बना सकता या मनोभावो के परिपक्व होने मे विलम्ब लगा सकता है। लेकिन युद्ध जल्द छिडने मे ठोस फौजी कार्रवाइयो, सेनाओ के सचालन, नगरो पर बम-वर्षा और आक्रमण से अधिक सहायता मिलती है।

क्या ब्रिटिश सरकार या अमरिका ने कोई ऐसी बात की है जिससे सोवियत् रूस को आशका या व्यग्रता प्रकट करने की कोई जरूरत जान पडती हो?

अमेरिकन सरकार की इस बात के लिए आलोचना की गई है कि आर्जेन्टाइना की तानाशाही के विरुद्ध और फ्रैंको के विरुद्ध हस्तक्षेप करने मे उसने उदासीनता दिखाई है। फ्रैंको के विरुद्ध लडाई में मै सक्रियतापूर्वक लगा रहा हूँ और मै तानाशाही से नफरत करता हूँ। लेकिन मेरा ख्याल है कि इस सिद्धान्त के आधार पर शान्ति-स्थापित करना ससार के लिए खतरनाक होगा कि बडे राष्ट्रो को इस बात का अधिकार है कि वे दूसरे राष्ट्रो के मामलो मे, जिनसे वे युद्ध की स्थिति मे नही है, दखल दे। अगर आज कोई लिबरल (उदार) सरकार तानाशाही का तख्ता उलट देने के लिए हस्तक्षेप करती है तो हो सकता है कि कल कोई प्रतिक्रियावादी सरकार लोकतत्री शासन को उलट देने के लिए हस्तक्षेप करे। पहले मामले मे हस्तक्षेप का उद्देश्य ईमानदारी के साथ फाशिस्ट-विरोधी हो सकता है और दूसरे में वह साम्राज्य-वादी।

किसी विदेशी राष्ट्र के हस्तक्षेप करने पर जनता को देशभक्ति सबधी

कारणो से वहा के तानाशाह की छत्र-छाया मे एकत्र होने का अवसर प्राप्त हो जाता है, भले ही वह वर्ण सम्बन्धी तथा आर्थिक कारणा से उसका विरोध ही क्यो न करती हो।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि जो लोग सोवियत् हस्तक्षेप और आक्रमण के हामी है (समर्थन करते है) वही स्पेन और आर्जेन्टाइना के मामले मे अमेरिकन हस्तक्षेप के लिए सबसे ऊँची आवाज उठा रहे थे। लेकिन अगर अमेरिका ने दक्षिणी अमेरिका के मामले मे दखल दिया होता तो वह यूरोप और एशिया के मामलो मे रूसियो के दखल देने का विरोध कैसे कर सकता था?

किसी शान्तिपूर्ण राष्ट्र के मामले मे दखल देना केवल उसी हालत मे ग्राह्य हो सकता है जब कि किसी प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय सस्था द्वारा—जो कि किसी ऐसे एक या दो राष्ट्रो के दबाव मे पडकर कार्य न करती हो जिन्हे उस सस्था की ओर से उस मामले मे हस्तक्षेप करने के लिए चुने जाने की सम्भावना हो—स्वेच्छापूर्वक किये गए निर्णय के ही अनुसार ऐसा किया जाय।

लेकिन सच तो यह है कि यदि अग्रेज और अमेरिकन आर्जेन्टाइना और स्पेन मे तानाशाही की बडे जोर-शोर से निन्दा करते है तब भी वे उनके मामले मे कोई दखल नही देते तो इससे रूस को और भी निश्चित हो जाना चाहिए। क्योकि इससे यह प्रकट हो जाता है कि जब लोकतत्रवादी राष्ट्र कमजोर राष्ट्रो के खिलाफ—जो उनका बहुत कम प्रतिरोध कर सकते है—दखल देने में इतनी हिचकिचाहट दिखा रहे है तो साफ जाहिर है कि वे रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र पर हमला करने मे कितनी अधिक हिचकिचाहट दिखाएगे।

इण्डोनेशिया मे ब्रिटेन ने जो कार्य किये उनकी निन्दा करने का मै एक उचित आधार देखता हूँ। लेकिन जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे ब्रिटेन का यह कार्य एक पतनोन्मुख राष्ट्र को अपने से भी जर्जरित साम्राज्य को सहायता पहुचाने के प्रयत्न के समान था। और रूस को शायद डच और ब्रिटिश साम्राज्यशाही की स्थिति और भी चकनाचूर होते देखकर, जैसा कि जावा की रक्त-रजक घटनाओ से जाहिर होता है, सन्तोष ही हुआ होगा। इसमें कोई शक नही कि अगर कोई उपनिवेश पश्चिमी साम्राज्यवादियो की हुकूमत मे बसने से इन्कार करता है तो इस बात से रूस के लिए कोई खतरा पैदा न होगा।

ग्रीस में ब्रिटिश सरकार के कार्यों की आलोचना की गई है। यह एक जटिल और उलझन-ग्रस्त स्थिति थी। क्योकि दूसरे कई देशो, दुखी और क्षुधार्त्त देशो की भाँति ग्रीस के घरेलू मामले विदेशी राष्ट्रो के खीचतान के

बजाय उसकी अन्दरूनी कशमकश के ही प्रतीक है।

अमरीकन पत्र 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' के ६ मार्च १९४६ के अक मे सुमनर वेल्स ने लिखा "यह बडे दु ख की बात है कि नाजियो के पजे से छुटकारा मिलने के बाद ग्रीस को सोवियत् और ब्रिटिश स्वार्थों के सघर्ष का अड्डा बन जाना पडा है। इससे ग्रीस मे गृह-युद्ध छिडने मे प्रोत्साहन मिला है।.. निकट भविष्य मे सोवियत् रूस, जो कि उस क्षेत्र मे अपना शक्ति-विस्तार करने पर तुला हुआ है और पश्चिमी राष्ट्रो के बीच, जिन्होने भूमध्य सागर, स्वेज नहर, के मार्ग को यातायात के लिए सभी देशो के वास्ते खुला रखने का सकल्प कर लिया है, होने वाले सघर्ष का केन्द्र-स्थल बन रहा है।

अगर ग्रीस मे कम्युनिस्ट दल या वाम-पक्षी दल का दबदबा कायम हो जाता है और अगर रूस उत्तरी अफ्रीका के ट्रिपोलीटानिया को अपने सरक्षण में कर लेने मे सफलीभूत हो गया, तो उसके फलस्वरूप टर्की का आधा हिस्सा घिर जायगा, रूसी शान्ति के सामने ग्रीस बहुत पीछे पड जायगा और निकट भविष्य मे ब्रिटेन की सारी स्थिति खतरे में पड जायगी।

चर्चिल ने ग्रीस के राजतत्रवादियो को प्रोत्साहित करने की गलती की। लेकिन फिर भी चर्चिल के बारे मे कोई आश्चर्य करने की बात नही, ऐसी गलतिया वह पहले बहुत कर चुके है। लेकिन इसके पूर्व ब्रिटेन की टोरी (कट्टरपथी) सरकार ग्रीस मे जो बीडा उठा चुकी थी उससे अब मजदूर सरकार पीछे कैसे हट सकती थी। दक्षिणी यूरोप मे ब्रिटेन के बचे खुचे आधारभूत केन्द्र-स्थलो मे से एक स्थल रूसियो के हाथ पड जाने से बचा लेने के लिए कोशिश करने पर उसे मजबूर हो जाना पडा। ग्रीस मे भीतर से वामपक्षीय दल और कम्युनिस्टो के आन्दोलन और बाहर से डोडिकनीज द्वीप पुज ग्रीस को लौटा दिये जाने के प्रश्न पर सोवियत् रूस का रुख और ग्रीक प्रदेश प्राप्त कर लेने के लिए अल्बानिया और युगोस्लाविया की माग के रूप में रूस उस (ग्रीस) पर अपना प्रभुत्व कायम कर लेने का प्रयत्न करता है, जब कि ब्रिटेन उसके विरुद्ध प्रभावहीन अस्त्रो से लड रहा है।

रूस और पश्चिमी राष्ट्रो के बीच सघर्ष के केन्द्र-स्थल जर्मनी और चीन है। ये दोनो राष्ट्र और ग्रीस तथा इटली तब तक सुख, शान्ति और समृद्धि प्राप्त न कर सकेंगे जब तक कि रूस इग्लैड तथा अमेरिका के सघर्ष का निपटारा नही हो जाता। आज इनमे हरएक पराजित धुरी-राष्ट्रो, छोटे-छोटे तटस्थ राष्ट्रो, चीन या उसके कुछ भाग की जनता को अपनी तरफ खीच लेने की कोशिश कर रहा है।

उनका यह कार्य एक बहुत ही रहस्यपूर्ण और गैर ईमानदारी के साथ किये जाने वाले प्रचार की आड मे हो रहा है। अपने यहा के कम्युनिस्टो के मन के मुताबिक अमेरिकन और ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा जर्मनी में नाजियो का निराकरण नही किया जाता तो उस पर वे बडा हगामा मचाते है। जब बर्लिन का कम्युनिस्ट दैनिक पत्र यह प्रस्ताव करता है कि 'छोटे नाजियो' को कम्युनिस्ट दल मे शामिल होने की इजाजत मिलनी चाहिए और जब उसके कुछ ही दिनो बाद चोटी का जर्मन कम्युनिस्ट विलहेमपीक नाजियो से 'जन सत्तात्मक और फाशिस्ट-विरोधी जर्मनी का सुनिश्चित रूप से निर्माण किये जाने मे' सहायता पहुचाने के लिए अनुरोध करता है तो इस पर निराकरण सम्बन्धी—अमेरिकन और ब्रिटिश कार्रवाइयो के आलोचक चुप्पी साध लेते है—और वे कुछ नही कहते। अगर अधिकृत जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्रो के जर्मन-औद्योगिको को अपना कार-बार शुरू करने की इजाजत दे दी जाती है तो उसका मतलब फौरन यह लगाया जाता है कि यह रूस के खिलाफ युद्ध की तैयारी हो रही है। लेकिन जब जर्मनी के रूसी क्षेत्र मे जर्मन-उद्योग-धधे अपने काम मे फिर लग जाते है तो उसे बुद्धिमत्तापूर्ण राजनीति समझा जाता है।

महत्त्व तो इस बात का है कि जर्मन-उद्योग-धधो का सचालन कौन करता है। जर्मन औद्योगिको के ही कारण हिटलर और युद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। जर्मन औद्योगिको और पूंजीवादी पश्चिमी राष्ट्रो के बीच एक स्वाभाविक और कभी-कभी आर्थिक गठबन्धन होता है। औद्योगिको के अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन और घरेलू कार्यों की कडाई के साथ जाँच होनी चाहिए और उस पर प्रतिरोध लगा देना चाहिए। फिर भी, अग्रेजो की यह दलील बेबुनियाद नही है कि जर्मन-फैक्टरियो के उत्पादन पर रोक लग जाने से बेकारी और अशान्ति उत्पन्न होगी, लोग भूखो मरने लगेगे। फलत पश्चिमी राष्ट्रो के लिए नई कठिनाइया उत्पन्न हो जायगी और कम्युनिस्टो को अपने प्रभाव का प्रसार करने के नये अवसर प्राप्त हो जायगे। सम्भवत इस कठिनाई से बचाव का यही उपाय है कि जर्मनी के उद्योग-धधे चालू तो किये जाय किन्तु उनके सचालक जर्मन औद्योगिक न हो।

लेकिन जर्मनी की परिस्थिति के सम्बन्ध मे सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि जर्मनी का आधा भाग या तो रूस या पोलेड में मिला लिया गया है या वह रूसी अधिकार मे आ गया है। जर्मनी का यह क्षेत्र रूसियो के पजे मे आ गया है और उस पर से पश्चिमी राष्ट्रो का प्रभाव हमेशा के लिए उठ गया

है। जर्मनी के बाकी आधे भाग मे जर्मन कम्युनिस्ट और कतिपय सोवियत् समर्थक अमेरिकन, ब्रिटिश और फ्रेंच ट्रेड यूनियन के सदस्य रूसियो के हितो का प्रसार कर रहे है और ब्रिटन तथा अमेरिका के हितो की जड खोद रहे है।

जर्मनी का पूर्वी अर्धभाग तानाशाही शिकजे मे पड गया है। हिटलर के बनाये नजरबन्द कैम्प फिर खुल गए है और वहाँ पर रूसी झडे फहरा रहे है। जर्मनी के पश्चिमी अर्धभाग मे लोकतत्रवाद की आवाज अब तक बहुत धीमी पडी हुई है। फिर भी वहाँ पर स्वतत्र भावना, स्वतत्र ट्रेड यूनियन, स्वतत्र राजनीतिक दल और स्वतत्र व्यक्ति बने रह सकते है।

रूस और पश्चिमी राष्ट्रो का सम्बन्ध इस प्रकार बिगड जाने का अर्थ यह है कि जर्मनी दो भागो मे विभाजित हो जायगा।

जापान और चीन में सोवियत् सरकार की राजनीतिक अधिकार सबधी शिकायत वाजिब है। जापान अमेरिकन अधिकृत प्रदेश है। कम्युनिस्ट-विरोधी चाग-काई-शेक के शासन मे सयुक्त चीन अमेरिकन प्रभाव-क्षत्र मे निश्चित रूप से सुरक्षित रहेगा।

यह दलील पेश की जा सकती है कि 'अमेरिकन सशस्त्र सेनाओ ने जापान को हराया है।' यह सच है। लेकिन सोवियत् सशस्त्र सेनाओ न हिटलर को बाल्टिक प्रदेशो, पोलैण्ड, रूमानिया, बलगारिया, युगोस्लाविया और हगरी से भगाया और जर्मनी मे हिटलर को कुचलने मे अधिकाश खून बहाया, लेकिन तब भी उन प्रदेशो मे रूस को सबसे प्रमुख स्थिति प्राप्त होने पर अमेरिका आपत्ति प्रकट करता है।

पहले कौन पैदा हुआ—मुर्गी या अण्डा ? इस तरह की बहस हमेशा दिलचस्प लेकिन ज्यादातर व्यर्थ हुआ करती है। टोकियो की खाडी में अमेरिकन सेनाओ के उतरने और जापान को चीन से भगा दिये जाने के बहुत पहले से सोवियत् रूस ने बाल्टिक क्षेत्र, पोलैण्ड, बाल्कन प्रदेश, और मचूरिया के लिए अपने दावे को दाँव पर लगा दिया था। रूस यह कह सकता है कि जापान और चीन मे अमेरिकनो के क्या इरादे है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। चर्चिल ने तो कहा ही था कि ब्रिटेन अपने साम्राज्य को छिन्न-भिन्न न होने देगा। फिर क्यो न रूस अपना साम्राज्य कायम कर लेना चाहे ?

मेरी निजी राय तो यह है कि ब्रिटेन को अपना साम्राज्य खत्म कर देना चाहिए। फिर न रूस साम्राज्य प्राप्त करेगा और न अमेरिका साम्राज्य प्राप्त करने की अभिलाषा रखेगा। और तब युद्ध और युद्ध का खतरा मिट जायगा।

ब्रिटन का साम्राज्यवाद खत्म हो रहा है। अमेरिकन साम्राज्यवाद पूर्णरूप से विकसित नही हुआ है। रूसी साम्राज्यवाद गतिशील, प्रसरणशील है और उसे इस बात की कोई परवाह नही है कि वह एक तुषार-नद की भाँति जिन प्रदेशो पर फैलता जा रहा है वहा भी जनता का क्या भविष्य होगा। ईरान, मचूरिया की लूट-खसोट, पोलैड के प्रदेशो का रूस में मिला लिया जाना, चेकोस्लोवाकिया, जापान, और जर्मनी तथा यूरोप मे कायम की गई दमनकारी सोवियत् कठपुतली सरकारे, यह सब इसी बात के सबूत है।

अमेरिका या ब्रिटेन ने यूरोप मे किसी प्रदेश को हडप लिया हो, या किसी देश को लूटा-खसोटा हो, किसी देश मे पहले तो सरकार कायम की हो और बाद मे उस सरकार मे कोई तबदीली करने से निर्वाचको को मना कर दिया हो, ऐसा नही कहा जा सकता।

अमेरिका के पास एक शक्तिशाली हवाई सेना और नौसेना है और वह अपने अड्डे कायम करने के लिए और अधिक द्वीप प्राप्त कर लेने की कोशिश मे है। रूस ने कई लाख सशस्त्र सैनिको को तैयार कर रखा है, वह पहले से बडी नौसेना का निर्माण कर रहा है और शस्त्रास्त्र तैयार करने वाले कारखानो का उत्पादन बढा रहा है। सच तो यह है कि १९३९ से रूस ने एक विस्तृत साम्राज्य कायम कर लिया है और उसका फैलाव अब तक जारी है, और इस साम्राज्य के भीतर स्वतन्त्रता मर चुकी है।

इसका कोई सबूत नही दिया जा सकता कि अमेरिका या ब्रिटेन रूस पर आक्रमण करने का इरादा रखते है। यह साबित नही किया जा सकता कि रूस अमेरिका या ब्रिटेन पर हमला करने का कोई इरादा रखता है। लेकिन यह साफ जाहिर है कि रूस का विस्तार ससार की एक महान् समस्या है—और इस विस्तार का परिणाम युद्ध होता है।

जर्मनी और जापान पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद कई महीनो तक असख्य अमेरिकनो, अग्रेजो तथा अन्य लोगो के मस्तिष्क को जो सन्देह बेचैन बना रहा था उसका लाभ उन्होने रूसियो को उठाने दिया। वे केवल यही आशा कर सकते थे कि पोलैण्ड, बाल्कान प्रदेशो, आस्ट्रिया, जर्मनी और एशिया मे रूसियो की कार्रवाइया केवल अस्थायी तौर पर हो रही है। वे अपनी जबान बन्द किये चुपचाप देखते रहे। भारी-से-भारी अनिष्ट की आशका रखते हुए भी वे रूस की सराहना करते रहे।

तेहरान, याल्टा, पोट्सडम आदि युद्ध के दौरान मे हुए सभी सम्मेलनो में रूस का एक वोट ब्रिटेन और अमेरिका के दो वोटो के मुकाबले मे

अधिक महत्व रखता था। रूस को नाराज नही किया जा सकता था। इसलिए रूस ने जो भी चाहा ब्रिटेन और अमेरिका ने अपने सद्विवेक के विरुद्ध उसे वही प्रदान किया।

युद्ध-काल से शान्ति-काल की कूटनीति के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए यह आवश्यक था कि समझौते के लिए किये जाने वाले प्रयत्न के स्वरूप मे आधार-भूत परिवर्तन कर दिया जाय। इसके अनुसार युद्ध के बाद लन्दन मे हुए प्रथम सम्मेलन मे, जो कि सितम्बर १९४५ मे हुआ था, अमेरिकन वैदेशिक मत्री बायर्नेस और ब्रिटिश विदेश-मन्त्री बेविन ने मोलोटोव को शान्तिकालीन गणित के लिए एक पाठ सिखाने का प्रयत्न किया। एक बराबर होता है एक के। एक दो से अधिक के बराबर नही होता। मोलोटोव ने कहा नही, ऐसा नही होता। तीनो विदेश मत्रियो के बीच का यह मतभेद इतना बढा हुआ था कि वे इस बात पर भी सहमत नही हुए कि इस सम्मेलन के सम्बन्ध में इस आशय की एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर दी जाय कि तीनो विदेश-मत्रियो मे कोई समझौता नही हो सका। इसी प्रकार मोलोटोव ने शान्ति-सम्मेलन मे फास और चीन को शामिल करने से इकार कर दिया। मोलोटोव चाहते थे कि शान्ति-सम्मेलन मे तीनो बडे राष्ट्रो का ही बोल-बाला हो और तीनो बडे राष्ट्रो में वह आशा रखते थे कि युद्ध-काल की गणित की उलटवासी के अनुसार—अर्थात् एक बराबर होता है दो से अधिक के—रूस का ही बोल-बाला होगा।

प्रकट रूप से रूस का यह इरादा देखकर कि वह ससार के मामले में निर्णायक का स्थान ग्रहण करना चाहता है, पश्चिमी राष्ट्र और चीन घबरा उठे। फिर भी रूस के साथ उनका सम्बन्ध इतना सकट-ग्रस्त और पहले से ही नाजुक हो चुका था कि उसके बारे में व्यर्थ की निराशावादिता प्रकट करने की कोई गुजाइश नही थी। बायर्नेस ने एक बार फिर कोशिश करने का निश्चय किया। दिसम्बर १९४५ मे मास्को में तीनो विदेश-मत्रियो का एक सम्मेलन फिर हुआ। ईरान और टर्की के ज्वलन्त प्रश्न चुपचाप टाल दिये गए। उस सम्मेलन मे सरकारी तौर से जितने भी प्रश्नो पर विचार हुआ उनमे से प्रत्येक प्रश्न पर मोलोटोव विजयी हुए।

सयम और आशावादिता ने सन्देह को अब भी टिकने नही दिया। फरवरी १९४६ मे पहली बार लन्दन मे सयुक्त राष्ट्रो का सम्मेलन हुआ। ग्रीस और युगोस्लाविया के प्रश्न पर बेविन की विशिन्स्की से जोरो की झडप हुई। लेकिन रूस ने ईरान के प्रश्न पर, जहा पर उसके कामरेडो (साथियो) ने स्टालिन के जन्म-स्थान सोवियत् जार्जिया के निकटस्थ प्रदेश, अजरबेजान

में एक 'स्वतन्त्र' सरकार कायम कर ली थी, वार्ता चलाने से इन्कार कर दिया। वह प्रदेश रूसी फौजो के कब्जे मे था । इसके पहले रूस ने उत्तरी ईरान मे तेल के सम्बन्ध मे सुविधाओ की माग की थी, जिसे ईरान सरकार ने ठुकरा दिया था।

इस घटना के फलस्वरूप ब्रिटेन और रूस तथा अमेरिका और रूस मे पारस्परिक सम्बन्धो मे एक सकट-ग्रस्त स्थिति उत्पन्न होगई। लन्दन-सम्मेलन से, जिसमें उन्होने अमेरिकन प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया था, लौटने पर सीनेटर आर्थर एच० वेण्डेनबर्ग ने सीनेट में एक लम्बा भाषण दिया था जिस पर बाद मे विस्तृत रूप से टीका-टिप्पणिया हुई । उस भाषण मे उन्होने प्रश्न किया था, "रूस अब किस बात के लिए कटिबद्ध है ?" आपने कहा, "सोवियत् रूस आज ससार की सबसे बडी पहेली है।" इसके अलावा अमेरिकन वैदेशिक मन्त्री बायर्नेस ने भी उसी सम्मेलन मे एक लम्बे भाषण में अपनी व्यग्रता प्रकट की। उन्होने रूस के 'आक्रमण' का उल्लेख किया और कहा कि ससार की परिस्थिति 'निश्चित या भय से रहित' नही है । उसी दिन सयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के एक दूसरे अमेरिकन प्रतिनिधि जान फॉस्टर डुलेस ने, जो कई बार डिमोक्रेटिक (लोकतन्त्री) सरकार के सलाहकार रह चुके थे, फिलेडेल्फिया मे वैदेशिक नीति सम्बन्धी सघ की बैठक मे कहा, "सोवियत् रूस के साथ मिल-जुलकर काम करना बडा मुश्किल जान पडता है, क्योकि ऐसा लगता है, कि सोवियत् रूस सहयोग करना नही चाहता।"

समाचार पत्रो के स्थायी स्तम्भो के लेखक, टिप्पणीकार, सम्पादक अमरीका और यूरोप तथा अन्य भागो की जनता सम्भावित सकट ग्रस्त परिस्थिति की आशका प्रकट करने लगी। हर-एक यही पूछता, "रूस की बाबत क्या किया जाय ?"

ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री की हैसियत से ५ वर्षो तक महान् परिश्रम करने के उपरान्त चर्चिल, चित्रकार, उन दिनो फ्लोरिडा मे विश्राम कर रहे थ । उन्होने प्रेसीडेण्ट ट्रूमन के साथ एक छोटे से कस्बे फुल्टन, (मिस्न्यूरी) की यात्रा की। व्यग्र ससार उनसे कुछ सुनने के लिए उत्सुक हो उठा। ट्रूमन ने चर्चिल का परिचय कराया और कहा, "मै जानता हू कि अपने भाषण मे चर्चिल कोई रचनात्मक बात कहेगे।" उनको यह बात इसलिए मालूम थी क्योकि वह जानते थे कि चर्चिल का क्या भाषण होगा । और यही बात बायर्नेस को भी मालूम थी।

चर्चिल ने श्रोताओ को सावधान किया, "समय बहुत कम है। रोग

का इलाज करने से यह बेहतर है कि रोग होने ही न दिया जाय।"

उन्होने आगे कहा, "सयुक्त राष्ट्रो की विजय से अभी-अभी जो प्रकाश फैल उठा था उस पर एक काली छाया पड गई है। निकट भविष्य में सोवियत् रूस और उसका कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय सगठन क्या करना चाहता है अथवा उसके विस्तार या लोगो को कम्युनिज्म की दीक्षा देने की प्रवृत्ति की कोई सीमा है या नही, यह कोई नही जानता।"

चर्चिल के ये शब्द बहुत गम्भीर थे। चर्चिल ने कहा—"मेरा यह यकीन नही है कि सोवियत् रूस युद्ध चाहता है। वह केवल युद्ध के परिणामो से लाभ उठाने, अपनी शक्ति और अपने सिद्धान्तो का अनिर्दिष्ट विस्तार करने की अभिलाषा रखता है।

चर्चिल ने प्रस्ताव किया, "अग्रेजी भाषा-भाषी जनता का एक सघ स्थापित होना चाहिए। ब्रिटिश कामनवेल्थ, और साम्राज्य तथा सयुक्त राज्य अमेरिका के बीच विशेष सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए।"

'बिरादराना सघ' की व्याख्या करते हुए चर्चिल ने कहा, "इसके लिए हमारे फौजी सलाहकारो के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बने रहने की आवश्यकता है, जिसके फलस्वरूप प्रच्छन्न खतरो का समान रूप से अध्ययन किया जाय, शस्त्र और सैनिक निर्देश के माध्यम एक से हो, और टेकनिकल कालेजो मे अफसरो और केडटो का परस्पर आदान-प्रदान हो। इस सगठन के साथ ही पारस्परिक सुरक्षा के लिए प्राप्त हुई मौजूदा सुविधाए बनी रहे और सारे ससार में किसी भी देश के अधिकार मे रहने वाले नौ-सैनिक और हवाई अड्डो का सयुक्त रूप से प्रयोग किया जाय। . हम पहले से ही बहुत से द्वीपो का सयुक्त रूप से उपभोग करते है, और निकट भविष्य मे हमे इसके लिए और भी द्वीप प्राप्त हो सकते है। . इस प्रकार चाहे जो भी हो, हमारे लिए अपने को सुरक्षित रखने का यही एक मात्र उपाय है।"

चर्चिल का यह प्रस्ताव बहुत कुछ सैनिक-सधि का-सा जान पडता है।

स्टालिन ने पत्र-प्रतिनिधियो के साथ हुई एक मुलाकात में—जो कि एक बहुत ही असाधारण-सी बात थी—चर्चिल और उनके प्रस्ताव तथा ब्रिटिश मजदूर सरकार की बुरी तरह आलोचना की। सोवियत् समाचार-पत्रो ने चर्चिल की रोषपूर्ण आलोचना की। अमेरिका मे चर्चिल के भाषण की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुई। किसी ने तो उनके इस विश्लेषण को और प्रस्तावित सधि को पसन्द किया, तो दूसरो ने, जिनमें मै भी शामिल था, यह महसूस किया कि जहा चर्चिल ने वर्तमान समय की ज्वलन्त समस्या की ओर हमारा ध्यान खीचकर

सत्कार्य किया है, वहा उनका यह प्रस्ताव खेदजनक और अपर्याप्त है।

ससार की शान्ति इस बात पर निर्भर करती है कि सभी मजदूरो को इतनी मजदूरी पर, जिससे उनका जीवन-निर्वाह हो सके, बराबर काम मिलता रहे। सभी कृषको को जीविकोपार्जन के लिए भूमि प्राप्त हो, सभी जाति और वर्ग के लोगो को स्वतन्त्रता मिले और सभी देश और उपनिवेश आजाद हो जाय। सधियो से ये परिणाम नही निकलते।

यह साधारण मानव का युग नही है। यह वह युग है जिसमे साधारण मनुष्य लगातार मागे करने लगा है। अगर उसे पूरा-पूरा काम नही मिलता, अगर उसे पूरा-पूरा भोजन, शिक्षा, सुरक्षा और अवसर नही मिलता और यदि वह भेद-भाव का शिकार बनने से छुटकारा नही पा जाता तो वह समष्टिवादियो का सहज ही शिकार बन सकता है, जो यह सब चीजें प्रदान करने का वचन देते है और जो इसके बदले मे अपना वादा पूरा करने के पहले ही उसकी आजादी छीन लेते है। लोकतन्त्रवाद को नष्ट कर देने के लिए कम्युनिस्ट लोग लोकतन्त्रवादी ससार की इन सारी अपूर्णताओ से लाभ उठाएगे। यत्र-तत्र और विशेषत दक्षिणी अमेरिका मे फाशिस्ट लोग उसी रण-नीति से काम लेगे।

मास्को के हाथ में एक ऐसा आइना है जो उन लोगो के सकट को, जो उस आइने में देखना पसन्द करते है, अक्सर बहुत बढाकर प्रतिबिम्बित करता है। इसके विरुद्ध कोई सधि या शान्ति प्राप्त करने की अन्य दूसरी राजनीतिक व्यवस्था उनके लिए शक्तिहीन है।

चर्चिल का प्रस्ताव उन्नीसवी सदी का प्रस्ताव है जो शक्ति प्राप्त करने के लिए किया गया है। रूसियो की चुनौती के कुछ पहलुओ का सामना करने के लिए यह पर्याप्त हो सकता है। इससे या तो सोवियत् रूस की सैनिक चाल को रोक दिया जा सकता है या उस स्थिति का मुकाबला करने का यह एक सभावित साधन बन सकता है। लेकिन रूस महज एक राष्ट्र नही और ना ही वह महज पीटर महान् है। वह तो मार्क्स के विकृत और अस्वीकृत रूप द्वारा सज्जित पीटर है। किन्तु फिर भी मार्क्स का यह रूप उन बातो के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक है जो कि अपरिवर्तन की स्थिति मे पडी रहकर जीर्ण-शीर्ण हो गई है।

चर्चिल पीटर के साथ उतने ही कौशल से लड सकता है, जितने कौशल से वह हिटलर से भिडा है। किन्तु मार्क्स के विरुद्ध लडने के लिए उसके पास कोई शस्त्र नही है। वास्तव मे इसमें सदेह करने का कारण नही है कि आज चर्चिल ने हिटलर पर अन्तिम रूप से विजय पा ली है। हिटलर ने भी

सारे ससार को चुनौती दी थी। यदि यूरोप रोग से जर्जरित न हुआ होता तो हिटलर के फौलादी सैन्यदल और उसके गोताखोर बम-वषक यूरोप को इतनी शीघ्रता से ध्वस्त न कर सकते थे। इसी प्रकार एशिया के उपनिवेशो—जावा, बर्मा, और चीन की दुखी जनता भी जापानियो के आक्रमण का मार्ग प्रशस्त करने मे सहायक हुई। हिटलर और जापान की अन्तिम पराजय के लिए यह आवश्यक है कि एक अपेक्षाकृत उत्तम ससार और मानव जाति का साचे मे ढाला जाय—उसका निर्माण किया जाय। अगर ऐसा नही होता तो हिटलर और जापानी सैनिक महाप्रभुओ का स्थान स्टालिन ग्रहण कर लेगे।

हिटलर, मुसोलिनी और हिरोहितो ने लोकतन्त्रवादी ससार को चुनौती दी थी। हमने उनका सिर कुचल दिया। अब रूस लोकतत्री सरकारो को चुनौती दे रहा है। लोकतन्त्रवाद को दी जाने वाली यह सबसे भारी चुनौती है। यह हमारे लिए सुधार करने या मिट जाने की चुनौती है।

इसमे कोई शक नही कि चुनौती दिये जाने वाले राष्ट्र की अपेक्षा चुनौती देने वाले राष्ट्र के लिए सुधार करने की अधिक गुजाइश है। चुनौती देने वाले राष्ट्र की प्रजा किसी बाहरी राष्ट्र की चुनौती को सुन नही सकती, वह फौलादी घेरे के अन्दर बन्द रहती है। चुनौती देने वाला राष्ट्र इसलिए चुनौती नही देता कि वह श्रेष्ठ है, बल्कि इसलिए कि हममे त्रुटियाँ और खामियाँ है।

रूस रहे या न रहे लेकिन भारत मे लोग भूखो मरेगे, चीन मे असन्तोष होगा, ग्रीस मे तनातनी, इटली मे प्रजातन्त्रवाद और स्पेन मे फाशिज्म-विरोधी भावना फैलेगी ही। सोवियत् सरकार अपने को महज़ समस्त विरोधियो का प्रवक्ता या सरदार बना लेती है। वह उनको सगठित करती और उनका शोषण करती है।

रूस को रोकने के लिए ब्रिटिश-अमेरिकन सैनिक सधि के प्रस्ताव का प्रश्न उठाया जाता है, लेकिन इस प्रकार का प्रस्ताव रूस को अपनी सीमाओ के या अपने क्षेत्र के बाहर असर फैलाने से किस प्रकार रोक सकता है? क्या रूस को इस तरह की कार्रवाई करने से रोक देने का उपाय यही है कि सोवियत् प्रदेश पर हमला किया जाय और सोवियत् सरकार को नष्ट कर दिया जाय? अगर इस तरह का हमला हो तो कितने लाख प्राणो की आहुतिया देनी पडेगी? और यदि हमला सफल भी हो जाय तो क्या लोकतन्त्रवाद मे जो घुन लग रहा है उसका निराकरण हो जायगा? हो सकता है कि इसका शायद बिलकुल ही विपरीत प्रभाव हो।

चर्चिल इस समस्या पर सैनिक और कूटनीतिक दृष्टिकोण से विचार

करते है, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि-कोण से नही। लेकिन यह समस्या मुख्यत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ही है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विभिन्न देशो की सरकारो के बीच सम्बन्ध स्थापित करने तक ही सीमित होती थी। यही वैदेशिक नीति कहलाती थी। लेकिन अब एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है, तिस पर भी बहुत कम सरकारो के विदेशी विभागो ने इस बात को महसूस किया है। कूटनीति जनता की समस्याओ से आच्छादित हो उठी है। अमेरिका या चीन से सम्बन्ध एक मात्र चीन सरकार के प्रधान, उसके विदेश-मन्त्री और विदेशी व्यापारियो से ही नही रह गया है। इन सबके ऊपर अमेरिका का चीन से सम्बन्ध अनिवार्य रूप में वहा के भूमि-सुधार और औद्योगीकरण से होगा। अमेरिका, ब्रिटेन और फास का जर्मनी से सम्बन्ध स्थापित होना इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ पर प्रजातन्त्र-वादियो को अपने मे मिला लेने और उनको हडप कर जाने के लिए कम्युनिस्टो के जो प्रयत्न हो रहे है उनसे वे अपने को बचा सकते है या नही ? ब्रिटेन से अमेरिका का सम्बन्ध स्थापित होने का प्रश्न समाजवाद, भारत की स्वतन्त्रता और माल पर लगने वाली चुगी पर निर्भर करता है।

यही वजह है कि कूटनीतिज्ञो का अब पहले का सो कोई खास जामा नही रह गया है। कूटनीति को अब अवश्य ही कूटनीतिक 'कार्रवाइयो,' 'स्मरण पत्रो' 'वार्ताओ' और सरकारी पत्रो के उच्च-शिखर से नीचे उतरकर किसानो की झौंपडियो, फैक्टरियो, और राजनीतिक दलो से अपना सम्बन्ध जोडना पडेगा। कूटनीति को अब अवश्य ही मध्य-वर्ग के लोगो की वैराग्य-भावना और करोडो मनुष्यो का महत्त्वाकाक्षाओ के सवाल को हल करना होगा। क्योकि यही सब बाते अनुचित लाभ उठाने के लिए तानाशाही का हौसला बढाने वाली होती है।

अमेरिका और ब्रिटेन की विदेशी नीतिया विस्तृत आधार पर अवलम्बित और गहराई तक पहुचने वाली होनी चाहिए और उनका सम्बन्ध मानव जीवन से भी होना चाहिए। केवल तभी वे उस चुनौती का सामना कर सकेंगे जो कि रूस ने उन्हे दी है।

सोवियत् रूस के विस्तार को देखकर सयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन की सरकारे अपनी क्षत फौजी-शक्ति को पुन सगठित करने लगी है और जहा कही सम्भव हो सका है उनका सगठन इकट्ठा किया जाने लगा है। सोवियत् रूस और पश्चिमी राष्ट्रो के बीच लगातार तनातनी की स्थिति बनी रहने के फलस्वरूप एग्लो-अमेरिकन सधि, यदि सन्धि के नाम से नही तो व्याव-

हारिक रूप मे, अवश्य हो जायगी ।

लेकिन यदि ब्रिटेन और अमेरिका इस प्रकार की सधि करके ही रह गए तो वे रूस की चुनौती का सामना न कर सकेगे । रूस ससार के प्रत्येक देश मे फूट पैदा करने की कोशिश करेगा । उस अवस्था मे गरीबी और लोकतन्त्रवाद की आधार-मूलक समस्याए हल न होगी । इसके विपरीत जनता को शस्त्रीकरण के भारी बजट से पिस जाना पडेगा और आजादी का दम घुटने लगेगा ।

भौगोलिक दृष्टि से यह दुनिया एक है, लेकिन राजनीतिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से यह एक दुनिया एक न रहकर दो दुनिया हो गई है । और शायद तीन दुनिया—रूस, इग्लैड और अमेरिका और बाकी वह दुनिया जहा इन तीनो राष्ट्रो में सघर्ष होगा ।

वैदेशिक और घरेलू कशमकश के वर्तमान युग मे यूरोप या एशिया का शायद हो कोई राष्ट्र अकेला रहकर टिक सके । इन सभी देशो मे और यहा तक कि उन देशो मे भी, जहा पूर्ण रूप से या आशिक रूप से सोवियत् रूस का प्रभुत्व कायम हो गया है, दो दुनिया अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने के लिए सघर्ष कर रही है ।

ब्रिटिश अमेरिकन दुनिया मे कम्युनिस्ट 'दरारें' आ गई है । पश्चिमी दुनिया का प्रवेश रूसियो के उस क्षेत्र में हो गया है, जहा जनता आजादी के लिए आतुर हो उठी है और वह उस अनवरत तनातनी की स्थिति से छुटकारा पा जाना चाहती है जो कि किसी एक दल की स्वेच्छाचारिता के रूप मे प्रकट होती है ।

इन दोनो दुनिया के बीच का मोर्चा एक सीध मे नही है । कही-कही पर दोनो एक दूसरे को ढके हुए है । फ्रास दो दुनिया है । जर्मनी दो दुनिया है । जहा पर स्वास्थ्य तो है पर अधिक शक्ति नही है, जैसे स्कैण्डिनेविया का क्षेत्र । वहा पर एक दुनिया के विरुद्ध दूसरी दुनिया को सन्तुलित करने का—दोनो दुनिया से फायदा उठाने का और उनमे भी किसी एक का शिकार न बनने का प्रयत्न किया जायगा ।

यह मोर्चा लम्बा है और लडाई लम्बी होगी । लडाई के क्षेत्र बदलते रहेगे । बीच-बीच में खामोशी छा जाया करेगी । विराम सघियो पर हस्ताक्षर होगे । युद्ध-बन्दियो का आदान-प्रदान होगा ।

सधियो से काम न चलेगा । पहले महायुद्ध से दूसरे महायुद्ध का मार्ग अनाक्रमणात्मक सधियो, शान्ति-सम्मेलनो, शान्ति बनाये रखने के लिए गम्भीरता

पूर्वक किये जाने वाले वादो और शान्ति से होने वाले लाभो के आकर्षक उल्लेखो से प्रशस्त हुआ था।

युद्ध राष्ट्रो से सम्बन्धित है। और इसलिए स्वभावत राष्ट्रो के बीच सधियो, समझौतो, अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो और अन्ततोगत्वा विश्व-सरकार के निर्माण द्वारा ही युद्ध का निराकरण हो सकता है।

नाजी जर्मनी के मुकाबले मे पोलैण्ड की कमजोरी ही युद्ध का तात्कालिक कारण बनी थी। यदि पोलैंड को एक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की सहायता प्राप्त हुई होती और यदि हिटलर को यह मालूम हो जाता कि अगर उसने पोलैण्ड पर (या अन्य किसी राष्ट्र पर) हमला किया तो वह पोलैण्ड की रक्षा के लिए बढेगा तो सभवत युद्ध रोका जा सकता था।

लेकिन इस सत्य को स्वीकार करना ससार की परिस्थिति को जरूरत से ज्यादा सरल बना देना है। सच बात तो यह है कि पोलैण्ड को किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की सहायता प्राप्त नही थी और उस समय वह इस तरह की कोई सहायता प्राप्त भी नही कर सकता था क्योकि उस समय का अन्तर्राष्ट्रीय सगठन एग्लो-फ्रेंच गुट और सोवियत् रूस के बीच मतभेद होने और अमेरिका के तटस्थ रहने के कारण शक्तिहीन हो गया था।

पहले की अपेक्षा आज परिस्थिति अच्छी है क्योकि आज सामूहिक सुरक्षा प्राप्त हो सकती है।

किसी ऐसे क्षेत्र मे जहा अमेरिका अपनी शक्ति बढाना चाहे वहा शायद राष्ट्रो का कोई भी गुट उसे रोक नही सकता। लेकिन इस बात की सम्भावना नही है कि अमेरिका शक्ति-विस्तार के लिए युद्ध करने जायगा। और इग्लैंड को कोई आक्रमणात्मक कार्रवाई करने से रोका जा सकता है।

यदि प्रत्यक्ष रूप से या एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन के जरिये ब्रिटेन और अमेरिका फौरन कार्रवाई करने के लिए कटिबद्ध हो जाय तो रूस को भी, कम-से-कम अगले कुछ वर्षों के लिए रोका जा सकता है। क्योकि नाजियो को हराने मे रूस को जो रक्त बहाना पडा है उससे वह कमजोर हो गया है। सोवियत् सरकार कोई बडी लडाई लडना नही चाहती। और अगर उसे यह मालूम हो जाय कि सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से अन्य बडे राष्ट्रो के हस्तक्षेप करने के फलस्वरूप यह लडाई भारी युद्ध मे बदल जायगी, तो वह (सोवियत् रूस) अपेक्षाकृत छोटी लडाई लडने से भी बचने की पूरी तौर से कोशिश करेगा।

यदि सोवियत् रूस की प्रादेशिक विस्तार की नीति इस हद तक न पहुच जाय कि वह असह्य जान पडने लगे, तो यह मानी हुई बात है कि अगले

५ या ६ वर्षों के लिए तीनो बडे राष्ट्रो के सामने वास्तविक समस्या विश्व-व्यापी युद्ध की न होगी, बल्कि वह अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने के इरादे से बडे राष्ट्रो द्वारा कमजोर राष्ट्रो को हडप कर लेने, उनमें घुस जाने और उनको दबा दिये जाने की ही होगी। और यही समस्या उन राष्ट्रो को, जो अपने क्षेत्र का विस्तार करने की लालसा नही रखते, एक खतरे के रूप मे दिखाई देने लगेगी और तब मुमकिन है कि यही राष्ट्रो के बीच प्रथम आणुविक-सघर्ष का कारण बन जाय।

बहुत सम्भव है कि एग्लो-अमेरिकन सन्धि रूस को किसी दूसरे राष्ट्र पर हमला करने से रोक दे। उस रूस पर यही प्रभाव एक ऐसा सयुक्तराष्ट्र-सघ भी डाल सकता है, जिसके निर्णय को रद्द कर देने का अधिकार किसी राष्ट्र को न प्राप्त हो। लेकिन प्रश्न यह है कि इस प्रकार की सन्धि या सयुक्तराष्ट्र सघ सोवियत् रूस को विदेशी राष्ट्रो के भीतर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को भग कर देने से कैसे रोक सकता है ?

अगर कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के मुकाबले मे कमजोर पडता है तो इस स्थिति का मुकाबला सामूहिक सुरक्षा के निमित्त सगठित अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के सहयोग द्वारा किया जा सकता है। लेकिन राष्ट्रो की आन्तरिक (घरेलू) राजनीतिक और आर्थिक विकास सम्बन्धी असमानता को, जो एक ओर तो किसी राष्ट्र को अपना विस्तार करने के लिए लालायित करती और दूसरी ओर किसी दूसरे राष्ट्र को इस तरह के विस्तार का मुकाबला करने म असमर्थ बना देती है, शक्ति-प्रयोग द्वारा किसी भी हालत मे दूर नही किया जा सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और शान्ति का अन्तिम सूत्र सधियाँ या सगठन नही, बल्कि राष्ट्रो की घरेलू नीति और राष्ट्रीय सरकारो का सामाजिक स्वरूप ही है।

मान लीजिए, अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य कई छोटे-छोटे राष्ट्र विश्व-सरकार का सगठन करने के लिए तैयार हो गए और उसके नेतृत्व में रहने लगे, लेकिन रूस ने उसका समर्थन करने से इसलिए इन्कार कर दिया कि वह किसी पूजीवादी सरकार का अग बनना नही चाहता या उसने यह सोचा कि अगर वह इस तरह की सरकार मे शामिल होता है तो उसे उस सर-कार में बहुमत के सामने बुरी तरह नीचा देखना पडेगा, तो उस हालत मे क्या किया जा सकता है ?

गैर-सोवियत् राष्ट्रो के विश्व-सरकार मे शामिल होने के लिए तैयार होते ही (और यह बात जितनी जल्दी हो उतनी ही अच्छी होगी) उन्हे करना

यह चाहिए कि वे फौरन रूस को इस बात पर राजी करने की पूरी तौर से कोशिश करे कि विश्व-सरकार के सगठन के कार्य मे वह भी हाथ बटाए, और इसके साथ-ही-साथ इस बात का भी प्रयत्न होना चाहिए कि इस विश्व-सरकार के अन्तर्गत प्रत्येक राष्ट्र को स्वेच्छानुसार अपना व्यक्तित्व प्रकट करने के लिए विस्तृत रूप से स्वतन्त्रता दी जाय। अगर सोवियत् रूस विश्व-सरकार मे शामिल न होकर उससे अलग रहना ही पसन्द करे तो उस पर कोई जोर या दबाव न डाला जाय या इसके लिए उसे दण्ड देने की कोई कार्रवाई न की जाय। गैर सोवियत् राष्ट्र उस हालत मे विश्व-सरकार के केवल ⅘ भाग को ही सगठित करे, पर साथ ही रूस के लिए उसका दरवाजा बराबर खुला रख छोडे।

सम्भव है कि कुछ लोग फिलहाल इस तरह की विश्व-सरकार का सगठन हो जाने के विरुद्ध राय दे और यह दलील पेश कर कि अगर अभी ऐसा हुआ तो सोवियत् रूस तथा ससार के अन्य राष्ट्रो के बीच एक खाई खुद जायगी। लेकिन विश्व-सरकार सगठित न करने से भी तो यह खाई दूर नही हो सकती। बल्कि यह तो सिर्फ उस खाई पर परदा डालना ही होगा। क्योकि उनके बीच यह खाई पहले से ही मौजूद है। यदि यह दुनिया एक ही दुनिया होती तो उसकी घोषणा खुशी के साथ कर सकते थे। लेकिन चूकि दो दुनिया है इसलिए हमारे लिए यही बेहतर होगा कि हम इस असलियत को स्वीकार कर ले।

यदि उस समय तक, जब तक कि रूस उसमे शामिल नही होता, विश्व-सरकार सगठित करने से इन्कार किया जाता है तो इसका मतलब यही होगा कि रूस को गैर-सोवियत् राष्ट्रो मे असीम काल तक फूट पैदा करने दिया जाय जिससे कि वे रूसियो के दबाव का विरोध न कर सकें। ऐसी हालत में जबकि एक दुनिया दूसरी दुनिया की जड खोद रही हो और इसके साथ-ही-साथ स्वय अपने प्रभाव-क्षेत्र को सुदृढ बनाती और उसका विस्तार करती जा रही हो, उस हालत में बजाय इसके कि लोकतत्रवादी एकता की भ्रान्त धारणा की—इस तरह की भ्रान्त धारणा बोलशेविको मे नही है—'दोनो दुनिया' के लिए यह कही बेहतर होगा कि वे आपस के इस विभेद को स्वीकार कर ले।

काश, एक ही दुनिया होती—एक शानदार दुनिया। लेकिन आखे बद कर लेनें मे ही तो ऐसा नही हो जाता। एक ही दुनिया—यह एक महान् लक्ष्य है। और विल्की—जिसने मानव जाति को यह नारा दिया—एक महान् पुरुष थे। लेकिन वास्तव में यह दुनिया एक ही दुनिया नही है।

ससार को दो भागो मे बाट देने पर उन दोनो भागो में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावना नही हो, सकती—-ऐसा नही कहा जा सकता। व्यापार, वैज्ञानिक और सास्कृतिक आदान-प्रदान और यात्राए—-यह सब बाते सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है। दो देशो के बीच की प्रतिद्वन्द्विता बहुत लम्बे समय तक अहिंसात्मक बनी रह सकती है।

इस प्रतिद्वन्द्विता का क्या स्वरूप है ? क्या यह सच है कि दुनिया आधी गुलाम और आधी आजाद नही रह सकती ? क्या यह सच है कि बोलशेविक नेताओ को डर है कि अगर ससार को वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई तो उस हालत मे सोवियत्-सरकार—जिसने स्वय एक बहुत बडे पूँजीवाद का रूप धारण कर लिया है—का यह अत्याचार अनिश्चित काल तक टिका न रह सकेगा ? क्या यह सच है कि ससार के पू जीवादी राष्ट्रो को भय है कि मास्को से आदेश प्राप्त करने वाले कम्युनिस्ट और आमूल परिवर्तनवादी उनका खात्मा कर देगे ?

इस प्रतिद्वन्द्विता का चाहे जो भी कारण हो और चाहे वह जितने भी समय तक और चाहे जितनी भी गम्भीरता के साथ चलती रहे, इसका मुकाबला पूजीवादी राष्ट्र केवल एक ही नीति द्वारा कर सकते है। अर्थात् वे खुद रहने के लिए अपने घर को पहले से आकर्षक और आरामदेह बनाए। अगर वे यह कहते है—-'हम इस घर मे कई पुश्त से रह रहे है। यह घर हमारे बाप दादो को पसन्द था, इसलिए हमारे लडके-लडकियो, हमारे मेहमानो और हमारे नौकरो को भी इसे पसन्द करना पडेगा,' तो उनके नौकर उस घर को त्याग देगे, उनकी नई सन्ताने उस घर को छोडकर चल देगी।

यदि रूढिवादियो, प्रतिक्रियावादियो और मौजूदा स्थिति को ज्यो की-त्यो बनी रहने देने के समर्थको की, जो कि घर मे कोई मरम्मत, आधुनिक ढग से सुधार, और नई बातो का विरोध करते है, जीत हुई तो नई सन्ताने उस घर में टिक न सकेगी, वे अपने रहने के लिए किसी दूसरे घर की तलाश करने निकलेगी।

धुरी-राष्ट्रो के शिकार बनने वाले राष्ट्रो की कमजोरी और हमला होने पर उनकी सहायता करने के प्रति शान्तिप्रिय राष्ट्रो की उदासीनता—-इन्ही दो बातो से धुरी-राष्ट्र आक्रमण, युद्ध और सहार करने के लिए प्रोत्साहित हुए थे।

सोवियत् सरकार का ख्याल है कि जहा अन्य राष्ट्रो को असफलता मिली वहा उसे सफलता मिल सकती है। क्योकि वह पूजीवादी राष्ट्रो की एक दूसरी कमजोरीसे लाभ उठा सकती है। और वह कमजोरी है अन्य राष्ट्रो

द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक समस्याओ का निराकरण न करना।

यदि रूस चीन, भूमध्यसागर, उत्तरी अफ्रीका, ट्रीस्ट, ग्रीस और अपने कम्युनिस्ट दलो के जरिए प्रत्येक पूजीवादी राष्ट्र तक पहुचता है, तो उसका यह प्रसार न केवल साम्राज्यवादी गर्व से बल्कि सैद्धान्तिक विश्वास से भी अनुप्राणित है। सोवियत् रूस का यह भारी आक्रमण कमजोर राष्ट्रो की अरक्षित अवस्था, बडे देशो की तुष्टीकरण की भावना और इन सबसे बढकर स्वत सोवियत् राष्ट्र के भीतर फैली हुई अशान्ति और असन्तोष से शान्ति प्राप्त करता है। किसी राष्ट्र के आक्रमणकारी बनने का कारण भी वही है जो किसी व्यक्ति के आक्रमणकारी बनने का—अर्थात् भीतर से मानसिक गुत्थिया और बाहर से उपयुक्त लक्ष्य और अवसर इसके लिए इन दोनो कारणो मे से केवल एक ही आक्रमण के लिए पर्याप्त होता है।

लोकतत्रवादी राष्ट्र अपना माल दूसरे देशो मे भेजते है और वे अपने विचार भी दूसरे देशो में पहुचाने के लिए तैयार है। वे तानाशाही से आजादी को पसन्द करते है। बहुत से प्रजातत्रवादी राष्ट्रो को यकीन हो गया है कि पूजीवाद सर्वोत्तम है। लेकिन लोकतत्रवादी राष्ट्र लम्बे अरसे से निष्क्रिय नही बन रहे है। शायद उन्हे अपने मे विश्वास नही रह गया है। शायद वे अपने विचारो को बलपूर्वक दूसरो पर लादने मे विश्वास नही करते। वे वास्तव मे अपने पूजीवाद को समाजवाद में मिला रहे है, जिससे प्रकट होता है कि वे किसी दूसरी बात को आजमाने के लिए उद्यत है।

दूसरी ओर बोलशेविको को यकीन हो गया है कि उन्होने जिस रास्ते को अख्तियार किया है वह ठीक है और उनकी प्रणाली सर्वोत्तम है। उन्होने इस बात को साबित नही किया है, लेकिन बडे जोर-शोर से यह दावा करते है।

स्टालिन के आदर्शवादी आक्रमण का सूत्रपात इस निश्चय को भावना से हुआ है कि वह इसमे विजय प्राप्त कर सकता है।

स्टालिन का यह विश्वास उन गड्ढो के भीतर के रक्षको की, जिन पर वह हमला करने की आशा रखता है, बेवकूफी से और भी दृढ बन गया है। वे अपने किले की चहार-दीवारी मे कुछ और ईंट जोड देते है और रक्षा के लिए उसके चारो तरफ तैयार की गई खाई को और चौडी बना देते है। स्टालिन यह देखकर मुसकराने लगता है वह सोचते है—'इस किले की चहार-दीवारी के भीतर हमारे बहुत से मित्र है। चर्चिल जैसे व्यक्तियो के कारण हर रोज हमारे नए नए दोस्त बनते जा रहे है। इस के भीतर रहने वाले दूसरे लोग या तो आक्रमण का मुकाबला करने से

अत्यधिक उदासीन या ऊबे हुए या इतने शक्ति-क्षीण हो रहे हैं कि वे लड ही नही सकते ।'

संधि प्रस्ताव को सुनकर मास्को को गुस्सा आता है। 'ठोस वार्ता' के साथ ठोस कार्य ही सोवियत् सरकार को प्रभावित कर सकता है। लेकिन जब अमेरिका और ब्रिटेन सारे ससार मे स्वातत्र्य आन्दोलनो और सामाजिक लोक-सत्ता का समर्थन करने लगेंगे तभी स्टालिन को विश्वास होगा कि अब हम यह समझ गए है कि उसके क्या इरादे है और अब हम रचनात्मक और प्रगतिशील कार्रवाइयाँ करने और उसके आक्रमण को रोक देने के लिए तैयार हो गए है।

चर्चिल के एंग्लो-अमेरिकन समझौते के प्रस्ताव की अपेक्षा ब्रिटिश मज-दूर-सरकार की एशिया के उपनिवेशो की आजादी की योजनाओ से सोवियत् सरकार को अधिक घबराहट होती है। पश्चिमी राष्ट्र निकट-पूर्व के सामन्त-शाही नरेशो का समर्थन करना बन्द करके वहा के गरीब किसानो का समर्थन करने लग जाय और तब मास्को को मालूम हो जायगा कि दरअसल कोई महत्त्व-पूर्ण बात हुई है। चीन की सघ सरकार अपने यहा भूमि-सुधार करें और तब स्टालिन कहने लगेगा—"वह चीन मे एकता स्थापित कर रही है और मुझे चीन से खदेड रही है।" गोरी जाति के लोग इस बात का निर्विवाद प्रमाण देना चाहते है कि उन्होने काली जातियो के प्रति एक नया और सम्मानपूर्ण रुख धारण किया है, और तब मास्को को महसूस होने लगेगा कि उसे लाखो शक्तिशाली राजनीतिक रंगरूटो से हाथ धोना पड रहा है। लोकतत्रवादी राष्ट्रो को यहूदी विरोधी आन्दोलन का विरोध करना चाहिए और तभी समीक्षक इस निर्णय पर पहुचेंगे कि लोकतत्र-वादी राष्ट्र फाशिस्ट-विरोधी है। इग्लैड और अमेरिका यूरोप में सामाजिक परिवर्तन-कारी शक्तियो से मैत्री स्थापित कर ले, तो यूरोप यह देखेगा कि उसमे साम्राज्यवादी स्लाव कम्युनिस्ट से लडने की ताकत आगई है। अंग्रेज और अमेरिकन फाशि-स्टो, पादरी प्रतिक्रियावादियो, सत्तावादियो, आर्थिक सत्तावादियो और सैनिक-वादियो से नफरत करने लग जाय, तो वह देखेंगे कि लाखो की तादाद में स्वतत्रता के पुजारी एंग्लो-अमेरिकन झडे के नीचे आजाते है। इग्लैड, अमेरिका फ्रॉस, हालैंड और पुर्तगाल प्रादेशिक तेल सम्बन्धी और व्यापारिक साम्राज्य-वाद को त्याग दे, उन्हे किसी अन्य साम्राज्यवाद का मार्ग अवरुद्ध कर देने की एक नई नैतिक शान्ति प्राप्त हो जायगी। पश्चिमी राष्ट्र कमजोर देशो के मामले में जबरदस्ती दखल देना बन्द कर दे, फिर उन्हे सोवियत् रूस के हस्तक्षेप को रोक देने का सुअवसर प्राप्त हो जायगा। पूर्वी उपनिवेशो के प्रवक्ता न केवल

बाहरी सरक्षण से आजादी के लिए, बल्कि भीतर से सामाजिक न्याय के लिए जिहाद शुरू करे। तब वे पूर्ण स्वतत्र होने की आशा कर सकते है।

यही वे अस्त्र है जिनसे लोकतत्री राष्ट्रो पर होने वाले रूसी हमले को रोका जा सकता है। यह रूस के साथ सैद्धान्तिक प्रतिद्वन्द्विता है। रूस से लडने के बजाय यही एक दूसरा तरीका है। अगर लोकतत्रवादी राष्ट्र इसमे विजयी हुए तो युद्ध न होगा—ससार में कभी युद्ध न छिडेगा। ससार में एक विश्व-सरकार कायम होगी जिसमे अन्ततोगत्वा रूस भी शामिल हो जायगा। लेकिन अगर रूस की जीत हुई तो लोकतन्त्रवाद का नाम निशान न रह जायगा।

इसमे शक नही कुछ लोग कहेगे कि रूस के साथ यह सैद्धान्तिक प्रतिद्विन्द्वता का प्रस्ताव "सोवियत् विरोधी" है, और वह रूस तथा ससार के बाकी राष्ट्रो के बीच खाई उत्पन्न कर देगा और युद्ध को अनिवार्य बना देगा। लेकिन मै इससे बिलकुल विपरीत बात को सच समझता हू। इस समय सोवियत् रूस गैर-सोवियत् राष्ट्रो के विरुद्ध सयुक्त प्रादेशिक सैद्धान्तिक आक्रमण आरम्भ करने मे व्यस्त है। उमे न रोकने का मतलब रूस को उस हद तक अपना विस्तार करने मे सहायता पहुचानी होगी, जहा पर दोनो पश्चिमी राष्ट्रो चौंककर बल-प्रयोग द्वारा रूस को आगे बढने से रोक देना होगा।

रूसी समस्या सुलझाने के तीन उपाय है—(१) रूस से अभी लडा जाय। मै उसका जोरदार विरोध करता हू। (२) रूस को तुष्ट किया जाय। तुष्टीकरण में हमेशा यह बात शामिल रहती है कि आप जो कुछ कर रहे है वह तुप्टीकरण नही बल्कि रूस से मैत्री बनाये रखने का यही एक मात्र उपाय है। मै इसे अस्वीकार करता हू क्योकि इससे बहुत से देशो की स्वतन्त्रता मिट जायगी और इसका परिणाम युद्ध होगा। (३) रूस के प्रादेशिक विस्तार को एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय सगठन द्वारा और उसके मार्ग मे पडने वाले देशो में सन्तोष और एकता की भावना को बढाकर सोवियत् रूस के विस्तार को रोक दिया जाय। मै इसका अनुमोदन करता हू। इसका विरोध वही लोग करेंगे जो रूस के विस्तार को रोकना नही चाहते।

रूस के साथ सैद्धान्तिक जागरूक प्रतिद्वन्द्विता पर आधारित वैदेशिक नीति से संसार में शान्ति स्थापित होने की सम्भावना बढेगी, उदारवादियो के बीच तानाशाही विचार-धारा का समावेश होना रुक जायगा, लोकतत्रवाद की सुरक्षा होगी, रहन-सहन का मान बढेगा और स्वतत्र ससार का नैतिक विकास

होगा, जिसकी बडी आवश्यकता है। रूस से सैद्धान्तिक प्रतिद्वन्द्विता के बचाव का दूसरा उपाय यही है कि रूस से अपनी पराजय पूरी तौर से स्वीकार कर ली जाय।

लेकिन वैदेशिक नीति किसी विदेश मत्री की सनक या मनमानी योजना नही है। स्वत. अपने घर मे अमेरिका का जो रूप है, उसी के अनुसार वह विदेशो मे भी आचरण करता है। यही बात इग्लंड तथा अन्य राष्ट्रो के बारे मे भी सच साबित होती है।

"क्या हमारे नेता इतने महान् तथा बुद्धिमान् है कि वे एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील नीति कार्यान्वित कर सक ?" यह प्रश्न बहुत से नागरिको को परेशान करता रहता है। इसका उत्तर यही है कि एक लोकतंत्रवादी राष्ट्र के नेता अनिवार्यत अपने देश की जनता से, जिनका वे नेतृत्व करते है, बहुत बड नही होते और न वे जनता की अपेक्षा बहुत तेजी के साथ कदम ही बढा सकते है।

उन सभाओ म जिनमे मै इस बात का आग्रह करता हू कि सयुक्तराष्ट्र-सघ के अन्तर्गत राष्ट्रो के विशेषाधिकार को उडा देना चाहिए, अथवा मजदूर विरोधी कानून को रद्द कर देना चाहिए, मुझसे पूछा गया है, "क्या हमें अपने काग्रेस-सदस्यो के पास तार भेजन चाहिए ?" मै कहता हू, "अवश्य, आप अपने काग्रेस-सदस्यो के पास तार भेजें। लेकिन दूसरी बार काग्रेस के लिए ऐसे प्रतिनिधि चुनें जिन्हे तार देने की जरूरत ही न हो।"

वैदेशिक नीति और प्रत्येक नीति निर्धारित करने वाले स्त्री-पुरुष, वे व्यक्ति है जो व्यवस्थापिका सभाओ मे और सरकारी दफ्तरो में बैठते है। उनका चुनाव होता है अथवा उन्हे उन लोगो की इच्छा, दबाव और दलीलो को स्वीकार करना पडता है जो जनता द्वारा चुने जाते है। इस प्रकार वैदेशिक नीति वोट पडने के बक्स से निर्धारित होती है, वैदेशिक नीति तथा शान्ति उस प्रत्येक नगर और गाव मे निर्मित होती है जहाँ निर्वाचक लोग स्वतन्त्रता पूर्वक और ईमानदारी के साथ वोट देने जाते है।

दान अथवा प्रत्येक सद्गुण की भाति शान्ति सबसे पहले अपने घर से ही शुरू होती है। साधारण जनता ससार के सारे देशो की साधारण जनता की हित-कामना करती है। औसत आदमी शान्ति के लिए बहुत कुछ त्याग करेगा। वह माल पर चुगी वसूल करने की इच्छा रखने वाले कारपोरेशनो, और सुविधाए प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली समितियो के हितो के मुकाबले मे शान्ति को बहुत ऊची दृष्टि से देखता है। सामान्य रूप से साधारण जनता न

तो सैनिकवादी है, न साम्राज्यवादी।

लेकिन साधारण जनता की मनोभावनाओ, विचारो और हितो की देश के राजनीतिक जीवन में पूरी-पूरी झलक देखने को नही मिलती। सुधारक, आदर्शवादी, पादरी नेता, सामाजिक कार्यकर्त्ता, अन्तर्राष्ट्रवादी, महिला निर्वाचको के सघ, ट्रेड यूनियन तथा विभिन्न प्रकार के सदुद्देश्यो को लेकर स्थापित की गई अनेकानेक सुधार-समितिया लगातार राजनीतिज्ञो के ही पीछे पीछे लगी रहती है। क्या यह अच्छा न होता कि वे स्वय राजनीति मे पदार्पण करती? लोकतन्त्रवादी देशो के सार्वजनिक जीवन मे अधिकतर नैराश्य का कारण वह खाई होती है, जो दो बातो के बीच पाई जाती है कि बहुत से लोग क्या चाहते या क्या लक्ष्य रखते और उसकी प्राप्ति के लिए वे क्या प्रयत्न करते है।

राजनीति को एक 'खेल' समझा जाता था। राजनीति उन लोगो से वास्ता रखती थी जो सडकें साफ कराते, कूडा-कर्कट जमा कराते और पुलिस इन्स्पेक्टर को नियुक्त करते थे। लेकिन अब राजनीति जीवन का ताना-बाना बन गई है। अब वह इसका फैसला करने वाली है कि बमों से मर मिटने के बजाय मानव जाति का सन्तुष्ट, बेकारी से मुक्त, सुखी और जीवित रहना है।

अपेक्षाकृत एक उत्तम ससार के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि ससार की जनता न केवल अवसर आने पर वोट देकर बल्कि उस चुनाव के लिए प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवार भी खडा करके अपने देश के राजनीतिक मामलो मे पहले से अधिक सक्रियता पूर्वक भाग ले। यह कार्य दल के कार्यकर्त्ताओ और पेशेवर सरक्षको के ऊपर हर्गिज न छोडना चाहिए।

औसत नागरिक युद्ध या शान्ति के लिए, आजादी या तानाशाही के लिए, अमीरी या गरीबी के लिए कुछ-न-कुछ करना ही चाहता है। वह उपयोगी वस्तुओ के उत्पादन, वितरण और खपत के रूप मे कुछ न-कुछ करता ही है। अपने व्यक्तिगत आचरण द्वारा वह कुछ सहायता ही पहुचाता है। लेकिन अब उसे राजनीतिक इकाई के रूप में इससे कुछ और अधिक करना पडेगा।

जिन लोगो को इस बात का पूर्वाभास मिल गया था कि एक महान् नई दुनिया (अमेरिका) का अभ्युदय होने वाला है वह अपने नौजवानो को वहा जाने और लाभ उठाने की नेक सलाह देते थे। इसी प्रकार आज प्रत्येक युवक-युवती और प्रौढ स्त्री-पुरुषो के लिए जो एक नए, महान् और स्वतत्र ससार के निर्माण का स्वप्न देखते है, यही नारा होना चाहिए कि 'राजनीति को अपनाओ—उसे ग्रहण करो।'

अपेक्षाकृत उत्तम अमेरिका, उत्तम इग्लैंड, उत्तम फ्रास, उत्तम जर्मनी,

उत्तम रूस, उत्तम भारत को अपेक्षाकृत उत्तम ससार के निर्माण के लिए पारस्परिक सहयोग द्वारा कार्य करना होगा। आज ादी और शान्ति की समस्या किसी करामात से—जादू से—हल नही को जा सकती। इसके लिए प्रत्येक परिवार, प्रत्येक जाति, प्रत्येक राज्य और प्रत्येक राष्ट्र मे खून का पसीना बनाने की जरूरत है।

अपेक्षाकृत उत्तम ससारमे सभी आजाद होगे, अपने विकास के लिए सभी को अवसर प्राप्त होगे। इसके अतिरिक्त बेकारी के जुए से मुक्ति, अन्तर्वेदना से पूरित भेदभाव से छुटकारा, अभाव की पीडा से आजादी, अरक्षा और भय से स्वतत्रता, अत्यधिक शासन-नियत्रण और अत्यधिक सम्पति के प्रपीडन से मुक्ति, और काबू मे न लाए जा सकनेवाले राजनीतिक एव आर्थिक प्रभुओ से छुटकारा मिल जायगा। और तब हर-एक को कुछ सीखने का, कुछ बढने का और अन्यो की सेवा करते हुए अपनेपन को जान लेने का अवसर प्राप्त होगा। इस प्रकार की दुनिया मे मानव और मानवो मे जो शाति होगी, वही राष्ट्रो की शाति होगी।